1953

G. K. U.
HARDWAR

079 [illegible] 3

COMPILED

Stock Verification-2024

079403

COMPILED

079403

आयुर्वेद

महासम्मेलन

पत्रिका

[illegible]

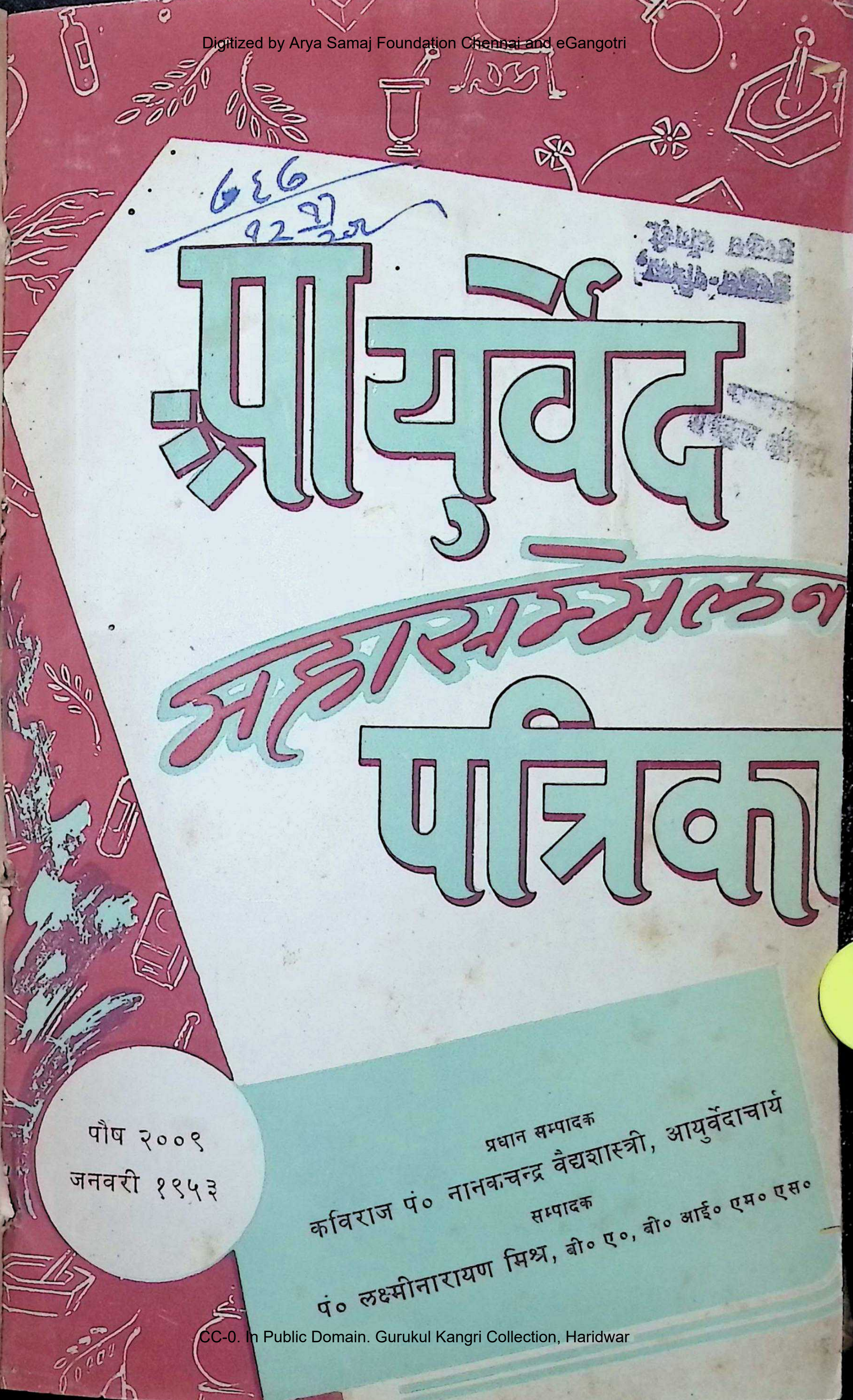

६६८
१२

आयुर्वेद
महासम्मेलन
पत्रिका

पौष २००९
जनवरी १९५३

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०, बी० आई० एम० एस०

१९५३ वर्षीय सदस्यता शुल्क तुरन्त भेजें

१. महासम्मेलन पत्रिका के ३९ वें वर्ष का प्रथम अंक पाठकों के हाथ म है । गत नवम्बर, दिसम्बर मासीय अंकों में सूचना प्रकाशित कर हमने ग्राहकों, सदस्यों एवं सम्वद्ध संस्थाओं से निवेदन किया था कि वह अपना-अपना १९५३ वर्षीय सदस्यता शुल्क भेज कर जनवरी मास से अपना अंक सुरक्षित करालें । सदस्यों ने इस पर ध्यान नहीं दिया ऐसा जान पड़ता है क्योंकि अनेक महानुभावों का चन्दा अभी आना शेष रह गया है । अतः सुविधा को दृष्टि में रखते हुए और यह सोचते हुए कि कोई सदस्य महानुभाव पत्रिका से वंचित न रह जाएं जनवरी का अंक उन सभी महानुभावों की सेवा में भी भेज दिया गया है जिनका नव वर्ष का शुल्क अभी तक कार्यालय में नहीं पहुंचा है । आशा करते हैं कि इसके प्राप्त होते ही वे अपना शुल्क कार्यालय में तुरन्त ही भेज देंगे । जनवरी मास के अन्त तक जिन महानुभावों का चन्दा हमें प्राप्त नहीं होगा उन्हें विवशतया फरवरी का अंक वी० पी० द्वारा भेजना पड़ेगा किन्तु इसमें असुविधा होगी और सदस्यों पर अनावश्यक डाक व्यय पड़ जाएगा । अतः हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठक ऐसा अवसर न आने देंगे और जनवरी के अन्त तक अपना-अपना चन्दा अवश्य भेज देंगे ।

२. **लेखकों से अनुरोध**—पत्रिका के लिये आयुर्वेद के विवध अंगों पर तुलनात्मक, गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक, महासम्मेलन और वैद्यसमाज के संगठन को पुष्ट करने वाले तथा वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किए जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्ति-युक्त सप्रमाण लेख भेज कर पत्रिका की शोभा बढ़ावें ।

३. **महासम्मेलन की सदस्यसंख्या में वृद्धि करने की परमावश्यकता :**—"आयुर्वेद को भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान कराना" तथा "अष्टांग आयुर्वेद के पुनरुज्जीवनार्थ सर्वांगपूर्ण एवं सर्वसाधन सम्पन्न आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करना" अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ये दो मुख्य उद्देश्य हैं । परन्तु इनकी सिद्धि अनवरत प्रयत्न एवं सामूहिक सहयोग से ही सभव है । अभी तक लगभग २००० दो सहस्र सदस्यों के सहयोग से आयुर्वेद महासम्मेलन का कार्य चलता आया है परन्तु परिवर्तित परिस्थिति में इतने से कार्य न चल सकेगा । भारतवर्ष एक महाद्वीप के समान विशाल देश है, इसके कोने कोने में वैद्यबन्धु विराजमान हैं, उनकी संख्या ३ लाख से ऊपर कही जाती है, प्रायः सभी वैद्यबन्धु सुसम्पन्न, सौभाग्यवान, अपने व्यवसाय में सफल तथा कुशल एवं प्रसन्नावस्था में हैं, आयुर्वेद से उनका जीवनोपार्जन भलीभांति हो रहा है, फिर कोई कारण नहीं दीखता कि आयुर्वेद को उन्नति के शिखर तक पहुंचाने के लिये, जिसमें देश, जाति एवं राष्ट्र का ही हित निहित नहीं, अपितु उनकी स्वार्थ-सिद्धि एवं सम्मान वृद्धि भी सन्निहित है, वे अधिकाधिक सहयोग न दें तथा अपनी आय का एक बहुत थोड़ा भाग भी इस महान यज्ञ में भेंट न करें । मेरा दृढ़ मत है कि अब महासम्मेलन के कार्य को सुचारु रूप से चलाये रखने के लिये इसके न्यूनातिन्यून १०,००० दस सहस्र सदस्य होने चाहियें । अतएव महासम्मेलन के वर्तमान सदस्यों से साधारणतया एवं सम्बद्ध संस्थाओं से विशेषतया विनम्र प्रार्थना है कि वे अधिकाधिक नये सदस्य बनाने का भार ग्रहण करें । आशा है सदस्यगण एवं सम्बद्ध सस्थायें अपना पुनीत कर्तव्य समझ कर सदस्यतावृद्धि के इस आन्दोलन में इस कार्यालय को अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे ।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन,
स्ट्रीट नं० ११ सदर बाजार,
देहली ।

वामनराव दीनानाथ वैद्य,
प्रधानमंत्री,
अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक--कविराज पं० नानकचंद्र वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक--पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय--गली नं० ११, सदर बाजार, देहली-६

वर्ष ३९
अंक १
दिल्ली, पौष २००९, जनवरी १९५३
मूल्य ॥)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ
१. सम्पादकीय — २
२. संयोजक संसद् सम्पर्क समिति की वैद्यसमाज से प्रार्थना — ४
३. आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा में समन्वय की आवश्यकता— राजकुमारी अमृतकौर — ६
४. बम्बई के वैद्यों की आम सभा — ७
५. तब और अब— योगेन्द्रपाल — ९
६. वनस्पति विज्ञान— रामस्वरूप चक्रवर्ती — १२
७. राजयक्ष्मा— नानकचन्द्र — १५
८. आयुर्वेदान्तर्गत रहस्य— डा० आर० एस० अग्रवाल — २०
९. चरक के पाठ पर विचार कीजिए— लीलाधर शास्त्री — २३
१०. प्रलपक सन्निपात— ओंकार शास्त्री — २७
११. मधुमेह— डा० शंकरलाल भेड़ा — ३३
१२. अनुभूत योग — ३७
१३. आयुर्वेद लोक — ४१
१४. पंचवर्षीय योजना और आयुर्वेद — ४९
१५. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यसमितेः १९५२ वर्षीयं तृतीयाधिवेशनम् — ५१

सम्पादकीय

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम एक जैसा हो

भारतीय आयुर्वेद संस्थाओं में यह एक बड़ी भारी त्रुटि दिखाई दे रही है कि इन सब के आधीन जो विद्यालय कार्य कर रहे हैं उनका पाठ्यक्रम एक दूसरी संस्था से भिन्न ही है। परन्तु एलोपैथी का पाठ्यक्रम भारत भर में सब विद्यालयों में एक जैसा है। यह हमारी अवनति का कारण है अतः भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम तथा भिन्न-भिन्न उपाधियों के होने से हम लोगों का समानभाव होना अत्यन्त दुर्लभ हो रहा है। भारत की सुप्रसिद्ध संस्था महामण्डल द्वारा संचालित "विद्यापीठ" से सम्बन्धित संस्थाओं को अपना पाठ्-क्रम विद्यापीठ के अनुकूल बनाकर उसे भारत की सर्वमान्य संस्था बनानें का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने से महामण्डल शीघ्रातिशीघ्र आयुर्वेदीय विश्वविद्यालय का उद्घाटन करनें में प्रयत्नशील हो सकेगा तथा परस्पर एक शृंखला-वद्ध होकर हम विरोधियों का मुकाबला भली प्रकार कर सकेंगे। इससे ही हमारा संगठन भी दृढ़ हो सकेगा। संगठन ही कार्य सम्पादन में फलीभूत होता है।

आयुर्वेदीय पद्धति द्वारा भारत में अष्टांगायुर्वेदीय विश्वविद्यालय सम्पादन करने के लिये हमें सभी प्रकार के विद्वानों का सहयोग प्राप्त होना अत्यन्तावश्यक है अतः भारत में एतादृश वातावरण तभी प्रस्तुत हो सकता है जब हम सभी मिलकर महामण्डल को तन मन धन से पुष्ट करने का यत्न करें।

इस अवस्था की प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम भारतीयायुर्वेद की संस्थाओं का पाठ्यक्रम एक होना परमावश्क है ऐसा होने से आयुर्वेद के सभी अंगों के छात्र तैयार होकर आयुर्वेद को सर्वांगपूर्ण बनाने में समर्थ हो सकेंगे।

मैं आशा करता हूं कि सर्व भारतीय वैद्यवन्धु ! मेरे इस नम्र निवेदन पर अवश्य ध्यान देकर कृतार्थ करेंगे और अपनें-अपने विचार सम्मेलन पत्रिका में भेंजकर अपने भाव तथा सुझावों द्वारा उक्त कार्य में सहायक होकर यश के भागीं होंगे।

देश के लिए आयुर्वेद ही हितकर

भारत सरकार की पंचवर्षीय योजना सर्वसाधारण के सम्मुख आ रही है आशा की जाती है कि इस योजना के कार्य रूप में आने पर भारत की चतुर्दिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। उससे भारत की उन्नति होने को है। इसमें एक विषय स्वास्थ्य

सम्बन्धी भी है जिसके अनुसार भारतीयों की स्वास्थ्योन्नति का यत्न होगा। यह सत्य है कि हर एक राज्य के शासकों का यह कर्त्तव्य होता है कि वह जनता के स्वास्थ्य के लिये नाना प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध करे, जिनसे जनता का कल्याण हो और राज्य की उन्नति हो। इस समस्या के हल करने के लिये स्वास्थ्य समितियों द्वारा उन-उन उपायों का अवलम्बन करना आवश्यक होता है जिनसे जनता का स्वास्थ्य बनें।

जनता के स्वास्थ्य की ओर ध्यान करते हुए हमारे शासकों को इस बात का अवश्य विचार करना युक्त है कि भारत की जनता के लिये कौन सी चिकित्सा-प्रणाली हितकर है तथा किस प्रणाली को भारत की अधिकांश जनता सुखकर समझती है अथवा किस पद्धति द्वारा जनता को अधिकतर आर्थिक तथा शारीरिक लाभ पहुंच रहा है, यह सभी विचार सम्मुख रखकर उसी के अनुकूल कार्यारम्भ करना श्रेयस्कर होगा।

वह कहते हुए संकोच नहीं होता कि जब भारत में संक्रामक रोगों का प्रकोप होता है उस समय तो जनता आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा अपनें प्राणों की रक्षा करती है उदाहरण में यह स्मरण होगा कि सन् १९२३ में भारत में युक्षान्त ज्वर का प्रकोप होनें से ६० लाख भारत की जनता उससे पीड़ित हुई थी। उस समय तत्कालीन शासकों ने रिपोर्ट द्वारा यह घोषित किया कि जितने व्यक्ति आयुर्वेद चिकित्सकों द्वारा ज्वर मुक्त हुए उतने ऐलोपैथिक डाक्टरों से नहीं हुए। इसी तरह ''इन्पलुएन्जा'' के प्रकोप के समय भी भारतीय जनता को आयुर्वेद से ही विशेष लाभ हुआ था ऐसा सरकारी रिपोर्ट में घोषित किया गया था। इसी प्रकार प्लेग के अनेक आक्रांत रोगियों नें भी भारतीय चिकित्सा पद्धति से स्वास्थ्य लाभ किया था।

अतः स्वास्थ्य विभाग को यह स्मरण रखना चाहिये कि भारत की जनता के लिये भारतीय चिकित्सकों से अवश्य इस कार्य में परामर्श करना जनता के हित के लिए हो सकेगा। यह सिद्धांत है कि जिस देश वा जलवायु में मनुष्य उत्पन्न होता है वही जलवायु वा औषधियें उसको हितकर होती हैं।

यस्य देशस्य योजन्तुतज्ज तस्यौषधं हितम्
देशादन्यत्र वसनस्तत्तुल्यगुण मौषधम्"

अन्त में यह कहना हितकर होगा कि स्वास्थ्य सम्बन्धी समिति को चाहिये कि ग्राम-ग्रामान्तर में जहां कहीं एलोपैथी के आतुरालय खोले वहां उनमें आयुर्वेद के चिकित्सालय भी अवश्य खोलने चाहियें।

संयोजक संसद सम्पर्क आयुर्वेद समिति की वैद्य समाज से प्रार्थना

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के ३८ वें इन्दौर अधिवेशन में भारतीय संसद् एवं राज्य धारा सभाओं में आयुर्वेदोत्थान सम्बन्धी विधियों के निर्माणार्थ उक्त धारासभाओं के सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव कर एक संसदीय सम्पर्क समिति का निर्माण किया गया था। गत २ दिसम्बर को ३७, लेडी हार्डिंग रोड, नई देहली में इस समिति का एक अधिवेशन हुआ जिसमें महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० शिव शर्मा जी के सम्मान में जलपान भी दिया गया था। उसमें संसद के कुछ सदस्य भी उपस्थित थे। उसी अवसर पर एक प्रस्ताव पास किया गया था जिसे भारतीय संसद के सभी सदस्यों में पारित किया जा चुका है। सदस्यों की सूचनार्थ उक्त प्रस्ताव हम नीचे दे रहे हैं। वैद्य समाज से हमारा विनम्र निवेदन है कि अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में रहनें वाले संसद् सदस्यों से सम्पर्क स्थापित कर इस प्रस्ताव के महत्व और इसे कार्यान्वित करनें की आवश्यकता का अनुभव करावें और उनकी सहमति प्राप्त कर संयोजक केपास भिजवा दें। हमें पूर्ण विश्वास है कि वैद्यगण इस महत्वपूर्ण कार्य में आलस्य का परित्याग कर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे। —सम्पादक)

प्रस्ताव

आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली द्वारा भारत की अधिकांश जनता लाभ उठा रही है और भारतीय संघ के प्रायः सब ही राज्य, आयुर्वेद सम्बन्धी शिक्षा संस्थाओं, स्कूलों, कालिजों तथा बहुत से आयुर्वेद चिकित्सालयों का भी संचालन कर रहे हैं। साथ ही साथ जनता के लाभार्थ जिला बोर्ड, म्युनिस्पल बोर्ड, कार्पोरेशन इत्यादि स्थानीय संस्थायें भी, आयुर्वेदिक औषधालयों और चिकित्सालयों को चला रही हैं।

फिर भी अनेक कारणों से आयुर्वेद प्रगति में अनेक रुकावटें पैदा हो रही हैं। अतः यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि सामयिक भारतीय संघ सरकार चोपरा कमेटी की सिफारिशों को कार्यान्वित कर आयुर्वेदोन्नत्यर्थ वास्तविक सहायता प्रदान करें।

"संसद् सम्पर्क आयुर्वेद समिति" भारतीय संघ सरकार से यह पुरजोर सिफारिश करती है कि वह अपने स्वास्थ्य मंत्री के आधीन एक पृथक आयुर्वेदिक डाइरेक्ट्रेट की शीघ्र स्थापना करे और उक्त डाइरेक्ट्रेट द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्त्यर्थ व्यय के लिये एक पृथक धनराशि भी प्रदान करे।

(अ) व्यापक उत्कर्षगामी दृष्टि से, भारत स्थित आयुर्वेद विज्ञान की अधिकार

प्राप्त शिक्षासंस्थाओं की दक्षता के मापदण्ड को ऊँचा बनाने के लिये, उनके भवन निर्माण, विज्ञान शाला, सामग्री एवं अध्यापक वर्ग को देने के लिये सहायतार्थ धनराशि।

(आ) आयुर्वेद की संस्थाओं को, जिनमें आयुर्वेदीय अनुसन्धान शालाएं एवं स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रम चल रहे हैं, उनकी सहायतार्थ धनराशि एवं देश व विदेशों में अध्ययनार्थ फैलोशिप और स्कालरशिप देने के लिये सहायतार्थ धनराशि।

(इ) जिन आयुर्वेदिक अस्पतालों, प्रसूतालयों, औषधालयों एवं वानस्पतिक उद्यानों सहित स्वास्थ्यशालाओं को स्थापित करना या आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहें, वे जनता द्वारा अथवा प्राइवेट संस्थाओं द्वारा ही संचालित हों।

(ई) राजयक्ष्मा, प्लेग, कुष्ठ, हैजा, मलेरिया इत्यादि रोगों के लिये आयुर्वेदीय अनुसन्धान केन्द्रों को स्थापित करना और उनको आर्थिक सहायता प्रदान करना।

(उ) आयुर्वेद विज्ञान के व्यापक ज्ञान सम्बन्धी एवं उसकी वैज्ञानिक सूचनाओं को देने वाले ग्रन्थ, समाचार पत्र, पत्रिका, लघुपत्रक एवं इसी प्रकार अन्य साहित्य का प्रकाशन करना।

(ऊ) नवीन ढङ्ग पर आयुर्वैदिक औषधियों को प्रमाणित करने के लिये आयुर्वेदीय औषधियों के प्रमाणित फारमोकोपिया के निर्माणार्थ अग्रसर होना।

(ए) आयुर्वेद को उस स्तर तक पहुंचाने के उद्देश्य से आयुर्वेद विज्ञानोत्कर्ष के अन्य कार्यों को करना, जिस तक कि आयुर्वेद भारतीय जन स्वास्थ्य समस्या को हल करने में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकें।

दयानिधि शर्मा आयुर्वेदाचार्य
ए. एम. एस. (काशी विश्वविद्यालय)
प्रधान मन्त्री-उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन,
संयोजक—संसद् सम्पर्क आयुर्वेद समिति,
अखिल भारतीवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन।

भव्य-औषधालय,
बुढ़ाना गेट, मेरठ।
दिनांक ४-१२-५२

श्री बदरीकाश्रम का प्रसिद्ध लौह शिलाजीत

मधु, कस्तूरी, तथा हिमालय की जड़ी बूटियों का ६० वर्ष पुराना—विश्वस्त तथा प्रतिष्ठित फर्म। (प्रधान कार्यालय: नंदप्रयाग—गढ़वाल हिमालय। शाखायें: बदरीनाथ तथा लखनऊ)। विशेष विवरण के लिये पत्र व्यवहार का पता:

महेशानन्द एंड संस
अशोकनगर, लखनऊ

आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा में समन्वय की आवश्यकता

झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में

राजकुमारी अमृतकौर का भाषण

भारत सरकार की स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने आज यहाँ अपील की कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान तथा आयुर्वेद में एकता स्थापित की जानी चाहिये। आज सब देशों में चिकित्सा विज्ञान का उद्देश्य एक ही है——जनता आरोग्य की स्थिति में रहे। भारत में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें न केवल आधुनिक चिकित्सा पद्धति से लाभान्वित होना चाहिये अपितु स्वदेशी चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद से भी लाभ उठाना चाहिये।

झांसी आयुर्वेदिक विद्यापीठ के समावर्तन समारोह का उद्घाटन करते हुए राजकुमारी अमृतकौर ने कहा कि आयुर्वेद ने चिकित्सा शास्त्र के विकास में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह भी न केवल पूर्व में अपितु पश्चिम में भी। यदि आयुर्वेद का विकास रुक न गया होता तो वह भी विश्व के चिकित्सा विज्ञान के विकास में महान कार्य करता। भारत के प्राचीन ग्रंथों के अरबी भाषा अनुवाद हुए और उनके सिद्धांत सिकन्दर की सेनाओं द्वारा यूनान पहुँचाये गये। राजकुमारी अमृतकौर ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति में मेल मिलाप करने के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि देश की कुछ तो चिकित्सा संस्थाएं केवल आधुनिक पद्धति की सेवा कर रही हैं और कुछ केवल आयुर्वेद की। इससे जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसे सन्तोषजनक कदापि नहीं कहा जा सकता। मेल मिलाप की जरूरत तो सब महसूस करते हैं, परन्तु इसका मार्ग अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है।

आयुर्वेदिक अनुसंधान का उल्लेख करते हुए स्वास्थ मन्त्रिणी ने कहा कि भारत सरकार ने जामनगर में एक आयुर्वेदिक अनुसंधान शाला खोली है। एक केन्द्र पर्याप्त नहीं। इस क्षेत्र में झांसी आयुर्वेद विद्यापीठ को बहुत कुछ करना पड़ेगा।

अन्त में राजकुमारी अमृतकौर नें कहा कि शिक्षा का स्तर बहुत ऊंचा रखे बिना सच्चे अर्थ में प्रगति न होगी। विज्ञान के आगे जाति और देश का कोई बन्धन नहीं। चिकित्सा विज्ञान को जो समस्त विज्ञानों में पवित्रतम है, सब प्रकार का ज्ञान अपनानें के लिये हृदय और मस्तिष्क खुला रखना चाहिये।

इतना कहकर राजकुमारी अमृतकौर ने समावर्तन समारोह को उद्घाटित घोषित किया।

बम्बई के वैद्यों की आम सभा

आयुर्वेदीय संशोधन में डाक्टरों का सहयोग

श्री बम्बई वैद्य सभा और महागुजरात वैद्य मण्डल के संयुक्त तत्वावधान में ता० १५-११-५२ शनिवार को प्रभुराम आयुर्वेदीय कालेज के सभा भवन में बम्बई के वैद्यों की एक सामान्य सभा हुई थी। इस सभा में वैद्य श्री यादवजी त्रिकम जी आचार्य श्री पं० शिवशर्मा जी, वैद्य कन्हैयालाल जी, वैद्य वेणीमाधव शास्त्री, वैद्य गजानन जी, वैद्य महेंन्द्र शास्त्री, वैद्य राम शिरोमणि जी, वैद्य हेमचन्द नरसी, वैद्य हिम्मतलाल मुनि, वैद्य प्रताप कुमार, वैद्य रविशंकर महुभाई, वैद्य नाना जोशी, वैद्या लक्ष्मीबाई बोखणकर, आदि वैद्य महानुभावों की अच्छी उपस्थिति थी। प्रारम्भ में वैद्य सोमेश्वर भट्ट ने आये हुए सन्देश पढ़कर सुनाये। पश्चात् बम्बई के वैद्यकीय बोर्ड की ओर से चिकित्साओं के नीति नियमों के सम्बन्ध में जो सूचनायें मांगी हैं उनके सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव हुए:--

१-आज की यह सभा वैद्यकीय नीति संहिता के संशोधन के लिये जो समय दिया गया है वह बहुत कम होने के कारण उस अवधि में दो मास की वृद्धि करने का साग्रह अनुरोध करती है।

२-आज की यह सभा नीति संहिता के नियमों पर विचार कर वह बोर्ड के समक्ष उपस्थित करनें के लिये निम्नलिखित समिति की नियुक्ति करती है:—

संस्था के अध्यक्ष और पदाधिकारियों के अतिरिक्त श्री हिम्मतलाल मुनि, श्री नारायण हरि जोशी, श्री हेमचन्द्र नरसी, श्री चन्द्रशेखर गोपाल जी ठक्कर, श्री मूलजी कल्याणजी और पं० कन्हैयालाल जी।

उक्त समिति को अपने सदस्यों में वृद्धि करने की सत्ता होगी। इस समिति से प्रार्थना की जाती है कि वह अपना वृत्तांत ३० नवम्बर तक तैयार करले।

तत्पश्चात् श्री शिवशर्मा जी नें कहा कि आयुर्वेदीय संशोधन पाठ्य-प्रणाली, और अन्य समितियों में सरकार की ओर से वैद्यों से सहानुभूति न रखनें वाले, विशेषत: आयुर्वेद की ओर पूर्वाग्रही मानस रखनें वाले डाक्टरों की जो नियुक्ति की जाती है और इस नीति के परिणाम स्वरूप आयुर्वेदीय संशोधन आयुर्वेदीय पद्धति से होने के बदले ऐलोपैथिक विचारधारा पर ही आधारित होता है। फलत: इन समितियों के निर्णय

और संशोधनों के परिणाम अस्वीकार्य और हास्यास्पद होते हैं। शर्मा जी के उक्त वक्तव्य पर उपस्थित विद्वानों के विचार विनिमय होनें के पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव सभापति की ओर से रखे गये और सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए।

१. (अ) आज की यह सभा केन्द्रीय सरकार एवं प्रान्तीय राज्यों की उस नीति का विरोध करती है कि जिसके द्वारा आयुर्वेदिक बोर्ड एवं अन्य समितियों में अनायुर्वेदिक डाक्टरों की नियुक्ति की जाती है तथापि अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ने पर निखिल भारतीय वैद्य सम्सेलन और प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनों के परामर्श से आयुर्वेद हितैषी डाक्टरों के लिये जाने की सलाह देती है कि जिससे आयुर्वेद के हित और सरकारी विचारधारा में सुयोग और साम्यता रहे।

(ब) उपर्युक्त प्रस्तावानुसार यह सभा आयुर्वेद के विद्वानों और कार्यकर्ताओं से अनुरोध करती है कि वे किसी ऐसी संस्था या समिति के कार्य में वैद्य जनता के प्रतिनिधि के नाते सहयोग न दें कि जिनमें आयुर्वेदीय संस्थाओं के सहकार के बिना ही नियुक्ति कर दी गई हो।

(क) ये प्रस्ताव आयुर्वेदीय विद्यालयों, रुग्णालयों और उससे कार्य करनें वाले व अन्य वैतनिक वैद्यों के लिये फिलहाल बन्धन कर्ता न होंगे। तत्पश्चात् रविवार ता० ३० नवम्बर के दिन बनौषधि पर्यटन के आयोजन का निर्णय किया गया।

भूल सुधार

दिसम्बर मास की महासम्मेलन पत्रिका के पृष्ट ५४५ पर विद्यापीठ कार्य-समिति के विवरणान्तर्गत पंक्ति २३ पर "स्वीकृत्यर्थ" के स्थान पर "नियमावली में समावेशार्थ" जानना चाहिये।

त्रुटिसंशोधनम्

दिसम्बरमासस्य महासम्मेलनपत्रिकायाः ५४५ पृष्ठे २३ पंक्तौ विद्यापीठ कार्यसमितेः कार्यविवरणान्तर्गते "स्वीकृत्यर्थ" इत्यस्मिन् स्थाने "नियमावल्यां समावेशार्थ" इत्येवं ज्ञेयम्।

आयुर्वेद मार्तण्ड,
श्रीदत्त शर्मा (रायबहादुर)
मंत्री– नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

तब और अब

ले० श्री योगेन्द्रपाल आयुर्वेदालंकार

Doctor शब्द का अर्थ जानने वाला है। इसी प्रकार 'वैद्य' शब्द का अर्थ भी जानने वाला ह। चिकित्सा का शब्दार्थ भी ज्ञान पूर्वक प्रयोग है। Medicine का भाव भी ज्ञान पूर्वक प्रयोग है। Sceince का अर्थ ज्ञान या विज्ञान है। 'वेद शब्द भी ज्ञान वाची है। वस्तुत: भेद कहां है ? भेद कहीं नहीं है.। भेद अज्ञानियों के लिये है। आयुर्वेद का तात्पर्य आयु की रक्षा करनें वाला ज्ञान है। क्या Modern Sceince आयु की रक्षा में प्रयुक्त नहीं होता ? एक ही उद्देश्य से–एक हीं भावना से एक ही आवश्यकता को अनुभव करते हुवे चिकित्सा शास्त्र की सृष्टि हुई।

जैसे उच्च कोटि के पुरुष बाह्य रूप से भिन्न भिन्न नजर आनें वाले धर्मों में भी एकता का अनुभव करते हैं और परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हैं वैसे ही उच्च कोटि के विचारशील विद्वान ज्ञान के क्षेत्र में विभाजक रेखा Line of demaneation को नहीं मानते। कुए के पानी तथा नदी के पानी को एक नये पात्र में डालकर यदि आप ढूंढना चाहें तो आप उन्हें पृथक् पृथक् न पावेंगे। जल जल में मिलकर एक हो जाता है उसी प्रकार ही भिन्न भिन्न देशों में विद्यमान ज्ञान का हाल है।

पक्षपात तथा हठ इस बारीक सचाई को हृदयङ्गम नहीं होने देते। आयुर्वेद वाले कहते हैं कि हम सर्वथा पूर्ण हैं–हमें सब कुछ आता है। आधुनिक डॉक्टर समझते हैं कि वैद्यों को कुछ नहीं आता। वस्तुत: ये दोनों पक्ष अधूरे हैं। चिकित्सा विज्ञान में कोई विभाजक रेखा नहीं ठहर सकती। यदि दोनों पक्ष एक दूसरे के ग्रंथों को पढ़ने लगें तो यह भ्रम सर्वथा दूर जावे।

डॉ० ताम्बे के इस कथन में कितना सत्य है इसको मैं अनुभव कर रहा हूं। डॉ० ताम्बे रिटायर्ड पी० सी० एम० एस० थे। संस्कृत का अध्ययन भी पर्याप्त था। वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रंथ 'चक्रदत्त' को पढ़ते हुए कहने लगे कि इसकी खूबी जो हमें अब नजर आ रही है वह बिचारे कोरे वैद्यों को कहां से नज़र अवेगी। उन्होंनें आधुनिक चिकित्सा पद्धति का क्रियात्मक तथा जीता जागता चित्र अपनें जीवन में देखा था–उसी रूप को आयुर्वेद के ग्रंथ में देख कर उनका पुलकित होना स्वभाविक था। नई चिकित्सा पद्धति को वे अपना चुके थे–अब आयुर्वेद को भी अपनाया तो एक ही रूप पाया। खुदी को मिटाने से ही प्रभु से मेल होता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम Shield के

दोनों पासों को देखें। एक पासा देख कर ही वृथा लड़ कट कर न मरें।

इतनी भूमिका के बाद में संक्षेप में इस लेख में 'जलोदर' चिकित्सा का दोनों में वर्त्तमान Surgery या शल्य चिकित्सा का रूप विचारार्थ प्रस्तुत करता हूं। आप दोनों को देख कर समझेंगे की वस्तुतः एक ही आधार है। एकसा ही काम है। भेद है तो इतना ही कि समय की प्रगति शीलता के साथ साथ परिवर्तित रूप मात्र है।

'जलोदर' का शब्दार्थ समझाने की आवश्यकता नहीं। 'पेट में जल' अर्थात् जल के जमा हो जाने से पेट बाहर को उभर कर निकल आता है। चिकित्सा शास्त्र में नाम करण की भी विचित्र परिपाटी है। जिसके तिल्ली बढ़ जाती है उसे कहते हैं तिल्ली होगई है। वैसे तिल्ली किसके नहीं होती? इसी प्रकार पेट में जल नित्य-प्रति कई गिलास चला जाता है उसे जलोदर नहीं कहते। अभिप्राय यह है कि जिस जल की उपस्थिति अभीष्ट नहीं है उसका पेट में जमा हो जाना जलोदर कहाता है। हम नित्य जल पीते हैं पर वह जल प्रायः शरीर में उचित लाभ पहुंचानें के बाद मूत्र मार्ग से बाहर निकल जाता है परन्तु जब मल को बाहर फेंकने वाले अंग ढीले या रोगी हो जावें और मल को बाहर पूरी तरह न फेंकें तो धीरे धीरे मल जमा होने लगते हैं। मल जमा हो जाने से धीरे धीरे नालियां बन्द हो जाती हैं। गैस तथा जल अधिक सूक्ष्म होने से उन नालियों को फैलानें लगते हैं। नालियों की दीवार में सूक्ष्म सूक्ष्म छेद फैल कर बड़े हो जाते हैं और गैस तथा जल उन सूराखों में से बाहर निकल कर जहां सींग समाते हैं--सब जगह भर जाते हैं। ज्यों ज्यों जल तथा गैस उन स्थानों में और अधिक मात्रा में पहुंचने लगते हैं तो जलोदर कहलाता है।

पेट, छोटी आंतें, बड़ी आंतें. तिल्ली, जिगर, गुर्दे मल फेंकने वाले अंग हैं। इनमें से किसी में भी खराबी आजाने से रोग की सम्भावना है। विशेषतः आंतों में रुकावट हो जाने से अधिक बिगाड़ पैदा होता है।

आयुर्वेद के मतानुसार पन्द्रह दिन के अन्दर अन्दर यदि रोग का पता लग जावे तो औषधि द्वारा चिकित्सा संभव है परन्तु पुराना हो जाने से शीघ्र ही वह अवस्था आजावेगी कि शल्य चिकित्सा ही उसे ठीक कर सकती है।

"काल प्रकर्षात्सर्वाण्येव शस्त्र साध्यानि भवति" अर्थात् देर हो जानें या Chronic हो जाने पर जलोदर का इलाज शल्य पद्धति से ही होगा। शस्त्रों के द्वारा मुख्यतः होगा।

ऐसी अवस्था में आजकल भी शल्य चिकित्सा की जाती है। पेट में नाभि से नीचे Trocar द्वारा सुराख करके Canula लगा देते हैं जिसमें से धीरे धीरे पानी रबर की नाली द्वारा नीचे रक्खी चिलमची में भर जाता है। पानी निकलनें के साथ साथ

पेट की ऊँचाई फट जाती है। एक ही बार में सारा पानी नहीं निकाला जाता। Trocar को निकाल कर वहां antiseptic bandage लगा देते हैं। पेट पर बड़ी पट्टी बांधते हैं अर्थात् किसी चौड़े मजबूत कपड़े की पट्टी बांधते हैं जो पेट को जोर से दबा कर रक्खे। चार पांच दिन बाद फिर जमा हुवे पानी को निकाल देते हैं। फिर नई पट्टी और कस कर बांध देते हैं। इस प्रकार चार पांच बार धीरे धीरे पानी निकाल कर पेट को नीचे लाते हैं।

छिद्रान्त वद्ध संज्ञेषु जठरेषु प्रयोगवित्
लब्धानुज्ञो भिषक् कुर्यात्पाटन व्याधन क्रियाम्

अर्थात् जिस जिस रोग में मलसंचय द्वारा आंतों में डाट लग जाने या बन्द हो जाने के कारण आंतों में छिद्र होकर जल बाहर निकल निकल कर जमा होने लगे वहां expert चिकित्सक (प्रयोगवित्) पेट में वेधकर के जल निकाले।

'ज्ञातींश्च सुहृदो दारान्' अर्थात इस शल्यकर्म से पहले उसके दोस्तों, रिश्तेदारों तथा औरतों की स्वीकृति प्राप्त करके

'नृपति मनुज्ञाप्य' राजाज्ञा लेकर शल्यकर्म करें ताकि पीछे उस पर कोई मुकद्दमा आदि न चल सके।

'अधो नाभेः वामतश्चतुरंगुलात्' नाभि के नीचे बांई ओर चार अंगुल छोड़ कर वेधन करें।

अंगुल्युदर मात्रंतु व्रीहियंत्रेण भेदयेत्। नाड़ी मुभयतो द्वारां संयोज्यापहरेज्जलम्॥

व्रीहि नामक यंत्र से अंगुली की गोलाई जितना सुराख करें। उसके बाद दोनों तरफ सुराख वाली नाली से जल निकालें।

तृतीय पञ्चमाद्येषु दिवसेष्वल्पशः पुनः। न चैकस्मिन्दिने सर्वं॥

अर्थात् सारा जल एक ही दिन न निकालें। तीसरे तथा पांचवें दिन करके थोड़ा थोड़ा निकालें।

'संवेष्टयेद् गाढ़तरं कौशेयादिक चर्मणा' पानी निकालने के बाद गाढ़े तथा मजबूत रेशम के कपड़े या चमड़े से पेट को कस कर बांधें। अब पाठक सोचें कि वर्तमान प्रणाली में कितना भेद है? तब और अब के स्वरूप का एक नमूना आपने देख लिया। दूसरा नमूना फिर कभी।

वनस्पति-विज्ञान

बन्दाल (देवदाली)

ले०—कविराज श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती आयुर्वेदाचार्य M.A.M.S.

(गताङ्क से आगे)

एक बार में पूरा साफ न हुआ हो तो तीन दिन के बाद फिर पूर्वोक्त विधि के अनुसार सेवन कराना चाहिये। जिन दिनों इसका सेवन किया हो, गरम और चिकनी वस्तु नहीं खानी चाहिये अधिकतर मखाने की खीर घी और मसाले के बिना मूंग की दाल और गेहूं की रोटी खाना हितकर है। इसका सत्व १ रत्ती लेकर १ माशे पानी में हल कर लो फिर इसका भी स्वरस के स्थान पर पूर्व विधि से सेवन करा सकते हैं। केवल सत्व का नस्य देना मृदु नस्य अर्थात हल्की नास समझा जाता है इसलिये मृदु नस्य देनें की जहां आवश्यकता हो वहां पर केवल सत्व की नस्य ही दें। सत्व तैयार रखना ही अच्छा मालूम होता है क्योंकि मृदु नस्य और स्वरस का कार्य इसी से चल जाता है और विशेष खटखट

भी नहीं करनी पड़ती हर जगह अपनें पास भी रह सकता है। अगर दांत या जाड़ में क़ीड़ा लगा हो और अधिक दर्द हो तो देवदाली से तैयार किये गये सत्व अथवा केवल स्वरस की फुरैरी से दर्द के स्थान पर भरदो और उसके फाये को वहीं दबालो। बस पानी निकलना शुरू हो जायगा, कुछ ही मिन्टों में दर्द बिलकुल बन्द हो जायगा यदि फिर लगाने की आवश्यकता समझी जाय तो द्वितीय बार उसी तरह से करना चाहिए इसी तरह से कुछ समय तक प्रयोग करने से कीड़े समूल नष्ट हो जाते हैं। यदि पेट में कीड़े हों तो ५ तोले स्वरस पीने से कीड़े पानी के रूप में निकल जाते हैं, छाती पर जमे कफ को भी वमन द्वारा निकाल देता है व्रण घाव के भी कीड़ों को साफ रुई का एक फाया स्वरस में भिगोकर रखने से नष्ट कर देता है। बवासीर के मस्सों पर कड़वी तोरई के चूर्ण को इसके स्वरस में घोटकर लेप कर देने से दर्द बन्द हो जाता है और कुछ दिन तक इसी तरह लगाते रहने से मस्से भी गिर जाते हैं। उन्माद वाले रोगी को भी पूर्व विधि से नस्य लगाकर कुछ दिन तक देते रहने से लाभ होता देखा गया है।

जिनके मस्तिष्क में गर्मी हो उन्हें भी नस्य से लाभ होता है। योग क्रिया करनें वालें के दिमाग में जब गर्मी अधिक हो जाती है तब वह लोग इसी के स्वरस का नस्य लेकर अपने मस्तिष्क को साफ कर लेते हैं। इस स्वरस का नस्य पाण्डु और कामला को भी लाभ करते देखा गया है। इसका प्रयोग रस चिन्तामणि में इन रोगों पर भी है, यथा-स्वरस में तिलों का तेल बराबर मिलाकर मालिश करने से दाद, खाज, श्वेतकुष्ठ अर्थात् (श्वेत दाग) नष्ट हो जाता है। फलों का चूर्ण जम्बीरी नीम्बू के अर्क के साथ पीने से बढ़ी हुई खाज (पामा) समूल नष्ट हो जाती है। और केवल फलों के चूर्ण को गरम पानी के साथ सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है। मात्रा, आयु-काल-प्रकृति-रोगों के अनुसार निश्चित करनी चाहिए।

फलों के चूर्ण को पानी में घोटकर छोटे झरवेरी के वेर के बराबर गोलियां वनावे और तेज धूप में सुखाकर रखले फिर एक गोली प्रातःकाल गुड़ में लपेटकर गर्मी के मौसम में खावे शरीर में कड़वे तेल की मालिश कर तेज धूप में बैठा रहे थोड़ी देर में कै (वमन) दस्त शुरू होंगें और वह शाम तक अपने आप ही शांत भी हो जायंगे। सन्ध्या समय ठंड में उरद और कुलथी का भोजन करना चाहिए इस तरह प्रतिदिन करनें से दो सप्ताह में श्वेत कुष्ठ पर छाले पड़ेंगे और वह तीन दिन में अपने आप ही शांत हो जायेंगे। इसी तरह सात सप्ताह बराबर इसका प्रयोग दृढ़ता के साथ करते रहने से सम्पूर्ण शरीर व्यापी और जो कि सहस्र औषधियों के सेवन करनें से भी नष्ट न हुआ हो ऐसा श्वेत-कुष्ठ अवश्य ही जड़मूल से नष्ट हो जाता है।

औषधि सेवन के समय जो-जो उपद्रव पैदा होते हैं वह सब अपने आप ही नष्ट भी हो जाते हैं।

स्वरस बनानें की विधि

देवदाली के पांच फलों को लेकर उनके ऊपर के कांटेदार छिलके को उतार डालो और अन्दर के सब बीजों को निकालकर शेष बीच के हिस्से का जाला रह जायगा उसको ६ माशे पानी में डालकर किसी कांच या पत्थर अथवा मिट्टी के छोटे से वर्त्तन में रख दो आध घंटे के बाद अच्छी तरह से उन्हें मसल डालो फिर उस जाले को फेंक दो उस पानी में श्वेतता आ जायेगी और कुछ गदला सा प्रतीत होने लगेगा। एक कांच की छोटी सी शीशी में भरकर मजबूत कार्क से उसका मुंह बन्द कर रखलो वह स्वरस तैयार हो जायगा, यह कम से कम अर्द्ध सप्ताह और अधिक से अधिक एक सप्ताह तक बराबर काम देता रहेगा परन्तु तत्काल तैयार कर प्रयोग करने में अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है।

सत्व बनाने की विधि

देवदाली के एक छटांक फलों को लेकर पूर्व विधि से ऊपर का छिलका और अन्दर के बीज अलग कर दो फिर पत्थर के अच्छे खरल में पानीं डालकर खूब मर्दन करो १२ घंटे वराबर मर्दन करने के उपरांत जालों को निचोड़कर थोड़े पानी से धोकर फेंक दो उस धुले हुए पानी को और खरल के पानी को मिलाकर छाया में रखकर सुखा लो। फिर खरल में खूब घोटो जब खूब बारीक हो जावे तब अच्छी शीशी में भरकर रखलो। वस यह सत्व तैयार हो गया ६ महीने तक बराबर काम देता रहेगा। यदि सत्व और स्वरस, हरे फल लेकर बनाया जाय तब विशेष गुणप्रद होता है। हरे न मिलने पर सूखे फल लेने से भी काम चल जाता है।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे. के. शास्त्री की अध्यक्षता चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीक्व, रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। हिन्दी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं अंग्रेजी के बड़े २५० पृष्ठ के सूचीपत्र का मूल्य रु० १, पोस्टेज तीन आना माफ। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं: उपयुक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

राजयक्ष्मा

ले०–श्री नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री

(गतांक से आगे)

तस्मात् पुरुषो मतिमानात्मनः शरीरमनुरक्षन् शुक्रमनुरक्षयेत् । पराह्येषाफल निर्वृत्तिराहारस्येति । भवतिचात्र-आहारस्यपरं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो ह्यस्यबहून् रोगान्मरणं च नियच्छति ।। इति ।

४. विषमाशनमाह––विषमाशन जो शोष का कारण कहा है उसका विवेचन करते हैं ।

जब मनुष्य पान अशन भक्ष्य लेह्यादि पदार्थों का उपयोग प्रकृति, करण, संयोग राशि देश, काल, उपयोग, संस्था, उपशयादियों का विषय सेवन करता है तब उसके उपयोग से वातपित्तश्लेष्मा विषमभाव को प्राप्त हो जाते हैं, वह विषम दोष देह में फैलकर जब स्रोतों के स्थान तथा मुख को रोककर ठहरते हैं । तब मनुष्य जो आहार सेवन करता है वह आहार केवल मलमूत्र ही उत्पन्न करता है न कि अन्य शरीर धातु । वह पुरीष के उपष्टम्भ से बाहिर निकलता है इसलिये शोषी के मल की विशेष रक्षा का यत्न करना चाहिये । वैसे ही अत्यंत कृश तथा दुर्बलों के मल की रक्षा करनी युक्त है । उस शोषी को भली प्रकार से वृद्धि प्राप्त न होने पर विषमाशन जनित दोष भिन्न-भिन्न उपद्रवों से योजित होकर देह का शोषण कर देते हैं । वहां वायु "शूल, अंगमर्द, कण्ठोध्वंस, पार्श्व-व्यथा, अंसवेदना, स्वरभेद, प्रतिश्याय, आदि रोग उत्पन्न करता है । पित्त-ज्वर, अतिसार, अन्तर्दाह, श्लेष्मा-प्रतिश्याय, शिर भारी, अरोचक कास आदि उत्पन्न करते हैं, कास होने से छाति में व्रण होने पर सरक्त ष्ठीवन करता है । रक्त के स्राव से इसको दुर्बलता हो जाती है । इस प्रकार विषमाशन संचित दोष राजयक्ष्मा को उत्पन्न कर देते हैं । वह शोषण उपद्रवों युक्त व्यक्ति शनैः शनैः सूख जाता है । इसलिये पुरुषों को चाहिये कि प्रकृति आदि भावों से अविषम आहार का सेवन करें ।

भवतिचात्र––हिताशी स्यान्मिताशी स्यात्कालभोजीजितेन्द्रियः । पश्यन्रोगान्वहून्-कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्" ।। इति । इन पूर्वोक्त चर्तु विध हेतुओं के सेवन से वातादि दोष कुपित हो जाते हैं वह दोष कुपित होकर नाना प्रकार के उपद्रवों से युक्त शरीर का शोषण करते हैं । उन सब रोगों के कष्टतम होने से वैद्य उसे राजयक्ष्मा कह देते हैं । यह राजरोग राजा होने से अनेक प्रकार के साधनों से युक्त होकर प्रकट होता है यथाचोक्तंवसवराजीये–

"क्षय रोगेज्वरोराजा तस्य पत्नी तु कामिला । चमुपतिः पाण्डुरोगो रक्तपित्तं तु पुत्रकः ।

सख्यौ शोकातिसारौच मन्त्रिणौश्वासकासकौ । गूढ़ाचारौ वातपित्तेवाजिनौ वांतिकारुची ।।

ग्रहण्यर्शोगुल्म शूला गायकास्तूर्यवादकाः । अनेकरोगानुगतोवहु रोगपुरस्सरः ।
एवं विधप्रकारेण क्षयो भवति रोगराट् । असाध्योऽयं महारोगः सहस्रदिवसावधिः ।
इस प्रकार इस राजरोग के परिवार का वर्णन किया गया है ।

यह रोग प्रायः दो भेदों से प्रकट होता है यथा १. अनुलोम "कफ प्रधान दोषों द्वारा रक्तवाहि स्रोतों का अवरोध कर अन्य रक्तादि धातुओं का रस के अभाव के हेतु सम्यक् पुष्ट न होने से उत्तरोत्तर धातु का क्षय होने से अनुलोमक्षय हो जाता है । २. प्रतिलोम अर्थात् व्यवायाधिक्य के कारण वीर्य क्षय होने से मज्जाक्षय, इससे अस्थि आदि इसी प्रकार उत्तरोत्तर धातु का क्षय होनें से रसान्त तक पहुंचने तक रोगी को महायात्रा का यात्री बना देता है ।

पूर्वरूपाणि यथा--प्रतिश्याय, छींक का अधिक आना, श्लेष्म प्रसेक, मुखमाधुर्य, अन्न की इच्छा न हो, अन्नकाल में आयास ज्वर, अंगसाद, तालुशोष, वमन, अग्निमांद्य,

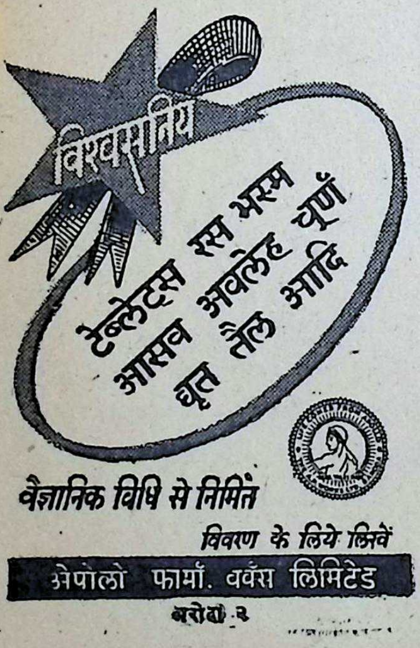

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें। (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें । (३) महासम्मेलन और वैद्यसमाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (६) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट और शुद्ध भाषा में हों । (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें ।

पीनस, कास, निद्रा, मांस में रुचि, मद, नेत्र शुक्ल होना, स्त्री रमण में इच्छा, स्वप्न में काकादिजीवों पर यात्रा करना, जल विहीन नदियों तथा शुष्क वृक्षों का पवन धूम तथा अग्नि से जले हुए देखना आदि पूर्व रूप होते हैं और भोजनपानादि के तृण केशादियों का पड़ना, नख तथा केशों की वृद्धि होती है, तथा केशास्थि भस्म तुषारादिओं पर चढ़ना। यह सब रोग की महिमा से ही हुआ करता है।

पाश्चात्य अनुसंधान–पाश्चात्य वेत्ता इस रोग को संक्रामक रोग मानते हैं यह शीत प्रदेश तथा समशीत देशों में होता है जिन देशों में ऋतुओं का परिवर्तन शीघ्र होता है वहां विशेष होता है। इस रोग का मुख्य कारण कीटाणु मानते हैं वह कीट शलाका सदृश होने से इसे बेसलस ट्यूबरक्युलोसिस (Bacillus Tuberculosis) कहते हैं। इनकी लम्बाई $\frac{१}{१५०००}$ इञ्च और व्यास $\frac{१}{१५००००}$ होता है। यदि इनको तोला जाये तो १ सहस्र कीटों का तोल १ माशा हो सकेगा। यह अत्यन्त अणु होता है जो सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जा सकता हैं। यह कीटाणु शनैः शनैः अपना अड्डा जमाते हैं, इनकी सत्ता बढ़ती ही जाती है, फुफ्फुस में होने वाले द्रव्यों का विविध परिवर्तन होने लगता है। जब यह फुफ्फुस में उत्पन्न हो जायें तो रोग भयंकर हो जाता है पीछे वहां व्रण हो कर पूय बनती है और कफ से मिलकर बाहर निकलती हैं। यह देह के जिस भाग में पहुंच जायें वहां छोटी छोटी ग्रन्थियां (Tubrcles) उत्पन्न कर देते हैं। इन ग्रन्थियों में शोथ हो जाती है और उनकी अपक्रान्ति होकर मलाई के सदृश पदार्थ कैसिएशन (Caseation) बन जाता है। फिर यह अधिक बढ़ते हैं और व्रण उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार इन कीटाणुओं के बल का ह्रास होकर क्षारान्वित (केल्सिफिकेशन–Calcification) हो कर शुष्क हो जातें हैं। क्षारभरण एक प्रकार का अंतर्भरण (Infiltration) है। जीवाणुओं में अन्य नवीन पदार्थ भरने और अवस्थित पदार्थ के अधिक परिमाण में संचित होने को अन्तर्भरण कहा है वह तीन प्रकार का मानते हैं:–

१–मधुभरण (Glycogenic Infiltration)—वह मधुर होता है, प्रायः यकृत में होता है कुछ अंश में जीवाणुओं में होता है। रोगावस्था में कर्कस्फोट, पूयभाव, न्यूमोनिया और अन्य संक्रामक रोग के समय रक्त के श्वेताणु के भीतर भर जाता है। आयोडीन से यह कुछ रक्त वर्ण के और कठिन हो जातें हैं।

२–मेदोभरण (Fatty Infiltration)—मेद का सर्व जीवाणुओं में कुछ अंश रहता है। अतिभोजन, व्यायाम का अभाव, मद्य, वंशपरम्परागत स्वभाव या किसी घटन के अतियोग से मेद वृद्धि होती है।

३–क्षारभरण (Calcareous Infiltration or Calcifiction)—मृत भाग में खटिक क्षार (Calcium salt) का संचय होना; धमनी, हृदय, हृदावरण, क्षयग्रसित जीर्णभाग, अर्बुद, विद्रधि, ग्रैवेयग्रन्थि और वृद्धावस्था में तरुणास्थिएँ इनमें अनेक बार क्षारभरण होकर वे कठिन होजातें हैं।

क्षयरोग के कीटाणु, जलजीव, पक्षी, पशु और मनुष्य देह में रहने वाले इस प्रकार ४ प्रकार के होते हैं । इनमें पक्षियों के कीटाणुओं द्वारा मनुष्यों को क्षय नहीं होता । पशु देह में बढ़ने वाले (Bovina) कीटाणु विशेषकर गौ आदि के दूध और मांस द्वारा लसिका ग्रन्थियों का क्षय और अन्य क्षय का प्रादुर्भाव कर देते हैं । तथा मनुष्य देह में उत्पन्न (Human) जन्तु तो मनुष्य के लिये घातक ही मानते हैं ।

आयुर्वेदीय-सम्प्राप्तिमाह:–''तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं कफं चोदीर्यंसर्वतः । शरीर सन्धीनाविश्य तान्सिराश्च प्रपीडयन् । मुखानि स्रोतसां रुध्वा तथैवाति विवृत्यच । सर्वं न्नूर्ध्वमधस्तिर्यग्यथास्वं जनयेद्गदान्'' य इति ।

अर्थात्–पूर्वोक्त कारणों से (''साहसादि चतुर्विध हेतुओं'' से) कुपित हुवा वायु पित्त तथा कफ को उदीर्ण कर देह में ऊपर नीचे तथा तिर्यक् देह की सन्धियों में प्रविष्ट हो कर और रसवाहि सिरायों को बाधित करता हुवा स्रोतों के मुख को बन्द कर अथ च मर्यादा से अधिक विस्तार (खोलकर) कर व्याधियों को उत्पन्न कर देता है ।

चरकेऽपि––स्रोतसांसन्निरोधाच्च रक्तादीनांच संक्षयात् । धातूष्मणां चापचयाद्राजयक्ष्मा प्रवर्त्तते ।

तस्मिन् काले पचत्यग्निर्यदन्नं कोष्ठ संश्रितम् । मलीभवतितत्प्रायः कल्पते-किंचिदोजसे ।

अर्थात्–उक्त चर्तुविध हेतुओं द्वारा रसादि वाहन करने वाले स्रोतों के रुद्ध होने से तथा रक्तादिओं की प्रवृत्ति के अभाव से तथा धात्वग्नियों के अपचय (क्षीण) होने से यक्ष्मा का उद्भव होता है।

रसादिधातूनांक्षयहेतुमाह––''दोषैर्मन्दानलत्वेन सोपले पैकफोल्वणैः । स्रोतो मुखेषु रन्ध्रेषु धातूष्म स्वल्पकेषुच ।।

विदह्यमानः स्वस्थानें रसस्तांस्तानुपद्रवान् । कुर्यादगच्छन्मांसादीनसृक् चोर्ध्वं प्रधावति ।।

अर्थात्–लेपयुक्तकफोल्वण दोषों द्वारा मन्दाग्नि हो जामे से स्रोतों के मुख रुद्ध हो जाने से और धात्वग्निओं के अल्पभाव से अपने स्थान में ही विद्ह्यमान रस उन उन उपद्रवों को करता है अर्थात कण्ठोध्वंसादि उपद्रवों को करता है । वह रस रक्त को बल देने में असमर्थ होने से रक्त का क्षय फिर वह रक्त विदह्यमान होकर मांसादि धातुओं का कारण नहीं होता, और ऊर्ध्व गामी हो जाता है और इस व्यक्ति के द्वारा भक्षित अन्न कोष्ठाग्नि से कोष्ठ में पाक होकर मल को ही केवल बनाता है वह धातुओं की पुष्ठी करनें में असमर्थ होता है अतः वह रस इसके रक्त के लिये ही नहीं होता तो आगे के धातु मांसादियों को कैसे बना सकता है । क्षयी इसीलिये बल के आधार पर जीवन निर्वाह करता है । अतश्चोक्तं चरके ''तस्मात् पुरीषं संरक्ष्यं विशेषाद्राजयक्ष्मिणः'' सर्वधातुक्षयतिस्यवलं तस्य हि विड्वलम् ।।

संग्रहेऽपि–"उपस्तब्धः स शकृता केवलं वर्त्तते क्षयी" ।।

यक्ष्मरूपाणि यथा–"कासोंऽसतापो वैस्वर्यं ज्वरः पार्श्वशिरो रुजा ।
छर्दनं रक्तपित्तयोःश्वास वर्चो गदोऽरुचिः । रूपाण्येकादशैतानि यक्ष्मणः षडिमानिच ।
कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरवर्चोगदोऽरुचि । सर्वैरर्वैस्त्रिभिर्वापि ज्वर कासासृगामयैः

अर्थात् कास, अंस ताप, स्वरभेद, ज्वर, पार्श्वशूल, शिरःशूल, वमन, रक्तपित्त, श्वास, अतिसार, अरुचि यह ११ लक्षण तथा कास, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभेद, अतिसार, अरुचि यह ६ लक्षण तथा ज्वर, कास, रक्तागमन यह ३ रूप यक्ष्मा के तीनों दोषों से उत्पन्न होते हैं इन व्यस्त दोषों से भिन्न-भिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं ।

सामान्यरूपाणि––"अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः । ज्वरःसर्वांगगश्चैव लक्षणं राजयक्ष्मणः ।

परिपाकावस्थायांचिह्नानि––"अग्निमान्द्य बलहीनताज्वराः श्वासकास कृशदेहिताश्चसः । पाक हानि गुरुयान्ति रेचनं रोगराज परिपाक लक्षणम् ।।

वातक्षयलक्षणम्–संकोचः स्कन्धपार्श्वानां स्वरभेद ज्वरभ्रमाः । वातजेयक्ष्मणि ज्ञेयंलक्षणंचातिशीतता" ।

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वेदिक प्रकाशन

१. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह प्रथमखंड, ७वां संस्करण अजिल्द ९।।)
२. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोगसंग्रह द्वितीय खंड, अजिल्द ६)
३. चिकित्सातत्त्व प्रदीप प्रथम खंड, सजिल्द ९।।)
४. चिकित्सातत्त्व प्रदीप द्वितीय खंड, अजिल्द ८)
५. नेत्ररोग विज्ञान सजिल्द १५)
६. सिद्ध परीक्षा पद्धति अजिल्द ८)
७. ज्वरविज्ञान अजिल्द ३)
८. औषध गुण धर्म विवेचन अजिल्द ३)
९. गांवों में औषधरत्न अजिल्द २)
१०. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह गुजराती अनुवाद प्रथम भाग सजिल्द १०)
सूचना–डाक खर्च, पैकिंग अलग होगा ।

पुस्तकों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है । लिखें या मिलें ।
प्राप्ति स्थान––कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय
पो० कालेड़ा-कृष्णगोपाल, वाया नसीराबाद (अजमेर)

आयुर्वेदान्तर्गत रहस्य

ले०–डा० आर० एस० अग्रवाल

(गतांक से आगे)

औषधि संसार में विभिन्न रोगों के लिये असंख्य औषधियां हैं, किन्तु उनमें से कुछ तो अत्यन्त ही लाभकारी हैं। कुछ वनस्पतियां तथा योग अथवा नुस्खे कई चिकित्सकों के बहुत काम में आते हैं साथ ही साथ ऐसे चिकित्सक भी मिलते हैं जिन्होंने उन नुस्खों अथवा वनस्पतियों का एक बार भी प्रयोग नहीं किया। चिकित्सा क्षेत्र में किसी एक पैथी से लिपट जाना बुद्धिमत्ता नहीं है, प्रत्युत खतरनाक है। हमें अच्छाई के ग्रहण करनें में सदैव तत्पर रहना चाहिये। मानव के लिये हितकर किसी भी पैथी की औषधि का प्रयोग करनें में हमें संकोच नहीं करना चाहिए। औषधि सौम्य होनी चाहिए, जो रोग को नष्ट करके दूसरे रोग को पैदा न करे। पुरातन योगों को, जिनमें कि अनेकानेक वनस्पतियों की भरमार है, सादा बनाया जा सकता है, और लाभ में अन्तर नहीं आता। एक बुद्धिमान् चिकित्सक रोग को दूर करने के लिए किसी भी चिकित्सा पद्धति का आश्रय लेकर औषधि दे सकता है और यदि शीघ्र ही इच्छित औषधि न मिल सके तो घरेलु पदार्थों से ही रोग की तीव्रता नष्ट करने में समर्थ हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि चिकित्सक किसी रोगी का पेट साफ करना चाहता है तो रोगी को कैस्टर आयल, सनाय की पत्ती, हरड़ का मुरब्बा अथवा बुवलेक्स दे सकता है, आवश्यकता पड़नें पर एनिमा कर देता है अथवा अमरूद खानें के लिए दे सकता है। नुस्खे को बढ़ा चढ़ा कर भी दिखाना तभी आवश्यक होता है, जब कि रोगी से या तो अधिक रुपये ऐंठनें हों अथवा उस पर किसी प्रकार का मानसिक प्रभाव डालना हो। यदि चिकित्सक विद्वान और समझदार है तो सादे और जल्दी हो जाने वाले प्रयोग अधिक लाभकर सिद्ध होते हैं। हम ने अपनें नेत्र चिकित्सालय में अत्यन्त ही सरल प्रयोग आरम्भ किए हुए हैं, जिनका परिणाम बहुत ही अच्छा सिद्ध हुआ है। बहुत से आयुर्वेदिक प्रयोगों को आधुनिक परिस्थितियों के अनुसार सरल किया है अथवा उनमें परिवर्तन किया गया है।

उदाहरण के रूप में सैन्धव को लीजिये। महर्षि सुश्रुत नें इसका प्रयोग अन्य अन्य औषधियों के साथ मिला कर किया है, किन्तु मैंने अनुसंधान से पाया कि अकेला सैन्धव ही नेंत्र की बहुत सी बीमारियों को दूर करने की अमोघ औषधि है। इसके लाभ

079403

को बढ़ाने के लिए जब मैं इसमें शहद मिलाता हूं तो इसका प्रभाव दृष्टि शक्ति बढ़ानें में कई गुना बढ़ जाता है। यही मधु-सैन्धव योग अल्पकालिक मोतिए और फूला में भी लाभ करता है। इसी औषधि का प्रभाव और भी बढ़ जाता है, जब रोगी इसे आंखों में डाल कर सूर्य की ओर आंखें बन्द कर के खड़ा हो जावे।

उपसंहार––आयुर्वेद एक विज्ञान है। पूर्वाचार्यों ने आन्तरिक बुद्धि, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा रोगों का नाश करने के लिये त्रिदोष सिद्धांत, तथा रोगों का नाश करने वाली औषधियां खोज निकाली हैं। शायद उन दिनों कोई प्रयोगशालाएं नहीं थी। रोगों के निदान और चिकित्सा सम्बन्धी वर्णन इतना सूक्ष्म, सरल और प्राकृतिक है कि पदार्थवादी पुरुष उसे समझने में कठिनाई अनुभव करेगा। यही एक कारण है कि आधुनिक मस्तिष्क इसको समझ नहीं पा रहा है। यह हमारे दुर्भाग्य की बात है किन्तु इन सबकी जिम्मेवारी आधुनिक समाज पर ही डाल कर चुप्पी साध लेने से कार्य नहीं चल सकता अथवा अपने पूर्वजों की तारीफ करते रहने से ही कुछ लाभ नहीं होगा। हमें आज के युग को समझाने के लिये उसी सूक्ष्म आयुर्वेद को सरल, सबकी समझ में आने वाला तथा आशुलाभकारी बनाने के लिए पुनः खोज करनी होगी।

पूर्वजों द्वारा दिया हुआ ज्ञान आगे बढ़ने के लिये सीढ़ी भी बन सकता है और यदि हमी यही फैसला कर लें कि जो कुछ वह लिख गए हैं वह पत्थर की लकीर है और मानव मस्तिष्क का आगे चलना कठिन है तो वही ज्ञान हममें, खड़े हुए पानी की तरह, सड़ांद उत्पन्न कर देगा। यह ध्रुव सत्य है कि पूर्वजों के ज्ञान पर ही वर्तमान आश्रित है और इसी वर्तमान के आधार पर हीं भविष्य का निर्माण होगा। आयुर्वेद और ऐलोपैथी दोनों एक ही पथ के पथिक हैं यदि दोनों में कुछ अन्तर है तो केवल इतना ही कि ऐलोपैथी के जानने वाले त्रिदोष सिद्धांत से बिल्कुल अनभिज्ञ है, जबकि आयुर्वेद के ज्ञाताओं में से अधिकतर ऐसे हैं जो इस सिद्धांत के मर्म को अब तक समझ नहीं पाये हैं। आयुर्वेद शास्त्र में रोग के निदान और चिकित्सा का सूक्ष्मरूप से रेखा-चित्र मात्र खेंचा हुआ है, जबकि एलोपैथीं ने शरीर शास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र का विस्तृत उल्लेख करनें का प्रयत्न किया है हमें चाहिए कि हम प्राचीन आयुर्वेद के रहस्य को आधुनिक तरीकों के साथ मिलाकर मानव मात्र का भला कर सकें। आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सक को भी यदि आयुर्वेद से सरल और तुरन्त समझ में आ जाने वाली वस्तु मिले, तो मुझे विश्वास है कि वह उसे ग्रहण करने में संकोच नहीं करेगा बल्कि सदा तैंयार रहेगा। किन्तु यह तभी हो सकता है जबकि आधुनिक पदार्थवादी चिकित्सक पदार्थवाद से ऊंचा उठकर अपने अन्दर स्थित आत्मा को और उसकी आवाज़ को पहचाननें का प्रयत्न करे।

एक समय आवेगा जबकि आयुर्वेद और ऐलोपैथी के जानने वाले प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी चिकित्सक (चाहे इस समय वह आपस में नहीं मिल रहे हैं) अवश्यमेव ही

079403

आपस में मिलकर सफलता के शिखर पर पहुंच जावेंगे । यह भी प्रकृति का एक नियम है । जो संकुचित हृदय होते हैं वें कभी भी इसे नहीं मानते । उनका अपना हीं एक पैमाना होता है, वे उसी पैमाने से सबको मापने की चेष्टा करते हैं और किसी को आगे बढ़ता हुआ देखकर वे तिलमिला उठते हैं, तथा यह भी भरसक प्रयत्न करते हैं कि वे आगे न बढ़ सकें । किन्तु प्रकृति अपने सूक्ष्म और छुपे हुए तरीकों से निरन्तर क्रियाशील रहती है और अन्ततः उनके हृदयों को बदलकर ही चैन लेती है । अब समय आ रहा है, जब दोनों चिकित्सा-पद्धतियों को मिलाकर एक तीसरी नई ही चिकित्सा पद्धति का संसार में निर्माण होगा और विश्व-मानव उसके मीठे फलों को चखकर निरन्तर स्वस्थ रहता हुआ दीर्घायु प्राप्त करने में सफल होगा ।

सन्यासियों की गुप्त बूटियां

आज के युग में सिविल सर्जनों नें सर्जरी के चमत्कार से दुनिया को आश्चर्य चकित कर रक्खा है परन्तु सन्यासियों की गुप्त बूटियां पुस्तक में अंकित जड़ी बूटियों से सिविल सर्जन भी दंग रह गये हैं । इनमें से अधिकांश बूटियां आपको जंगल, खेत, बागीचों और पंसारियों की दूकानों पर मिल सकती हैं । पुस्तक में लिखी कुछेक बूटियों की सूची:-

१-ऐसी बूटी जिसकी लकड़ी कान में लगा देनें से सर्प काटे का विष मुख द्वारा निकल जाता है । २-वह बूटी जिसके रस में उंगली डुबोनें से ज्वर (बुखार) तत्काल उतर जाता है । ३-ऐसी बूटी जिससे दुबला पतला आदमी हृष्ट-पुष्ट हो जाता है । ४-कड़कड़ाती सर्दी में १ चावल भर खा लेने से वैशाख मास की गर्मी का अनुभव करानें वाली बूटी । ५-वह बूटी जिसको सिर पर बांध देने से कष्ट भोगती स्त्री के तत्काल प्रसव हो जाता है । ६-बिना आपरेशन पथरी को निर्मूल काटकर रेत की तरह मूत्र मार्ग से बहा देने वाली बूटी । ऐसी ही सैंकड़ों बूटियों का वर्णन इस पुस्तक में है । मूल्य २॥) डाक खर्च ॥-) आना

जीवन कार्यालय (वर्मा कोठी) संगरिया (बीकानेर)

पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठावें

चरक के पाठ पर विचार कीजिये

लें०—-श्री पं० लीलाधर शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,

उपर्युक्त शीर्षक का लेख पं० हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री ने सचित्र आयुर्वेद के अगस्त के अंक में प्रकाशित किया है। पण्डित जी से यह आशा ही नहीं करनी चाहिये कि आप चरक के विरोधी या अभक्त होंगे। फिर भी लेखारम्भ में स्वयं व्यक्त कर दिया है कि इस संहिता का मैं उतना ही भक्त हूं जितना कि अन्य हो सकता है। इतनी भक्ति पर भी संस्कर्ता, प्रतिसंस्कर्ता, संशोधक, लेखकों द्वारा पाठविपर्यय या पाठांतर का संदेह पण्डित जी को है ही, इस में शक नहीं। अतः कुछ ऐसे स्थलों के निर्णयार्थ पण्डित जी को कलम उठानी ही पड़ गई।

सर्वप्रथम निवेदन है कि चरक संहिता के प्रतिसंस्कर्ता महर्षि चरक हैं, उन्हीं के नांम से यह प्रसिद्ध भी है वस्तुतः यह अग्निवेश संहिता है। चरक महर्षि के विषय में योगेनचित्तस्य पदे न वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि-मनोवाक्कायदोषाणांहर्त्रेऽहिपतयेनमः। आदि प्रशंसा सूचक बंदना भारत के प्राचीन दिग्गज विद्वान नें की है। ऐसे हस्तामलकवत् त्रिकालज्ञशेषावतार मुनिप्रबर प्रतिसंस्कर्ता पर पाठविपर्यय का दोष मढ़ना जंचता नहीं है। लेखारंभ में ही संहिता के अभक्त होनें का मार्जन पुनः उनकी विद्वत्ता के प्रति अविश्वास का दोषारोपण यह शास्त्री जी के कथन में विरोधाभास है। सम्भव है पण्डित जी का भाव यह न हो किन्तु लेख से यही व्यक्त होता है। अस्तु, वादे वादे जायते तत्वबोधः के अनुकूल पाठ पर हमें विचार करना है पण्डित जी के अतीन्द्रिय मनोभावों से क्या प्रयोजन-अतः प्रकृतमनुसरामः।

पंडित जी का पूर्व पक्ष यह है—महर्षि अग्निवेश कहते हैं, गर्भ मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज, रसज है। इन पंच भावों के साथ ही पूर्व योनि में कृत कर्म बन्धनों से संयुक्त षष्ठ भाव मन आत्मा को शुक्रशोणितादि में संपर्क कराने में सहायक है। इस पर महर्षि भरद्वाज शंका करते हैं कि=यदि मातृज आदि नाना विध या षड् भाव समुदाय की एकता से गर्भनिष्पत्ति होती है तो यह भाव सन्धान (संयोग जुड़ना, एकत्रित होना) कैसे होता है। तथाच समुदायप्रभव ही मान लें तो भी गर्भ मनुष्य शरीर में ही क्यों उत्पन्न होता है। याद रखिए यहां भरद्वाज जी नें मनुष्यप्रभवगर्भ को ही प्रधान मानकर प्रश्न किया हैं। इसके उत्तर में महर्षि अग्निवेश कहते हैं–

जरायुज अंडज प्राणियों के शुक्र शोणित आदि गर्भकारक षड्भाव जिस जिस योनि

में पहुंचते हैं उसी के जैसा रूप धारण कर लेते हैं । जैसे सोना चांदी तांबा रांगा सीसा को गलाकर मोम मिट्टी आदि के बनें जैसे साँचे में ढालेंगे वैसे ही बन जायेंगे । यह सांचा मनुष्य पशु पक्षी आदि जिसका होगा वैसी ही प्रकृति बन जायगी, यही बात मनुष्य से उत्पन्न मनुष्य के बारे में जान लेनी चाहिये । जैसे मनुष्यप्रभव गर्भ के विषय में भरद्वाज ने उत्तर मांगा है । उसी प्रकार भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने भी मनुष्यप्रभव के विषय में ही उत्तर दिया है ।

अब यहां पर शास्त्री जी को यह शंका है कि भगवान् आत्रेय के इस उत्तर में भूतानाम चतुर्विधा योनिर्भवति जरा य्वंडस्वेदोद्भिदः । तासांखलु चतसृणामपि योनीनामेकैका योनि रपरिसंख्येयभेदाभवति भूतानामाकृति विशेषा परि संख्येयत्वात् । तत्र जरायुजानामंडजानां च प्राणिामेते गर्भकराभावा यां यां योनिमापद्यन्ते तस्यां तस्यां योनौ तथा तथा रूपा भवन्ति। इस प्रकरण में चार प्रकार की योनियों में से केवल जरायुज अंडजों को ही योनिरूप सांचे में ढालनें से विभिन्न आकारों का बनना कहा है । स्वेदज उद्भिज प्राणियों के विषय में प्रकरण होनें पर भी कुछ नहीं कहा । अब यह विवेचन अपूर्ण सा है, फलतः अग्निवेश जैसों की त्रुटि न होकर यह त्रुटि प्रतिसंस्कर्ता आदि की हो सकती है ।

यही शास्त्री जी का प्रथम प्रश्न है । इसके उत्तर में मेरा कहना है कि प्रश्न के बीच ही में मैं इशारा कर चुका हूं कि भरद्वाज ने मनुष्य प्रभव गर्भ के विषय में ही शंका की है, अतः महर्षि का कथन भी मनुष्य प्रभव को लेकर हुआ है–अंडजों की भी कुछ श्रेणियां इसके अन्तर्गत आ जाती हैं, इससे उनका भी नाम संकेत मात्र कर दिया है ! वस्तुतः अंडज भी उपर्युक्त षड्भाव से भिन्न योनि है । स्वेदज उद्भिज तो एक दम नहीं हैं । महर्षि ने जो मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज, रसज मन औपण पादुक आदि के लक्षणों का वर्णन किया है वह स्वेंदज उद्भिजों में मिलता ही नहीं है । क्योंकि उद्भिज्जों में वृक्षलता गुल्मादि एकेन्द्रिय जीव हैं जिनके शरीर मात्र (स्पर्शज्ञान-त्वगिन्द्रिय) होता है उनको एकेन्द्रिय कहते हैं । अन्न, वृक्ष, वायु, जल आदि भी एकेन्द्रियों में समाविष्ट हैं । इनमें मातृज आदि भावों की न्यूनता के कारण ही–हृदय, क्लोम, वृक्क वस्ति, पुरीषाधान नहीं होते तथा च आलस्य, अलोलुपता, इन्द्रियप्रसाद, प्रहर्षभूयस्त्व, आदि भी नही पाये जाते । स्वेदजों में भी सभी पंचेन्द्रिय नहीं होते । एक दो तीन इन्द्रिय वाले ही होते हैं पंचेन्द्रिय नहीं होते । अतः इन षड़भावों के समुदाय की एकता इनमें न होनें से भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने ही नहीं की । अतः यह वर्णन न करना त्रुटि नहीं है–पुनश्च प्रतिसंस्कर्ता आदि की त्रुटि कैसे हो सकती है । मेरे इसी भाव का पोषण-चक्रपणि नें भी अपनी टीका में किया है–संस्वेंदजानां मशकादीनां उद्भिज्जादीनां भेकादीनां च मातरं बिनापि जन्म भवति, अंडजानामपि च यद्यपि माता कारणं भवत्येव जन्मनि–तथापि जरायुजमनुस्यस्यह प्रकरणेऽभिप्रेतत्वे नांडजान् विहाय जरायुजानामिति कृतम् । किं वा जरायुजस्याभि व्यक्ति रूपे जन्मनि यावदभि व्यक्ति माता कारणं भवति

नतथांडजे,·तन्नहि जन्मादौ अंडोपत्पत्तिस्तत्रैव माता कारणं न जन्मनि-अभिव्यक्ति रूपे। मत्स्याद पोंडजास्तु पितरं बिनापि ऋतुविशेष प्राप्त्यैव भवन्तीतिभावः ।। इससे भी स्पष्ट हो गया कि मानव गर्भ की व्याख्या ही भगवान का मनोभाव है। फिर भी ईषन्मानव सादृश्य पाकर अंडजों नाम्नानिर्देश कर दिया—स्वेदजोद्भिज्जों के वर्णन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

द्वितीय प्रश्न है मनुष्याकार योनि में ढलने से मनुष्य ही हो यह वेद विरुद्ध है अगस्त्य एवं ऋष्यश्रृंग इसके प्रमाण हैं। उत्तर में निवेदन है कि अगस्त्य का जन्म तपः प्रभावजन्य अमैथुनी सृष्टि का परिणाम है एवं ऋस्यश्रृंगभी योगनिष्ठों की सिद्धि के फल स्वरूप हैं। वेदों में अमैथुनी सृष्टि का भी वर्णन है। मयूर, मत्स्य, वगला आदि के जन्म आज भी अमैथुनी सृष्टि को प्रमाणित करते हैं। गर्भं वलाकादधतेऽभ्र-योगात् . . . . .

आदि अनेक बार साहित्य में छात्रों को आपने पढ़ाया होगा। तृतीय प्रश्न में भी वही ऋष्यश्रृंग की बातों की पुनरुक्ति है अतः उसका भी उत्तर ऊपर ही हो गया। चतुर्थ प्रश्न है बीज में से उत्पन्न होनें वाले प्राणी का आकार बीज में पहले ही से न हो तो सांख्य दर्शन के सत्कार्यबाद से संगत नहीं है। और चरक का दर्शन सांख्य हैं। यह सत्कार्यबाद से भिन्न नहीं है। कार्पास बीज में कार्पासतन्तु निहित हैं किन्तु उस तन्तु को सांचे में ढ़ालने से तौलिया, धोत्ती, साड़ी, सुजमी आदि विभिन्नाकार वस्तुऐं उपलब्ध होती हैं। इसी प्रकार षडभावों के समुदाय की एकता में तद्गत जीव जिसका कोई आकार नहीं (क्योंकि वह सूक्ष्म एवं अलिंग है। अलिंग का तात्पर्य यहां नामरूप शून्यता से है) योनि रूप सांचे में आता है। मनुष्य रूप में व्यक्त होकर स्थूल हो जाता है। बीजरूप षडभाव समुदाय में जीव तो था ही फिर आप इसे कसे सत्कार्यबाद से असंगत कहते हैं। फ़िर भी निवेदन है कि चरक का दर्शन सांख्य है फिर भी कपिल के सांख्य से एवं ईश्वर कृष्ण आदि के सांख्य से भिन्नता है इस विषय में फिर कभी लिखा जायगा।

पांचवे प्रश्न में शंका है कि आधुनिक वैज्ञानिकों नें माइकोस्कोप से जरायुज अंडजों कीं योनि को देखकर आकार शून्य थैलीमात्र कहा है अतः चरक का सांचे वाला कथन मिथ्या है। इस विषय में भगवान चरक नें कहा है कि जिन इन्द्रियों से प्रत्यक्ष करते हैं वे इन्द्रियां स्वयं अतीन्द्रिय हैं, फलतः प्रत्यक्ष जितना है उससे कोटिगुना अप्रत्यक्ष है अतः उस अप्रत्यक्ष के ज्ञान के लिये आप्तवाक्य प्रमाण मानना ही होगा। फिर भी यदि शास्त्री जी को माइकोस्कोप पर ही श्रद्धा अधिक है तो इन्द्रियों का फोटो मन का फोटो बुद्धि या अहंकार का फोटो एवं जन्म अमूर्तभावों का फोटो भी शायद देखा हो। पर विश्वास है कि नही देखा होगा। शास्त्री जी! आप भगवान् अग्निवेश कहकर बड़ी श्रद्धा का सम्बोधन करते हैं। फिर उनकी आप्तता में संशय क्यों? छठा प्रश्न है

कि योनिगत आकारों की बात को सत्य ही मान लें तो भी मासानुमासिक क्रम से कलल, अर्बुद, पेशी आदि विभिन्नावस्थाओं का प्रादुर्भाव न होकर गर्भ एक साथ ही बढ़ जाना चाहिए।

इस विषय में सुनिये—सांचे में भी कोई आकार एक कालावच्छेदेन नहीं बढ़ता ढालने के समय गलित द्रव को पूर्व भाग से पश्चिम भाग में जाने में भी समय सापेक्ष है, जैसे कोई वस्तु १० मिनट में ढलती है कोई एक मिनट में पुनश्च ढलनें के बाद भी उसके परिपाक के लिये निर्धारित ऊष्म काल सापेक्ष है जिससे यह पुष्ट होता है। उसी प्रकार गर्भ की भी बात है, गंधर्वी राक्षसी जिस समय गर्भ धारण करती हैं उसी समय प्रसव भी हो जाता है। गर्भ निष्कृत जीव भी तत्काल वर्द्धित शक्ति सम्पन्न ज्ञानवान् हो जाता है। जैसे हिडंबा ने घटोत्कच को जन्म दिया था वह महाभारत में देखिए। किंतु मानवी ९ मास में ही प्रसव करती है। शुनि, कपोती, चटका आदि भी अल्प काल में ही बच्चे देती हैं। फिर गर्भ का एक साथ बढ़ना कैसे युक्ति संगत है।

सप्तम प्रश्न है कि—पौराणिक गाथाएं हैं कि प्रजापति के उत्संग से दक्ष एवं अंगुष्ठ से नारद पैदा हुए, वहां योन्याकार न होने पर मानव सृष्टि कैसे हुई। यह प्रश्न भी द्वितीय तृतीय प्रश्नों के उत्तर से प्रमाणित हो गया है। देवयोनि के जीवों की या योगियों की समता मानव सृष्टि से नहीं हो सकती। पं० जी के लेख से प्रतीत हो जाता है कि इस विषय का समाधान उन के पास भी है, अतएव तो लिखा है कि पहले विद्वानों का दृष्टिकोण सम्मुख आना चाहिए, पीछे में अपना विचार व्यक्त करूंगा–फिर अन्त में यह लिखना कि यह न तो चरक पर आक्षेप है न विद्वानों को चुनौती। किन्तु पं० जी के मनोभाव वैसे नही जैसे लेख में व्यक्त किये हैं। फिर भी मनोभावों की झंझट में न पड़ कर तत्वबोधार्थ मैंने अपने विचार व्तक्त कर दिये। अब पं० जी भी उस गठरी की गांठ खोलें जो उनके पास वहुत दिन से संचित है।

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम, सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है।

प्रलपक-सन्निपात

ले०—वैद्य ओंकार शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, ककराना, जयपुर

बीरबल नामक एक अष्टादशवर्षीय जाट युवक के निरीक्षणार्थ दिनाङ्क १०-१-५२ की रात्रि को बुलावा आया। स्वभावतः मेरी जिज्ञासा होने पर, आगन्तुक ने कहा: "आज ३-४ दिन से ज्वर है, एवम् प्रातःकाल से प्रलापोद्रव एवं संज्ञाहीनता का भाव लक्षित हो रहा है।" चूंकि रोगी दूर था अतः मैंने बिना देखे ही प्रातःकाल फिर आने को कहकर रोगी के स्वजनों के आत्मतोषार्थ एवं साधारणतः तीव्र ज्वर में उपचरित, गोदन्ती भस्म तथा अमृतासत्व के समास कीं तीव्रतापह्रासार्थ और पाचनार्थ ३ मात्रायें साधारण जल के साथ लेनें को कहकर आगन्तुक को बिदा किया।

दिनाङ्क ११ की प्रातः को जाकर रोगी का निरीक्षण किया। रोगारम्भ का इतिहास स्वजनों ने इस प्रकार बतलाया। दिनाङ्क ७ की सन्ध्या को सहसा शीत लग जाने से साधारण ज्वर हो गया। ८ एवं ९ को घर वालों नें मौसमी बुखार समझकर, न तो कोई उपचार ही किया न पथ्यव्यवस्था ही रक्खी। फलतः चतुर्थदिन प्रातःकाल से ही उपरोक्त प्रलापोपद्रव प्रभृति प्रादुर्भूत हो गये। गोदन्ती एवं अमृतासत्व के मिश्रण से साधारण सी रात को नींद आई।

मैंने जिस समय रोगी का निरीक्षण किया यह अवस्था थी—तीव्रतम ज्वर (१०४-१०५) वृद्धिगत ज्वरजन्य रूक्षता के कारण वातप्रकोप होकर उद्धतप्रलाप, एवं साथ-साथ कुछ संज्ञा हीनता का भाव भी, मलावष्टम्भ तथा साधारण सा वातज (शुष्क) कास, जिह्वा मैली एवं फटी हुई क्षुधानाश एवं मूत्र रक्तवर्ण।

व्यवस्था यह की गई—रूक्षता निवारण एवं ज्वरह्रासार्थ शिर और हस्तपादतलपर दश वर्षपुराण घृत का अनवरत अभ्यङ्ग। ज्वर एवं प्रलापह्रासार्थ सर्पगन्धाघन बटी २-२ उपरोक्त गोदन्ती-अमृता के समास के साथ पीसकर साधारण जल के साथ ४-४ घंटे पर, पथ्य में केवल मुनक्का साधित दूध १ बार, मलावष्टम्भ नाशन एवं शक्ति रक्षणार्थ मुनक्का का विधान किया गया। जीभ पर भी मुनक्का का ही लेप दिलवा दिया गया जिससे कि प्यास का शमन होने के साथ साथ जिह्वा की रूक्षता का भी उपराम हो।

सायंकाल तक रुग्ण की अवस्था में कोई सुधार नहीं हुआ। मुझे अनिवार्यतया १ दिन के लिये बाहर जाना था, अतः सायंकाल रोगी के स्वजन के आनें पर मैं रोगी को

अपने ऐलोपैथिस्ट मित्र के हाथों सौंपकर बाहर चला गया।

१३ की शाम को वापस आने पर भी रोगी की वहीं अवस्था थी। प्रलाप एवं मोह का भाव कुछ बढ़ भी गया।

मित्र (डाक्टर) नें इसे ब्रोमाइड, टिंचर कार्डमम्, ग्लुकोज दाड़िम शार्कर इत्यादि के उच्च शक्ति के मिश्रण दिये, किन्तु सुफल हाथ न लगा रुग्ण की अवस्था पूर्ववत् थी। फलत: रोगी फिर मुझे ही सौंप दिया गया। आज रोगी को नींद आये चतुर्थदिन था अत: घर वाले तथा स्वयं में भी अरिष्ट लक्षण समझकर, व "सर्वरोगहरीनिद्रा" सोचकर सर्वप्रथम तत्क्षण ही नींद लाना उचित समझते थे, जिससे कि साथ साथ प्रलापोपद्रव भी शमन हो। निद्रोदय देने का विचार किया गया, किन्तु अभाग्य वश वह मेरे पास था नहीं, एवं चूंकि उसका मुख्यउपादान अहिफेन है; अत: उससे मलावष्टम्भ और भी बढ़ जावेगा यह सोचकर एट्रोपिन मिश्रित अहिफेन सत्व Atropine & Morphine $\frac{1}{4}$ रत्ति की अधस्त्वगीय बस्ति दी। फलत: रोगी को तत्काल हीं नींद आगई। ज्वर एवं रूक्षता ह्रासार्थ पुराणघृत वातादतैल (गुलरोगन) मिश्रत का अभ्यंग अनवरत अब भी चालू था। मलावष्टम्भ नाशार्थं साबुनपिण्डी की गुदवर्ती दी गई। आभ्यन्तर प्रयोगार्थ-वातनाशक अमर सुन्दरी बटिका, शुष्ककासनाशार्थ अपामार्गक्षार और चन्द्रामृत रस तथा दौर्बल्यनाशार्थ अभ्रक भस्म का योग दिया गया, आटरूषक स्वरस मधु के साथ १-१ प्रहर के अन्तर से।

अहिफेन सत्व की अधस्त्वगीय बस्ति रात को लगभग २ बजे दी गई थी, उसके बाद रोगी चुपचाप शान्त रहा, अलावा इसके कि पार्श्वपरिवर्तन के समय कुछ साधारण सी बक झक करता। दिनाङ्क १४ को प्रात: एक बन्धी टट्टी लगी। रोगी लगभग ९ बजे सोकर उठा। प्रलाप अब भी उसी प्रकार था किन्तु नींद आजाने के कारण थोड़ा कम एवं कुछ कुछ देर ठहरकर हो रहा था। औषध व्यवस्था दिनाङ्क १३ की तरह ही रही। आज पथ्य में कुछ अजादुग्ध देने का विचार था, किन्तु रोगी ले न सका। ज्वर आज कुछ कम था।

दिनाङ्क १५ को प्रात:काल ज्वर १०१.३ पाइन्ट था, प्रलापोपद्रव निरवशेष हो चुका था। औषध व्यवस्थापूर्ववत् थी, अभ्यंग बन्द कर दिया गया। पथ्य में शृतशीत दुग्ध में थोड़ा सा मधु डालकर दिया गया।

१६ को ज्वर १०१.३ ही था अत: औषध में मृत्युंजय १-१ रति और मिला दिया गया, शेषव्यवस्था पूर्ववत् थी।

१७ को रोगान्त दौर्बल्य को छोड़कर अन्य कोई भी उपद्रव नहीं था, अत: औषधियां

बन्द कर दी गई।

दिनाङ्क १८ को कोई भी औषध न देकर बार बार केवल मधुमिश्रित दूध पर हीं रक्खा गया।

१६ को लगभग १० बजे दिन में मुद्गयूष दिया गया, दूध २ बार दिन म और भीं दिया।

इसके वाद रोगी को शनैः शनैः साधारण भोजन पर लेआया गया।

सन्निपात कलिका में प्रलपक-सन्निपात के लक्षण निम्न प्रकार दिये गये हैं—

कम्पप्रलाप परितापन शीर्षपीड़ा, प्रौढ़ प्रभाव पवमान परोऽन्यचिन्ता

प्रज्ञाप्रणाश विकलः प्रचुरः प्रवादः क्षिप्रम् प्रयाति पितृपालपदम् प्रलापी।

इसका जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, प्रलाप प्रमुख एवं अव्यभिचारी लक्षण है।

पाश्चात्यों की मान्यता है, कि ज्वरवेग बढ़ने पर प्रलापवृद्धि तथा ज्वरवेग ह्रास होनें पर प्रलापोपशम होता है। अर्थात् अष्टांग संग्रह के–

ऊष्मा पित्तादृतेनास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा बिना के अनुसार

ज्यों ज्यों पित्त वृद्धि होकर ज्वरवेग बढ़ता है: अर्थात् उष्णता की ज्यों ज्यों वृद्धि होती है त्यों-त्यों हीं प्रलाप बढ़ता है। अतः प्रलापोपशमनार्थ उष्णगुण व्याधि विपरीत शीतक्रिया करनी चाहिये।

आयुर्वेद में भी सुदान्त-शेनीय पित्तप्रकोपजन्य लक्षणावलि प्रदर्शक बचन विस्फोटाम्लक धूमका **प्रलपनम्** में प्रलाप का निर्देश है। एवं प्रत्यक्ष में भी तीव्र ज्वर में उष्णता की बृद्धि से प्रलाप होता देखा जाता है। तथा शीतोपचार बर्फ़ इत्यादि के प्रयोग से ज्वर ह्रास होनें पर प्रलाप का ह्रास होता है। एवं च अन्वय व्यतिरेक से प्रलाप में पित्त (उष्मा) का कारणत्व सिद्ध होता है।

दूसरी ओर आयुर्वेद में ही "अति प्रलापश्च वात विकारः" (च. भू. अ २०) ऐसा कहा है मुक्त कण्ठ से। और सुदान्त शेनीय वात प्रकोप जन्य लक्षणावलि प्रदर्शक वचन–आध्मानस्तम्भ रौक्ष्यश्रमक विलपनम् में प्रलाप भी वातजन्य निर्देशित हुवा है। किं च प्रत्यक्ष में भी वैद्यों द्वारा इसका स्निग्धोपचार प्रभृति वात विरोधी उपक्रम किये जानें पर अनुपद्रुत शमन भी होता है। अतः साधारण श्रेणी का छात्र इस द्विविधा में पड़ जाता है, कि प्रलाप में किसका कारणत्व मानकर चिकित्सा करें। वायु और पित्त दोनों की चिकित्सा साधारणतः परस्पर विघातिनी ही होगी। क्योंकि यदि शीतगुण वात-विपरीत उष्ण चिकित्सा की जाय तो पित्त वृद्धिगत होकर प्रलापोपद्रव और भी बढ़ायेगा।

और उष्णगुण पित्तविपरीत चिकित्सा यदि करें, तो शीतगुणी वात की बृद्धि होगी। फल दोनों तरफ ही उलटा होगा।

यों तो प्रायः प्रत्येक रोग में ही अंशांश बिकल्पनाकर चिकित्सा करना आयुर्वेद सम्मत है। किन्तु प्रलाप जैसे कई एक रोगों में तो इसका सविशेष ही ध्यान रखना चाहिये। बिना इसके चिकित्सा फलवती तो क्या, उलटे अयशः प्रदायिनी होगी। पाल्लविक वैद्य इसकी सम्प्राप्ति को न समझते हुए, यदि इतर जगह साधारण वात चिकित्सा में प्रयुज्यमान वातविपरीत उष्णोपचार का यहां प्रयोग करेगा तो उष्णता वश रूक्षता और बढ़ेगी। फलतः वात सविशेष बृद्धिगत होकर प्रलाप बढ़ेगा। तभी तो भगवान् नें स्पष्ट निर्देश किया हैं–"ज्वरभ्रम प्रलापाद्या दृश्यन्ते रूक्ष हेतुजाः (नि. स्था. ८३१)

प्रलाप की सम्प्राप्ति यों समझनी चाहिये–"रूक्षं तेजो ज्वर करम्" (च. चि. ३ अ) के आयुर्वेदनयानुसार ज्वर की वृद्धि से शरीरगत उष्णता की वृद्धि होकर तज्जन्य रूक्षतावश "रूक्षः शीतो लघुसूक्ष्मश्चलोऽथ बिशदः खरः" एवं गुणविशिष्ट वायु "सामान्यं बृद्धिकारणम्" के अनुसार वृद्ध होकर स्वप्रकोप जन्य लक्षण प्रलाप का प्रादुर्भाव करता है।

ऐसा मानने पर ही पित्तज्वर के लक्षण में सुश्रुत द्वारा प्रलाप का होना लिखा जाना या सुदान्त शेन का कथन पित्तप्रकोप से प्रलाप का पैदा होना समझ में आ सकता है। एक अन्य उदाहरण लीजिये–प्रायः एक मिथ्याछाप पड़ी हुई है कि कासश्वास मात्र कफप्रधान है, ऐसा सोच कर कृष्णमरिच. शुण्ठी इत्यादि का औषध एवं आहार रूप में यदि प्रयोग किया जायगा तो, कफ का पाचन हो तब तक तो गुण प्रतीत होगा परन्तु बाद में ये द्रव्य अपनी उष्णता वश स्निग्धता को नष्ट कर रूक्षगुण की वृद्धि ही करेंगे। परिणाम होगा वात तथा तज्जन्य कासादि रोगों की वृद्धि। बस यही रहस्य प्रलाप में है। यद्यपि चरक में "सस्नेहमुष्णम् पित्तम् (सू. १३ अ) तथा "अनति स्नेहो पित्तस्यात्मरूपम् (च. भू. २ अ) इत्यादि वचनों में पित्त को सस्नेह कहा है। फिर ताप (ज्वर) जबकि पित्तवृद्धि ही से होता है, तो क्योंकर रूक्षता की वृद्धि हो कर वातोपद्रव होंगे ? ऐसी शंका हो सकती है।

इसका परिहार चक्रपाणि ने इस प्रकार किया हैं तथाप्यवस्थावशात् पित्तम् निरामम् सन्निस्नेहं भवति। स्नेहश्च पित्तगुणो द्रवयोग निमित्तको न सांसिद्धिकः, तेन स्नेहापगमः पित्तस्योह्यत एवावस्थायाम्; तेन निःस्नेहस्य पित्तस्योष्मा रूक्षएव भवति। और सुश्रुत ने तो पित्त का स्नेहत्व स्वीकृत ही नहीं किया है। अतः ज्वर में रूक्षता की वृद्धि होकर वातोपद्रव प्रलाप का प्रादुर्भाव होना न्यायानुमोदित है।

इस प्रकार प्रलाप का निमित्त कारण पित्त एवम् समवायी कारण वात होता है। और

मात्र केवल ऊष्मा वृद्धि से ही प्रलाप होता हो, ऐसा भी नहीं, अपितु कई जगह मूढ़ वात, बिबन्ध इत्यादि वात प्रकोपक कारण भी प्रलाप के निमित्त कारण होते हैं। इस प्रकार भी मदुक्त उपरोक्त बात की ही सिद्धि होती है।

वैद्यों द्वारा प्रलाप की चिकित्सा में स्निग्ध शीतोपचार कर यशस्वी होना तो सुप्रथित है ही। इस प्रकार यह प्रत्यक्षादि त्रिविध प्रमाण सिद्ध है कि प्रलाप होता वायु से ही है, किन्तु इस जगह (ज्वर में) प्रधान पित्त की विरोधिनी चिकित्सा भी उपरोक्त नियमों को समझते हुए साथ साथ होनी चाहिये।

एक अवस्था तक पाश्चात्यों का शीतोपचार Ice bag आदि भी पित्त ह्रासकर अतः एव तज्जन्य रूक्षता का नाशक–दूसरे शब्दों में प्रलाप विघातक–होने से ठीक है। पर इसे निर्बाध नहीं कह सकते। जैसे–शीतोपचार चालू रहा तो वात या कफ के शीतगुण की वृद्धि होकर शीताङ्ग Collapse प्रलाप प्रभृति वातकफोपद्रव पुनः होकर पंचत्व प्राप्ति होगी।

अतएव पाश्चात्य चिकित्सक शीतोपचार का १०३ तापांश होनें पर निषेध करते हैं।

वैद्यक में भी शिरः शूल या तीव्र ज्वर भान की शान्ति के लिये किये जानें वाले "शीतलेप हिम इत्यादि के प्रयोग शिरकफस्थान होने से ये प्रयोग कफ वर्द्धक होकर कासश्वास प्रतिश्याय कफ प्रधान द्वन्द्वज या सन्निपात ज्वर कारक होंगे, "यह कह कर शिर पर प्रयोग निषेध किया है।" शिशुवों में वय. श्लेष्म प्रकोप के अधिक अनुकूल होने से इस बात पर सविशेष ध्यान देना चाहिये। उदर अग्निस्थान होनें से तीव्र ज्वर में इसी स्थान पर उष्मा को बिजित करना श्रेयस्कर बताया गया है।" अर्थात् यहां उपाय करने से उष्मान्यून होने पर भी कोई भय नहीं। इत्यादि में

शतशोऽनुभूत प्रामाणिक औषधियों का प्राप्ति स्थान

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वेदिक प्रकाशन "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" में वर्णित और चिकित्सातत्व-प्रदीप" में संगृहीतप्रयोगानुसार—भस्म, कूपीपक्व, खरलीय रसायन, पाक, अवलेह, घृत, तैल आदि विशुद्ध गुणकारी औषधियां हमारे यहां बनाई जाती हैं।

औषधियों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है। लिखें या मिलें।

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

तार का पता : "औषधालय" डाक व तार घर : 'कालेड़ा' कृष्णगोपाल, वाया नसीराबाद (अजमेर)

बहुत कुछ इसी का ध्यान रक्खा गया है ।

दूसरी ओर स्निग्ध-शीतोपचार कफ-वर्द्धक होनें पर भी स्निग्धता के कारण वात-नाशक होने से शीतोपचार की अपेक्षा ज्यादा निर्बाधएवम् यत्किंचत अनागताबाध प्रतिषेधक भी होगा ।

चूंकि उपरोक्त रोगी वयस्क (पित्तप्रधान वयवाला, देखिये–बाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा, मध्यमेपित्तमेवतु) एवम् ज्वर अधिक बढ़ा हुवा (पैतिक. १०४-५ था) अतः शिर पर घृतादि का प्रयोग निर्दोष मानकर ही किया गया । और अहिफेन सत्व साधारण अहिफेन की अपेक्षा अल्प मल स्तंभकर, सत्व होनें में शीघ्र कार्य कर एवम् एट्रोपिन मिश्रित होनें से अन हृदयावसादकर समझ कर ही प्रयोग किया गया ।

इस प्रकार यदि नूतन (अनभ्यस्त) चिकित्सक दोषों का बलाबल देखकर एवम् अंशांश विकलपना कर चिकित्सा में प्रवृत्त होगा तो सिद्धि निश्चय ही प्राप्त हो सकेगी । इसे स्मरण रखना चाहिये:–

सम्यक् प्रयोगम् सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम्
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ।।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम
हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य
हमारी विशेषता
वास्तविक और शुद्ध सामान
विस्तृत विवरण के लियें पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें ।
तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७६६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

मधुमेह

लें०--डा० शंकरलाल भेड़ा, एम, बी० बी० एस०, आयुर्वेदाचार्य

भूमिका--आयुर्वेद में मूत्र सम्बन्धी रोग मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और अश्मरी इस भेद से चार प्रकार के माने गये हैं। इनको प्रमेह तथा मूत्राघात भेद से दो वर्ग में वर्णन किये हैं। जिन रोगों में अधिक मात्रा में और असाधारण पदार्थ युक्त मूत्र के रासायनिक स्वरूप में "Chemical Composition केमीकल कम्पोजीशन" परिवर्तन द्वारा मनुष्य मूत्र का त्याग करता है, उसको आयुर्वेदाचार्यों नें प्रमेह शब्द से व्यवहार किया है। जिन व्याधियों में मूत्र के निर्गमन सम्बन्धी विकृति में Mechanical obstruction मिकेनिकल आंवस्ट्रक्शन होती है, उनको मूत्राघातादि वर्ग में समाविष्ट किया है।

प्रमेह की निरुक्ति--प्रभूतंवाऽविलंवापि क्वचिच्चोभय लक्षणम्।
प्रायशश्चेत्स्रवेन्मूत्रं तत्प्रमेहं विनिर्दिशेत्।

अर्थात्--प्रभूत (अधिक राशि में) प्रदुष्ट पदार्थ युक्त मलमूत्र अलग अलग अथवा दोनों एक साथ जिसमें मूत्र का त्याग होता है उसे प्रमेह रोग कहते हैं। मूत्रस्थित पदार्थ और उसके वर्णादि के आधार पर ही प्रमेह के २० भेद वर्णित किये हैं।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताऽविल मूत्रता।
मूत्र वर्णादिभेदेन भेदोमेहेषु कल्प्यते।

प्रमेह संज्ञा--प्राचीन आचार्यों के मत में सर्व प्रमेहों की प्रमेह संज्ञा ही है। यद्यपि सब ही प्रमेह त्रिदोषजन्य होते हैं, इनमें वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक विभाग तो तत्तद् दोषों की अधिकता से "प्राधान्येन व्यप देशा भवन्ति" इस न्याय से किया गया है। जैसा सुश्रुत कहते हैं" सर्व एव प्रमेहाः सर्वदोषजन्य समुत्थाः सह पिडिकाभिः"। अर्थात् सब प्रमेह तथा सब पिडिका सर्व दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं।

इनमें वातिक प्रमेहों के लिये दोष विभाग की दृष्टि से ऐसा वर्णन मिलता है। कफ् पित्त वसा मज्ज मेदो भिरन्वितो वायुर्वात मेहान् जनयति" कफ, पित्त, वसा, मज्जा और मेद इनसे युक्त वायु वात प्रमेहों को उत्पन्न करता है। वातिक प्रमेह चार प्रकार के होते हैं उनमें एक मधुमेह भी है।

मधुमेह का परिचय--जिसमें मधुसदृश तथा अधिक मात्रा में बारम्बार मूत्र त्याग, कार्श्य, दौर्बल्य, प्यास, क्लम, दाह लक्षणों वाला एवं परिणाम में दुःखप्रदरोग को मधुमेह

कहते हैं । इसमें मूत्र के अन्दर मधुर स्वभाव ·ओज मौजूद रहता है । वर्तमान रासायनिक परिभाषा में इसको ग्लूकोज़ (Glucose) कहते हैं । यह एक प्रकार की शर्करा है जो और शर्कराओं के साथ मधुमेह में उपस्थित रहती है । इसलिए मधुमेह शब्द सार्थक है । इसके होनें से मूत्र यद्यपि मधु के बराबर गाढ़ा नहीं होता है, किन्तु मूत्र की स्वाभाविक गुरुता बढ़ जाती है ।

मधुवन्मधुरं, भूरिमूत्रं यत्र भवेद् भृशम् ।
मधुमेहः स आख्यातो बहु लिङ्गो दुरायतिः ।

सुश्रुत नें बीस प्रकार के प्रमेहों कें भेद लक्षण बतलाने के बाद मधुमेह का विशेष अवस्था में वर्णन किया है ।

पिडिका पीडितं गाढ मुपसृष्टमुपद्रवैः ।
मधुमेहिन माचष्टे स चा साध्यः प्रकीर्तितः ।।१।।
स चापि गमनात् स्थानं स्थानादासन मिच्छति ।
आसनाद् वृणुते शय्यां शयनात् स्वप्न मिच्छति ।

प्राचीनों नें मधूमेह शब्द का प्रयोग सर्व प्रमेहों के लिए भी किया है । जैसा चक्रपाणि आदेश देते हैं "मधुमेह शब्दः सर्व प्रमेहे मधुमेहविशेषे च वर्तते । यथा तृण शब्दः सर्व तृणे तृणविशेषे च वर्तते । इति"

अर्थात्–पिड़िकाओं से अत्यन्त पीड़ित तथा उपद्रवों से दुःखित हुए प्रमेही को मधुमेही कहते हैं । वह असाध्य होता है । मधुमेही का रोगी चलने फिरनें से ठहरने की इच्छा किया करता है । ठहरने से बैठने की इच्छा करता है । एवं लेटनें से सो जाने की इच्छा करता है । इसलिए पिडिका और उपद्रवों से (मक्षिकोप सर्पणादि) व्याप्त प्रमेही को मधुमेही मानना चाहिए ।

स्व० कविराज म० म० श्री गणनाथ सेन सरस्वती जी ने सब प्रमेहों की मेह संज्ञा रखी है, तथा मधुमेह को प्रमेह संज्ञा दी है ।

प्रमेह संज्ञा प्राचां तु सर्व मेहेषु दृश्यते ।
सामान्यतो विशेषात्तु मधु मेहे हि सामता ।

मूत्र प्रकृति—मधुमेह मूत्र विकृति जन्य रोग है । इसलिये मूत्र की प्रकृति से भी परिचित होना वैद्य के लिये नितांत आवश्यक है । स्वाभाविक मूत्र जल की तरह तरल तथा लघु होता है मूत्र का वर्ण याकृत पित्त तथा भोजन के वर्ण के कारण होता है ।

अर्वाचीन मत से मूत्र की स्वाभाविक गुरुता स्पेसेफिक ग्रेवेंटी Specific gravity १००० संख्या तक ही होती है । तथा निर्मल (पारदर्शक Transparent रंग में ईषत्

पीत वर्ण, स्वाद में लवण रस थोड़ा अम्ल रस। यह प्राकृत मूत्र (किसी भी दोष तथा काल जन्य विकृति से रहित) का स्वरूप है। मूत्र एक नियत परिमाण में वृक्कों से निकलना चाहिये। अहोरात्र में मध्यमवयस्क पुरुषों को प्रायः १२८ तोला about 50 oz. प्रमाण में होता है। किसी किसी को न्यूनाधिक भी होता है किन्तु स्वास्थ्य संरक्षण के लिये इतने परिमाण में होना आवश्यक है। स्त्रियों को कुछ कम होता है।

मधुमेह निदान--मधुमेह दो प्रकार के होते हैं, प्रथम कफाधिक मधुमेह, द्वितीय वाताधिक मधुमेह। इन दोनों की परिणामावस्था में वात की अधिक वृद्धि हो जाने से सामान्यतः मधुमेह को वातोल्वण में परिगणित किया गया है।

क्रमशः कफोल्वण मधुमेह के निदान-मधुर पदार्थ अधिक स्निग्ध, मेदवर्धक अन्नों के सेवन करने से दिवास्वप्न आस्या तथा शय्या का अति शीलन करने से, कफोल्वण मधुमेह उत्पन्न होता है तथा कार्य का विशेष चिन्तन, विद्या धन कीर्ति सन्मान आदि कार्यों की सिद्धि के लिए अत्यधिक परिश्रम, अर्थात् शरीर की रक्षा की उपेक्षा करके शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम अत्यन्त करनें वालों को विशेषतः भोगी पुरुषों को ३०-३५ वर्ष की अवस्था के बाद वातोल्वण मधुमेह होता है। प्रायः यह दुःसाध्य ही होता है।

सम्प्राप्ति—अत्यन्त मधुर भोजन तथा विपाक भी जिसका मधुर होता हो ऐसे द्रव्य (शालिवर्ग, गोधूमान्न, दुग्ध विकृति) क्योंकि इनका मधुर विपाक होता है। इनके विपाक से मधुर प्रधान आहार का सार भूत रस उत्पन्न होता है। यह साधारण नियम है कि "मधुरस्य मधुर एव विपाकः" अर्थात् मधुर रस का मधुर विपाक ही होता है। इसलिये मधुर विपाक का रस सिरा रक्त के साथ सञ्चरण करता है प्रथम यकृत में प्रवेश करता है। उसके बाद हृदय द्वारा सम्पूर्ण शरीर में मांसादि, धातुओं में धमनियों द्वारा प्रसर्पण करता हुआ मांसादि सप्त धातु अग्नियों के विकृत हो जानें से सम्यक् परिणाम का लाभ नहीं होता। अर्थात यथोचित धातुओं की क्रियाओं से निर्माण कार्य नहीं होता है, इस कारण से रक्त मांसादि धातुओं में माधुर्य भाग विशेष हो जाता है। अतएव मूत्र में भी माधुर्यता हो जाती है। इसी को शर्करा कहते हैं।

धात्वग्नि—अथतत् पाक संभूतो रसो यो हृदयं व्रजन्।
आरुह्य धमनीस्तस्माद् धातुं धातुं प्रपद्यते ।। १
तस्यैव परिणामा हि सारकिट्ट विभागतः।
क्रियन्ते धातुपोषाय यैस्ते धात्वग्नयः स्मृताः ।। २

मूत्र में शर्करा पैदा होनें के ४ कारण हैं, (१) वृक्क (२) शाली पिष्टमय पदार्थों का अधिक मात्रा में भोजन (३) मस्तिष्क और मानसिक विकार (४) अन्तः स्रावी ग्रंथियों की विकृतियां (१) वृक्कों में यह विशेषता होती है कि रक्तगत शर्करा को विशेष प्रमाण तक रोक कर मूत्र में नहीं आनें देते हैं । जब तक कारणवश रक्त स्थित शर्करा परिमित मात्रा से बढ़ जाती है तब मूत्र में शर्करा आती है । यह प्रमाण १८% तक है । इसे वृक्क शर्करा बन्धन मर्यादा कहते हैं (२) शाली पिष्टमय पदार्थों का सञ्चय तथा व्यय की शक्ति से बाहर सेवन हो जाता है, तब रक्तगत शर्करा का 80 Rom per 100 की शर्करा वन्धन मर्यादा से अधिक हो जातीं है उस हालत में मूत्र में शर्करा आने लगती है इसको आलेमेन्टरी ग्लायकोस्यूरिया (Alementary Glycoseurea) कहते हैं ।

(क्रमशः)

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिए अत्युत्तम महौषधि

नव रत्न रस

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है । शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि का विशिष्ट कार्य है तथा नपुंसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव-यौवन प्रदान करता है । स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है । वन्ध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है । बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बनाकर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान, स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है । क्षय, जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है ।

नवरत्न रस निरोगी के लिए रसायन और रोगी के लिए पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है ।

ऊँझा फार्मेसी लि० (गुजरात) ऊँझा

स्वर्गीय आयुर्वेदालङ्कार पं० कालिचरण जी के अनुभूत योग

संग्रहकर्ता--पं० हरिचरण वैद्य वाचस्पति

नेत्र रोग

आयुर्वेद में शल्यतन्त्र में उर्ध्वजत्रुगत रोगों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है । परन्तु साधारणतया वैद्य महानुभाव इस ओर अधिक ध्यान नहीं देते जिससे उर्ध्वजत्रुगत रोगों की आयुर्वैदिक चिकित्सा का प्राय: लोप होता जा रहा है। प्रथम तो वैद्य इन रोगों की चिकित्सा करते ही नहीं, और करते हैं तो २-४ ऐलोपैथिक औषधियों का ही प्रयोग करते हैं मैं अपने वैद्य समाज के अनुभव के लिये अपने पूज्यपिता स्वर्गीय पं० कालिचरण वैद्य जी के अनुभूत योग दे रहा हूँ ।

(१) खानें की औषधें ।......

महांतृफलाघृत का प्रयोग

(२) दिमागी आंखों की कमजोरी के लिये:-

एजारज फैंकरा १ तोला, अनेंसु १/२ तोला, गारिक्यून १/२ तोला, तुरबद स्फैद ४ तोले, सुरिञ्जा शीरी १ तोला, निमक संगे १/२ तोला, काला दाना १ तोला, मगज़ तुखम हमज़ल १/२ तोला, सकमोनिया १/२ तोला । अर्क सौंफ में घोट कर भली प्रकार ४-४ रत्ति की गोलियां बनालें । जलसे प्रयोग करें ।

(३) इसके साथ ही नेत्ररोग में–लङ्कण, लेप, स्वेदन, शिरोवदे, विरेचन, शिरोविरेचन, अञ्जन, अश्च्योतन आदि कर्म लाभदायक होते हैं ।

(४) फोला और जाला पड़ जाये तो प्याज (प्लाण्डु) के रस में मधु मिलाकर सलाई से आंख में डालना चाहिये ।

(५) नया फोला हो तो वट वृक्ष का दुग्ध निकाल उसमें कर्पूर घिसकर डालें तो नया फोला ठीक हो जाता है ।

(६) गुहांजन–लौंग पानी में घिसकर लगानें से लाभ होता है ।

(७) धुंध, जाला, गुब्बार हो तो-सुर्मा ४ तोले, फुल्ल फिटकरी ६ माशे, नीला थोथा फुल्ल १ माशा, कल्मी शोरा ३ माशें, समुद्र फेन ६ मांशे, सफेद मिर्च ३ माशे, कौड़ी पीली ४ माशें, छोटी इलायची दाना ३ माशे, चासकू ५ माशे; अर्क गुलाब १० तोले, अर्कसौंफ २० तोले, इन दोनों अर्कों में खरल करके सुर्मा बनावें ।

(८) कुकड़ों के लिये–कचूर १ तोला, नौशादर १ तोला, दोनों को शोरे के जल

से खरल कर पश्चात् कोकन वेर के बराबर गोलियां बना लें और जल से रगड़ कर आंखों में लगावें ।

(९) आंखों की हर एक बीमारी में लेप–रसौंत ५ तोले, अनारदाना २ तोले, फिटकरी फुल्ल १ तोला । (रस+अनारदाना) दोनों को पानी में डाल भिगो दें पश्चात् निथार लें । उस पानी को एक कढ़ाई में डालकर आग पर रखकर पानी सुखालें, जब गाढ़ा हो जावे तब फटकरी डालदेवें । इसका गुनगुना लेप आँखों की हर व्याधि पर प्रयोग करें ।

(१०) मोतियाविन्द, धुन्ध, गुब्बार, शुक्लादि रोगों के लिये–सुर्मा काला १$\frac{१}{२}$ माशा, मोती १ तोला, बुरादा चान्दी १ तोला, पारा १ तोला । सब औषधों का गोला बना कर चालीस दिन चील के अण्डे में रखें । इसके बाद सुर्मावत घोट लें ।

(११) पखाल, नाखूना, मोतियाविन्द, फोला, स्फैदी, धुन्ध गुब्बार पर सुर्मा–ताम्बा ५ तोला, कल्मीशोरा ५ तोले, गन्धक ५ तोले, शीशानमक ५ तोले । अर्क नींबू में डालकर २ मास पर्यन्त रख छोड़ें । आठ दिन के पश्चात् हिलाता रहे । दो मास पश्चात् खरल करके २ माशे अनविद्ध मोती और सुर्मा कान्धारी ३ तोले मिला कर सुर्मा बना लें । यह सर्वोत्तम सुर्मा होगा ।

(१२) आंखों में लाली, वेदना, जलन हो तोः–रसौत ६ माशे, हल्दी ६ माशे, माजू ६ माशे, फटकरी ६ माशे, अहिफेन १ माशा । लेप बना कर लगावें ।

(१३) आंखों की लाली की दवाः–पत्र मेंहदी २ तोले, जीरा सफेद २ तोले, आध पाव पानी में भिगो छोड़ें । उसमें तीन माशे फिटकरी तब तक घिसें जब तक पानी न सूख जाये । आंख पर लेप करने से लाली जाये ।

(१४) पोथकी में रगड़ कर डालनें के लियेः–निर्मल तुत्थ १ भाग, मधुयष्टी १ भाग, काली मरि़च $\frac{१}{१६}$ भाग, जल में घोट कर एक-एक माशे प्रमाण वर्त्ति बनालें । इसको रगड़ कर पोथकी में डालें ।

(१५) अञ्जन सर्वोत्तमः–फटकरी ५ तोला, नोशादर ५ तोला, सौभाग्य ५ तोला, निमक शीशा ५ तोला, कल्मी शोरा ५ तोले । ७ दिन निम्ब के पानी में भावना दें, ७ दिन केले के पानी से, ७ दिन केवड़ा, और ७ दिन अर्क गुलाब में भावना दें । निम्ब के दण्डे में ताँबे का पैसा लगा कर कांशी के बर्तन में खरल करना ।

(१६) बच्चों की आंखों का लेपः–अनारदाना, हल्दी, रसौंत । तीनों मिला घोंट कर लेप करें ।

श्री वेदव्रत शर्मा शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, कासगंज के दो अनुभूत

स्तन कैन्सर

पिछले दिनों मुझे स्तन कैन्सर के एक रोगी की चिकित्सा करने का अवसर मिला। रोगी के एक स्तन में १ वर्ष से एक जगह गांठ थी जिसकी पीड़ा से वह बेचैन रहती थी। एटा के सरकारी हस्पताल में चार मास तक चिकित्सा कराने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ, कुछ समय से अब होमियोपैथिक चिकित्सा करा रहे थे किन्तु उससे भी कुछ लाभ न होने पर अब कासगंज के मिशन हस्पताल में दिखाने ले आये थे। परीक्षा करने पर डाक्टरनी ने कैन्सर बताया और एक्सरे आदि के लिये आगरे या देहली ले जाने को कहा। मैंने भी रोगी की परीक्षा की और एक सप्ताह तक अपनी चिकित्सा में रखने का निश्चय किया और निम्नलिखित व्यवस्था करदी।

कचनार की छाल १ तो० वरना की छाल १ तो० सहंजनें की छाल १ तो० को एक पाव पानी में औंटा कर एक छटांक शेष रहने पर उतार कर छान कर ६ मासे शहद मिला कर कांचनार गुग्गुल की गोली के साथ दोनों समय पीना।

स्तन की गांठ को गोमूत्र से सेकने के पश्चात् धतूरा की पत्तीं, इन्द्रायण की जड़, सहंजना की जड़, आक की जड़, यवक्षार इन सब को गोमूत्र में पका कर लेप लगाया गया।

इस प्रयोग को दो माह करनें से वह गांठ जो एक गोलाकार थी बैठ सी गई और उसका क्षेत्रफल भी आधा रह गया।

नाभि विद्रधि

ढोलना में मेरे एक मित्र की नाभि में एक गांठ हो गई थी और कुछ पीव सा भी आता था। वह सप्ताह तक ग्रामीण चिकित्सा से लाभ न देखकर कासगंज आ गये। हमने उन्हें यहां अपने मित्र डा० रामस्वरूप जी को दिखाया उन्होंने पेनसिलिन के ३६) रु० के इंजेक्शन से उसे बैठा देनें का विश्वास दिया। वही किया गया पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ, फिर स्थानीय रेल्वे डाक्टर से परामर्श किया गया; इस प्रकार एक माह तक इन लोगों के कहने के अनूसार चिकित्सा कराने पर जब कोई लाभ नहीं हुआ तो जिला के सिविल सर्जन को दिखाया गया। एक माह उनकी चिकित्सा में भी रखा गया पर कोई लाभ नहीं हुआ। इसी बीच गाजियाबाद में वैद्य सम्मेलन के अधिवेशन का निमंत्रण मिला और में रोगी को साथ लेकर वहां चल दिया। पं० शिवशर्मा जी, स्वामी जयरामदास जी, पं० हरिदत्त शास्त्री आदि वैद्यों से परामर्श किया और वापिस आकर रोगी को इस व्यवस्था पर रखा।

रसमाणिक्य १ रत्ती, अमृता सत्व ४ रत्ती, प्रातः सायं मक्खन के साथ।

नाभि में मुर्दासिंग मक्खन के साथ घिसकर लेप।

सारिवा श्वेत, उसवा, यवास, इन्द्रवासणी, हरड़, जलनीम, निम्बत्वक् का क्वाथ प्रातः सायं पिलाया गया। इस प्रयोग से रोगी २ सप्ताह में स्वस्थ हो गया।

इन्दौर सम्मेलन के धूतपापेश्वर स्टॉल को वैद्यवर्यों की भेंट

धूतपापेश्वर इंडस्ट्रीज लि.

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में धूतपापेश्वर कारखाने ने भव्य स्टॉल लिया था। धूतपापेश्वर स्टॉल को सम्मेलनाध्यक्ष नें भेंट दी उस समय पुष्पहार अर्पण करके उनका स्वागत किया गया। (हैट पहनें हुये) पं० शिवशर्मा जी, उनकी दाहिनी में पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, बांई में विद्यापीठाध्यक्ष वैद्यराज हरिदत्तजी व प्रमुख वैद्यवर्य दीख पड़ते हैं।

★

६५० से अधिक आयुर्वेदीय व अन्य औषधियां तैयार करनेवाला आद्य औषधि कारखाना

धूतपापेश्वर

इंडस्ट्रीज़ लि०

पनवेल—बम्बई

शाखाएँ, केन्द्र

इंदौर, जलगांव, जोधपुर, रायपुर, लखनौ, दिल्ली, जम्मू, हुबली, हैदराबाद, बम्बई, पुणें, नागपुर, आकोला, बार्शी, बड़ोदें, अहमदाबाद, कोल्हापुर।

आयुर्वेद लोक

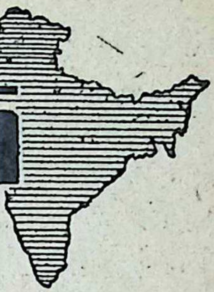

पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन

(शाखा नि० भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन)

भैरों बाजार, जान्लधर शहर।

सर्कुलर ७

कार्यकारिणी की कार्यवाही

३०-११-५२ को कार्यकारिणी की बैठक श्री पं० प्रकाश नाथ जी तिवाड़ी प्रधान पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन की अध्यक्षता में तिवाड़ी फार्मेसी बाजार भैरों में हुई लगभग २० महानुभाव उपस्थित थे। सर्व प्रथम श्री आचार्य सुरेन्द्र मोहन जी B. A. आयुर्वेदाचार्य देहली, भूतपूर्व प्रिंसिपल दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज लाहोर तथा पंजाब प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन के संस्थापक तथा सर्वप्रथम प्रधान मन्त्री के असामयिक देहावसान पर श्री वैद्य सोहन लाल जी 'अग्निहोत्री' प्रधान मंत्री आयुर्वेद मण्डल ऊना तथा वैद्य स्वामी मस्त गिर जी जालन्धर के असामयिक देहवसान पर शोक प्रकट किया गया।

आगामी वर्ष के सदस्य

२. सर्व सम्मति से निम्न महानुभाव स्थानिक संघ के लिये चुनें गये।

(क) श्री वेदव्यास दत्त जी।

(ख) श्री सन्त सिंह जी ठाकुर।

(ग) श्री किशोरी लाल जी 'पुष्करणा'।

इसके अतिरिक्त सम्मेलन के प्रधान, प्रधान मन्त्री, उपमन्त्री तथा कोषाध्यक्ष भी सदस्य होंगे। इस तरह स्थानिक संघ के कुल ७ सदस्य हुए।

३. बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्ज आफ मेडिसन पंजाब को

यथावसर सुझाव देनें के लिये निम्न उपसमिति ११ सदस्यों की बनाई गई ।

१. श्री हृतिदत्त जी शास्त्री––जालन्धर नगर ।
२. ,, सुदर्शनाचार्य जी—करनाल ।
३. ,, मुकुन्द लाल जी भण्डारी––मुक्तसर ।
४. ,, कृष्ण दयाल जी—अमृतसर ।
५. ,, जयराम दास जी––कुठेराजसवाळां ।
६. ,, ओं प्रकाश जी दत्त––जालन्धर ।
७. ,, रोशन लाल जी शर्मा––जालन्धर ।
८. ,, रक्खा राम जी तपस्वी––नकोदर ।
९. ,, आत्मा राम जी––महेली ।
१० ,, स्वामी सुन्दर दास जी––सिद्धवां बेट ।
११ ,, चिरञ्जीव लाल जी––कन्धाला जट्टां ।

इस के अतिरिक्त श्री प्रधान जी तथा प्रधान मन्त्री ।

४. (क) निश्चय हुआ कि श्रीं देवकी नन्दन जी जालन्धर तथा श्री हरिवंश लाल जी दीक्षित ज़ीरा (फ़िरोजपुर) को जलोदर पर प्रथम तथा द्वितीय निबन्ध लिखने पर जगराओं सम्मेलन की घोषणानुसार पुरस्कार आगामी कार्य कारिणी के अवसर पर दिया जाय ।

(ख) निश्चित हुआ कि पुरस्कार दाताओं को लिखा जाए कि आगामी कार्य कारिणी की मीटिङ्ग में पुरस्कार दिया जायेगा, वे कृपया कार्य कारिणी के उस अधिवेशन में दर्शन देवें और जनवरी १-१-५३ तक पुरस्कार का धन कार्यालय में भेजने की कृपा करें ।

(ग) कार्य कारिणी निश्चय करती है कि यदि श्री देवकी नन्दन जी शर्मा (सर्वोत्तम निबन्ध लेखक) चाहें तो निबन्ध पुस्तकाकार में छपवा सकते हैं । पंजाब राज्य सम्मेलन यथा शक्ति उसे बिकवाने का प्रयत्न करेगा ।

५. जगराओं सम्मेलन पर बनाई गई फार्मेसी निर्माण, तथा फार्मेसी नियन्त्रण उपसमितियों का एक सम्मिलित अधिवेशन बुलाया जाये और उसका निर्णय आगामी कार्य कारिणी में रक्खा जाए ।

६. (क) पंजाब राज्यायुर्वेद सम्मेलन की कार्य कारिणी का अधिवेशन सरकार द्वारा २० आयुर्वेदिक और यूनानी डिस्पैन्सरियों के खोले जाने पर पंजाब सरकार का धन्यवाद करते हैं । परन्तु यह संख्या अत्यल्प समझता है । अतः सरकार से पुरजोर मांग करता है कि वह जनता सेवा, तथा आयुर्वेद उन्नति-अर्थ और डिस्पैन्सरियां खोले ।

(ख) पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन की कार्य कारिणीं की यह दृढ़ धारणा है कि आयुर्वेदोन्नत्यर्थ आयुर्वेद डायरैक्टरेट अलग खोला जाना अत्यावश्यक है और खुलने वाली डिस्पैन्सरियों की सफलता भी इसी डायरेक्ट्रेट पर निर्भर होगी क्यों कि वर्तमान अवस्था के अनुसार इन डिस्पैन्सरियों की उपयोगिता का निर्णय नहीं हो सकेगा; क्यों कि डिस्ट्रिक मैडिकल आफिसर आफ हैल्थ महोदय आयुर्वेदज्ञ नहीं हैं।

७. (क) पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन कीं कार्य कारिणी का यह अधिवेशन एक बार पुनः सरकार से अनुरोध करता है कि वह आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी प्रैक्टिशनर्ज़ एक्ट पंजाब १६४६ के आधार पर बनाये हुए रूल नम्बर ७२ A. को वापिस लेले जिस के आधार पर प्रत्येक रजिस्टर्ड प्रैक्टिश्नर से प्रतिवर्ष २ रु० रिन्यूअल फी लेनें का अधिकार है।

(ख) डायरैक्टर आफ हैल्थ सरविसिज़ पंजाब के पत्र नम्बर ६-६-५१ डिव तिथि १५ नवम्बर १६५२ पैरा नम्बर २ रिन्यूअल फी के सम्बन्ध में सरकार की दृष्टि आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी प्रैक्टिश्नरज़ एक्ट पंजाब १६४९ की धारा नम्बर २६ की ओर कराई जाती है जिसके अनुसार सरकार नें रूल नम्बर ७२ A. रिन्यूअल फी के संबंध में बनाया अतः बोर्ड रिन्यूअल फी को नहीं हटा सकता। इस लिये इस सम्बन्ध में बोर्ड के रजिस्ट्रार महोदय को रिन्यूअल फी के सम्बन्ध में लिखना निरर्थक है।

इसके अतिरिक्त बोर्ड पहले ही सरकार से रिन्यूअल फी न लेनें की एक दो बार सिफारिश भी कर चुका है।

८. आगामी कार्यक्रम के सम्बन्ध में निश्चय हुआ है कि एक एक दिन के सम्मेलन की संघटनार्थ जो योजना बनाई गई है कार्य रूप में लाये।

९. ३० अगस्त १६५२ स्थायी समिति के अधिवेशन से ले कर ३०-११-५२ पर कार्य कारिणी के अधिवेशन तक का आय व्यय स्वीकार हुआ।

१०. नि० भा० वर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन से अनुरोध किया गगा कि वह केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक आयुर्वेद सम्बन्धी सर्कुलर इत्यादि पक्षी तथा व्रिपक्षी कार्य पर कड़ी निगरानी रक्खे और उसकी सूचना राजकार्य सम्मेलनों को देता रहें।

११. सम्मेलन के धन को जमा करानें के लिये, अथवा नैशनल सार्टिफिकेट खरीदनें के लिए निम्न उपसमिति बनाई गई जो कि श्री पं० विद्या प्रकाश जी B.A.L.L.B. जालन्धर से उचित परामर्श ले कर कार्य करें।

सदस्य उपसमिति--

१. श्री किशोरी लाल जी पुष्करणा।
२. श्री हरवंश लाल जी चोपड़ा।

३. श्री रामेश्वर सिंह कंवर।

१२– (क) निश्चय हुआ है कि प्रत्येक मण्डल का नाम आयुर्वेद मण्डल, स्थान का नाम (जिस जगह का हो वह नाम) रक्खा जाए अर्थात् आयुर्वेद मण्डल कुठेरा जसवालां, आयुर्वेद मण्डल शिमला, आदि आदि नाम रक्खे जावें।

(ख) कोई मण्डल अपनें नाम के आगे या नीचे 'प्रान्तीय' शब्द का प्रयोग न करे क्यों कि इससे पञ्जाब प्रान्त में एक से अधिक प्रान्तीय मण्डलों के होने का भ्रम हो सकता है जिस से कि "आप के प्रिय मण्डल पञ्जाव प्रान्तीय आयुर्वेद मण्डल" (पञ्जाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन) के महत्व में न्यूनता हो सकती है जैसा कि प्रान्तीय आयुर्वेद मण्डल कठेरा जसवालां को सरकार के पत्र नम्बर 6951 तिथि 15–11–52 से निम्न स्पष्ट होता है "आप के पत्र तिथि ३–११–५२ के सम्बन्ध में प्रान्तीय आयुर्वेद मण्डल १६ अक्तूबर १९५२" के प्रस्तावों की बाबत निम्न विचार हैं आदि आदि" उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि कुठेरा जसवालां को पंजाब प्रान्तीय आयुर्वेद मण्डल समझा गया।

१३. (क) निश्चय हुआ कि प्रत्येक मण्डल अपने यहां एक एक दिन का सम्मेलन करे जिस में संगठन, आयुर्वेदोन्नति के उपायों पर विचार किया जांए।

(ख) प्रत्येक मण्डल से मांग की है कि वह अधिकाधिक वैद्यों को मण्डल का सदस्य बनाये और उनका चन्दा पञ्जाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन जालन्धर को भेजे।

(ग) प्रत्येक मण्डल कम से कम प्रतिमास अपना साधारण अधिवेशन बुलाया करे, ताकि आयुर्वेद सम्बन्धी बातों का परिचय प्रत्येक वैद्य को हो जावे।

(घ) प्रति मास अपने अपने मण्डल में की गई कार्यवाही का विवरण पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन जालन्धर को भेजा जाया करे।

१४. (क) निश्चय हुआ है कि प्रत्थेक मण्डल का धन मण्डल के नाम पर किसी बैंक या डाकखाने में सुविधा अनुसार जमा करवाया जाय और प्रधान अथवा प्रधानमन्त्री और कोषाध्यक्ष के हस्ताक्षरों से रुपया निकलवाया जाए। मण्डल का धन किसी व्यक्ति विशेष के पास नहीं रहना चाहियें।

रामेश्वर सिंह कंवर
प्रधानमन्त्री

विशेष वक्तव्य—

१. अड्डा दाखा आयुर्वेद मण्डल के अतिरिक्त किसी मण्डल नें राजकोष सम्मेलन को सहायता से धन नहीं भेजा। अब अवश्य भेजें।

२. सम्मेलन की तिथि निश्चय करनें से पूर्व कार्यालय सें परामर्श अवश्य लिया जाय।

३. कार्यकारिणी के प्रत्येक प्रस्ताव को कार्य रूप में लाने से ही आयुर्वेद की उन्नति हो सकती है।

४. पञ्जाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन को दृढ़ बनाना प्रत्येक वैद्य बन्धु का परम कर्तव्य है।

५. आयुर्वेद सम्बन्धी सहायता के लिये मण्डल का प्रत्येक सदस्य राजकीय सम्मेलन को लिखें।

१८-१२-रामेश्वर सिंह कंवर
प्रधानमन्त्री

३९ वें नि० भा० महासम्मेलन व्यावर (अजमेर)
की
स्वागत-समिति का संगठन

स्वागताध्यक्ष--	डा० अम्बालाल जी शर्मा वैद्यराज,	अजमेर,
उपस्वागताध्यक्ष--	पं० रामचन्द्र जी शर्मा,	,,
,,	वैद्यराज कल्याणसिंह जी	,,
,,	,, पं० जगन्नाथ जी त्रिपाठी	,,
,,	,, गणेशदत्तजी शास्त्री	नसीराबाद
	,, पं० वंशीधरजी	केकड़ी
	,, ,, गोविन्दचन्द्रजी	व्यावर
	,, ,, हरिवल्लभजी शास्त्री	,,
	,, ,, राधामोहनजी	,,
	,, गंगासहाय जी	,,
प्रधानमन्त्री	,, तनसुखरायजी व्यास	व्यावर
संयुक्तमंत्री	,, ओमदत्तजी	अजमेर
,,	,, रविदत्तजी	व्यावर
सहायकमंत्री	,, ,, बिहारीलालजी	पुष्कर
,,	,, ,, श्रीधरजी	नसीराबाद
,,	,, ,, अमरदत्तजी	केकड़ी
,,	,, ,, शिवप्रसादजी	बेरावां

,, ,, ,, मोहनलालजी	विजयनगर
,, ,, ,, बद्रीनारायणजी	ब्यावर
कोषाध्यक्ष—सेठ बालकृष्णजी सोमनाथ सराफ	ब्यावर
आयव्ययनिरीक्षक—बी. डी. गार्गीय एण्ड क० चार्टर्ड अकाउण्टेण्ट	ब्यावर

कार्यकारिणी में ब्यावर तथा अजमेर के प्रतिष्ठित विद्वान, वैद्य, राजनीतिज्ञ, सेठ और कार्यकर्त्ता हैं।

निर्वाचन

वैद्यमण्डल बड़ोदरा तथा जिला वैद्यमंडल का सम्मिलित अधिवेशन ता० ३०-११-५२ को श्रीमती वैद्या कमलाबाई जोशी की अध्यक्षता में हुआ। उसमें निम्नलिखित रूप से संवत् २००९ के लिये कार्यवाहक मण्डल निर्वाचित हुआ।

प्रधान— वैद्यराज धीरजलाल मा० शाह
उपप्रधान—वैद्यशास्त्री मगनलाल गिरिजाशंकर, उमोह,
,, ,, ,, खंडपरशु छत्रसिंह, बारोट,
(१) मंत्री ,, जगदीशचन्द्र मूलजीभाई पंड्या,
(२) ,, ,, सुमन्तभाई मो० पटेल,
(३) ,, ,, बाबूभाई शंकरभाई पटेल,
खजानची ,, रमाकांत अमृतराम
ऑडीटर ,, सीताराम, सी. पटेल

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित वैद्य महानुभावों को कार्यकारिणी में लिया गया।

१. वैद्यशास्त्री जेठालाल छोटालाल, संखेड़ा
२. ,, छोटुभाई फूलशंकर, वाघोडिया
३. ,, अंबालाल महीजीभाई, पटेल, साखेड़ा

मिश्रा फार्मेसी में आयुर्वेद महारथियों का आगमन

डाक्टर श्री राधागोविन्द मिश्र को डाक्ट्रेट

सोमवार २२ दिसम्बर को झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में पधारे हुये निखिल भारतीय आयुर्वेद मसासम्मेलन के अध्यक्ष और दीक्षांत समारोह के सभापति माननीय श्री शिवशर्मा जी, इंडियनमेडिसिन बोर्ड के अध्यक्ष श्री दरबारीलाल जी

बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, भारत सरकार की आयुर्वेद अनुसंधान समिति के सदस्य श्री रामरक्ष जी पाठक, वयोवृद्ध श्री जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल इत्यादि लगभग पच्चीस आयुर्वेदीय विद्वानों ने कल स्थानीय जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी की वैज्ञानिक रसायनशाला का निरीक्षण किया। सभी नेताओं ने श्री डाक्टर राधागोविन्द मिश्र के प्रयास की प्रशंसा की और रसायनशाला की सम्पन्नता पर हर्ष प्रकट किया। फार्मेसी की ओर से विद्वानों को एक प्रीतिभोज दिया गया और आयुर्वेद वृहस्पति श्री शिवशर्मा जी, आयुर्वेदाचार्य श्री दरबारीलाल जी और श्री रामरक्ष जी पाठक को फार्मेसी की ओर से अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में केन्द्रीय स्वास्थ्यमन्त्राणी माननीया श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर की प्रधानता में कुछ आयुर्वेदीय विद्वानों को डाक्ट्रेट उपाधि दी गई। श्री डाक्टर राधागोविन्द मिश्र को आयुर्वेद में इन्जेक्शन के आविष्कार के उपलक्ष में स्वर्णपदक सहित डाक्टर आफ साइन्स-आयुर्वेद वृहस्पति की उपाधि से विभूषित किया गया।

आयुर्वेद सेवा-समिति, नवांशहर (जालन्धर)

आदरणीय वैद्यवन्धुओं तथा आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों को यह जानकर प्रसन्नता होगी, कि पंजाब प्रांत के नवांशहर द्वाबा नामक नगर में द्वाबा वैद्य सभा द्वारा स्थापित आयुर्वेद सेवासमिति आठ वर्ष से आयुर्वेद प्रचार व जनता की सेवा कर रही है।

अपने इलाका के दो आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयों को सहायता प्रदान कर रही है।

अब इस सेवासमिति नें एक धन्वन्तरि भवन का निर्माण आरम्भ किया है, जिसमें एक विशाल ३२-५० फुट का धन्वन्तरि हाल और २०-२५ फुट के २ कमरे धर्मार्थ चिकित्सालय के लिए बनेंगे। इस शुभ कार्य में सभी वैद्यों तथा आयुर्वेद प्रेमियों से प्रार्थना है कि पूर्ण उत्साह से यथाशक्ति सहायता प्रदान कर इस कार्य को सफल बनाने की कृपा करें।

निवेदक आयुर्वेद सेवक
वैद्य पुरुषोत्तमदत्त शास्त्री
प्रधान-आयुर्वेद सेवा समिति
नवांशहर द्वाबा

सभी प्रकार की विश्वस्त शास्त्रोक्त व पेटेण्ट आयुर्वैदिक औषधियों तथा बनौषधियों सम्बन्धी आवश्यकता के लिए

हेड आफिस
दूनफार्मेस्युटिकल बिल्डिंग
मोती बाजार, देहरादून

फोन नं० ४६६
तार का पता "औषध"
पो० बा० ६०

वैद्यों, एजेण्टों
तथा
थोक व्यापारियों को
सुविधाएँ

ग्राहकों को
अल्प मूल्य में
लाभप्रद
औषधियां

दूनफार्मेस्युटिकल कम्पनी लिमिटेड, देहरादून
से पत्र व्यवहार करें।

आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा

प्रामाणिक निर्माणशाला को चुनते समय या विशुद्ध वनौषधियों की आवश्यकता के समय आप 'दून फार्मेस्युटिकल कम्पनी लि० देहरादून' (हिमालय पर्वत) को अवश्य स्मरण रक्खें क्योंकि:–

(१) यह चिकित्सक वैद्यों द्वारा आयोजित तथा संचलित है जो निजी चिकित्सा में भी ये ही औषधियां प्रयोग करते हैं।
(२) हिमालय की सौम्य नवीन वनस्पतियों के उपलब्ध होनें से उनके गुणों में वृद्धि विशेष हो जाती।
(३) निर्माणकर्त्ता तथा संग्रहकर्त्ता आयुर्वेद के अटल सिद्धांतों में विश्वास रखने वाले परिष्कृत तथा अनुभवी वैद्य हैं।
(४) सब कार्य भारत प्रसिद्ध प्राणाचार्य कविराज पं० धर्मस्वरूप रतूडी वैद्य वाचस्पति की देख रेख में होता है।

सूचीपत्र के लिये लिखें
स्थान स्थान पर एजेण्टों व विक्रेताओं की आवश्यकता है।

धर्मस्वरूप रतूड़ी वैद्य
गवर्निंग डायरेक्टर

पंचवर्षीय योजना और आयुर्वेद

(गत दिसम्बर मास में योजना समिति द्वारा प्रस्तुत देश के अभ्युत्थानार्थ एक पंचवर्षीय योजना संसद् के समक्ष विचारार्थ तथा स्वीकृत्यर्थ उपस्थित की गई थी। योजना में विविध विषयों के साथ-साथ जन-स्वास्थ्य का भी एक विषय हैं जिस पर कुल १७,८७,००,००० रु० व्यय होने का अनुमान लगाया गया है। इस धनराशि में से योजना के अनुसार केवल ३५ लाख रुपया देशी चिकित्सा पद्धतियों पर व्यय किया जायेगा और शेष ऐलोपैथी पर। आयुर्वेद के प्रति यह प्रत्यक्ष अन्याय है। इस पक्षपात-पूर्ण नीति के विरोध में संसद् में आयुर्वेद भक्त श्री डा० वार्लिगे और श्रीमति मेदेव नें जो विचार प्रकट किए उनका सारांश नीचे दिया जा रहा है हम दोनों महानुभावों का आयुर्वेद के प्रति उनकी इस कृतज्ञता पर आभार प्रकट करते हैं। –सम्पादक)

हेल्थएजुकेश के साथ ही साथ में आयुर्वेद के सम्बन्ध में भी आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। प्लेनिंग कमीशन की रिपोर्ट में इस विषय में जो कुछ लिखा है–उससे यह मालूम होता है, कि उसका निर्माण ऐसे व्यक्तियों द्वारा हुआ है जो कि हमारी सभ्यता से परिचित नहीं हैं। ऐसी रिपोर्ट तो एक विदेशी व्यक्ति भी लिख सकता है। वैद्यक के बारे में बोलते हुए-साधारणतया हम भूल ही जाते हैं कि हमारे इस देश में पहिले से ही एक बड़ी भारी वैद्यक चिकित्सा पद्धति विद्यमान थी–और आज भी है। और इसी मूलाधार के ऊपर हमको आगे बढ़ना है–में यह नहीं कहना चाहता कि यह पुरानी चीज है इसलिए वह अच्छी होनी चाहिए, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि चूंकि यह पुरातन है, इसलिए वह बुरी है। इस वैद्यक चिकित्सा पद्धति का आज इस देश में यथेष्ट प्रचार है विशेषकर देहातों में। अतः इस देश के स्वास्थ्य के प्रश्न को हल करते समय इस परिस्थिति को भूल जाने से हमारी महति हानि होनें की सम्भावना है।

आयुर्वेद का समूल उन्मूलन करके उसके स्थान में एक विदेशी चिकित्सा पद्धति स्थापित करने का प्रयत्न करना यह एक महान् भूल है। आयुर्वेद पर जो कुछ व्यय इस रिपोर्ट के अनुसार आगामी पांच वर्षों में होने वाला है, उसे देखकर निराशा होती है। स्वास्थ्य के लिए निर्धारित व्यय में से उस का केवल शतांश ही आयुर्वेद के लिए रक्खा गया है, इससे आयुर्वेद की कितनी उन्नति होगी इसका अनुमान प्रत्येक व्यक्ति लगा सकता है। अन्त में में आपसे यह कहना चाहता हूँ कि जब तक आयुर्वेद का भविष्य हमारे डाक्टरों के हाथों में रहेगा तब तक आयुर्वेद की उन्नति नहीं हो सकती। में कोई ऐलोपैथी का शत्रु नहीं हूँ–लेकिन मेरा यह विचार है कि सत्य जहां भी हो उसको स्वीकार करना ही चाहिये। आज आयुर्वेद के प्रति डाक्टरों की जो वृत्ति दिखाई पड़ती है उसे में "शास्त्रीय वृत्ति" नहीं समझता।

इसलिए मेरी सरकार से यह प्रार्थना है कि आयुर्वेद के लिए एक अलग विभाग खोला जाए और उसके लिए एक अलग डिपुटी मिनिस्टर हो–" –डा० बारलिंग

"मैं श्री डा० मुकर्जी और माननीय मन्त्री के इस विचार से सहमत हूं कि स्वास्थ्य का विषय एक आवश्यक विषय है और इसके लिये अधिक धनराशि सुरक्षित की जानी चाहिये थी। मैं यह भी अनुभव करती हूं कि देशी चिकित्सा पद्धतियों के लिये व्यय किया जाने वाला धन अत्यन्त ही न्यून है। मेरे विचार में विदेशियों ने भी आयुर्वेद की महानता तथा स्वास्थ्योन्नति में इसके महत्व को स्वीकार किया है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ साथ हमें देशी चिकित्सा पद्धतियों की भी रक्षा करनी चाहिए जिससे की वह नष्ट न हो जायें। सरकार द्वारा अनेक समितियां नियुक्त की जा चुकी हैं किन्तु अन्ततोगत्वा समस्या जैसी की तैसी ही बनी है। समितियों के आशा पूर्ण विचारों एवं निर्णयों के बाद भी सरकार अपने निर्धारित कार्यक्रम से हटती नहीं दिखाई देती। ऐसा सम्भवतः या तो हठी प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप हैं या एक प्रकार की भय की भावना के। –श्रीमति मेदेव

जन-स्वास्थ्य-रक्षा में आयुर्वेद का सहयोग अनिवार्य

(भारत के उपराष्ट्रपति श्री डा० एस० राधाकृष्णन् के माधव आयुर्वेद कालेज अरनाकुलम के नए भवन का शिलान्यास करते हुए दिए गए भाषण का सारांश)

आयुर्वेद स्वास्थ्य-रक्षा, दीर्घायु प्राप्ति, रोग-प्रतिशेध तथा अवश्यम्भावी मृत्यु को टालने का एक सुनिश्चित विज्ञान है। यह स्वास्थ्य और जीवन का विज्ञान है। विश्व की विचार धारा से आयुर्वेद किसी प्रकार अलग-थलग रह गया है, किन्तु वर्तमान युग में अधिकविशाल दृष्टिकोण तथा लचकीलेपन की आवश्यकता है।

जहां तक आयुर्वेद का सम्बन्ध है उन्हें आयुर्वेद में प्राप्त निधि का द्वार शेष विश्व के लिये भी खोल देना चाहिये।

आयुर्वेद की अनेक ऐसी औषधियां हैं जो उन रोगों का सफ़ल उपचार करने में समर्थ हुई हैं, जिनके उपचार के लिये अन्य चिकित्सा पद्धति के चिकित्सक चिन्तित रहते हैं। हमें अपनी सत्ता को विश्व पर प्रकट करना चाहिये। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि हजार वर्ष पूर्व किए गए अपने पूर्वजों के कार्य पर ही निर्भर न रह कर हम नित नवीन अनुसन्धान की ओर अग्रसर हों।

देश की जन संख्या के अनुपात में, मैं स्वीकार करता हूं, चिकित्सा की सुविधायें नगण्य सी हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति को चिकित्सा का लाभ पहुंचाना है तो आयुर्वेद निस्सन्देह उसमें अपना आवश्यक योग-दान दे सकेगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश में आयुर्वेद को प्रोत्साहन का अभाव नहीं होगा। आयुर्वेद की निधि-वृद्धि के लिये हमें राज्य द्वारा प्रोत्साहन अवश्य मिलना चाहिये।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यसमितेः १९५२ वर्षीयं

तृतीयाधिवेशनम्

स्थानम्–विद्यापीठ कार्यालय ९०/८ कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

समयः–ता० ६ अक्टूबर १९५२ सोमवासरे मध्याह्नोत्तर द्विवादनतः।

उपस्थितिः–सर्वश्री विष्णुपौंडियाल शास्त्री (भिवानी) शिवनाथ शर्मा (देहली) गणेशदत्त शर्मा (मेरठ) रामगोपाल शास्त्री (देहली) आशुतोष मजूमदार (देहली) नानकचन्द्र शास्त्री (देहली) जगदीश प्रसाद शर्मा (देहली)।

सम्मति प्रेषकाः–सर्वश्री नटराज शास्त्री (त्रिचुरापलि) जी० वी० पुराणिक (वीजापुर) क० प्रतापसिंह (उदयपुर) बालकृष्ण शास्त्री (कानपुर) दुर्गादत्त शास्त्री (बनारस) डी० के० भारद्वाज (बेंगलोर) ब्रह्मदत्त शर्मा (भूसावल)।

सभापतिः–वैद्य श्री गणेशदत्त शास्त्री (मेरठ)।

१. गताधिवेशनस्य कार्यविवरणं श्रावितं सर्वसम्मत्या स्वीकृतञ्च।

२. १९५२ वर्षीय परिशिष्टपरीक्षाफलं समुपस्थितं निश्चितञ्च यत् प्रस्तुतपरीक्षा परिणामः समुद्घोषणीयः। अवशिष्टप्रांतीयभाषापरीक्षापरिणामः समुद्घोषणस्याधिकारः विद्यापीठमन्त्रिणे प्रदत्तः स्यात्।

३. समुपस्थिते प्रमाणपत्रमुद्रायणविषयेनिश्चितं यत् संशोधितं प्रमाणपत्रं शिक्षासम्मेलनेऽन्तिमस्वीकृत्यर्थं समुपस्थातव्यम्, तत्पश्चाच्च त्रिसहस्रप्रमाण पत्राणि (३०००) मुद्रापयितव्यानि स्युः तदर्थं च त्रिशतमुद्राणां (३०० रु०) व्ययस्य स्वीकृतिः प्रदेया।

मिश्रित बिषया–

(क) निश्चितं यत् १९५२ वर्षीय निम्नांकितायुर्वेदविशारदक्रमांकीयाः छात्राः अनुत्तीर्णाः समुद्घोषणीयाः यतोहि तेषां द्रव्यगुणविषये परस्परानुकरणं सुस्पष्टं दृश्यते, तस्मिन् विषये च केन्द्राध्यक्षाः तेषां छात्राणामध्यापकाश्च प्रबोधितव्याः।

क्रमांकाः ४३३, ४३४, ४३८, ४४०।

(ख) आचार्य द्वितीय खण्ड २२८ इत्यस्य विषयः श्री जगदीश प्रसाद शर्मणे तथा विद्यापीठ मन्त्रिणे निर्णयार्थं प्रदातव्यः।

(ग) १९५३ वर्षीयपरीक्षाप्रारम्भविषये निश्चितं यत् २३ मार्च १९५३ तः प्रारभेरन्।

सभापतिमहोदयानां धन्यवादपुरःसरं सभा विसर्जिता।

विशेषः–२३ मार्च १९५३ इत्यस्मिन् दिनें रामनवमीपर्वः विद्यते । अतः १९५३ वर्षीयाः विद्यापीठपरीक्षाः ३० मार्च १९५३ तः प्रारब्धा स्युरिति निश्चितम् ।

आयुर्वेद मार्तण्ड, श्रीदत्त शर्मा,
(रायबहादुर)
मंत्री
नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठ

नि० भा० आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन (इन्दौर) द्वारा स्वीकृत अवशिष्ट प्रस्ताव

प्रस्ताव सं० ४

यह सम्मेलन निश्चय करता है कि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से निम्नांकित तीन परीक्षायें सन् १९५३ से प्रारम्भ की जांय । इन परीक्षाओं का पाठ्यक्रम केवल एक वर्ष का हो ।

परीक्षा नामः—१. कल्पक २. परिचारक ३. प्रसाविका ।

प्रस्ताव सं० ५

यह सम्मेलन निश्चय करता है कि आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य विशारद के तीन खण्ड कर दिये जांय और क्रमशः प्रतिवर्ष एक एक खण्ड की परीक्षा ली जाय । तीसरे खण्ड की परीक्षा सन् १९५४ से चालू की जाय ।

प्रस्ताव सं० ६

यह सम्मेलन निश्चय करता है कि विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन अभी नहीं हो सकने के कारण आगामी स्थायी समिति द्वारा निर्वाचन के न हो जाने तक पुरानी कार्य कारिणी द्वारा ही तव तक कार्य चलाया जाय ।

प्रस्ताव सं० ७

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन विभिन्न देशी चिकित्सा-बोर्डों का ध्यान नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की भिषक् परीक्षा के पाठ्यक्रम की ओर आकर्षित करता हुआ उनसे अनुरोध करता हैं कि उक्त पाठ्यक्रम के बहुत अंश में परिपूर्ण होनें के कारण इस उपाधि को रजिस्ट्रेशन के लिये मान्य किया जाय ।

प्रस्तावक–स्वामी चेतनानन्द ।
अनुमोदक–मदनलाल पुष्करणा ।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, १/२ तो०, १/४ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक--पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक--श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र--कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र--देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

विक्रेता-- १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

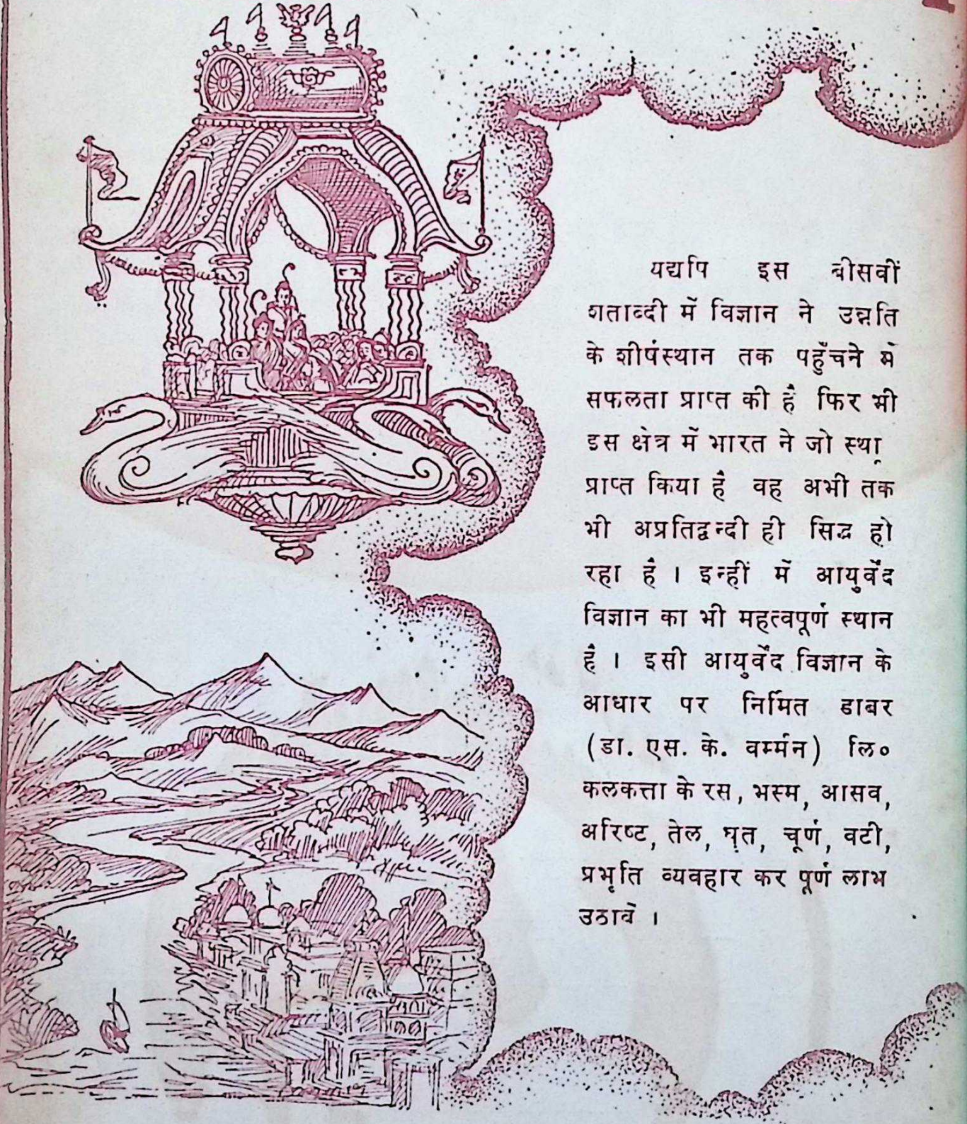

विज्ञान और भारत

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्था प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०
पोस्ट–बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए [illegible] द्वारा प्रकाशित
मुद्रकः—कंवस्टन प्रेस, नई दिल्ली।

मार्च
१९५३

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी.

फाल्गुन
२००९

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

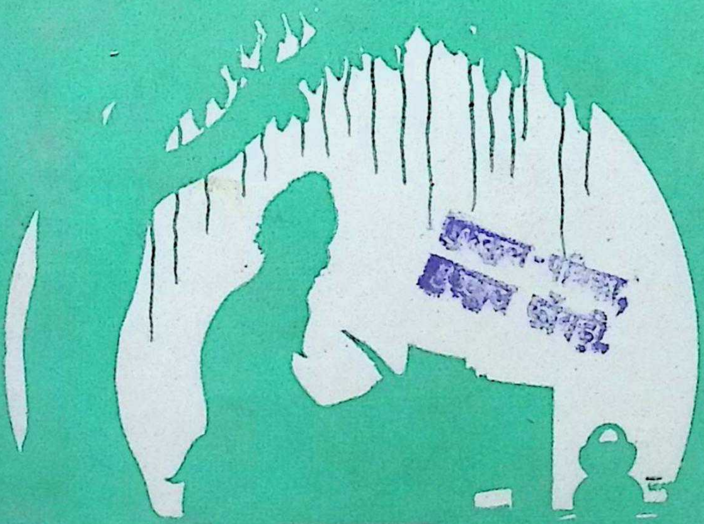

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी.

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी.ए., बी आई एम एस

महासम्मेलन कार्यालय का स्थान परिवर्तन

पाठकों को विदित ही है कि विशेष परिस्थितियों एवं विवशता में पड़कर ही अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ तथा तदन्तर्गत सभी कार्यालय नई दिल्ली से उठाकर सदर बाजार में स्थिर किए गये थे । यह स्थान यद्यपि कार्यालय के योग्य नहीं था तो भी शीघ्रता में अधिक अच्छा स्थान न मिलने के कारण अस्थायीरूप से यह प्रबन्ध कर लिया गया था । अब हमें यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि देहली के चांदनी चौक जैसे केन्द्रीय स्थान में एक नवनिर्मित स्वच्छ एवं सुन्दर भवन में कार्यालय की स्थायी-स्थिति का समुचित प्रबन्ध हो गया है और कार्यालय वहां चला गया है । अतः पाठकों को भविष्य में सभी पत्र-व्यवहार निम्नलिखित डाक-संकेत पर करना चाहिये:—

महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

विषय-सूची

	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	सम्पादकीय		१२५
२.	हैद्राबाद वैद्य-सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण	शिवशर्मा	१२८
३.	आयुर्वेदीय दन्तरोग-विज्ञान	किशोरदास गुप्त	१५८
४.	पंचमहाभूत सिद्धान्त और विश्व का विकास	महेन्द्रकुमार शास्त्री	१६३
५.	शीतला के रोधक उपाय	नानकचन्द्र शास्त्री	१६६
६.	वातरोग	धर्मदत्त	१६८
७.	मेरी बनारस तथा पटना यात्रा	श्रीदत्त शर्मा	१७१
८.	आयुर्वेद-लोक		१७४
९.	साहित्य-सत्कार		१८५

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें ।

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक---कविराज पं० नानकचंद्र वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक---पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय---महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ३९
अंक ३
दिल्ली, फाल्गुन २००९, मार्च १९५३
मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

सम्पादकीय

कृत्रिम औषधियों का प्रचार शीघ्र रोका जाये

आजकल आयुर्वेद की विशुद्ध औषधियों का प्राप्त होना कठिनतर समस्या हो रही है क्योंकि पन्सारी तथा अत्तारों पर विश्वास नहीं किया जा सकता । वह अपने कार्य में ग्राहक को शुद्ध द्रव्य के स्थान पर जो मन आता है वही देता है; इतना ही नहीं जो प्रसिद्ध द्रव्य नित्य के प्रयोग में आने वाले हैं उन की प्राप्ति भी अत्यन्त दुर्लभ हो गई है । उदाहरणार्थ वंशलोचन, केसर, कस्तूरी, शिलाजीत आदि द्रव्यों के व्यापारियों ने कृत्रिम रूप तैयार कर देश-देशान्तरों में प्रसारित कर दिए हैं । इन द्रव्यों की नकली औषधियों को अमृतसर, बम्बई आदि देशों में मनों के हिसाब से बनाने के कारखानें खुले हुए हैं । अन्य जो काष्ठौषधियां दुकानदार विक्रयार्थ रखे हुए हैं वह भी प्रायः चिरकालिक तथा गली सड़ी ही प्राप्त होती हैं । जिन औषधियों की त्वचा कार्य में आती हैं वह सब प्रायः वर्णादिसमान होनें पर जो द्रव्य दुकान में नहीं होते उनके स्थान में दूसरी औषधियां देते हैं, इन सब त्रुटियों की पूर्ति का उपाय होना अत्यन्तावश्क है ।

सर्वप्रथम वैद्यों को इस ओर ध्यान देना चाहिये और उन्हें प्रत्येक द्रव्य का परिचय भली प्रकार प्राप्त करने चाहिये। ओषधि के रस, वर्ण तथा आस्वाद का ज्ञान भी उन्हें भली प्रकार होना आवश्यक है। अच्छा होगा यदि रोगियों को दिये हुए क्वाथादि को स्वयं देख कर तथा परीक्षा करके ही प्रयोग कराया करें।

महासम्मेलन तथा प्रान्तीय वैद्य सभाएं व मण्डल भी इस दिशा में अच्छा कार्य कर सकते हैं। आयुर्वेद-विज्ञान तथा जन-स्वास्थ्य के हितार्थ यह उनका कर्त्तव्य भी है कि औषध-द्रव्यों का यथासंभव ऐसा नियन्त्रण करें कि जिससे शुद्ध द्रव्यों की प्राप्ति का प्रबन्ध हो सके। मेरे विचार में हर प्रान्त वा नगर की वैद्यसभा को चाहिये कि वह इस प्रकार की समिति का निर्माण करें जो देश में अत्तारों तथा पन्सारियों का निरीक्षण किया करें और उन्हें इस छल-युक्त व्यापार से रोकने का प्रयत्न करें साथ ही साथ सरकार को एक प्रस्ताव भेज कर शासन तथा नगरपालिकाओं का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट करें ताकि वह पन्सारी आदियों का शासन द्वारा नियन्त्रण कर सकें। यह उनका कर्त्तव्य भी होता है कि वह देश के स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रबन्धों का यथा रीति नियन्त्रण करें ताकि देश में उक्त कृत्रिम द्रव्यों से किसी प्रकार से जनता के स्वास्थ्य को हानि न पहुंच सके।

इस समस्या का उपयुक्त समाधान एक और भी प्रकार से हो सकता है, वह यह कि एक ऐसी संस्था की स्थापना की जाए जो सार्वदेशीय वैद्यों के लिए युक्त औषधियों के प्राप्त करनें का केन्द्र हो। यह संस्था एक वृहत् रूप में अर्थात् लिमिटेड कम्पनी के आकार की होनी चाहिये जिसमें हर प्रान्त वा नगर के निवासी वैद्य सहयोग दे कर अपनें २ प्रान्त में होने वाली औषधियों का संग्रह कर उक्त संस्था में प्रस्तुत करें ताकि वहां से सब प्रकार के अत्युत्तम द्रव्य सब को हर समय प्राप्त हो सकें; ऐसा होने से भारतवर्ष में आयुर्वेद की उन्नति का सूर्य सर्वदा प्रकाशित होगा। ऐसी संस्था का होना वैद्यों के लाभ तथा यश का हेतु हो सकेगा। इस में हर एक वैद्य को शेयर खरीद कर धन सञ्चय द्वारा भली प्रकार कार्य सञ्चालन करना चाहिए।

यदि आयुर्वेदीय विशुद्ध औषधियों की प्राप्ति सर्वत्र सुलभ हो सके तो बहुत ही अल्पकाल में आयुर्वेद के यश तथा प्रकाश से समस्त भारत जगमगा उठेगा। मेरे विचार में यह कार्य सम्मेलन द्वारा अधिक उत्तमता से किया जा सकता है। हमारा विश्वास है कि समस्त देश एवं वैद्यवृन्द अपनी सम्पत्ति समझ कर इस संस्था को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करेगा। इस संस्था द्वारा सभी धर्मार्थ औषधालयों तथा दात्तव्य चिकित्सालयों में प्रस्तुत रस, गुटी, चूर्ण, कषाय, आसव, अरिष्ट, तैल, घृतादि तथा कच्चे द्रव्य अर्थात् हर प्रकार की औषधियें प्रदान की जायें; ऐसा करने से हर एक चिकित्सा करने वाले नवीन तथा प्राचीन वैद्यको किसी भी कठिन से कठिन प्रयोग के बनाने तथा सफलता पूर्वक प्रयुक्त

करने में सुविधा होगी और भयंकर से भयंकर रोग भी शीघ्र दूर किये जा सकेंगे। इससे आयुर्वेद की ख्याति सर्वजनीन हो जायगी। इसी संस्था के प्रचारार्थ हर एक प्रान्त तथा नगर में शाखाएं प्रशाखाएं स्थापित करके तत्तद्देशीय वैद्यों की एक समिति बनाकर उन्हीं के हाथ में उस का प्रबन्ध रखकर कार्य सञ्चालन किया जा सकता है। जिन प्रान्तों में जिन-जिन द्रव्यों की प्राप्ति सुलभ हो वहां उन-उन प्रान्तों के वैद्यों को द्रव्यों के संग्रहार्थ नियुक्त कर उनके द्वारा यथासमय प्राप्त होने वाले द्रव्यों का सञ्चय कर प्रधान कार्यालय में भेजने का प्रबन्ध किया जाए ताकि हर एक द्रव्य यथासमय सरस तथा नवीन प्राप्त हो सके। इस प्रकार संग्रहीत द्रव्यों को केन्द्र द्वारा अन्य शाखाओं को वितरण की व्यवस्था की जाय।

यह विचार मैंने भारतवर्ष के वैद्य-बन्धुओं की सेवा में रखकर उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। यदि यह विचार उन्हें युक्त प्रतीत हों तो वह अपनी २ सम्मति पत्रिका या मेरे पते पर प्रेषित करने का कष्ट सहन करें, तथा इस विचार की पूर्ति में कोई अन्य सुलभ उपाय भी यदि आप के विचार में हो तो वह भी लिखकर भेजने की कृपा करेंगे।

--नानकचन्द्र शास्त्री

* * *

भूल-सुधार

फरवरी मास की महासम्मेलन पत्रिका के पृष्ठ ७६ पर डा० शंकरलाल भेड़ा लिखित मधुमेह शीर्षक लेख छपा है। उसी पृष्ठ पर अन्त में आयुर्वेद की सम्प्राप्ति विषयक जो श्लोक है वह अशुद्ध छप गया है। हम इस अशुद्धि के लिए पाठकों से क्षमा चाहते हैं और उसका संशोधन नीचे प्रस्तुत करते हैं--

आयुर्वेद की सम्प्राप्ति

त्यक्त व्यायामचिन्नानां संशोधनमकुर्वंताम्।
श्लेष्मा पितञ्च मेदश्च मांसञ्चति प्रवर्धंते। १।
तैरावृतगतिर्वायुरोज आदाय गच्छति।
यदा वस्तिं तथा कृच्छ्रो मधुमेहः प्रवर्तते। २।
समारूतस्य पित्तस्य कफस्यच मुहुर्मुदुः।
दर्शयत्या कृतिं गत्वाक्षयमाप्यायते पुनः। ३।

--सम्पादक

द्वितीय निखिल हैदराबाद वैद्य सम्मेलन ताण्डूर

के सभापति

वैद्यरत्न पंडित शिवशर्मा का अध्यक्षीय भाषण

स्वास्थ्य की उन्नति, रक्षा और पुनर्निर्माण की गणना समाज के महान धर्मों में है। प्रकार और महत्व की दृष्टि से यह उसी श्रेणी में है जिसमें कि देशरक्षा, शिक्षा, सामग्री रक्षा, यातायात और उद्योग हैं। आज यह सब एक राष्ट्र के सुसंगठित जीवन-क्रम के लिए ही नहीं किन्तु जीवित रहने तक के लिए आवश्यक हैं। अतएव राष्ट्र का स्वास्थ्य उस राष्ट्र की सरकार का सीधा उत्तरदायित्व बन गया है। परन्तु सरकार का स्वास्थ्य-सम्बन्धी क्रिया से जो सम्बन्ध होगा वह निर्भर होगा उस राष्ट्र की प्रकृति के ऊपर। किसी भी राष्ट्र का स्वास्थ्य या चिकित्सा संगठन निर्माण करते समय उस संगठन की सामान्य उपयुक्तता को देख लेना ही पर्याप्त नहीं बल्कि यह ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि वह संगठन उस देश-विशेष के लिए विशिष्ट रूप से उपयुक्त हो जिसमें व्यवहृत करनें के लिए वह बनाया गया है। स्वास्थ्यप्रद भावों के संगठन के आदर्श जो एक राष्ट्र या राज्य के लिए उपयुक्त हैं, का दूसरे राज्य या राष्ट्र के लिए हितकर होना आवश्यक नहीं। –J. A. Means, M. D. (1953)

मित्रवृन्द,

इस सम्मेलन के लिए जो समय और स्थान आपने छांटा है उसका महत्व, कुछ ही समय पूर्व आपके राज्य में केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् की पहली बैठक हो जाने के कारण, विशेष रूप से बढ़ गया है।

स्वास्थ्य-परिषद् की मीटिंग से पूर्व तत्सम्बन्धी जो विशाल आन्दोलन समाचार पत्रों में हुआ और देश के रूपएका जिस प्रकार भारी व्यय उसे बुलानें में किया गया, उसे देखते हुए जनता को यह आशा हो गई थी कि देश की सबसे बड़ी स्वास्थ्य-समिति की प्रथम बैठक यदि कोई बहुत चमत्कारपूर्ण कृति नहीं तो कुछ ठोस कार्य करके अवश्य उठेगी।

उस परिषद् और इस सम्मेलन में (वह हैदराबाद में जनवरी के अन्तिम सप्ताह में हुई और यह ताण्डूर में फरवरी के अन्तिम सप्ताह में हो रहा है) काल और दिक् का अन्तर इतना कम है कि आपको ही परिषद् की वास्तविक कृतियों पर विचार करने और

उनके वास्तविक मूल्य को जांचने का प्रथम अवसर मिल रहा है। आपको यह श्रेय है कि यह अवसर आपको परिषद् की बैठक का चित्र पुराना होकर धुंधला पड़ जाने से पूर्व ही मिल गया है।

परिषद् की निष्फल बैठक

आप में से वह सभ्य जिन्होंने समाचार पत्रों में केन्द्रीय परिषद् की कार्यवाही पढ़ी है, परिषद् के सम्बन्ध में 'कृति' शब्द के प्रयोग को अनुचित मानेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि परिषद् ने जो तुच्छ सा कार्य-विवरण प्रेस को भेजा वह उस दुंदभी–नाद और समाचार गर्जना के सर्वथा विपरीत है जो परिषद् की बैठक से पहले सुनी गई। वह प्रधान सरकारी प्रस्ताव भी, जो भारतवर्ष के ग्रामों को, वैद्यों से छीनकर तथा उन्हें पंचवर्षीय पाठ्य-क्रम में बांधकर, अल्पकालीय पाठ्यक्रम से तैयार की हुई छोटे डाक्टरों की सेना से ओत-प्रोत करने के लिए लाया गया था, पास न हो सका, यद्यपि इसे हैदराबाद में सफलता से पास कराने के लिए दिल्ली में पर्याप्त योजना बनाई गई थी।

यह तो स्पष्ट है कि यदि विभिन्न राज्यों का भी वही मत होता जो कि केन्द्र का था तो वह प्रस्ताव धुएं में न उड़ जाता।

निस्सन्देह केन्द्र की इस प्रस्ताव को स्वीकार करानें की तीव्र इच्छा थी। यह भी निश्चित है कि कई राज्य इस प्रस्ताव के उतने ही विरोधी थे। मीटिंग में क्या दृश्य रहा होगा? दो दलों के विरोधी दृष्टिकोण में क्या-क्या अभिप्राय निहित होंगे?

केन्द्रीय सरकार की नीति पुरानी स्थिर ब्रिटिश नीति की उत्तराधिकारी है अतएव वह आयुर्वेद के विषय पर कोई भी निर्णय करते समय आयुर्वेदिक चिकित्सकों को सर्वथा बाहर रखने तथा ऐलोपैथी से इतर अन्य विषयों पर विचार करते हुए भी एलोपैथों में ही विश्वास रखने की चाल पर पूर्ववत् चल रही है। सरकार के इस व्यवहार के कारण यवनिका के पीछे हुई घटनाओं का सर्वथा शुद्ध ज्ञान होना बहुत कठिन है, तो भी ज्ञात तत्वों के मार्मिक परीक्षण द्वारा हमें उपर्युक्त प्रश्नों का अच्छा निर्भ्रान्त उत्तर मिल सकता है।

(क) अर्थपूर्ण नामपरिवर्तन

(स्वास्थ्य-मन्त्री सम्मेलन से केन्द्रीय स्वास्थ्य–परिषद)

प्रथम विचारणीय भाव स्वास्थ्य-मन्त्री-परिषद् का तिरोभाव होकर केन्द्रीय-स्वास्थ्य परिषद् का आविर्भाव होना है। स्वास्थ्य-मन्त्री सम्मेलन में क्या दोष था कि इसकी इस प्रकार एकदम अज्ञात समाप्ति कर दी गयी और राष्ट्रपति से प्रार्थना की गई कि वें एक

अन्य अभिन्न संस्था भिन्न नाम रखकर खड़ी कर दें ? शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक में कुमारी जुलिएट ने पूछा है, ''नाम मात्र में क्या रखा है ? जिसे हम गुलाब कहते हैं उसका दूसरा नाम होने पर भी उसकी सुगन्ध उतनी ही मीठी रहेगी ।'' परन्तु पश्चिमाहत राजकुमारी उतनी भोली नहीं जितनी कि प्रेमाहत कुमारी जुलिएट थी । उन्हें ज्ञात है कि केवल नामभेद से ही परिस्थिति में कितना अन्तर डाला जा सकता है । जब तक इस समिति का नाम हैल्थ मिनिस्टर्ज़ कान्फ्रेंस अर्थात् स्वास्थ्य-मन्त्री सम्मेलन था, तब तक यह संभव नहीं था कि डाक्टरों को सम्मेलन की बैठकों में मन्त्रियों के बराबर स्थान मिल सके । यदि किसी बैठक में डाक्टर को बोलने की आज्ञा मिलती भी थी तो वह केवल उसे स्वास्थ्य-मन्त्री के एक सलाहकार के रूप में मिलती थी । परन्तु अपने राज्य के स्वास्थ्य-मन्त्री के सलाहकार के रूप में अपनी योग्यता के अनुसार उपस्थित विषय की व्याख्या करने के अधिकार का प्रयोग इसी प्रकार एक वैद्य भी कर सकता था । केन्द्र के लिए यह परिस्थिति असंतोषजनक थी, क्योंकि उसकी नीति की नींव एकपक्षीय उपदेश की बिना परीक्षा के स्वीकृति ही सदा रही है । जिज्ञासु और न्यायप्रिय मन्त्रियों को उपस्थित प्रस्तावों पर उभयपक्षीय आलोचना द्वारा पूर्ण प्रकाश डलवाने से रोकने का एक ही उपाय था, वह यह कि स्वास्थ्य-मन्त्री सम्मेलन का नाम इस प्रकार बदल दिया जाए कि इसमें कुछ विश्वस्त ऐलोपैथ लिए जा सकें । इससे पुरानी संस्था का विशिष्ट व्यक्तित्व भी ज्यों का त्यों बना रहा, कुछ छांटे हुए डाक्टरों को मंत्रियों के समान अधिकार भी मिल गया और आयुर्वेद सर्वथा बहिष्कृत भी हो गया । यह षड़यन्त्र पक्षपात और अन्याय से इतना ओत-प्रोत है, कि किसी भी सभ्य शासक-वर्ग को इस कृति से लज्जित होना चाहिए ।

(ख) द्वितीय अर्थपूर्ण परिवर्त्तन

(न्यूनतम से सहायक)

दूसरा अर्थपूर्ण भाव उन्हीं व्यक्तियों द्वारा एक छोटे सहायक ऐलोपैथिक पाठ्यक्रम की मांग थी जो भारत में चिकित्सा व्यवसाय के लिए न्यूनतम पंचवर्षीय काल की अवधि को थोड़ा भी घटाने का सदा कड़ा विरोध करते रहे । जब से भोर समिति रिपोर्ट, जो कि क्रियायोग्यता के अभाव की पराकाष्ठा है, का प्रकाशन हुआ तब से सम्पूर्ण घटनाओं की शृंखला, जिसमें कि सरकार द्वारा चोपड़ा समिति की सिफारिशों को खटाई में डाल देना, अपवित्र शीघ्रता में पण्डित समिति का निर्माण करना, उस समिति की सिफारिशों का अस्पष्ट रहना तथा प्लैनिंग कमीशन की स्वास्थ्य-परिषद् पर स्वास्थ्य-मंत्रणालय के डाक्टरों का पंचवर्षीय आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में भी सम्पूर्ण पंचवर्षीय एम. बी. बी. एस. के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अन्तर्भाव करने के लिए डटकर अड़े रहना, इत्यादि सभी भाव सम्बद्ध हैं, एक ही निर्णय की ओर संकेत करती थी कि और चाहे कुछ भी हो यह कभी नहीं हो सकेगा कि केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग के सलाहकार चिकित्सक के पाठ्यक्रम की

न्यूनतम पञ्चवर्षीय अवधि में एक क्षण की भी कमी स्वीकार कर लें। अब स्वयं उन्हीं डाक्टरों द्वारा एक छोटे ऐलोपैथिक पाठ्यक्रम की मांग आना वास्तव में एक आशातीत परिवर्तन था। परन्तु इस परिवर्त्तन को शब्दजाल में ढंकने का पूर्ण प्रयत्न किया गया था। पहला दिखावा तो यह निश्चय करना ही था कि भारतवर्ष में चिकित्सा-पाठ्यक्रम सभी राज्यों में एक समान हो। दूसरा भुलावा स्पष्ट रूप से छोटे पाठ्यक्रम की मांग को उपस्थित न करना था। केवल गांव में कार्य करने वाले डाक्टरों के लिए एक ''सहायक' वर्ग तैयार करने की मांग की गई।

अति साधारण--

परन्तु यह चालाकी अति साधारण थी। पहली चाल (स्वास्थ्य-मंत्री सम्मेलन को केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् में बदलना और उसका फल) तो ऐसी थी जो लोगों की आंखों में धूल डाल गई, परन्तु दूसरी चाल, जिसका अभिप्राय गावों के डाक्टर वर्ग (जो अभी किसी गांव में है ही नहीं!) को सहायक वर्ग का वेश देकर गांवों में छोटे डाक्टरों को भर देना और साथ ही यह जताना था कि केन्द्र अपनी पञ्चवर्षीय अवधि पर दृढ़ हैं, इतनी स्पष्ट थी कि वह तभी चल सकती थी जब अन्य सदस्यों में बुद्धि लेशमात्र भी न हो। परन्तु केन्द्रीय सरकार का प्रयत्न स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता था कि आयुर्वेद को पञ्चवर्ष की अवधि में बांधकर और डाक्टरों के लिए एक थोड़े समय का पाठ्यक्रम भी तैयार करके उन्हें गांवों में जल्दी-जल्दी भर दिया जाए जिससे आयुर्वेद की विशिष्ट मांग का स्रोत ही बन्द हो जाए। इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई कि छोटे पाठ्यक्रम से तैयार हुए जूनियर ऐलोपैथ की देखरेख में बेचारे गांव के रहने वालों के स्वास्थ्य की क्या गति होगी। केन्द्रीय सरकार की तो यह स्थिर नीति है ही कि एकपक्षीय उपदेश को बिना विचार या परीक्षा किए निरन्तर स्वीकार करती रहे। इस नीति के अनुसार इस मांग की योग्यता या अयोग्यता जांचने का प्रयत्न केन्द्रीय-स्वास्थ्य-परिषद् के विचारणीय विषयों में नहीं लिया जा सकता था। स्वास्थ्यमन्त्री सम्मेलन का नाम हट जाने से यह नीति पूर्ण रूप से सुरक्षित भी हो गई है।

परन्तु केन्द्र से एक भारी भूल हो गई है। परिषद् के विधान में एक आवश्यक धारा का अभाव रह गया है कि इस परिषद् में डाक्टरों को छोड़कर अन्य किसी सदस्य को डाक्टरों की बात सुनने और सुनकर स्वीकृति देने के अतिरिक्त किसी प्रश्न पर स्वतन्त्र रूप से या आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने का अधिकार नहीं होगा। जब तक इस आशय की एक स्पष्ट धारा नहीं होगी तब तक वह बुद्धिमान सभ्य, जो देश के शुभचिन्तक हैं, और जो सरकारी डाक्टरों के व्यक्तिगत स्वार्थों अथवा गंभीर सांस्कृतिक न्यूनता-जन्य पश्चिम के कपिसदृश बुद्धिहीन अनुकरणों से स्वतन्त्र हैं, ऐसे क्रान्तिकारी, प्रभूत द्रव्य और

शक्ति का नाश करने वाले और देश के वास्तविक तथा निकट भावी हित में बाधा डालने वाले निर्णयों को कभी स्वीकार नहीं कर सकेंगे जैसे कि ऐलोपैथि को जूनियर पाठ्यक्रम की सुविधा देना, यद्यपि यह प्रणाली, जैसा कि मैं आगे स्पष्ट करूंगा, ऐसी है कि इसका छोटे काल का पाठ्यक्रम कभी लाभदायक अथवा हानि-रहित नहीं हो सकता, और आयुर्वेद को छोटे पाठ्यक्रम की सुविधा न देना जिसमें कि अल्पकाल में ही उच्च-कोटि की उपादेयता प्रदान करने का विशिष्ट गुण विद्यमान है।

प्रकट धूर्त्तता--

जब एक चाल चल न सके तो वह बुद्धि के अपमान का स्वरूप धारण कर लेती है और जिस व्यक्ति से चली जाए उसे विरोधी बना लेती है। स्वास्थ्य-मंत्रियों के बुद्धिमान वर्ग को यह पसन्द नहीं आई। यह स्पष्ट था कि यह राष्ट्र के लाभ के लिये राष्ट्रीय प्रस्ताव नहीं था। यह एक पक्ष विशेष के लाभ के लिए एकपक्षीय प्रस्ताव था। इसका अभिप्राय किसी सम्प्रदाय पर भार डाल कर देश की सेवा करना नहीं था अपितु देश पर भार डाल कर एक सम्प्रदाय की सेवा करना था। इसका प्रयत्न एक ही बार में उस महान् प्राकृतिक राष्ट्रीय संपत्ति, स्वतन्त्र आयुर्वेदिक सहायता को निष्क्रिय करना था जो अनादिकाल से भारत के ग्रामनिवासियों का सहारा रही है। जिस ग्रामवैद्य की ग्रामीण भारत के हृदय पर छाप है उसकी सेवाओं के उपयोग और सामंजस्य की इस प्रस्ताव में कहीं बात ही नहीं थी। एक संदिग्ध उपयुक्तता की योजना पर भारी राष्ट्रीय व्यय के नवीन मार्ग ही इस प्रस्ताव द्वारा खुल रहे थे।

तीसरी चाल--गंदे भाषण की असफलता--

इस प्रस्ताव को सबसे भारी चोट और गांव के वैद्य को सबसे भारी सहायता ऐसे पक्ष से पहुंची जिससे कुछ आशा ही नहीं हो सकती थी। यह घटना विस्मयजनक है कि जिस भाव द्वारा आयुर्वेद की अधिकतम क्षति करने का प्रयत्न किया गया था वही इस आयुर्वेद विरोधी प्रस्ताव के नाश में प्रधान कारण बना। मेरा अभिप्राय डाक्टर सेन की उस वक्तृता से है जो उन्होंने विभिन्न चिकित्सा-प्रणालियों की एक बैठक, (जो प्लैनिंग कमिशन द्वारा बुलाई गई थी) में गत सितम्बर में देहली में की थी। वहां यह वक्तृता असफल हो गई थी। डाक्टर सेन ने अपनी लिखित वक्तृता का आरम्भ एक प्रसिद्ध अविशेषज्ञ के एक निरर्थक उद्धरण के साथ किया था जिसका विज्ञान अथवा चिकित्सा शास्त्र से कुछ सम्बन्ध नहीं था। फिर तत्पश्चात् कुछ प्रश्न थे। मेरे यह पूछनें पर कि यह प्रश्न केवल पढ़ने के लिये लिखे गये हैं या उत्तर प्राप्त करनें के लिए, वह चिल्ला उठे कि यह केवल साहित्यिक प्रश्न हैं उत्तर के लिए नहीं हैं। इस पर सदस्य हँस पड़े और अध्यक्ष महोदय नें मुझे इशारा किया कि वक्ता को अपना वक्तव्य पढ़नें दूँ। तत्पश्चात् वक्ता ने अपनी आँखें कागज़ों में गडा दीं। वक्तव्य समाप्त किया, और मीटिंग

से चले गये। यह देखने के लिए एक क्षण भी नहीं ठहरे कि उनके वक्तव्य का क्या प्रभाव हुआ।

यह स्पष्ट है कि ऐसे भाषण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जिस शास्त्र से भाषण सम्बन्ध रखता हो उसके विशेषज्ञों की अनुपस्थिति में ही भाषण हो। भाषण के विषय के ज्ञाताओं की उपस्थिति ने देहली की कृति को हास्यास्पद बना दिया था। परन्तु केन्द्रीय-स्वास्थ्य-परिषद् ने डाक्टर सेन को वह अवसर प्रदान किया जो देहली में प्राप्त न हो सका था। एक सुरक्षित वातावरण में, जिसमें परिषद् विधान द्वारा उस सम्प्रदाय को बहिष्कृत कर दिया गया था जिस पर की आक्रमण अभीष्ट था, डाक्टर सेन को देहली वाला भाषण फिर से सुनाने को कहा गया। परन्तु डाक्टर सेन से एक भारी भूल हो गई। विरोधी विद्वानों के अभाव में वह निराधार आक्षेपों का इतना अतिशय कर गए कि परिषद् के सभ्य सदस्यों में घृणा जागृत हो उठी।

डा० सेन ने अपना भाषण अपने सहयोगियों (डाक्टर पण्डित और डाक्टर चोपड़ा) पर 'आक्षेप' के साथ आरम्भ किया। इस सस्ते धोके में कौन आ सकता था। अविभाजित भारत में जब अंग्रेज और मुस्लिम लीग मिल कर काम करते थे जिन्ना का महात्मा गांधी पर आक्षेप करने से पहले एक आध आक्षेप अंग्रेजों पर कर जाना कभी हमारी आंखों में धूल न डाल सका। सबको ज्ञात है कि पाकिस्तान जिन्ना की नहीं अंग्रेज के मस्तिष्क की उपज है। और जब कूटनीतिज्ञ अंग्रेज ने पाकिस्तान सोच लिया, बना दिया, और संसार के सामने यह चिल्लाते हुए कि जिन्ना ही पाकिस्तान का निर्माता है उसकी गोद में भी डाल दिया तब वह उसे सम्यक् संभाल भी न सका। ठीक जिस प्रकार जिन्ना का कांग्रेस को गालियां निकालने से पहले एक आध गाली अंग्रेजों को निकाल देना उस घनिष्ट सम्बन्ध और समझौते को नहीं ढंक सकता था जो जिन्ना और ब्रिटिश राज्यसत्ता में विद्यमान था, उसी प्रकार डाक्टर सेन का स्वास्थ्य–विभाग के कुछ डाक्टरों पर यह बनावटी आरोप कि क्योंकि वह आयुर्वेदिक समितियों पर कार्य कर चुके हैं इसलिए वह वैज्ञानिक नहीं नीतिज्ञ हैं किसी से वह घनिष्ट सम्बन्ध नहीं छुपा सकता जो उनमें और उनके प्रवर्त्तकों में विद्यमान है। यदि उनका परस्पर मिल कर इस नाटक द्वारा मंत्रियों को प्रभावित करने का समझौता न होता तो वह डाक्टर (जो डाक्टर सेन को इस परिषद् पर लाये हैं) उन्हें देहली में ही यह कह सकते थे कि इस वक्तृता को हैदराबाद में न दोहरायें। स्पष्ट है कि देहली में उन्हें यह भाषण पसन्द आया और उन्होंने डाक्टर सेन को इसे हैदराबाद में फिर से सुनाने का आदेश दिया। अस्तु, इस मंत्र के प्रभाव पर इस दल की अपनी श्रद्धा कितनी भी हो, हैदराबाद में यह चला नहीं और बुद्धिमान सदस्य इससे सर्वथा अप्रभावित रहे।

अनुमान यह है कि यह भाषण देहली भाषण की हूबहू नकल थी। उदाहरणार्थ कहा गया, "जो व्यक्ति आग और पानी को तत्त्व समझते हों उन्हें वैज्ञानिक कैसे कहा जा सकता है ?" सरकार के व्यय पर बुलाई गई उच्च स्तर की वैज्ञानिक बैठकों का नीच कोटि के एकपक्षीय आन्दोलन के लिए खुला होना कहां तक उचित है इसका निर्णय तो स्वास्थ्य-मंत्रिणी स्वयं करें। खुले शास्त्रार्थों में, व्यक्तिगत आन्दोलनों में, ऐलोपैथिक कान्फ्रेंसों में अथवा उन सरकारी मीटिंगों में भी जहां दो दल अपना पक्ष प्रतिपादन करते समय वाद-विवाद में तुल्य अधिकार से भाग ले रहे हों, ऐसे आक्षेप करना उचित भी समझा जा सकता है। परन्तु ऐसे प्रश्नों को वहां पूछने से क्या लाभ जहां कोई इनके दोषों को स्पष्ट करनें वाला ही विद्यमान न हो ? आयुर्वेद के भौतिक सृष्टि-वाद में तत्त्व ही एक है—मूल प्रकृति। आयुर्वेदिक 'भूत' शब्द का अर्थ उस रूप में 'तत्त्व,' होता ही नहीं जिसमें डाक्टर सेन ने पूछा।

परन्तु हम उस व्यक्ति को क्या कहें जो तेज का अर्थ आग करे और अप् का अर्थ सादा पानी ? ऐसा वैज्ञानिक यह सुनने पर कि ब्रह्माण्ड न्यूटन के 'फोर्स आफ ग्रेविटी' के कारण तुला हुआ है अवश्य पूछ बैठेगा कि वह एक वैज्ञानिक की गम्भीरता की शक्ति संसार को कैसे इकट्ठा रख सकती है ? न्यूटन की गम्भीरता या उच्छृंखलता असीम और अनन्त दिक् में घूमती हुई जड़ और उदासीन द्रव्य की महान राशियों को कैसे प्रभावित कर सकती है ? ऐसे डाक्टर से यह पूछा जाने पर कि डाक्टरी में फंक्शनल (functional) और आर्गेनिक (organic) व्याधियों में क्या भेद है यही उत्तर मिलेगा कि फंक्शनल व्याधि विवाह और नाचपार्टी आदि फंक्शनों को निरन्तर करते रहने का मेनिया (mania) होगा और आर्गेनिक व्याधि उसे कहते होंगे जिसमें पेरेण्ड्रेन के इंजैक्शन लगाये जाते हैं !

मैं केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रिणी से निवेदन करना चाहता हूं कि ऐसी कृतियां उन सरकारी मीटिंगों की शोभा नहीं बढ़ातीं जो उच्चस्तर पर की जाती हैं। व्यक्तिगत रूप में तो मैं डाक्टर सेन का आभारी हूं। गांव के वैद्यों के लाभ की दृष्टि से मुझे प्रसन्नता है कि डाक्टर सेन को हैदराबाद लाया गया और सुरक्षित विधान द्वारा मोहर बन्द की हुई कोठड़ी में उसे दिल्ली की वक्तृता फिर से दौहराने को कहा गया। इस वक्तृता के गन्देपन ने ही गांव के वैद्य की प्रधान सहायता की। सभ्य सदस्यों को इससे घृणा उत्पन्न हो गई। इस एक वक्तृता ने सरकारी प्रस्ताव को नष्ट करने में वह काम किया जो उसके अन्य विरोधी तत्त्व मिल कर नहीं कर सकते थे।

अस्तु। मैं उच्च राष्ट्रीय समितियों के गम्भीरता से संचालन करने के औचित्य और महत्व पर विशेष आग्रह करना चाहता हूँ। उनकी मूल सारणी उत्सुकता और निर्माणप्रियता पर निर्भर होनी चाहिए न कि चालाकी और वाक्छल पर। सरकार

के लिये यह सहायता और प्रकाश जनक होगा कि वह इस परिषद् की बैठक की कार्यवाही की तुलना इसी उच्चस्तर पर होने वाली कुछ विदेशी परिषदों की कार्यवाही के रिकार्डों से करले। वहां किये गये कार्य की उच्चकोटि और प्रभूत मात्रा, दिये गये भाषणों की उत्कृष्टता और सभ्यता तथा सामान्य सत्य और उत्सुकता उसका बिल्कुल उलट होगी जो कि हैदराबाद में हुआ।

हैदराबाद के असफल तमाशे के लिये में पूर्ण अपराधी सरकार को ही नहीं ठहराना चाहता। परन्तु सेन श्रेणी के डाक्टरों की छांट अवश्य अनौचित्यपूर्ण है। पाश्चात्य वैज्ञानिक सलाहकार और इस श्रेणी के सलाहकार में इतना वैधर्म्य है कि वह दृष्टि से ओझल हो ही नहीं सकता। विदेशी डाक्टर जो अपनें देशों में उच्च परिषदों पर इनके समान पदों पर हैं वह सच्चे अर्थ में वैज्ञानिक हैं। अपने आविष्कारों, गवेषणाओं और लेखों द्वारा उन्होंने विज्ञान के अस्तित्व को सहायता दी है। यहां तो विज्ञान इनके अस्तित्व में सहायता दे रहा है। एक दान करने वाला है एक दान लेने वाला। दान करने वाला उदारचेता होता है और अपनी व्यक्तिगत कृतियों का लाभ अधिकाधिक जनसंख्या को पहुंचाने की इच्छा रखता है। दान देनें वाले का हृदय संकीर्ण होता है और वह उन लाभों को दूसरों से रोक कर अपने व्यक्तिगत हित के लिये ही प्रयुक्त करना चाहता है। एक ऐसा ही "वैज्ञानिक" एक मीटिंग में एक बार मुझ पर चिल्ला उठा, 'नहीं हम पेनिसिलीन को कभी आयुर्वैदिक द्रव्य-गुणशास्त्र का अङ्ग नहीं बननें देंगे यह हमारी है।" स्पष्ट है कि यह पेनिसिलीन डाक्टर को अपने बाबा जी की जायदाद में मिली है। फ़्लेमिंग ने इसकी खोज रोग-पीड़ित जनता के लाभ के लिए नहीं किन्तु लोभग्रस्त डाक्टरों के व्यक्तिगत लाभ के लिए की है।

यह दुःखजनक है कि रोग-निवारण की कला पर ठेकेदारी और काला बाजारी की पौद उसी प्रकार लगाई जा रही है जैसी की अंग्रेजों के समय में, जो देश में इस प्रकार की प्रवृत्तियों को विशेष प्रोत्साहन दिया करते थे, लगनी शुरु हुई थी। मेरे एक पन्द्रह वर्ष पुरानें भाषण से लिया निम्नलिखित उद्धरण डाक्टर सेन की कृति पर आज भी उतना ही घटित होता है जितना कि १९३८ में उस वैज्ञानिक कृति पर होता था, जिसके लिए कि वह विशेषरूप से लिखा गया था :—

"भारतीय ऐलोपैथ एक परम दयनीय व्यक्ति है। बड़ी छेड़ और गर्व है उसके "वैज्ञानिक दृष्टिकोण" के दावे में, बड़ा अभिमान है उसके पारस्परिक सद्व्यवहार (Professional ethics) की चर्चा में। परन्तु विज्ञान और सद्व्यवहारका लेप उसकी चमड़ी से नीचे नहीं उतरा। जरा नाखून मारिये तो नीचे से झगड़ालू दुकानदार निकल आएगा। उसकी वैज्ञानिकता पुस्तकों तक ही है प्रैक्टिस में वहीं जो कि पेटेण्ट औषधियों,

फ्री सैम्पलों, ब्लाटरों और पॅम्फलैटों के आधार पर चलती है। उसके सद्व्यवहार का मूल सजा का डर है। जहाँ उसे कानून सद्व्यवहार के लिये नहीं जकड़ता, जैसे कि सरकार के सौतेले बच्चे आयुर्वेद और होमियोपैथि के बारे में, वहाँ पर वह गाली-गिलौच और असद्व्यवहार की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करने से नहीं चूकता। अंग्रेजी शासन ने आरंभ में जब की युरोप से अच्छे डाक्टर पर्याप्त संख्या में यहां न आ सके तब इस काम चलाऊ डाक्टर को जन्म दिया। यह अस्थायी लीप-पोच है। एक आर्थिक नीति (economic policy) इसकी जन्मदाता है न कि कोई वैज्ञानिक प्रवृत्ति। जहां तक वैज्ञानिकता से सम्बन्ध है यह अनाथ है क्योंकि विज्ञान के साम्राज्य में इस के लिए स्थान नहीं। यह तो वैज्ञानिकों का सच्चा उत्तराधिकारी भी नहीं। न तो इस पर वैद्यों की तरह से वह कठोरता और अत्याचार ही हुए जिससे मनुष्य में स्वतन्त्रता और आत्म-समर्थन उत्पन्न होते हैं न युरोपियन और अमेरिकन डाक्टरों की तरह वह आदर और अधिकार ही मिला जिससे मनुष्य में आत्मसम्मान और गौरव बढ़ता है, फलस्वरूप यह न उधर न इधर बीच में ही अर्द्धपरतन्त्र एसिस्टेण्टों की करुणाजनक परिस्थिति में ही लटकता रहा। मेरी राय में तो इण्डियन मेडिकल प्रौफैशन को यदि एसिस्टैण्ट मैडिकल प्रोफैशन कहें तो नाम अधिक सार्थक होगा। इसी स्थिति के कारण वह जीवन और विज्ञान को आदरभाव से नहीं निहारता। इसीलिये देशी चिकित्सक के प्रति उसका ढङ्ग वही है जो टुकड़ों के लिये लड़ते हुए भिकारी का भिकारी के प्रति होता है न कि वह जो ज्ञान की खोज में एक वैज्ञानिक का दूसरे वैज्ञानिक के प्रति। विज्ञान की पिपासा से यह अपरिचित है। अपनी जन्मभूमि की पुरानी चिकित्सा-प्रणाली से यह सर्वथा उदासीन है। यह उदासीनता एक लज्जाजनक कहानी है जिसका जोड़ किसी नवीन या प्राचीन सभ्य जाति के इतिहास में नहीं मिलेगा। उन्नत और सभ्य देशों की कथाओं के पृष्ट पलट पलट कर देखिये, बुद्धि और ज्ञान-पिपासा सदा ही भूतकाल की रहस्यमयी यविनका को हटाने में संलग्न मिलेगी। केवल अशिक्षित जातियां ही अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं से बाहर नहीं निकलती। इस प्रकार मध्य-कालीन अरब वाले भी चरक और सुश्रुत के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे और इस समय युरोपियन डाक्टरों ने गैलन और हिप्पोक्रेटीज के जीवन और कार्य्य के सम्बन्ध में निश्चयात्मक सामग्री एकत्रित करने के लिये इतना प्रयत्न किया है कि भारतीय ऐलोपैथ तक भी हिप्पोक्रेटीज को father of medicine (चिकित्साशास्त्र के पिता) के नाम से पुकारता है। परन्तु इस 'पिता' के पितामह चरक और सुश्रुत जैसे महान् आचार्य्यों के बारे में यह कुछ नहीं जानता, न जाननें की इच्छा रखता है। क्योंकि इसका प्रधान कार्य्य तो पाश्चात्य सिंहनादों की रट लगाना है। अपने मन से तो यह सिंहनाद भी निर्माण नहीं करता। विवेक की दृष्टि में तो इसका अस्तित्व ही नहीं। यह न सोचता है, न आविष्कार करता है। दूसरे इस के लिये सोचते हैं वह भी इसके देश से बाहर। यह तो स्वयं एक आविष्कार है जिसे चाबी दे कर चला दिया गया है और यह चल रहा है। पाश्चात्य

चिकित्सा का विशाल भवन इसके सामनें खड़ा है परन्तु इसमें न ईंट है न ईंट रखने वाला। यह एक कृति है कर्त्ता नहीं। यहीं कारण है कि देशी चिकित्साओं के विरुद्ध जो रह रह कर इसे क्रोध का दौरा उठता है उसमें न महत्त्व है न उत्तरदायित्व। यही कारण है कि रिसर्च आदि में पड़ने या विज्ञान को कोई मौलिक अथवा नवीन भेंट करने के बजाय रोगी की जेब को ही इसने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। यह एक मध्यम श्रेणी का दुकानदार है जो वैज्ञानिक के वेश में फिर रहा है। इसीलिये यह वैज्ञानिक खोज से इतना विमुख है; इसीलिए अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के प्रति इसके व्यवहार में विनय और सभ्यता का अभाव है। परन्तु इससे अधिक आप आशा भी क्या रख सकते हैं एक ऐसे व्यक्ति से जो इसी लज्जा में घुलता चला जाये कि उसके अभिमान का जो एक मात्र कारण हैं उसके निर्माण में उसका जरा भी हाथ नहीं ?

क्या वह अब भी जागृत हो कर अपनी परिस्थिति को पहिचानेगा ? यदि वह ऐसा करे तो मुझे यह सन्तोष होगा कि मैंने पाश्चात्य विज्ञान की कुछ सेवा कर दी। मैंने किसी कटुता अथवा वैर-विरोध के कारण यह समालोचना नहीं की। यदि मैं चाहता हूं कि भारतीय ऐलोपैथ किङ्करवृत्ति और विडम्बना, लालच और व्यापार, अज्ञान मिथ्याभिमान और उद्दण्डता को त्याग दे तो इसीलिये कि वह मेरा देश वासी है, क्योंकि मैं उसकी शक्तियों के भावी विकास में विश्वास रखता हूं, क्योंकि मैं उसे अच्छा शिष्य और अच्छा शिक्षक देखना चाहता हूं बजाए एक मुंहफट और निकम्मे कुटुंबी के जो न अभिमान का ही मूल हो न चैन का ही।''

वान्तव्य परिस्थिति---

मैं डाक्टर सेन की वक्तृता के बारे में और कुछ नहीं कहूंगा। जो कुछ मैंने कहा है वह भी झिझकते हुए कहा है जैसे कि कोई अपराध किया हो। वह उत्कृष्ट सभ्य, जिन्होंने डाक्टर सेन का आक्रमण पसन्द नहीं किया, इस प्रत्याक्रमण को भी पसन्द नहीं करेंगे। मुझे एक ही सन्तोष है कि वह सज्जन समुदाय मेरे या किसी के कोई भी भूल करने पर अपना देशप्रेम और देशसेवा का स्वतन्त्र पथ छोड़ने वाला नहीं। परन्तु दूसरे कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो इस प्रकार के आन्दोलन से प्रभावित हो जाते हैं और उनके लिये ऐसे आन्दोलनों का प्रतिकार आवश्यक है। देश और विज्ञान की सेवा में वैद्यसमाज को किन कठिनाइयों के नीचे कार्य करना पड़ता है यह जनताको ज्ञात नहीं। वह व्यक्ति जिसनें यह कहा था कि वह पैनिसिलीन को आयुर्वेदिक द्रव्यगुणशास्त्र का अंग कभी नहीं बनने देगा १५ वर्षों से आयुर्वेदिक विभागों का अधिष्ठाता बना हुआ है। कब तक आयुर्वेद के भाग्य-विधाता यह लोग बनें रहेंगें जो कि अपने विज्ञान की सिढ़ी पर सबसे नीचे पटड़ीपर बैठे हैं और जिनमें इतना भी सौजन्य नहीं कि जिस शास्त्र में उनका मन नहीं उसके क्रियाक्षेत्र

से अलग हो जाएं क्योंकि वहां उनका विरोध विज्ञान की उन्नति का अवरोध कर राष्ट्रीय प्रयत्न का कृतिविध्वंस कर रहा है ।

मैं अपने लिए यही कह सकता हूं कि मैंने गवर्नमेंट कौंसल मीटिंगों में कभी डाक्टर सेन वाले हथकण्डों का प्रयोग नहीं किया । इसका प्रमाण मेरे वह दो वक्तव्य हैं जो मैंने "स्वास्थ्य" और "राष्ट्रीय चिकित्सा" पर प्लैनिंग कमीशन की स्वास्थ्य-परिषद् में उपस्थित किए थे । तो भी मुझे भय प्रतीत होता है जब में उपर्युक्त कथन के उन मंत्रियों के दृष्टिगोचर हो जाने की सम्भावना को देखता हूं जिन्होंने डाक्टर सेन के वक्तव्य को अनुचित समझा । मैं उन से यही प्रार्थना करूंगा कि जहां तक उनका सम्बन्ध है जो पीछे लिखा जा चुका है उसकी ओर ध्यान न देकर जो आगे लिख रहा हूं उसी पर अपना ध्यान दें । पिछला लेखतो केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिये लिखा गया है जिनके जड़ मस्तिष्क में बिना संक्षोभ चिकित्सा के यह तत्व घुसाना सम्भव नहीं । इसके अतिरिक्त यह एक आयुर्वैदिक सम्मेलन की अध्यक्षीय वक्तृता है, स्वास्थ्य-परिषद् के विचार के लिए कोई लेख या वक्तव्य नहीं । यहां मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं अपने निर्वाचक वर्ग, अर्थात आयुर्वेद संप्रदाय, के उन आन्तरिक भावों का उस भाषा में स्पष्टीकरण करूं जो उन पर निरंतर किए गए अन्यायों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया को पूर्णतया प्रकट कर सके । यहां मुझे एक वृद्ध अंग्रेज कर्नल का स्मरण आता है जिसने अपने विरुद्ध एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण असत्य आरोप लगाए जाने पर दुष्टविरोधी को यह शब्द लिखे, "मेरी टाइपिस्ट एक लेडी (सभ्या) है अत: वह नहीं लिख सकती जो मुझे तुम्हारे लिए लिखवाना चाहिये । मैं एक जण्टलमैंन (सभ्य) होनें के कारण वह भाव मन में ही नहीं ला सकता जो तुम्हें लागू होते हैं—मर तुम इन दोनों में से एक भी न होने के कारण समझ सकोगे कि मेरा क्या अभिप्राय है ।" अस्तु । मेरे सम्प्रदाय ने यह उचित नहीं समझा कि वैद्यों की अनुपस्थिति में आयुर्वेद पर किए गए उसके घृणित आक्षेपों के बारे में जो उसका विचार है उसका अनुमान डाक्टर सेन पर छोड़ दिया जाये । उसकी वह विशिष्ट इच्छा है कि उसके भाव डाक्टर सेन और उनके संरक्षकों को सुस्पष्ट भाषा में व्यक्त कर दिए जाएं । उनके मुख्य प्रतिनिधि के नाते मैं ने केवल अपना कर्त्तव्य पालन किया है ।

जिन इने गिने डाक्टरों की यहाँ आलोचना की गई है उन्हें छोड़कर भारतवर्ष के अन्य डाक्टरों के प्रति जो आदर मेरे हृदय में है वह मेरी पहली वक्तृताओं के निम्नलिखित उद्धरणों में व्यक्त है:—

"यह मेरे साथ अन्याय होगा यदि इस वर्णन में भारत के उन उच्च कोटि के डाक्टरों को भी गिन लिया गया जो शील और आचार के आदर्श हैं । उनकी संख्या भारतवर्ष में थोड़ी नहीं है ।"

—अध्यक्षीय भाषण, ३८ वां महासम्मेलन, इंदौर ।

"भारतवर्ष में बहुत से ऐसे डाक्टर हैं जो संसार के किसी भी समाज या संप्रदाय के लिए गौरव और सम्मान के कारण हो सकते हैं।" —महासम्मेलन, गाजियाबाद।

निर्माण-निमन्त्रण

अब मेरा कार्य अधिक आनन्दमय होगा। मैं केन्द्रीय और राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों को निमंत्रित करता हूं कि वह उन सुझावों के वास्तविक मूल्य पर गंभीर विचार करें जो आगे आएंगे। मेरा प्रयत्न ऐसे सुझाव देना ही होगा जो कृतिसाध्य और उपयुक्त हों क्योंकि वह उपयुक्त सुझाव सर्वथा अनुपयुक्त होता है जो कृतिसाध्य न हो। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अत्यन्त कृतिसाध्य और उपयुक्त उपदेश भी फलप्रद नहीं रहता यदि उस पर विचार ही न किया जाए। इस प्रकार के पहले सुझावों के विचाराभाव और विस्मरण नें न केवल आयुर्वेद की प्रगति को ठंडा कर दिया अपितु विज्ञान और जनसेवा के क्षेत्र में आयुर्वेद को अवनत भी किया।

(१) वैद्यसमाज की शक्ति क्षीण करनें वाले नियम रद कीजिए

जब भारतवर्ष अंग्रेजों के अधिकार में था उस समय श्री कृष्ण शास्त्री नें लिखा था कि—

"आज की सब से बड़ी कृति यही है कि सरकार की अनिच्छा होते हुए भी उसके हाथों से कुछ छोटी-छोटी रियायतें प्राप्त कर ली जाएं जैसे कि नमक के मूल्य में एक पैसे की कमी करा लेना अथवा समाज की शाप, मदिरा, का कहीं निषेध करा देना। इस प्रकार देश की उच्चतम बुद्धि और योग्यता ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति में व्यय हो जाती है जो निस्संदेह उपयुक्त तो हैं परन्तु एक राष्ट्र की वास्तविक सम्पति के परिवर्द्धन में किसी गणना में नहीं आ सकती।"

उपर्युक्त कथन विरोधी और अवरोधी ऐलौपैथिक शासन के नीचे वैद्यों की समान दशा का जीता जागता चित्र है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् की बैठक समाप्त होते ही एक हैदराबाद के वैद्य नें उस प्रस्ताव के स्थगित हो जाने पर जिसमें छोटे पाठ्यक्रम का ठेका केवल ऐलोपैथी के लिए सुरक्षित रखा गया था, मुझे लिखा, "कम से कम छः महीनें के लिये तो बला टल गई। पर तुम्हें जागृत रहना होगा। अन्यथा यह पश्चिमी-करण की व्याधि राष्ट्र पर पुनः आक्रमण करेगी।,'

इन वैद्य महोदय का अपना भविष्य इतना सुरक्षित है कि जो पग वह राष्ट्र के लिए अहितकर समझते हैं वह उन्हें व्यक्तिगत रूप से कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। न

ही उन्हें इस प्रकार के नियम या धाराएं बनने में ही कोई व्यक्तिगत दिलचस्पी है । तो भी उन्हें मुझे यह उपदेश देना ही पड़ रहा है कि मैं छः महीनें और बिना कार्य के कार्यग्रस्त रहूँ । और अपना मूल्यवान समय ऐसी चालों के अध्ययन और निराकरण में व्यय करूं जो आयुर्वेद की सत्ता और देशसेवा के क्षेत्र पर हानिकारक दुष्प्रभाव डालती हैं ।

ड्रग एक्टकी वह शरारत और शैतानी से भरी औषधि-प्रयोग संबंधी धारा लीजिए जिसके अनुसार देशी चिकित्सक वही औषध व्यवहार में ला सकता है जो केवल आयुर्वैदिक या यूनानी हो । इस धारा के कारण एक देशी चिकित्सक पर गंधक का प्रयोग करने के अपराध में अभियोग भी चल चुका है । क्योंकि आज ऐलोपैथी को होश आ गई है और इसने गंधक का प्रयोग सीख लिया है इसलिए गंधक (केवल) आयुर्वैदिक औषध नहीं रही । वैद्य गंधक का प्रयोग उस समय से कर रहे हैं जब डाक्टरी का जन्म नहीं हुआ था । और आज भी गंधक के कुछ उपयोग वैद्य इस रीति से कर रहे हैं, जैसा रसायनों में पारद-विष निराकरण के लिए, जो संसार के उच्चतम आधुनिक औषधक्रिया-वेत्ताओं को चक्कर में डाल दें । यह कथा यहीं समाप्त नहीं हो जाती । यदि डाक्टर आयुर्वेद के द्रव्यों में से कल कोई दूसरी औषध उठा लें तो वह भी "केवल" आयुर्वैदिक नहीं रह जाएगी । फिर उसके प्रयोग करने पर भी अभियोग चलेंगे । क्या हमारे नियमनिर्माता शासकवर्ग को कभी यह होश भी आती है कि उन्हीं के देशवासियों के एक समूह के साथ कितना खुला और पैशाचिक अन्याय हो रहा है ? क्या वह कभी यह सोचते भी हैं कि ऐसे नियमों का निर्माण एक ओर जनसेवा के कार्य को और दूसरी ओर आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति को कितना धक्का पहुंचाता है ?

आयुर्वेदीय व्यवसाय की संपूर्ण शक्ति दुष्टतापूर्ण अन्यायों से लड़ने, छोटी-छोटी रियायतें मांगने और भावी विरोध और पक्षपात पूर्ण धाराओं के जांचने और निराकरण करने के प्रयत्न में निरन्तर लगे रहने में ही व्यय हो जाती है । सरकार को इस शक्ति को अब इस कार्य से मुक्त करना चाहिए जिससे कि यह कुछ निर्माण-कार्य में प्रवृत्त हो सके । और वह एकपक्षीय तथा घातक धारासमूह हटा लेना चाहिए जो समय समय पर डाक्टरों के आदेशानुसार निर्मित हुआ है ।

(२) कृतिध्वंस के आरोप की जांच कीजिए

आयुर्वेदीय विभागों के ऐलोपैथिक शासकों के विरुद्ध जो आयुर्वेद की प्रगति में बाधा डालने और अन्तर्विध्वंस करने के आरोप हैं उन पर प्रमाण मांगने चाहिएं और पूरी जांच करनी चाहिये । यहां उन अनेकों उदाहरणों का फिर से दोहराना अनावश्यक है जो मैं अपनें पहले कई भाषणों और सरकार को भेजे गए वक्तव्यों में दे चुका हूँ ।

कोई भी योग्य शासन ऐसे अभियोगों को अनसुना करके नहीं छोड़ सकता। अप्रगतिशील नियम-निर्माण और अवरोधी आज्ञाओं ने किस मात्रा में राष्ट्र की हानि की है इसका ठीक हिसाब लगाना चाहिए। यह स्वीकार करना चाहिए कि आयुर्वैदिक प्रगति की सेना का अग्रभाग जब तक उत्सुक और कर्तव्यरत वैद्यों के हाथ में नहीं होगा आयुर्वैदिक प्रगति संभव नहीं होगी। शासन में आत्मोपयोगी पदों पर आरूढ़ मध्यम और अधम श्रेणी के डाक्टरों द्वारा जो गत्यवरोध हो रहा है वह अब हटना चाहिये। पहले ही पर्याप्त अमूल्य समय नष्ट किया जा चुका है।

(३) सरकारी डाक्टरों की व्याख्याओं की जांच कीजिए

आरोप के उत्तर में जो व्याख्या सरकारी विभाग के डाक्टरों की ओर से आए उसकी प्रमाणिकता की परीक्षा उसे आरोप-कर्त्ताओं तक पहुँचा कर ही होनी चाहिये। बम्बई के अग्रणी समाचार दैनिक के एक सम्पादक ने टेलीफोन पर मुझे यह उपालंभ दिया कि जो मुद्रित पत्र मैंने राष्ट्रपति और मुख्यमन्त्री आदि को आयुर्वेद के सम्बन्ध में लिखा था उसमें मैंने यह भी लिखा कि चोपड़ा समिति के सदस्य केवल छः डाक्टर और तीन हकीम थे और कोई वैद्य नहीं था। यह सर्वथा असत्य था क्योंकि चोपड़ा कमेटी की रिपोर्ट स्वयं पढ़ कर उन्होंने अपनी आंखों से यह देख लिया था कि उन छः डाक्टरों में तीन डाक्टर वैद्य भी थे। इनमें से एक महासम्मेलन के अध्यक्ष थे दूसरे आयुर्वैदिक कालेज के प्रिंसिपल और तीसरे तो आयुर्वैदिक परीक्षोत्तीर्ण ही थे। यह अच्छा हुआ कि रिपोर्ट से जो ज्ञान उन्होंने इकट्ठा किया था उसकी बात मुझसे कर ली अन्यथा वह आयुपर्यन्त वास्तविक सत्य से अपरिचित ही रहते।

मैंने उन्हें बताया कि आयुर्वेदमहासम्मेलन की शास्त्रीय संस्था का नाम आयुर्वेद विद्यापीठ है और आयुर्वेदशास्त्र सम्बन्धी चर्चा का मुखिया विद्यापीठ का ही प्रधान होता है। महासम्मेलन का प्रधान केवल शासन और संगठन का प्रधान है। इस स्थान पर कई वैद्येतर व्यक्ति भी बैठ चुके हैं जिनमें स्वर्गीय हिज हाइनैस महाराजा रामवर्मा कोचीन नरेश, स्वर्गीय महामना मदनमोहन जी मालवीय, स्वर्गीय कर्नल कीर्त्तिकर के नाम भी उल्लेखनीय हैं। परन्तु विद्यापीठ का प्रधान कभी कोई वैद्येतर व्यक्ति नहीं हुवा। जब मैंने सम्पादक महोदय को यह सूचना दी कि डाक्टर लक्ष्मीपति जो एक बहुत उच्च श्रेणी के संगठनकर्त्ता हैं और जो उस समय महासम्मेलन-अध्यक्ष थे नें स्वयं यह परिस्थिति सरकार के सामने रख दी थी परन्तु सरकार ने ध्यान देने से इन्कार कर दिया तो वह विशेष रूप से विस्मित हुए।

दूसरे डाक्टर अपनी योग्यता, कर्तव्य परायणता और ज्येष्ठाधिकार के कारण

आयुर्वैदिक कालिज के प्रिंसिपल बनें परन्तु उनका कार्य तो आयुर्वैदिक कालिज के विद्यार्थियों को वह डाक्टरी पढ़ाना ही था और रहा जो आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती है। वास्तव में इन्हीं डाक्टर महोदय का विशेष आग्रह रहा कि वैद्यों के अभाव में चोपड़ा समिति हास्य का विषय है।

तीसरे डाक्टर महोदय की आयुर्वैदिक उपाधि की कथा तो बिल्कुल ही भिन्न है। महात्मा गांधी की आज्ञा पर इन्होंने असहयोग किया और मैडिकल कालिज छोड़ दिया। फिर तिलक विद्यापीठ में डाक्टरी का अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप इन्हें आयुर्विद्या विशारद की उपाधि मिली। इस उपाधि का आयुर्वेद से कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

उपर्युक्त तीनों डाक्टरों में से किसी ने भी अपने आपको आयुर्वेद का पूर्णप्रातिनिध्य करने वाले अधिकारी के रूप में उपस्थित नहीं किया। यह एक मनोरंजक सत्य है कि समिति के एक अन्य सदस्य डाक्टर एम. ए. शाह (जो अब कर्नलशाह हैं और जिन्ना सेण्ट्रल हास्पिटल कराचीं के प्रधान चिकित्सक हैं) ने यूनानी का अध्ययन करने के अनन्तर यूनानी का प्रातिनिध्य करने का अधिकारी अपने आप को समझा भी तो भी चोपड़ा कमेटी पर तीन हकीम रखे ही गए! केवल वैद्य ही नहीं रखा गया।

उपर्युक्त उदाहरण केवल यह दिखाने के लिए दिया गया है कि ऊपरी व्याख्याएं भी एक उदासीन व्यक्ति को कितनी विश्वसनीय प्रतीत हो सकती हैं और उनको शिकायत करनें वाले तक पहुँचा कर प्रमाणिक कर लेना आवश्यक है।

(४) शीघ्रता और निर्भीकता से कार्य करें

जो भाव आपके समक्ष लाए जायें उन पर विचार करने और उन निर्णयों पर पहुँचनें में जो आपको न्यायोचित प्रतीत होते हों भले ही अधिक समय लगे। परन्तु एक बार जब आपको पूर्ण विश्वास हो जाये तो संगठित राष्ट्रनाशक स्वार्थी तत्त्वों का शीघ्रता और निर्भीकता से सामना करें। आधुनिक युग में हमारा राष्ट्र दीर्घसूत्री और शनैः गामी होकर जीवित नहीं रह सकता देश और राष्ट्र के लाभ के लिए देशी विज्ञान के वृक्ष की अनवरोधित वृद्धि के लिये सब जाले और झाड़ियां बिना झिझक और अति शीघ्र निर्मूल कर देनी चाहिएं।

(५) कार्य-कर्त्ताओं की निर्भ्रान्त छांट का मूल्य पहचानिए

जिन व्यक्तियों की असफलता सिद्ध और प्रतिष्ठित हो चुकी है, उन्हें छोड़िये। इससे प्रगति की सब से बड़ी बाधा, अर्थात् शक्ति का निराकरण, दूर हो जायगा। उन

देशों में भी जो दीर्घ काल से स्वतन्त्र हैं और जिन्हें अपना शासन अच्छी प्रकार से दृढ़ और संगठित करने के लिये पर्याप्त समय मिला है स्वार्थी एलोपैथ उस उपयोगी प्रगति का घोर विरोध कर कर रहे हैं जो उनकी अपनी जाति के लिये हितकर है। हारवर्ड यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध डा० मीनज अमेरिका की परिस्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, "जैसे अमेरिकन डाक्टर सरकार के जनसेवा सम्बन्धी कार्यों को उन्नत होते देखता है, वैसे वैसे उसका भय बढ़ता है, कि जो अधिकार और सुविधायें उसे प्राप्त हैं वह उससे छिन जायँगी। उसकी यह मनोवृत्ति दूसरे अधिकार-प्राप्त समूहों की मनोवृत्तियों के ही समान है, न उन से अच्छी है न उन से बुरी। उद्योगाधिपति, पैन्शनर या कुछ सर्वाधिकार-प्राप्त मजदूर दल, आदि वर्गों के उदाहरण सामने हैं। अतएव सुसंगठित चिकित्सा व्यवसाय राजनीति के क्षेत्र में एक दबाव डालनें वाले समूह के रूप में उतर आया है और प्रगतिशील सामाजिक-धारा निर्माण में बाधा डालने का प्रयत्न कर रहा है। इस कार्य में अभी तक उसे महती सफलता भी प्राप्त हुई है।" दूसरे स्थल पर डा० मीनज ने फिर लिखा है "प्राइवेट डाक्टरी चिकित्सक अपने महान साम्राज्य को इसी रूप में सुरक्षित रखने के लिये जिसमें कि यह आज विद्यमान है, किसी भी मूल्य पर और किसी भी विधि से सरकार को चिकित्सा की प्रगति में हाथ डालनें से रोकना आवश्यक समझता है। सुसंगठित चिकित्सक दल अधिकारी वर्ग के यह विश्वास दिलाने पर भीं कि मैडिकल संस्थाओं की आर्थिक दशा चिन्ताजनक है सरकार द्वारा चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षण को आर्थिक सहायता दिए जाने का विरोध कर रहा है।"

अमेरिका तो एक सम्पत्तिमान देश है। आज उसके पास इतनी सम्पत्ति है जितनी कि संसार के इतिहास में आज तक शायद कभी किसी देश के पास न हुई हो। वहां पर ही सरकार द्वारा जनता को चिकित्सा की सुविधा पहुँचाने के प्रति जब प्रगतिशील डाक्टरी समुदाय का यह व्यवहार है, तो भारत जैसे देश में जहां आर्थिक कठिनाइयों के साथ घोर युद्ध हो रहा है, एक दूसरे पक्ष की चिकित्सा प्रणाली तक सरकारी संरक्षण की पहुँच के प्रति एक अप्रगतिशील डाक्टरी व्यवसाय, जिसने की अपने विज्ञान के निर्माण में कोई भाग ही नहीं लिया, का क्या व्यवहार होगा यह समझना कठिन नहीं। तो भी आयुर्वेदिक योजनाओं और शासन के विशेष अधिकार इसी व्यवसाय के हाथों में सौंपे हुए हैं। जब किसी राज्य का कोई डाक्टर-चीफमिनिस्टर किसी ब्लैक मार्केट केस को दबा देता है, या किसी अन्य अनुचित कार्यवाही में प्रवृत्त होता है तो समाचार-पत्र और जनता उन अपराधों को किसी अंश तक प्रकाश में ले ही आते हैं और उच्चाधिकारियों से उनके अनौचित्य पर कुछ न कुछ कहलवा ही लेते हैं। परन्तु आयुर्वेदिक अनुशासन में डाक्टरों की काली कृतियों और प्रवृत्तियों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता, और

इस क्षेत्र में केन्द्र के उच्चाधिकारी डाक्टरी निर्णयों को इस प्रकार स्वीकार करते हैं जैसे कि वह शुद्ध न्याय के उच्च आदर्श हों।

(६) वैद्य को उसका आसन दीजिए

ऐलोपैथी के निर्माण में भारतीय ऐलोपैथ का हाथ कुछ भी नहीं यह तो सब जानते ही हैं। ऐसी परिस्थिति में आयुर्वेद में शोध के लिए जो थोड़ा सा पैसा सरकार से निकला है उसका आधिपत्य इन्हें मिल जाने का यह फल हुआ है कि यह सहायता के इच्छुक वैद्यों से थोड़ा बहुत काम लेकर उसे शोध-क्षेत्र में, अपनी नवीन कृतियों के रूप में, ऐलोपैथी में नवीन वृद्धि कहकर उपस्थित करनें का प्रयत्न कर रहे हैं। यह 'उदारतापूर्ण' वाक्य प्रायः सुननें में आता है, "मैं तो खुला हृदय रखता हूँ। यदि आप कोई विशिष्ट गुणकारी आयुर्वेदिक जड़ी-बूटी मेरे ध्यान में ला दें तो मैं उसका प्रयोग करके देखने को तैयार हूं!" कितना त्याग और कितनी उदारता हर समय वैद्य समाज के लिए उपस्थित है। एक डाक्टर (जो एक राज्य के आयुर्वेदिक शोध-कोष के अधिष्ठाता हैं) तो एक बार इतना बलिदान करने के लिये तैयार हो गए कि मुझसे कहने लगे, "कृपया यह चिकित्सा-शोध-कार्यक्रम आरम्भ कर दीजिये। आपका सम्पूर्ण कार्य शोध पत्रिका (रिसर्च बुलेटिन) में प्रकाशित होता रहेगा। वह छपेगा तो मेरे नाम से ही क्योंकि आपका नाम तो उस पर नहीं जा सकता।" फल–वह पत्रिका ही नहीं निकली।

यह हानि के साथ-साथ अपमान भी करना नहीं तो और क्या है? पहले एक ऐसा व्यक्ति जो हमारे शास्त्र से अनभिज्ञ है हमारे सर के ऊपर बिठा दिया जाता है जहां उस के बैठने का कोई काम नहीं। फिर वह हमें आज्ञा देता है कि उसके लिये काम करें। फिर यह नियम बनाता है कि आयुर्वेदिक पाठ्य-पुस्तकों में तीन हजार वर्ष पुराने संहिता ग्रन्थों के सिवाय दूसरा कोई पाठ न जोड़ा जाए। फिर बाहर जाकर चिल्ला-चिल्ला कर यह कहता है कि यह ग्रन्थ खड़े हैं आगे नहीं बढ़ते इसलिए अवैज्ञानिक हैं!

क्या कोई ऐसा मार्ग विद्यमान है जिससे किसी प्रकार अधिकारियों की कठिन खोपड़ी के भीतर यह बात पहुँचाई जा सके कि इस प्रकार की परिस्थितियां वैद्यसमाज को बुरी तरह चिढ़ाती और क्रोध दिलाती रहती हैं। क्या अधिकारी कभी यह समझ सकेंगे कि जब तक वैद्यसमाज स्वयं अपना कार्य हाथ में नहीं लेगा और उसका श्रेय स्वयं प्राप्त नहीं करेगा तब तक इस विज्ञान की विशाल उपयोगी संपत्ति बाह्यस्तर पर नहीं आ सकेगी। यह डाक्टर अपने डाक्टरी शोध विभागों की सहायता के लिए क्यों नहीं भजे जाते जहां लाखों रुपयों की नदी बह रही है और कुछ भी फल नहीं निकलता? क्यूं यह उन कुछ सहस्त्र रुपयों का, जो बड़ी कठिनाई से आयुर्वेदिक शोध को मिले हैं,

निरर्थक नाश करने के लिए इधर डटे हुए हैं कार्यकर्त्ता को कोई वस्तु इतना प्रोत्साहित और आह्लादित नहीं करती जितना कि उसके कार्य के वास्तविक मूल्य की पहिचान । हमारे गले में यह स्वार्थी और निकम्मे ऐलोपैथिक बट्टे लटका कर विभिन्न राज्यों के शासन उस वैद्यकीय संपत्ति के एकमात्र स्रोत को अवरुद्ध कर रहे हैं जिसमें कि हमारा देश संसार के अन्य सब देशों की अपेक्षा अधिक धनवान है । सरकार की ज्ञानशक्ति को कुछ ऐसा पक्षाघात हो गया है कि विरोधी और स्वार्थी आजीविका खोजी डाक्टरों के भार से आयुर्वेदिक उत्साह और आनन्द के भंग होने की बात किसी भी अपील, स्मृतिपत्र अथवा प्रमाणोपस्थिति द्वारा उनके ध्यान में नहीं आती । वैद्यसमाज से इस से अधिक आशा नहीं रखनी चाहिए कि हम इन तत्वों को निमंत्रित सहकारियों के रूप में स्वीकार करलें । परन्तु जो लोग हमारे विज्ञान का एक अक्षर भी नहीं जानते और जो हमारी योग्यता का अपने तुच्छ भविष्य को आगे धकेलने के लिए दुरुपयोग करना चाहते हैं उनका स्वामियों के रूप में हमारे ऊपर थोपा जाना उच्चस्तर के वैद्य कभी स्वीकार नहीं करेंगे । और नीचे स्तर के जिन व्यक्तियों को यह खरीद सकते हैं विज्ञान और देश को आगे बढ़ाने की योग्यता उनमें नहीं । अपने ऐलोपैथिक स्वामियों द्वारा सरकार के आगे सहयोग प्रदर्शन के नाटक के काम मेंलाये जाने के सिवा देश की कोई वास्तविक ठोस उन्नति उनसे नहीं हो सकती ।

निर्भ्रान्त ज्ञान की ओर

(७) अपने कार्य्य की विशिष्टता समझिए

सरकार के सामने जो राष्ट्र को फलप्रद चिकित्सा सुविधा प्रदान करने का कार्य है मेरा यह विशेष आग्रह है कि उसके पूर्ण स्वरूप को सम्यक् समझने के महत्त्व पर भारत सरकार ध्यान दे । वैसे हवाई किले बांधने से कुछ लाभ न होगा जैसे कि भोर कमिटी ने बांधे थे । भोर कमिटी के अधिक दूरदर्शी सदस्यों ने उसी समय अति स्पष्ट शब्दों में सिफारिशों के कृति-असाध्य होने के कारण असफल हो जाने की भविष्यवाणी कर दी थी । स्वर्गीय डाक्टर विश्वनाथ, जो अपनें समय के अविभक्त पंजाब के डाक्टरी व्यवसाय के अग्रणी नेता थे, नें अपनी स्वाभाविक स्पष्टता और दूरदर्शिता प्रकट करते हुये और भोर कमेटी के भविष्य को नग्न करते हुए इस रिपोर्ट का विरोध निम्नलिखित सत्य-पूर्ण शब्दों में किया है:—

"रोगी और चिकित्सक के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्णय प्रायः सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति करती है । इससे यह प्रश्न खड़ा होता है कि देशी चिकित्सा का सरकार की सहायता पर किस सीमा तक अधिकार होगा । इस स्वास्थ्य निरीक्षण तथा परिवर्द्धन

समिति द्वारा इस प्रश्न को बिना सामना किए दबा देना उस समय कुछ सहायता नहीं करेगा जब केन्द्र और प्रान्तों में स्वास्थ्य सुधार की समस्याओं पर जनता का करोड़ों रुपया लगा देने का वास्तविक कार्य आरम्भ होगा।

कुछ सरकारी कर्मचारी अब तक भी भोर कमेटी के विचारों को पकड़ कर लटक रहे हैं। जितना ही अधिक कालतक वह उन विचारों को चिपके रहेंगे उतना ही अधिक दूर वह देश के स्वास्थ्य-सुधार की वास्तविक प्रगति के युगको आगे धकेलते जाएँगे। जितनी देर सरकार हवाई योजनाओं अथवा पश्चिम की बुद्धिहीन नकल के मार्ग पर चलती रहेगी उतनी देर ही देश की आवश्यकतायें सफल रूप से पूरी नहीं कर सकेगी। किसी भी देश को फलप्रद चिकित्सा पहुँचाने के कार्य की विशिष्टता की ठीक जानकारी की कुञ्जी डा० जे० एच० मीनज के निम्नलिखित शब्दों में मिलेगी :—

"किसी भी राष्ट्र के स्वास्थ्य संस्थापन अथवा चिकित्सा संस्थापन का वास्तविक मूल्य समझने के लिये उसकी योग्यता और अनुकूलता को महत्त्व देना आवश्यक है। यहां साधारण योग्यता से नहीं बल्कि उस योग्यता से तात्पर्य है जो उस देश विशेष के लिये विशिष्ट अनुकूलतापूर्ण हो जिससे उसका संबन्ध है। स्वास्थ्य शक्तियों के संगठन का जो प्रकार एक राज्य के लिये उपयुक्त हो, वह दूसरे राज्य के लिये उपयुक्त नहीं होगा।"

हमारे देश विशेष, भारतवर्ष, अथवा हमारे राज्य विशेष, भारत की विभिन्न भौगोलिक और राजनैतिक इकाईयों के लिए स्वास्थ्य और चिकित्सा संस्थापनों की इस विशिष्ट योग्यता और उपयुक्तता का निर्णय कौन करेगा? इस प्रश्न का उत्तर अधिक सरल हो जाएगा, यदि हम इस विशिष्ट उपयुक्तता का निर्णय व्यक्तियों द्वारा न कर के तत्सम्बन्धी भावों द्वारा करें। यह प्रश्न दूसरी रीति से पूछा जाना चाहिए। भारतवर्ष में स्वास्थ्य-संस्था की विशिष्ट उपयुक्तता किन भावों द्वारा निर्णीत होगी? उन भावों का जानना सरल है—देश की विशिष्ट आवश्यकताएं, स्थितिएं और साधन, प्रयुक्त किए जाने वाले चिकित्सा प्रकार की उपयोगिता और तात्कालिक अवसरानूकलता तथा स्वीकृत योजना की कृतिसाध्यता।

(८) हमारा देश और हमारे देशवासी

भारतवर्ष की विशिष्ट आवश्यकताएं वही नहीं हैं जो पाश्चात्य देशों की हैं। भारतवर्ष में सफल और उपयोगी होने के लिए चिकित्सा सहायता के संगठन का देश के आहार, विहार और प्रथाओं से सामञ्जस्य करना आवश्यक होगा। भारतवर्ष में साधन विशाल और अनन्त हैं परन्तु अभी उनका संगठन और उपयोजन बहुत अपूर्ण हैं। चिकित्सा साहाय्य देश के साधनों को भुला नहीं सकता। यद्यपि केन्द्रीय सरकार ने

सस्तेपन, और तत्सम्बन्धी मांगों के प्रति बार २ घृणा प्रकट की है, और भोर कमेटी द्वारा भारतवर्ष में आयुर्वैदिक सहायता पहुंचाने के प्रश्न को दबा कर तथा स्वयं चोपड़ा कमेटी रिपोर्ट को रद्द कर के ऐलौपैथिक चिकित्सा सहायता को ही भारतवर्ष की एक मात्र सरकारी सहायता का वाहन बनाने का निःशेष प्रयत्न किया है, तथापि देश के आर्थिक साधन हीन होने के कारण वह प्रयत्न सर्वथा निष्फल गया। मैंगसल्फ और फ्रूट सौल्ट हरड और सोनमुखी की पत्ती का स्थान न ले सके। बनफशा का क्वाथ सैलिसिलेट्स और सल्फा ड्रग्ज़ पर अब भी राज्य कर रहा है। केन्द्रीय सरकार की ओर से भारतीय चिकित्सा के विशाल साधनों के संगठन और उपयोजन की ओर कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं हुवा। यदि सककार इस ओर अधूरा प्रयत्न भी करती, तो भीं देश की आवश्यकताएं पर्याप्त शीघ्रता और सरलता से पूरी कर लेती। पहली जाग सरकार को भोर कमेटी के छपनें के सात वर्ष पश्चात् आई। भारतवर्ष में जूनियर पाठयक्रम की स्थापना का सदा विरोध करते २ उसने इसकी कड़ी आवश्यकता को अब इतना महत्त्व दिया कि केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् की पहली बैठक का प्रधान विषय हीं इसको बनाया। जूनियर कोर्स (लघु पाठ्यक्रम) को सहायक पाठ्यक्रम कह देना इस बात को नहीं छुपा सकता कि देश की आवश्यकता पूर्ण करनें के लिए सरकार चिर विस्मृत जूनियर कोर्स ही की शरण ले रही हैं। परन्तु केन्द्र को एक और भी जागृति की आवश्यकता हैं। यह पहचानना पड़ेगा कि ऐलोपैथी का छोटा पाठ्यक्रम देश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। भारतवर्ष में फलप्रद और उपयुक्त होने के लिए जूनियर कोर्स का अधिकांश में आयुर्वैदिक होना अनिवार्य है। आयुर्वैदिक और ऐलौपैथिक जूनियर पाठ्यक्रम की तुलना जो आगे की जा रही है इनकी उपयोगिता और तात्कालिक अवसरानूकलता पर प्रकाश डाल कर इस विषय को अधिक स्पष्ट कर देगी।

(९) आयुर्वैदिक और ऐलौपैथिक ग्रामचिकित्सा साहाय्यों की तुलनात्मक उपयोगिता

स्वार्थी विदेशियों के कई शताब्दियों से चले हुए दीर्घ तथा अनवरत आयुर्वेद विरोधी आन्दोलन, जिसमें कि उनको इस देश के सरल मूर्खों और स्वार्थी धूर्तों की भी पूर्ण सहायता मिली, ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में बहुतसी भ्रांतियां फैलाई हैं। सौभाग्यवश इस देश की अधिकांश जनता उनसे प्रभावित नहीं हुई। तथापि उन भ्रांतियों का दूरीकरण देश में आयुर्वेद की वास्तविक परिस्थिति के सच्चे चित्रण में सहायक होगा। आयुर्वेद के लिए जो मांग उठती है वह केवल सस्तेपन पर निर्भर नहीं। इस के विशेष गुण इस द्वारा व्याधि नाश में स्थायित्व और इस के औषध सेवन में हानि और प्रतिक्रिया का अभाव हैं।

मैंने जो वक्तव्य हैल्थ पैनल के समक्ष उपस्थित किया था, उसका निम्नलिखित उद्धरण कथन को स्पष्ट कर देगा:—

"आयुर्वेदिक घरू दवाइयां-पेट दर्द में तुलसी का रस, अदरक का रस, और अजवायन, मल के आंव और रुधिर युक्त होने और मरोड़ उठने पर हरड़, सोण्ठ और सौंफ के चूर्ण का प्रयोग, रक्तपित्त में वासा स्वरस, दमे में धतूरे का धुआं, प्रतिश्याय में बनफशा, संग्रहणी में कुटज, इत्यादि केवल प्रारम्भिक सहायतायें नहीं हैं, इनमें से कुछ तो उच्च कोटि की रोगोन्मूलक चिकित्सायें हैं, जो आधुनिक विज्ञान की उच्चतम कृतियों से तुलना किये जाने पर भी उत्कृष्ट सिद्ध होंगी। कई बार तो इन साधारण औषधों ने उन रोगियों पर अपनी योग्यता प्रमाणित की, जो भारत और विदेशी के एलौपैथिक चिकित्सकों से उच्चतम आधुनिक चिकित्सा करा कर हताश हो चुके थे।"

"जिस देश की औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी आवश्यकताएं इतनी विशाल हों जितनी कि भारतवर्ष की हैं उसकी उपज को बड़ी अथवा गम्भीर व्याधियों की अपेक्षा छोटी व्याधियों से अधिक भय होता है। अमेरीका के औद्यौगिक आंकडों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि सर दर्द, सर्दी, प्रतिश्याय, और उदर शूल आदि साधारण व्याधियां करोड़ों काम करने के घण्टों का चढ़ावा ले लेती हैं जिससे कि करोड़ों डालरों की हानि होती है। बड़ी व्याधियों द्वारा जो हानियां होती हैं उन से यह सहस्त्रों गुणी अधिक हैं। और यह भी नहीं भूलना चाहिये कि छोटी व्याधियों का बार २ आक्रमण करना रोगी के शरीर को शक्तिहीन बनाकर बड़ी व्याधियों के आगमन के लिये तैयार कर देता है। इस के अतिरिक्त बहुत सी तीक्ष्ण डाक्टरी दवाईयां ऐसी हैं कि उन का सेवन ही शरीर को इतना ढीला और निर्बल कर देता है कि सेवनकर्त्ता चिरकाल के लिये अशक्त हो जाता है। इससे भी राष्ट्रीय स्वास्थ्य और प्रयत्न की भारी क्षत्ति होती है। एक साधारण प्रतिश्याय का रोगी लीजिये, जिसको नाक और गले में प्रदाह हो। यदि इस की चिकित्सा नहीं होगी, तो रोगी पूर्ण योग्यता से कार्य्य नहीं कर सकेगा। इस व्याधि का ध्यान नहीं किया जायगा तो अधिक बड़ी व्याधि हो जाने की संभावना होगी। यदि उसे सल्फा ड्रग्ज, एफीड्रीन अथवा समान प्रभावयुक्त औषधों से बनी नाक में डालने की बूंदें, पेनिसिलीन, ओरियोमाइसीन, अथवा टैरामाईसीन इनमें से किसी औषध का सेवन कराया जायेगा, तो उसके लिए कई दुःखद परिस्थितियाँ खड़ी हो जाएंगी। ओरियोमाइसीन क्षोभ उत्पन्न कर सकती है जिससे जी मचलाता है और वमन आरंभ हो जाती है। टैरामाइसीन की भीं यही कथा है। पेनिसिलिन खिलाये जाने पर पूरा लाभ नहीं करती और भारतवर्ष के गावों में इन्जेक्शन देने के लिये कर्मचारियों का इस समय तो अभाव है ही परन्तु भविष्य में भी वह अभाव कई वर्षों तक जारी रहेगी। नाक में टपकाने की जो आधुनिक

दवाइयां हैं उनका प्रभाव अत्यन्त अस्थायी है और उन्हें लेने की आदत छूटनी कठिन हो जाती है। सल्फा ड्रग्ज अत्यन्त विषैली हैं। उनके सेवन करने वालों में कईयों को तो यह सौदा बहुत ही महंगा पड़ता है। चाहे यह औषध उन्होंने उच्चतम चिकित्सकों की देखरेख में ही खाई हो। क्षुधा नाश, पाण्डुरोग, यकृत और वृक्कों की हानि, सामान्य निर्बलता और चित्त विभ्रम, जो इन औषधों के प्रयोग करने पर प्रायः प्रकट होते हैं, कभी २ बर्षों तक चलते हैं। इनका प्रयोग कई रोगियों को अधिक दुःखी और अधिक बुद्धिमान बना जाता है। उन्हें यह ज्ञान हो जाता है कि ऐसी चिकित्सा और उसके प्रभाव से तो मूल प्रतिश्याय ही अधिक हितकर होता है। और वह अधिक सस्ता भी होता है क्योंकि वह निःशुल्क मिलता है।

"अधिक ध्यान देने योग्य भाव यह है कि उपर्युक्त औषधों में से एक भी ऐसी नहीं जो रोग के विरुद्ध सेवनकर्त्ता की विशिष्ट प्रतिबन्धिकी शक्ति को ऊपर उठाए उनमें से प्रत्येक ही रोगाणु नाशक औषध है। इसका उत्कृष्टतम कार्य अस्थाई रोग निवारण मात्र है। रोग के आगामी आक्रमण से जो कि पहले आक्रमण से अधिक तीव्र होता है रक्षा करने का इसमें कोई गुण नहीं। प्रत्येक भावी आक्रमण पर औषध का बल कम होता जाता है और उसकी मात्रा की वृद्धि होती जाती है।

"अब जरा साधारण बूटियों के क्वाथ की ओर ध्यान कीजिए जो भारत की माताएँ और स्त्रिएँ भी प्रतिश्याय में प्रयुक्त करती हैं और जिसे भारतीय वैद्य और हकीम तो प्रयोग में लाते ही हैं। प्रथम तो यह किसी प्रकार की भी हानि कभी करता हीं नहीं यह रोगी को शांति देता है और हतोत्साह नहीं करता। इसकी प्रधान क्रिया क्षेत्र अर्थात् शरीर पर है, न कि बीज अर्थात् रोगाणु पर। मूर्खों के हाथों में भी यह अहितकर सिद्ध नहीं हो सकता। प्रधानतया प्रतिश्याय को लाभ करते हुए यह अन्तड़ियों और वृक्कों का निर्विषीकरण भी करता है जो और भी लाभदायक है। इस क्वाथ के सेवन के समय गांवों में किसी चिकित्सक की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं। न ही यकृत् और वृक्कों की व्याधि पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। सल्फाड्रग्ज़ के सेवन में इन आशयों की देख रेख सर्वथा अनिवार्य है। परन्तु इस क्वाथ के लिए किसी चेतावनी अथवा रक्षा की आवश्यकता नहीं। तो भी यह इतना फ़लप्रद है जितनी कि अच्छी से अच्छी औषधियां हो सकती हैं।"

जिस वक्तव्य में से उपर्युक्त उद्धरण लिया गया है उस पर पुनः ध्यान कर लेना सरकार के लिए लाभदायक होगा। यह वक्तव्य प्लेनिंग कमीशन की स्वास्थ्य-परिषद् द्वारा बुलाई गई ८ सितम्बर, १९५२, की मीटिंग की कार्यवाही से प्राप्त हो सकता है।

अधिकांश ऐलोपैथिक औषधियां तीव्र विष हैं। वैज्ञानिकता की पुकार होते हुए भी

इनमें से एक बड़ी संख्या का क्रिया-प्रकार पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं। उन पर नई शोध होती है तो उनसे उत्पन्न होने वाली नई-नई हानियों का पता चलता है। कभी-कभी तो वह अग्रणी डाक्टरों के हाथों में भी निरापद और भयरहित सिद्ध नहीं होतीं। उनका छोटे डाक्टरों के हाथों में होना तो अत्यधिक ही भयावह होगा। आयुर्वैदिक जड़ी बूटियों, क्वाथों और अधिकांश औषधों का स्टैण्डर्ड (एक दर्जा) बांधना बिलकुल भी अनिवार्य नहीं बल्कि आवश्यक भी नहीं। परन्तु ऐलोपैथिक औषधें यदि स्टैण्डर्ड न हों तो या तो बिल्कुल रद्दी होंगी या अत्यन्त हानिकर। उच्चकोटि के विदेशी चिकित्सकों के हाथों में भी पाश्चात्य स्वास्थ्य पर उनका सन्तोषजनक प्रभाव नहीं पड़ा। डाक्टर एलेक्सिस कैरल कहते हैं, "हम शरीर (अवयव तथा गात्र) नाशक व्याधियों से अधिकतर संख्या में मर रहे हैं। बीमारियां काबू में नहीं आई हैं उनका प्रकार बदल गया है। शायद आधुनिक स्वास्थ्य-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान और शिक्षा-प्रणाली की कृतियां इतनी लाभप्रद नहीं जितना कि हमें विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया जाता है।"

आयुर्वेद मूर्खों द्वारा प्रयुक्त होने पर भी निरापद है। ऐलोपैथी ऐसी नहीं। भारतीय प्रणाली जूनियर शिक्षण के लिए अत्युपयुक्त और फलप्रद है। आधुनिक विषैली औषधों के सेवन पर बड़े शहरों में उनकी प्रतिक्रियाओं से हो रही दैनिक मृत्युओं की संख्या और चिरकाल तक रहने वाली क्षीणता और निर्बलता इसका प्रमाण है कि मध्यम अथवा अधम श्रेणी के डाक्टरों के हाथों में ऐलोपैथी बहुत हानिप्रद सिद्ध हो सकती है। कुछ समय हुआ मुझे एक २८ वर्ष के सुडौल युवा पुरुष को देखने के लिये बुलाया गया जिसको कि जीवन भर में कोई गम्भीर व्याधि नहीं हुई थी। उसनें सल्फा ड्रग्ज की दो ही मात्राएं ली थीं वह भी डाक्टर द्वारा दिए जाने पर। इसके अतिरिक्त केवल एक ही दूसरा उपचार हुआ था वह मलेरिया नाशक एक क्विनीन इंजेक्शन। नगर के एक अग्रणी पैथालोजिस्ट ने मुझे कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी सल्फाड्रग-असहिष्णु था। अस्तु, इन दो औषधों की तीन मात्राओं का फल यह हुआ कि रक्तनाशक कामला (हीमोलिटिक जाण्डिस) और वृक्कसन्यास द्वारा रक्त में मूत्र-वृद्धि (यूरीमिया) यह दो मारक लक्षण उत्पन्न हो गए। मैं सिवाय यह कहने के कि रोगी का उपचार मेरी शक्ति से बाहर है और कुछ नहीं कर सका। शीघ्र ही रोगी की वृक्कसन्यास से मृत्यु हो गई। उसने जो औषध ली वह स्टैण्डर्ड थी। डाक्टर ने किञ्चित भी भूल नहीं की थी। औषध-व्यवस्था सर्वथा निर्भ्रान्त थी। विज्ञान ने स्वयं ही रोगी को मार डाला। उसकी चिकित्सा न की जाती और डाक्टर उसे अपनी हालत पर ही छोड़ देते तो वह अपना साधारण जीवनकाल पूर्णतया भोग सकता था।

एक प्रसिद्ध ऐलोपैथ के साथ मुझे वायुयान से अहमदाबाद ले जाया गया। वहां

भी जो प्रधान उपद्रव (मस्तिष्कगत रक्तपित्त) सामने था वह उपचारजन्य था, रोगजन्य नहीं। २४ वर्ष की एक युवा स्त्री को साधारण प्रतिश्याय हुआ और रक्त परीक्षा में इओसीनोफिल (Eosinophilia) कुछ अधिक पाये गये। डाक्टर ने किसी मल्लयोग का इंजेक्शन दिया। क्योंकि मल्लोपचार का यह पहला ही इंजेक्शन था अतएव औषध की मात्रा भी बड़ी नहीं थी। डाक्टर ने कुछ भी भूल नहीं की थी। इस युवा रोगिणी जिसे कोई भी गम्भीर व्याधि नहीं थी, की "मृत्यु का कारण निर्भ्रान्त और उचित रूप से दी गई स्टैण्डर्ड वैज्ञानिक चिकित्सा स्वयं ही थी।" मैंने तो हाथ डालने से इन्कार कर दिया और विवशता से इस स्त्री के प्राणों को राज्य के उच्चकोटि के चिकित्सकों के योग्य और निर्दोष हाथों में निकलते देखा।

कई बार जब ऐलोपैथिक औषधों के सेवन से रोगी मरते नहीं तो चिरकाल के लिये अधमरे अवश्य हो जाते हैं। क्विनाइन और एस्पिरिन जैसी साधारण औषधें भी अपनी विशिष्ट व्याधियों सिकोनिज्म और सैलिसिलिज़्म् को अपने साथ रखती हैं। प्रसिद्ध अमरीकन मासिक पत्र, टाईम के दिसम्बर १९५२ के अङ्क में निम्नलिखित शिक्षाप्रद घटना का उल्लेख है:—

" २½ से ६ महीने तक की आयु के तीन बच्चों की एस्पिरिन का विष चढ़कर मृत्यु हो जाने पर सेण्टलूइसके हैल्थ कमिश्नर जे० अर्ल स्मिथ ने माता पिताओं को चेतावनी दी है कि एस्पिरिन एक भयानक (विषैली) औषध है और डाक्टर की देखरेख में रोगी को विना रखे कभी सेवन नहीं करानी चाहिये।"

क्या गांवों के अध्यापक और पोस्टमास्टर इन अमरीकन मातापिताओं से कुछ अधिक बड़े वैज्ञानिक हैं जो सरकार ऐसी औषधों को उनके हाथों में जनता में खुला वितरण करने के लिये दे रही है? या यह केवल इसीलिये किया जा रहा है कि सरकार के ऐलोपैथिक सलाहकार उस आयुर्वेदिक सहायता को दबाने के लिए उत्सुक हैं जो वहां पहले से ही विद्यमान है? ग्रामों में आयुर्वेदोपचार प्रतीक्षा कर रहा है कि उसका थोड़ा सा संगठन कर दिया जाये। इतना करने से भी सरकारी खजाने पर अत्यधिक दबाव न डालकर वह देश का एक सर्वांग सम्पूर्ण और सर्वथा उपयुक्त चिकित्सा संगठन बन सकता है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि जिन दुःखद मृत्युओं का वर्णन ऊपर किया गया है वह किसी ठगी, और लापरवाही का परिणाम नहीं थी। उनका कारण स्वास्थ्य और व्याधि की समस्या को सुलझाने की मूलप्रक्रिया का ही दोषपूर्ण होना था। फिलाडेल्फ़िया के डाक्टर जार्ज क्लार्क ने डाक्टरी की इस व्याधि को अच्छी प्रकार पहिचाना है:—

"जैसे मैं चरक से प्रत्येक अध्याय को पढ़ता जाता हूँ मैं सदा एक ही परिणाम

पर पहुँचता हूँ और वह यह है कि यदि आजकल के डाक्टर अपने द्रव्यगुण-शास्त्र में से सम्पूर्ण आधुनिक औषधों और रसायनों को निकाल डालें और अपने रोगियों की चिकित्सा चरक के सिद्धातों के अनुसार करें, तो संसार में जीर्ण रोगियों की संख्या घट जायेगी और कबर खोदने वालों के लिये काम थोड़ा रह जायेगा।"

(१०) आयुर्वेद और जूनियर पाठ्यक्रम

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, ऐलोपैथिक चिकित्सा से हुई मृत्युओं के उपर्युक्त उदाहरण ग्रामों से नहीं लिये गए। मैंने तो उन्हें बड़े ऐलोपैथिक अस्पतालों अथवा निर्धनों की झोपड़ियों से भी नहीं लिया, कि कहीं लापरवाही अथवा लोभ इन दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी न समझ लिए जाएँ। मैंने यह उदाहरण लक्षाधीशों के महलों से लिए हैं जहां कि नागरिक चिकित्सा-व्यवसाय की छांट का चिन्तामग्न नृत्य रोगी को प्रति क्षण उपलब्ध रहता है। यदि यह चिकित्सा-प्रकार उच्च कोटि के डाक्टरों के हाथ में इतना भयंकर सिद्ध हो सकता है तो कम योग्यता के जूनियर डाक्टरों के हाथ में रोगियों की क्या दशा होगी? परन्तु जूनियर आयुर्वैदिक चिकित्सक की कथा इससे भिन्न है। उनका द्रव्यसमूह हानिरहित, सरल, फलप्रद और निर्विकार हैं। वह गांव वालों के आहार-विहार का ही सामंजस्य करके रोगी को लाभ पहुंचाने की क्षमता रखता है। औपसर्गिक रोगनाशक आधुनिक उपचार (चेचक का टीका आदि) उसको सरलता से पहुंचाए जा सकते हैं और उसके चिकित्सा-क्रम का अङ्ग बन सकते हैं। इस प्रकार ग्राम चिकित्सा-योजना का आयुर्वैदिक संगठन ऐलोपैथिक संगठन की अपेक्षा बहुत थोड़े व्यय और विलम्ब से बहुत अधिक उपयोगिता और कृति-साध्यता को प्राप्त हो सकता है।

सरकार के ऐलोपैथिक सलाहकार चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन में प्रारम्भिक विज्ञानों की आवश्यकता की निरन्तर रट लगाते रहते हैं। चिकित्सक विद्यार्थियों पर थोपी गई इस भारी शिक्षा का अधिकांश कितना अनुपादेय और समयनाशक है यह निम्नलिखित अति प्रामाणिक और सुस्पष्ट गवाही से सिद्ध हो जायगा। निम्नलिखित वाक्य डा० जे० टी० बेलनिकॅल की प्रसिद्ध आत्मकथा The Span of Time में से उद्धृत किये गये हैं। इस पुस्तक का इस वर्ष संसार भर के अग्रणी समाचार पत्रों के साहित्यिक विभागों ने बड़े उत्साह से स्वागत किया है और सर फिलिप्स गिब्ज ने इसे आध्यात्मिक बल और साहसी वीरता का आश्चर्यजनक संमिश्रण कह कर सम्मानित किया है। डा० बेलनिकॅल कहते हैं:—

उन २५ वर्षों में जिनमें मैंने डाक्टरी व्यवसाय किया मुझे कभी Botany (वनस्पति शास्त्र) की आवश्यकता नहीं पड़ी, और इस विषय के ज्ञान ने मुझसे अपने उन पाठ्य-

ग्रन्थों के साथ ही विदा ले ली जिनको मैंने उत्तीर्ण विद्यार्थियों की सूची में अपना नाम देखते ही बेच डाला।"

निम्नलिखित वाक्य महान् वैज्ञानिक एलैक्सिस कैरल ने स्वयं लिखे हैं:—

"गणित, भौतिक और रसायन आवश्यक विज्ञान हैं, परन्तु जंगम सृष्टि सम्बन्धी विज्ञान की शोध में प्राथमिक विज्ञानों का स्थान नहीं ले सकते।"

यदि इन प्राथमिक विज्ञानों के सम्बन्ध में स्वयं ऐलोपैथी के लिए इतने महान् ऐलोपैथिक नेताओं का यह विचार है तो आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में इन विज्ञानों को सम्मिलित करना कितना निरर्थक होगा, यह समझना कठिन नहीं। इनको आयुर्वेद के पाठ्यक्रम से निकाल डालने से योग्यता में कुछ भी कमी न होकर बहुत से बहुमूल्य समय की बचत हो जाएगी। इसे मैं राष्ट्र के लिए एक ठोस सम्पत्ति की बचत समझता हूँ।

ग्राम निवासियों की प्रथम आवश्यकता सामान्य चिकित्सक हैं। सामान्य चिकित्सा आयुर्वेद की प्रधान विशेषता है। ऐलोपैथी की विशिष्ठ रूपरेखा जो मनुष्य की अपेक्षा रोग पर अधिक ध्यान देती है सामान्य चिकित्सा के क्षेत्र में इस विज्ञान को असफल बना देती है। विशेषज्ञता को अत्यधिक महत्व दिए जानें से चिकित्सा-विज्ञान की प्रधान शाखा अर्थात् सामान्य चिकित्सा के स्थान और उपयोगिता की जो हानि हुई है उसका ज्ञान भारतीय ऐलोपैथों के आध्यात्मिक और विद्यागुरु, ब्रिटिश चिकित्सक समूह, को भी होनें लगा है। प्रसिद्ध चिकित्सा मासिक,, प्रेक्टिशनर (जनवरी १९५३), के सम्पादक लिखते हैं:—

"पिछले कुछ वर्षों से ब्रिटिश चिकित्सा का हमारी आंखों के सामने अधःपतन होता जा रहा है। अत्यधिक विलम्ब हो जाने से पहिले ही इसका पुनरुद्धार होना आवश्यक है और इस पुनरुद्धार में पहला पग इस सबसें पुरानी और सबसे बड़ी शाखा (सामान्य चिकित्सा) को पुनर्जीवित करना है।"

सम्पादक महोदय ने सामान्य चिकित्सा का जो लक्षण किया है, वह सर्वथा उसी कार्य का वर्णन है जो वैद्य आज तक करते रहे हैं, 'सामान्य चिकित्सा का अर्थ सामान्य चिकित्सा का व्यवसाय है, जिससे रोगी की सभी बीमारियों में उसकी सेवा करना, वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो तो उसे सम्मति देना, विपत्ति में हो तो उसे सांत्वना देना, इन सभी भावों का अन्तर्भाव है।" इनके 'सामान्य चिकित्सक' और गांव के वैद्य में कितनी अधिक समानता है:—

"प्रायः यह लोग सन्तुष्ट रहते हैं। वे किसी पारितोषिक की खोज नहीं करते सिवाय उन लोगों की भक्ति और स्नेह के जिनकी वे सेवा करते हैं। वे अपने व्यवसाय

के विज्ञान की कला में लीन रहते हैं और इतने कार्यग्रस्त रहते हैं कि अपने अनुभव भी नहीं लिख सकते, तथा वे अपने भाग्य और परिस्थिति से इतने प्रसन्न रहते हैं कि व्यक्तिगत उन्नति करने का ध्यान तक भी उन्हें नहीं आता।"

(११) मिश्रित

मैं चाहता हूं कि सरकारी अधिकारी निम्नलिखित बातें ध्यान में रखें, इनकी पुष्टि के लिए अब कोई प्रमाण या उदाहरण मैं नहीं दूंगा, उनके बिना ही यह भाषण बहुत लम्बा हो गया है और अब इसे समाप्त करना आवश्यक है।

आयुर्वेद को नष्ट करने का प्रयत्न जो मुगलराज्य में निर्दयता से, ब्रिटिश राज्य में कूटता से और इस राज्य में नीचता से (जो डाक्टरों के हाथ में आयुर्वेदिक शासन आ जाने के कारण प्रवृत्त हुई) निरन्तर प्रचलित रहा, वह ग्राम वैद्य को निर्मूल करने

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिए अत्युत्तम महौषधि

नव रत्न रस

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है। शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि का विशिष्ट कार्य है तथा नपुंसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव-यौवन प्रदान करता है। स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है। वन्ध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है। बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बनाकर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान, स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। क्षय, जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है।

नवरत्न रस निरोगी के लिए रसायन और रोगी के लिए पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है। २८ गोली की प्रति शीशी का मूल्य ५) रु०

ऊँझा फार्मेसी लि० (गुजरात) ऊँझा

में सर्वथा निष्फल रहा। करोड़ों रुपयों द्वारा सहायता दिए जाने पर भी और स्वास्थ्य मन्त्रणालयों पर बेरोक टोक साम्राज्य रखते हुए भी ऐलोपैथी ग्रामीण भारत को नहीं जीत सकी। कब तक केन्द्रीय सरकार प्राकृतिक परिस्थिति के विरुद्ध यह निरर्थक और निष्फल युद्ध करती रहेगी? आवश्यकता है कि सम्पूर्ण कार्य प्रणाली में आमूल परिवर्तन किया जाय।

भारतवर्ष में आयुर्वेद की वह हीन परिस्थिति नहीं जो चीन में चीनी चिकित्सा, यूनान में यूनानी चिकित्सा और मिश्र में मिश्री चिकित्सा की है। यह एक जीवित चिकित्सा प्रणाली है। डा० एलैक्सिस केरल और केनेथ वाकर सदृश आधुनिक विज्ञान के महान् आचार्य जो अपने व्यवसाय में ख्याति के उच्च शिखर तक पहुँचे हुये हैं। संसार की स्वास्थ्य-समस्याओं को सुलझाने की खोज में आयुर्वेद की प्रशंसा करते हुए इसकी ओर आशा से देखते हैं। कोई भी निराश हुआ आधुनिक वैज्ञानिक सांत्वना के लिए चीन, जापान, यूनान अथवा मिश्र की ओर नहीं देखता।

आयुर्वेदिक चिकित्सा सच्चे अर्थों में मूर्खों के हाथों में भी हानिरहित है। जब विशिष्ट व्याधि का पता न चले उस समय सामान्य व्याधि-समूह की चिकित्सा करने की इसकी विधि फलप्रद चिकित्सा-लाघव की एक आश्चर्यजनक कृति है। आधुनिक चिकित्सा में यदि विशिष्ट रोग विनिश्चय शीघ्रता से और निश्चयात्मक रूप से प्रचलित प्रणाली के अनुसार न हो जाए तो फिर जो कुछ भी किया जायगा वह प्रलयकारी होगा। थोड़ी सी लेब्रोरेट्री ट्रेनिंग लेने पर वह प्रचलित रोग विनिश्चय कोई भी कर सकता है, वह चाहे जूनियर वैद्य हो चाहे जूनियर डाक्टर। परन्तु जहां प्रचलित प्रक्रिया के हाथ से रोग विनिश्चय निकल गया फिर बड़े से बड़े अग्रणी डाक्टर भी खड़े मूंह देखते हैं और पता नहीं चलता कि क्या व्याधि है। जूनियर डाक्टर तो बेचारा वहाँ करेगा ही क्या! मैं यहां इस प्रकार के रोगियों की गणना आरम्भ नहीं करूंगा डाक्टरी जिनका रोग विनिश्चय नहीं कर सकी चाहे यह रोगी बड़े से बड़े नगरों के उच्चतम डाक्टरों के हाथों में रहे और हैं। इनकी संख्या बहुत बड़ी है। यह तथ्य ध्यान में रखते हुए कोई भी बहाना नहीं रह जाता जिसके कारण कि वैद्य को यह उत्तरदायित्व सौंपने में रुकावट डाली जा सके कि वह भारतवर्ष के छः लाख ग्रामों में फैले हुए अपने लाखों भाइयों को सुसंगठित करके उनको न्यूनतम आवश्यक उपादेय शिक्षा देकर शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्र की स्वास्थ्य योजना का संगठन करे।

बीस मोटर बसें भी चलते फिरते आतुरालयों और चिकित्सा विद्यालयों के रूप में एक ग्राम से दूसरे ग्राम में घूमती हुई ग्राम वैद्य को बिना नगरों में घसीटे और घर बैठे ही

ट्रेनिंग देकर एक वर्ष के भीतर देश के ग्राम चिकित्सा-साहाय्य का चित्र सर्वथा पलट सकती हैं।

परन्तु प्रत्येक आयुर्वेदिक योजना को सफल बनाने के लिए वही पुरानी शर्त तो अनिवार्य होगी ही कि उनका संचालन आयुर्वेद पर कटाक्ष करने वाले कृतिध्वंसक विरोधी डाक्टरों के हाथों में न दे दिया जाए। यह आश्चर्यजनक है कि कुछ राज्य इस गम्भीर परिस्थिति की शिकायत के प्रति क्यों पत्थरों की तरह बधिर और अवेध्य बने हुए हैं।

मैं बहुत से राज्य के उन स्वास्थ्य-मंत्रियों का हार्दिक धन्यवाद किये बिना यह भाषण समाप्त नहीं कर सकता जिन्होंने पश्चिमत्व की महामारी तथा बंध्या हवाई योजनाओं की बाढ में बह जाने से इन्कार कर दिया। राष्ट्रीय-स्वास्थ्य के क्षेत्र में उन्हीं की सत्ता एक मात्र उन्नति की आशा की किरण है। उन्हीं की सफलता में देश की सफलता है। राष्ट्र की दृढ़ता उसके वासियों के शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रसन्नता पर निर्भर है। भारतवासियों को यह प्रसाद प्रदान करने की शक्ति केवल आयुर्वेद में ही है इसीलिए यह उनके समर्थन का पात्र है। मेरी ईश्वर से यह प्रार्थना है कि राष्ट्र के स्वास्थ्य के दृढीकरण और स्थायीकरण में उनका प्रयत्न पूर्णतया सफल हो और शीघ्र ही फलप्रद हो।

मैं हैदराबाद राज्य के वैद्यों को उनके भाग्य पर बधाई देना चाहता हूं। उनकी सरकार ने आयुर्वेद की दशा में पहिले की अपेक्षा पर्याप्त सुधार किया है। लगभग दश वर्ष व्यतीत हुए जब मैं सर्व प्रथम हैदराबाद में आया था तो आयुर्वेद की दशा

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम
हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य
हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान
विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।
तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७६६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

शोचनीय थी । उस समय के भाषण का विषय ही मैंने "ईश्वर विस्मृत स्थल में आयुर्वेद" रखा था जिससे कि जो कुछ मैंने उस समय देखा, उसके प्रति मेरी प्रतिक्रिया सरलता से जानी जा सकती है । यदि यह सुधार जिसकी नींव वर्तमान शाशकवर्ग ने डाल दी है इसी प्रकार प्रगति करता गया तो इस राज्य के स्वास्थ्य और चिकित्सा संगठन का भविष्य अवश्य बहुत उज्जवल होगा ।

आयुर्वैदिक व्यवसाय को मेरा यही उपदेश है कि अवसर को पहिचानें और उसके योग्य बनें । जिस महान प्राचीन संपत्ति का वह उत्तराधिकारी है उसका पात्र सिद्ध हो । हमें आपस के झगड़े-झंझट समाप्त करने चाहिएं तथा अपने व्यवसाय के संगठन और देश की सेवा में तन्मय हो कर जुट जाना चाहिए । पाश्चात्य लक्ष्यों के संपर्क नें हमारे देश के पुराने चिकित्सकों की प्रथाओं को उच्छिष्ट कर दिया है; आधुनिक डाक्टरों की नकल करके हमने अपने व्यवसाय को व्यापार में परिणत कर लिया । हम चरक के उस उपदेश को भूल बैठे हैं जिसका अनुसरण कर के हम युग युग की विपत्तियों और भाग्य के अटूट परिवर्तनों में से जीवित निकल आए हैं । हमें फिर से उसका अनुसरण करना चाहिए । चरक के उसी उपदेश के साथ मैं इस भाषण को समाप्त करता हूँ:--

नात्मार्थं नाऽपि कामार्थं अथ भूतदयां प्रति
यो वर्तते चिकित्सायां स सर्वमतिवर्त्तते ।
कुर्वते यस्तु वृत्यर्थं चिकित्सां पण्यविक्रयम्
स हित्वा कांचनं राशि पांशु राशिमुपासते ।।

[टिप्पणी:--उपर्युक्त भाषण वैद्यरत्न श्री० पं० शिवशर्मा द्वारा अखिल हैदराबाद आयुर्वैदिक कांग्रेस के ताण्डूर में फरवरी के अन्तिम सप्ताह में सम्पन्न द्वितीय अधिवेशन के अध्यक्षपद् से दिया गया था । पाठक पत्रिका के गतांक में गत २९ जनवरी को हैदराबाद में केन्द्रीय स्वास्थ्य-समिति के अधिवेशन होने का समाचार पढ़ ही चुके हैं । पण्डित जी ने अपने इस भाषण में स्वास्थ्य-समिति की कृतियों का ही विशेषतया तर्कपूर्ण सप्रमाण एवं रोचक विवेचन किया है और तथाकथित डाक्टरी-विशेषज्ञों द्वारा आयुर्वेद के प्रति जो उपेक्षा और अन्याय की नीति बरती जा रही है उसके प्रतिकार एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य-समस्या के सुलझाव की दिशा में क्रियात्मक सुझाव प्रस्तुत किए हैं ।

वैद्य समुदाय अपनी समस्यायों को ठीक प्रकार समझ सके और आयुर्वेद विरोधी तत्वों के निराकरण में युक्ति-युक्त एवं फलप्रद् उपायों का अवलम्बन कर सके इस विचार से सम्पूर्ण भाषण अविकल रूप से प्रकाशित कर दिया है । आशा है वैद्यगण इसका पूर्ण लाभ उठावगे ।

--सम्पादक]

आयुर्वेदीय दन्त-रोग विज्ञान

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान को एक चुनौती

ले०–वैद्य श्री किशोरदास भागीरथ गुप्त, अध्यक्ष अखिल भारतीय डेंटल मिशन केन्द्र, बम्बई

आयुर्वेद के सूत्रबद्ध ज्ञान को प्रत्यक्ष कर आधुनिक ढंग पर विकसित नहीं किया गया, इसी कारण उस प्राचीन विज्ञान की सत्यता एवं संपूर्णता के बारे में उसके अपने उच्च कोटि के अनुयाई विद्वान भी शंकाशील हैं। ऐसी दशा में राष्ट्र के सुशिक्षित एवं धनाढ्य वर्ग (जिनमें ऐलोपैथी के ज्ञाता भी समाविष्ट हैं) का उस शास्त्र के प्रति अपूर्णता का दोष लगाना और उसके अन्तर्गत विज्ञान को हेय गिनना स्वाभाविक है। इस प्रकार उक्त विज्ञान का विकास एवं उत्थान कर उसे राष्ट्रीय वैद्यक का स्थान प्राप्त कराने की दृष्टि से हम जब अपनी सरकार की ओर नजर डालते हैं तब ऊपरि-निर्दिष्ट समाज की विचार धाराएँ इस लक्ष्य की प्राप्ति में विघ्न रूप सी बनी हुई दिखाई पड़ती हैं। उसमें भी ऐलोपैथी के विज्ञान का विश्व-व्यापी होना उसके अंध-उपासक स्वार्थ साधु डाक्टरों के लिये तो एक अमोघ शस्त्र सा बन जाता है। इस प्रकार जनारोग्य कल्याण की दिखावटी भावना रखनें वाले आरोग्य के ठेकेदार जो आयुर्वेद के विज्ञान को विश्वव्यापी बनानें के कार्य में कुठाराघात कर रहे हैं, उनको चुनौती देते हुए हम दावे के साथ यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिखाना चाहते हैं कि––"आयुर्वेद शास्त्र का प्रत्येक अंग व उसके अन्तर्भूत सिद्धांत आधुनिक किसी भी चिकित्सा-पद्धति के सिद्धांत से न तो तुच्छ कोटि के हैं और न अपूर्ण ही।"

हमारे इस कथन के प्रमाण में यहां एक ऐसे अंग का उदाहरण हम देना चाहते हैं जिसके सम्बन्ध में वैद्य-समाज स्वयं अपने शास्त्र में त्रुटि का अनुभव कर रहा है। फिर भी उस जगत-नियंता की अनुकम्पा से उसे विकसित करनें का हमें सुयोग मिला है। आयुर्वेद विज्ञान के प्रकाश में रोगियों पर प्रत्यक्ष अनुभव को आधार बनाकर इस कार्य में हम सफल हुए हैं। हमें हमारी गुरू परम्परा में दन्तोत्पाटन की एक कला, जो प्राचीन कालीन शल्यशालाक्य तंत्र का एक अवशेष मात्र है, प्राप्त हुई है। दन्तोत्पाटन के कार्य सम्बन्धी उल्लेख तो सुश्रुत संहिता जैसे अति-प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथ में भी दिया गया है यथा–– "यद्दन्तमध्ये जायते नाडीदन्त तदुद्धरेत। क्षिप्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत्॥ चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्भिषक।" किन्तु उसकी क्रिया विषयक ज्ञान के बारे में सुश्रुत संहिता या अन्य संहिता ग्रंथों से कोई मार्ग-दर्शन नहीं मिलता। फिर भी उपरोक्त

वचन पर से यह बात तो स्वयमेव प्रगट होती है कि नीचे के जड़बे के दृढ़ दांत भी निकाले जाते थे और वे भी केवल एक मूलवाले नहीं अपितु एक से अधिक जड़ों वाली दाढ़ें भी निकाली जाती थीं। क्योंकि सुश्रुत संहिता में व्याघ्रमुख या सिंहमुख रखनें वाले स्वस्तिक, सँडसी का जो वर्णन है वह दाढ़ों की पकड़ के लिये उपयोग में आने वाला ही यन्त्र है। आधुनिक डेन्टिस्ट्री के निर्माताओं ने इस यन्त्र का प्राचीन नाम के आधार पर ही Lion forcepts नाम रखा है। इतना ही नहीं वरंच निकालने वाले दांत का दन्तमास मसूड़ा-यदि दांत के नीचे जड़ों की ओर घटा न हो तो उस परिस्थिति में ग्रीवा के पास से दांत को पकड़ने के लिये मसूड़ों को छुड़ाकर पकड़ने की सूचना भी ऊपर के वचनों में स्पष्टतया से दी गई है। इस प्रकार यह स्वयं सिद्ध हो जाता है, कि सुश्रुताचार्य आदि के उस प्राचीन-काल में दृढ़ दांत एवं दाढ़ निकालने की कोई रीति अवश्य प्रचलित थी। किन्तु उसके वर्णन करनें वाले ग्रंथ का पता नहीं चलता। सम्भवतः कालान्तर में अन्य लुप्त ग्रंथों के साथ वह भी नष्ट हो गया है। उदाहरणार्थ:-

चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि प्रचलित संहिता ग्रंथों में दांतों की भिन्न-भिन्न रचना और उनके कार्यों की दृष्टि से आधुनिक विज्ञान के सम संज्ञक नामों की प्राप्ति नहीं होती किंतु कुछ ही वर्ष पूर्व नैपाल में उपलब्ध काश्यप संहिता में उनके पृथक्-पृथक् नामों का निर्देष राजदन्त, वस्त, दंष्ट्रा, हानव्यादि संज्ञा द्वारा किया हुआ मिलता है।

आयुर्वेद के विकास के कालों में जिस प्रकार से सिद्ध सम्प्रदाय वाला काल चामत्कारिक और तत्काल फल दिखाने वाली रस, भस्मादि औषधियों के निर्माण के लिये अपना सविशेष महत्व रखता है, ठीक उसी प्रकार दन्त-चिकित्सा के क्षेत्र में भी उसकी परछांई का पड़ना भी स्वाभाविक बात है। इस प्रकार हमारी दन्तोत्पाटन की इस कला का निर्माण भी उसी काल से सम्बन्ध रखनें वाला प्रतीत होता है क्योंकि दन्तोत्पाटन करने से प्रथम रोगी को जिन-जिन शारीरिक स्थितियों में से निकलना होता है उनमें स्वस्तिकासन, जालंधर बन्धादि की विशिष्ट यौगिक क्रियाओं का समावेश भी है जिसके कारण दुःख व संवेदना नाशक या संमोहक किसी भी औषधि-द्रव्य के उपयोग के बिना एक क्षण-मात्र में कोई भी दाढ़ या दांत बिना वेदना के निकल जाता है।

दन्तोत्पाटन की प्राचीन कला की इस विशेषता पर आधुनिक विज्ञान के इस विकास एवं चकाचोंधी के युग में अच्छे-अच्छे आयुर्वेद के भक्तों को भी विश्वास नहीं हो सकता। तथापि वम्बई जैसे आधुनिक वैद्यक-विज्ञान में अग्रगामी माने जानें वाले राज्य की डेन्टल कान्फ्रेंस में जब एक नहीं दो-दो बार इस कला का एक ही रुग्ण बाई पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया जा चुका हो तो शंका के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। इतना होनें

पर भी आयुर्वेद सर्जरी को हीन मानने वाले डाक्टर महानुभावों के लिये हमारा यह खुला आह्वाहन है कि वे उस प्राचीन सर्जरी की अवशेष रूप इस कला के प्रयोग को प्रत्यक्ष देखें और अपने विज्ञान के सम्पूर्ण व सर्वोत्कृष्ट होने के दंभ को तिलांजलि दे दें। साथ ही अन्य जिज्ञासु और संशोधक डाक्टर महानुभावों से सादर विनम्र प्रार्थना है कि वें इस कला के पीछे जो वैज्ञानिक भूमिका है उसे आधुनिक ढंग पर शोध निकालने के अवश्य प्रयत्न करें जिससे उनकी शोध किसी और अन्य दृष्टि से संसार भर के लिये उपयोगी हो सके।

इस प्रकार उक्त आश्चर्य-जनक कला के प्रयोगों द्वारा साधारण व सुशिक्षित जनता और देश के नेतागणादि में आयुर्वेद का प्रभाव निर्माण करने के हेतु गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यभारत आदि के मुख्य-मुख्य नगरों के अतिरिक्त भारत के अन्य कई नगरों में धर्मार्थ दन्तयज्ञ करने के अवसर हमें प्राप्त हुए जिनमें हजारों दन्त रोगियों पर इस कला का प्रयोग कर हमने अनुभव प्राप्त किया है। इस प्रकार गत अठारह वर्षों के अनुभव के बल पर आयुर्वेद-शास्त्र के प्रकाश में हमारे अनुसंधान उस चरम सीमा को प्राप्त कर चुके हैं कि उनके आधार पर आधुनिक वैद्यक-विज्ञान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म खोजों को रखने वालीं Physiology जैसे शास्त्र से लगाकर Itiology, diagnosis,

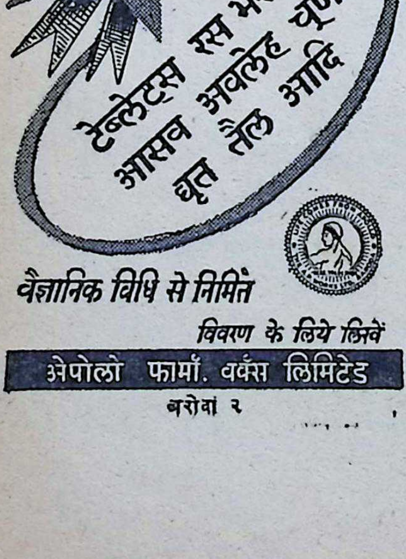
विश्वख्याति
टैब्लेट्स रस भस्म
आसव अवलेह चूर्ण
घृत तैल आदि
वैज्ञानिक विधि से निर्मित
विवरण के लिये लिखें
अेपोलो फार्मा. वर्क्स लिमिटेड
बरोदा २

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें। (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें। (३) महासम्मेलन और वैद्य-समाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (६) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट और शुद्ध भाषा में हों। (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें।

Treatment आदि सब ही विषयों की अपूर्णता पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है। इतना ही नहीं अपितु आयुर्वेद की सैद्धांतिक भूमिका के आधार पर और प्रत्यक्ष प्रयोगों से यह भी सिद्ध कर दिखाया जा सकता है, कि दन्त रोगों कीं उत्पत्ति में केवलमात्र कीटाणु ही कारण नहीं हुआ करते हैं, किन्तु रोग और उसके उत्पादक कीटाणु दोनों की ही उत्पत्ति का तीसरा कारण तो दोष है और उनमें भी कफ दोष की प्रधानता है, जैसा कि मुखरोगों के सामान्य कारण की ओर निर्देष करते हुए आयुर्वेदाचार्यों ने कहा है

"मुखमध्ये गन्दान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः।"

सारांश कि ऐलोपैथी में रोग के निदान का सम्पूर्ण आधार जो जन्तुवाद है उसकी चिकित्सा मूलगामी दोष कीं चिकित्सा से कोई मान्यता नहीं रखती। दन्तरोगों की उत्पत्ति को रोकने के लिये अनेक प्रतिबन्धक उपायों के चालू रखने पर भी यदि रोगों की उत्पत्ति में आज भी दिन-प्रतिदिन जो अभिवृद्धि होती हुई दिखलाई पड़ रही है तो उसका कारण भी यही है, कि "उनके प्रतिबन्धक उपायों की योजना यथार्थ दिशा में नहीं की जा रही है।" फिर भले ही वैद्यकीय व्यवसाय में आयुर्वेदज्ञों द्वारा प्राप्त की जाने वाली सफलता का यश उनकी प्रभावयुक्त एवं अनुभव-सिद्ध औषधि प्रयोगों के पल्ले ही बांध दिया जाय।

आयुर्वेद और ऐलोपैथी के बीच उक्त प्रकारेण जो सैद्धांतिक मतभेद हैं उसका कारण उसके रचयिता ऋषिमुनि आधुनिक सूक्ष्म कीटाणुवाद की शोध से अनभिज्ञ होंगे, ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की मान्यता निरे भ्रम पर अधिष्ठित है। क्योंकि सुश्रुताचार्य ने जिसे कृमिदन्त रोग कहा है उसे ही आधुनिक विज्ञानवेत्ता Cavity कहते हैं और उसके निर्माता एक प्रकार के बैक्टेरिया के कीटाणु हैं। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही वैद्यक-शास्त्रों की दृष्टि से उक्त रोग का कारण एक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणुओं का होना तो निश्चित है फिर भी आयुर्वेदीय रोग संप्राप्ति के सिद्धांतानुसार उसके विप्रकृष्ट कारण का अनुसंधान तो कफ दोष के केन्द्र स्थान-आमाशय संकलित है। जबकि ऐलोपैथी की दृष्टि तो अब तक मुखस्थित लाला तक ही पहुंच सकी है। जिसका मूलतः सम्बन्ध तो उसी केन्द्र स्थानीय कफ दोष से है। इससे तो यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि रोगों के मूल कारण की खोज के सम्बन्ध में आधुनिक संशोधकों की सूक्ष्म दृष्टि की अपेक्षा प्राचीन आयुर्वेदज्ञों की दृष्टि तो कई गुना अधिक गहराई तक पहुंच चुकी थी।

प्राचीनों की उक्त गहरी दृष्टि को प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्वक सिद्ध कर दिखानें के लिये हमारे अनुभवजन्य विकसित ज्ञान के बल पर हमने जो एक प्राथमिक योजना निश्चित की है वह दंतमांसगत "अधिमांसक" नामक रोग से सम्बन्धित है। जिसका, आयुर्वेदानुसार

अन्तिम दाढ़ के आजु बाजु के मांस में निरूपयोगी वृद्धि होना, यह सन्निकृष्ट कारण है। किन्तु ऐलोपैथी की सूक्ष्म दृष्टि अनुसार उस (अक्कल) दाढ़ को ही वे उस रोग का कारण मानते हैं व उसी लिये उक्त रोग को Wisdom toothache कहते हैं। इस प्रकार आमूलाग्र मतभेद की अवस्था में आयुर्वेद के सिद्धान्तों को सत्य, सम्पूर्ण एवं मूलगामी सिद्ध कर दिखाना भी हम अपना परम पवित्र कर्त्तव्य समझते हैं।

उक्त रोग में जो वेदना हुवा करती है उसको कफोत्पादक आहार का, मुंह में किसी भी प्रकार से स्पर्श हुये बिना, सेवन करवा कर प्रथम बढ़ाना और फिर उस बढ़ी हुई वेदना को, बिना किसी प्रकार की स्थानिक चिकित्सा के, केवल कफदोष की कमी करनें वाले साधनों से कम करना, यही हमारा कर्त्तव्य होगा। इस अवस्था में ऐलोपैथी की चिकित्सा के पूर्णत्व का अभिमान रखनें वाले डॉक्टरों के लिये हमारी यह खुली चुनौती होगी कि वे कफोत्पादक आहार के चालु रहते हुये भी अपनी जंतुवादी या अन्य कोई भी चिकित्सा के आधार पर उस रोग के नाश करने में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर दिखायें। साथ ही उन जिज्ञासु संशोधकों के लिये तो यह एक अत्यन्त ही आनन्ददायक विषय होगा कि "रोग के मूलभूत कारण के चालू रहने से उनकी अपूर्ण चिकित्साएं असफल कैसे सिद्ध हुवा करती हैं।" इस प्रकार से वे इस प्रयोग के कारण अपनी अपूर्ण शोधों को पूर्णता के शिखर पर पहुंचनें में अवश्य समर्थ बन सकेंगे। क्योंकि वह उनके लिये एक सत्य मार्ग की दृष्टा सिद्ध होगी।

इस प्रकार हमारा यह हृदयपूर्ण वक्तव्य उन डॉक्टर महानुभावों के प्रति जो आयुर्वेद के साथ सोतैली मां का सा व्यवहार रखते हैं, एक मात्र खुली चुनौती है तो उसे वैद्यक-विज्ञान की आदि माता समझनें वाले जिज्ञासु एवं संशोधकवृत्ति वाले देश-विदेश के डॉक्टरों के लिये हमारा यह जग जाहेर निवेदन पत्र है। क्योंकि वह उनकी जगत-कल्याण की भावनाओं में एक नवीन प्रकार की विचारधारा का प्रवाह जाग्रत कर देने वाला है।

* * *

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम, सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है।

पंच महाभूत सिद्धान्त और विश्व का विकास

ले०--श्री कविराज महेन्द्रकुमार शास्त्री बी० ए०, आयुर्वेदाचार्य, वैद्य वाचस्पति, बम्बई

(फरवरी अंक पृष्ठ ७५ से आगे)

यह कहा जा चुका है कि रजस् केवल कर्तृत्व शक्ति (Kinetic) का नाम है यह स्वयं वन्ध्या हैं किन्तु उत्पत्ति है। सत्त्व तथा तम उत्पादक है किन्तु कर्तृत्व शक्ति रहित। अतः राजस् अहंकार सत्व एवं तम में प्रेरणा कर उत्पत्ति की प्रेरणा करता है और उत्पादन कराता है अतः वह सात्त्विक तथा तामसिक दोनों प्रकार की सर्जना का प्रेरक है और इस अर्थ में उक्त दोनों गुणों का सहायक है स्वयं उत्पादक नहीं। इस प्रकार राजस् अहंकार शेष दोनों प्रकार के अहंकारों की उत्पत्ति में सहायता करता है। तम का तात्पर्य है निष्क्रिय सत्ता जैसा डाल दो वैसा ही पड़ा रहे जिसे आंगल भाषा में Inertia कहा जाता है। अतः प्रकृति की तामसिक सत्ता या शक्ति से इसी गुण वाले पदार्थ (पंचतन्मात्रा) की उत्पत्ति होती है एवं सत्त्व से प्रकृति की सबुद्ध शक्ति या सत्ता से तद्गुण युक्त सबुद्ध या चेतनानुभूतियुक्त सृष्टि होती है। इस प्रकार सात्त्विक अहंकार से या प्राकृतिक चेतनानुभूति (Intellegent-Stuff) से विशिष्ट चेतनानुभूति उत्पन्न होती है जो आगे चल कर विशिष्ट प्रतिव्यक्ति भेदभाव के सिद्धान्त से ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों एवं मन इस प्रकार चेतनानुभूति ११ प्रकार विभिन्न रूपों में अपने को प्रकट करती हैं। जिन व्यक्तियों या प्राणियों में सत्वांश जितना ही अधिक होता है उतनी ही उसकी इन्द्रियां सचेतन होती हैं। मूर्खों से विद्वानों में, साधारण व्यक्तियों से वैज्ञानिकों या योगियों में इसीलिये इन्द्रियों की कार्यशक्ति में भेद पाया जाता है। इस प्रकार सत्त्वगुण स्व को प्रकट करता है।

विकास के सिद्धान्त के अनुसार ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है प्राणियों की शक्तियां अधिकाधिक विकसित होती जाती हैं। उदाहरणार्थ आज से १००० वर्ष पूर्व का मनुष्य आज के मनुष्य से कम बुद्धिमान तथा उसकी इन्द्रिय शक्ति भी न्यून थी। यद्यपि वह शरीर से बलवान् था अर्थात उसमें तम की प्रधानता थी किन्तु सत्व की नहीं। अब सत्व की प्रधानता अधिक है और तम की न्यून अतः एव मनुष्य की सात्विकांश (चेतनानुभूति) बढ़ रहा है और तमस् का अंश शारीरिक शक्ति कम हो रही है। इसी प्रकार जिस २ अंग की प्राणी को अधिक आवश्यकता पड़ती गई त्यों-त्यों वह अंगविशेष अधिक विकसित होता गया।

किन्तु यह सिद्धान्त युक्तियुक्त नहीं मालूम होता है। कारण प्रकृति की जो भी रचना है वह परिपूर्ण है। सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु से लेकर महान् से महान् वस्तु को

ले लीजिए। अमीषा से सूक्ष्म प्राणि में भी प्रकृति नें उसकी आवश्यकतानुसार पूर्ण रचना की है अतः यह कहना कि ज्यों २ आवश्यकता या इच्छा होती गई त्यों २ उसकी पूर्त्ति प्रकृति करती गई युक्तिसंगत नहीं है। प्रकृति की रचना परिपूर्ण है। यह प्राणी की न्यूनता है कि वह अपनी शक़्ति से काम न ले। उदाहरणार्थ यदि मनुष्य सुनना ही न चाहे तो उसे कौन सुना सकता है। यद्यपि सुनने की शक्ति उसके पास हैं। अतः प्रकृति की रचना परिपूर्ण है। भेद केवल इतना है कि प्राणी जिस अंग से काम लेता है उसी का विकास हो जाता है दूसरे का नहीं। यदि हम मोटर में ब्रेक कार्य में न लावें और उसकी अप्रतिहत गति करदें तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मोटर में ब्रेक ही नहीं। हम चाहें तो उनसे काम लेकर उनकी सत्ता सिद्ध कर सकते हैं। इसी प्रकार सृष्टि रचना भी परिपूर्ण है। तथा उक्त सिद्धांत युक़्ति-संगत नहीं है।

जिस समय सत्व प्राकृतिक चेतना शक्ति में विकास एवं प्रतिव्यक्तिभेद तथा विशिष्ट प्रतिव्यक्तिभेद उत्पन्न करने में लगा होता है उसी समय दूसरी ओर तम (Inrtia) भी रजस् की प्रेरणा से स्वगुणों का विकास करने तथा उनमें प्रतिव्यक्तिभेद और विशिष्ट प्रतिव्यक्ति भेदभाव उत्पन्न कर रहा होता है। इस गुण में (तामस् अहंकार में) जब विकास होने लगता है और इसकी अभी तक एक दीखने वाली शक्तियों में भी भेद उत्पन्न होने लगता है और प्रत्येक तामसिक गुण या शक्ति में अहंभाव उत्पन्न हो जाता है और वह सब पृथक् हो जाती हैं। यह तामसिक शक्तियां संख्याभेद से कितनी भी हों इनको ५ वर्गों में बांटा जाता है। यूं कहना चाहिए कि प्राकृतिक रचनात्मक द्रव्य (Mass) स्वयं यद्यपि निष्क्रिय (Inert) हैं किन्तु इसमें रज की क्रिया स्वगुणयुक्त भावों की तरफ आकर्षण हो जाता है और उसी की प्रेरणा से वह एक दूसरे सदृश भाव से फैल जाते हैं। यह स्वजातीयाकर्षण ही रचनात्मक सृष्टि, जंगम स्थावर एवं स्थूल सृष्टि का कारण है। इस प्रकार रचनात्मक द्रव्य (Mass) जो प्रथम सम अवस्था में (निष्क्रिय दशा में) बिखरा पड़ा था वह रजस् की क्रिया से स्वजातीयाकर्षण के कारण परस्पर मिलने लगता है और इस अवस्था को तामस् अहंकार (अहंत्व की प्रतीति) कहा गया है क्योंकि विच्छिन्न तामस गुणों में अपनत्व का भाव आजाता है और इस अवस्था का नाम ही अहंकार है। प्रथम विजातीय गुणों से (सत्व रजस् से) पृथक् एक अहंभाव स्वजातीयत्व का बोध होता है इसको तामस् अहंकार कहते हैं। पुनः विशिष्ट प्रतिव्यक्ति भेदभाव उत्पन्न होनें के कारण यह तामस अहंकार विशिष्ट सजातीयत्व में विभक्त होकर पांच तन्मात्राओं में विभक्त हो जाता है। अर्थात् यह रचनात्मक द्रव्य गुण ५ प्रकार की सजातीय श्रेणियों में विभक्त हो जाते हैं। इनका नाम पंच तन्मात्रा है। यह भी एक अवस्था ही है परमाण्विक सृष्टि नहीं। इसमें केवल तामस शक्ति पांच विभिन्न जातियों में विभक्त हो जाती है। यही प्राकृतिक (जड़) सृष्टि का मूलभूत है। भारतीयों का वर्त्तमान जातिभेद इसका उत्तम उदाहरण है। जिस प्रकार हिन्दुत्व के नाते सब हिन्दु एक हैं उसी प्रकार जनकत्व के नाते

प्रकृति एक है । पुनः ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व तथा शूद्रत्व के कारण इसमें ४ भेद हैं । इसी प्रकार सत्व रजस् तम हैं । पुनः ब्राह्मणों में भी विभिन्न भेद हैं इसी प्रकार तमसादि में भेद है । यह तामसादि भेद इस प्रकार हैं । रजस् का उत्पादक शक्ति न होनें से स्पष्ट भेद नहीं है किन्तु शक्ति अनन्त रूप में प्रकट होती है । सत्व तथा तमस् उत्पादक हैं अतः इनका भेद है । सत्व के ११ भेद हैं । पांच कर्मेंद्रियाँ पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा १ मन इस प्रकार ११ और तमस् के पाँच भेद हैं ।

"पंच तन्मात्रावस्था" से जिसमें तम की पांचों उप जातियों के गुण स्व-स्व उपजाति के गुण के साथ एकत्र होने लगते हैं, पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई होती है । आण्विक सृष्टि बनती है ।

परमाण्विक सृष्टि का विकास

स्वजातीयाकर्षण सिद्धांत द्वारा जब पांच प्रकार की शक्तियां स्व-स्व जातीय पदार्थों को एकत्र करके उनसे स्थूल सृष्टि रचना करती हैं तब उक्त सिद्धांत के अनुसार पांचों प्रकार के अतीन्द्रिय अत्यन्त सूक्ष्मतम गुण परस्पर मिलने लगते हैं और उनके मेल से उनमें कुछ स्थूलता आनें लगती है । जब यह स्थूलता इतनी हो जाती है कि मनुष्य उसे भेद नहीं सकता या उसका विश्लेषण नहीं कर सकता तो उसे हम परमाणु कहते हैं । यह दो परमाणु मिलकर द्वयणु तथा तीन मिलकर त्रसरणु कहाते हैं । इस प्रकार परमाण्विक सृष्टि का विकास प्रारम्भ हो जाता हैं । यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि इस परमाण्विक सृष्टि में स्वजातीयाकर्षण सूक्ष्म सृष्टि से कई सौ गुणां अधिक होता है । यही कारण इसके स्थूल रूप का है । यह विकास क्रम में सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाता है अतः एव पांचो प्रकार की शक्ति में सूक्ष्म भूत प्रथमतः स्थूलभूत की उत्पत्ति सूक्ष्मभूत् के गुणों सहित तथा उस की शक्ति के अंश सहित होती हैं । नीचे का चित्र इसका दिग्दर्शन सम्यक्तया करा देगा ।

भूत	तन्मात्रा
१. आकाश (शब्दधर्मेकम्)	शब्दतन्मात्रा
२. वायु	शब्द एवं स्पर्श
३. अग्नि	,, ,, रूप
४. जल	,, ,, ,, रस
५. पृथ्वी	,, ,, ,, गन्ध

उक्त चित्र द्वारा स्पष्ट है कि उत्तरोत्तर स्थूल पदार्थों में पूर्व पूर्व के गुण आते जाते हैं ।

(क्रमशः)

शीतला के रोधक उपाय

ले०-वैद्यश्री नानक चन्द्र शास्त्री

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि यह रोग किन दोषों से तथा कब उत्पन्न होता है। यह ज्वर प्रायः बसन्त ऋतु में आरम्भ होकर ग्रीष्मान्त तक इसका प्रकोप होता है। यह एक संक्रामक ज्वर है जो सर्व-साधारण व्यक्तियों में होता है परन्च बालकों में अर्थात् पान्च वर्ष तक के शिशुओं में अधिक पाया जाता है। पर्वत प्रदेश में यह रोग अधिकतर बड़ी आयु वाले स्त्री व पुरुषों में भी होता देखा जाता है। यह भारत के सभी प्रान्तों में होता है। इसकी उत्पत्ति ज्वरतितिरभास्कर में इस प्रकार वर्णन की है यथा-कफपित्त प्रकोपाद्याभवेत् क्रुद्ध ग्रहेक्षणात् ज्वरः पूर्वापरो नाम लोके शीतलिकामतः। भिद्यते बहुधाभेदैरिति।

अर्थात् यह रोग प्रायः कफपित्त के प्रकोप से होता है अथवा क्रोधित ग्रहों के दृष्टिपात होने से इसकी उत्पत्ति होती है। यह रोग अनेक भेदों से होता है। इसका नाम पूर्वापर तथा लोक शीतला के नाम से प्रसिद्ध है। इसके भेदों का वर्णन मई सन् १९५२ की सम्मेलन पत्रिका में कर दिया गया है।

उपायः-१. जब शीतला के होने की आशंका हो और जब शीतला के दोष का सन्ताप देह में हो जाए तो उसी समय बासी (पर्युषित) जल के मधु मिला कर पिला देने से शीघ्र दाह शान्त हो जाता है यथा चोक्तम् "शीतला दोष सन्तापे जाते मधुविमिश्रितम्। निवृत्ति कुरुते क्षिप्रं पीतं पर्युषितं जलम्॥"

२. लाजा चूर्ण शर्करा मिला कर तर्पणार्थ देना चाहिये। तिक्त पदार्थों के यूष के साथ खाना देना चाहिए। घृत से सेक, अभ्यंग और लेप करना हित होता है-यह घृत तिक्त द्रव्यों से संस्कृत होना चाहिये।

३. गुडूची, मुलेठी, मुनक्का, मोरट (मूर्वा) अनार का रस इनमें गुड़ मिला जब फुन्सियों का पाक काल हो उस समय देना चाहिये। इससे शीघ्र पाक हो जाता है और वायु का प्रकोप नहीं होता।

४. परबल, गिलोय, नागरमोथा, वांसा, धनियां, जवास, चिरायता, कुटकी, निम्ब, पित्तपापड़ा इन सब द्रव्यों का क्वाथ पिलाने से अपक मसूरी का पाक हो जाता है तथा जो पक गई हों उनका शोधन हो जाता है। उक्तञ्च "नातः परतरं किञ्चिच्छीतलादि ज्वरापहम्।"

५. जो शीतला बाहिर न निकल कर किसी कारण से अन्दर ही रह जाय वह प्रायः मारने वाली कही है अतः उसका उपचार निम्बादियोग से करें यथा—निम्बपत्र, पित्तपापड़ा, पाठा, परवल के पत्ते, कुटकी, वासा, जवासा, आमलक, खस और दोनों चन्दन इन्हें समभाग लेकर शर्करा मिला कर देनें से यह सर्व प्रकार की शीतला को तथा अस्थियों में होनें वाली सर्वदेह व्याप्त तथा शूल आध्मान युक्त ज्वर विसर्प से होने वाली मसूरीका को जो देह पर हो रही हो अथवा जो अन्दर प्रविष्ट हो गई हों उन्हें पुनः बाहर लेआता है। यथा चोक्तम् एषनिंबादिकः ख्यातो योगः शर्करयान्वितः । मसूरीं सर्वजां हन्तिवाऽस्थिजां सर्वदेहजाम् । शूलाध्मान परीतस्यज्वरवीसर्पसम्भवम् । उत्थितां प्रविशन्तींतु पुनस्तां वाह्यतो नयेदिति ।।"

६. सौंफ, तेजपत्ता, जवासा इनको काढ़ा करके और ऊपर से हलदी का चूर्ण मिला कर पीने से रोमान्तिका, ज्वर, विसर्प इनको शीघ्र नष्ट करता है।

७. रसप्रयोगमाह—विल्वपत्र रसेनैव मूर्छितः पारदेश्वरः । हिलमोचिका रसेनैव पीतोमधुसमायुतः । मसूरी सर्वजां हन्ति अस्थिजां सर्वदेहजां । शूलाध्मान-परितस्य कम्पमानस्य वा युतः । अर्थात्—रससिन्दूर की $\frac{1}{2}$ या १ रत्ति की मात्रा बलाबल विचार कर बिल्व तथा हिलमोचिका (ब्राह्मी) के रस के साथ पिलाने से त्रिदोषज अस्थिगत मसूरीका को जो शूल, आध्मान से युक्त हो अथवा जो बालक कम्पन करता हो उसे लाभप्रद है।

८. खैर तथा विजयसार का जल बना कर पिलाना हित होता है।

जब शीतला का पूर्व रूप अर्थात् हिक्का का आना कास, प्रतिश्याय, नेत्र तथा रक्तवर्ण प्रतीत हो तो उसे मुनक्के में अल्प मात्रा केसर की एक तिरी देने से शीतला शीघ्र ही प्रकट हो जाती हैं। उसी दिन से उस रोगी के पास किसी अन्य बालक को नहीं आना चाहिये। उस रोगी को स्वच्छ स्थान पर रखें और उसके पास निम्बपत्र रखें। मल मूत्र करने के लिए वहीं प्रबन्ध कर देना युक्त होता है। शीतला माता का ध्यान, स्मरण, स्तोत्र आदि का पाठ इसमें विशेष लाभप्रद होता है कहा भी है यथा—"जयहोमोपसारैश्च दान स्वस्त्ययनादिभिः। तथा घण्टां द्विजान्गांश्च शिवंगौरीं च पूजयेत् ।। इति

वातरोग

ले०-वैद्य श्री धर्मदत्तजी आयुर्वेदाचार्य, कनखल

(दिसम्बर अंक पृष्ठ ५३४ से आगे)

वातिक प्रतिश्याय--यदि नासाभ्यन्तर कला में सहज या आगन्तु वातिक निर्बलता हो जाय अर्थात् विक्षोभक पदार्थों को सहन करने की उसकी क्षमता हीन हो जाय तो रुधिर में किसी विषद्रव्य के उत्पन्न हो जानें तथा नासामार्ग में धूल आदि किसी विक्षोभक द्रव्य के आ पड़ने पर वहां की सिराएं निर्बल हो कर शिथिल हो जाती हैं तथा उनमें से परिस्रवण के बढ़ जाने से नासाशोथ हो जाता है जिसे वातिक नासाशोथ या वातिक प्रतिश्याय कहते हैं। ऐसे रोगी में सरदी गरमी को सहन करने की शक्ति कम होती है। छींकों का एक वेग में आने लगना इस रोग का प्रधान लक्षण होता है। यह वेग सहसा प्रारम्भ होता और सहसा ही शान्त हो जाता है।

वातिक कास या श्वास रोग:--श्वासनालियों के मांस में विक्षोभों को सहन करने की जो स्वाभाविक क्षमता होती है वह उसकी वातिक शक्ति के कारण होती है। यदि यह शक्ति जन्म से या आगन्तु कारणों से हीन हो जाय तो ऐसी अवस्था में रुधिर में या श्वास-मार्ग में या पेट में किसी विक्षोभक कारण के उपस्थित हो जाने पर श्वास नालियां विक्षुब्ध होकर सहसा स्तब्ध हो जाती हैं। जिससे श्वास कृच्छ्रता उत्पन्न हो जाती है। वातिक शक्ति की हीनता से उत्पन्न इस श्वास को वातिक श्वास कहते हैं।

वातिकश्वयथु:--विरोधी द्रव्य को सहन करने की शक्ति त्वचा में भी होती है। यदि वह स्वभावतः या आगन्तु कारणों से कम हो जाय और ऐसी अवस्था में रुधिर के अन्दर कोई विषद्रव्य उत्पन्न हो जाय तो स्वल्प बाह्याभिघात लग जानें से त्वचा पर शोथ हो जाता है। इसी कारण वात प्रकृति के युवक युवतियों के ओष्ठ या पलक सूज कर भारी हो जाते हैं। चोट लगने से वहां की सिराओं के शिथिल हो जाने तथा उनसे परिस्रवण के बढ़ जाने से यह शोथ होता है। इस सहसा उत्पन्न हो जाने वाले त्वचा के उभार को वातिकश्वयथु कहते हैं।

इसी प्रकार वात प्रकृति के युवक युवतियों के अंगुलियों, कान, नाक आदि के सिरों पर-शीतवायु के स्पर्श से शोथ हो जाया करता है। त्वचा पर शीत संस्पर्श से त्वचा की सिराएं स्तब्ध हो जाती हैं। वहां की त्वचा का पोषण कम हो जाने से वह श्याम वर्ण तथा रूक्ष हो जाती है। गरमी से इसे आराम आता है। इसे भी वातिक श्वयथु कहते हैं।

वातिकपाण्डू--रक्त का निर्माण करने वाले अंगों जैसे अस्थिमज्जा, आमाशय, यकृत्, प्लीहा में एक स्वाभाविक रक्त-निर्माण शक्ति रहती है। उचित पोषक आहार के न मिलने या किसी शारीरिक विष के दुष्प्रभाव से यह वातिक शक्ति हीन हो जाती है तो वातिक पाण्डुरोग हो जाता है। इन अंगो की अशक्ति के कारण जब पाण्डु होता है तथा शरीर में वात प्रकोप के लक्षण होते हैं तब उसे वातिक पाण्डु कहते हैं।

वातिकरक्तपित्तः--स्वभावतः रक्त तरलरुप में रहता है परन्तु उस में यह एक शक्ति है कि जब आघात आदि जनित क्षत से सिरा फट जाता है तब रक्त स्वयं जम कर सिरा में हुए उस छिद्र को बन्द कर लेता है इसे रक्त-स्कन्दन शक्ति कहते हैं । इस शक्ति के हीन हो जाने से जब रक्तस्राव होता है तब इसे वातिक रक्तपित्त कहते हैं। यह शक्ति स्वभावतः कम हो सकती है या ऐसे पोषक आहार के जिसमें विटामिन 'सी' विटामिन 'के' लोहा आदि तत्व उचित मात्रा में न हों, न मिलने से कम हो सकती है।

वातिकमेहरोगः--शरीर के अवयवों में एक विशेष प्राण शक्ति है कि वे भोजन से प्राप्त हुए तत्वों को पूर्णतया अपने में खपा लेते या व्यय करलेते हैं। इसलिये मूत्र द्वारा कोई भी भोजन तत्व शरीर से बाहिर नहीं निकलता। यही शक्ति कार्वोज तथा खाण्ड को अपने अन्दर पूरी तरह खपालेती है। परन्तु जब अति शारीरिक या मानसिक श्रम से तथा अन्यान्य वात प्रकोपक कारणों से यह शक्ति क्षीण हो जाती है तब भोजन में ली गई खाण्ड पूरी तरह शरीर में नहीं खपती तथा मूत्र द्वारा बाहिर निकल जाती है। अग्न्याशय में यह शक्ति विशेष रूप से रहती है। शरीर तथा अग्न्याशय की खाण्ड को खपालेने वाली इस शक्ति की हीनता से उत्पन्न मेहरोग को मधुमेह कहते हैं।

भोजन में खाये गये घृत तेल आदि के शरीर के अन्दर पूर्ण पचन के लिये आवश्यक है कि उनमें खाण्ड का पचन भली प्रकार होता हो। परन्तु जब उनमें खाण्ड का पचन ठीक २ नहीं होता तब स्निग्धतत्व का पचन भी उनमें न्यून होजाता है। शरीर में व्यय न हुआ कुछ स्निग्ध तत्व मूत्र द्वारा बाहिर निकलनें लगता है इसे वसामेह कहते हैं।

इसी प्रकार भोजन में लिये गये प्रोटीन या पोषक तत्व को अपनें अन्दर खपालेने की शक्ति अवयवों में कम हो जाय जैसा कि अति शारीरिक या मानसिक श्रम या शारीरिक विषों के दुष्प्रभाव से वात प्रकृति के युवकों में हो सकता है तो भोजन के प्रोटीन का कुछ अंश मूत्र द्वारा बाहिर निकलने लगता है इसे मज्जामेह कहते हैं।

प्रधानतया शरीर की अशक्ति के कारण उत्पन्न मेह रोगों को वातिक मेह कहते हैं।

वातिकत्वग्रोगः--त्वचा की स्नेह ग्रन्थियां उसे स्निग्ध रखती हैं। स्वेद ग्रन्थियां उसे आर्द्र रखती हैं। बहिश्चर्मका श्लैष्मिकस्तर त्वचा के कोष्टकों या सेलों को श्लिष्ट

रखता है । त्वचा में आने वाले स्नायु सूत्रों से स्पर्श ज्ञान होता है । जब त्वचा के इन अवयवों में वात प्रकोप जनित क्षीणता होतीं है तब त्वचा में रूक्षता, कृशता, शुष्कता, श्यामता, स्पर्शज्ञान विहीनता आदि लक्षण हो जाते हैं । इन लक्षणों से युक्त त्वग्रोग को वातिक त्वग्रोग कहते हैं ।

वातिकहृद्रोगः--हृदय में एक सहज वातिक शक्ति है जिसे हृत्स्पन्दन शक्ति कहते हैं । इसके द्वारा वह सम्पूर्ण सिरामण्डल में रक्त संचार करता है । श्रम करने के समय जब शरीर को अधिक रक्त चाहिये होता है वह अधिक तथा प्रबल स्पन्दन करके उन अंगों को रक्त पहुंचा देता है । वृद्धावस्था में विशेषतया जब वातवृद्धि होती है हृदय की यह स्पन्दन शक्ति कम हो जाती है । हृदय पोषक धमनियों में वात प्रकोप जनित कठोरता तथा क्षीणता के उत्पन्न हो जाने एवं हृदय का पोषण कम हो जाने से उसकी यह शक्ति क्षीण होती है । इस अवस्था में यदि मनुष्य अधिक श्रम करे विशेषतया भोजन के बाद तीव्रता से चले तो हृदय पर अधिक कार्य भार आ पड़ने पर उसमें वेदना होने लगती है जो हृदय प्रदेश पर अनुभव होती है । इसे हृदय शूल या वातिक हृद्रोग कहते हैं ।

वृद्धावस्था में रात को सोते २ ऐसा पता लगता है कि जैसे श्वास रोध हो रहा हो, रोगी घबरा कर उठ खड़ा होता है और श्वास लेने के लिये अति आकुल होता है । हृदय स्पन्दन शक्ति की निर्बलता के कारण फुफ्फुसों में रक्त के अधिक संचित होजाने से यह श्वास कृच्छ्रता होती है । वृद्धावस्था सुलभ इस श्वास रोग को भी वातिक हृद्रोग का एक लक्षण कहा जाता है ।

पादशूल तथा पिण्डिका शूलः--पांव तथा जंघा की सिराओं में वात प्रकोप जनित कठोरता या खरता उत्पन्न हो जाय तो अधिक चलने पर या शीत जल के स्पर्श पर उनकी दीवारों में स्तम्भ हो जाता है । तब पांव तथा जंघा की मांसपेशियों को उचित मात्रा में रुधिर नहीं मिलता जिससे उनमें शूल होने लगता है । अधिक चलने से पांव तथा पिण्डलियों में होने वाले उस शूल रोग को पाद शूल तथा पिण्डिका शूल कहते हैं ।

(क्रमशः)

⁂

प्रोटार गोल व आरजीनोल से अधिक गुणकारी दवा का आविष्कार

आंख की तकलीफ में देव-बूंद डालिए, तुरन्त आराम होगा । सुर्खी, सूजन, रोहे की शर्तिया दवा है । लिखिये--

बी० डी० सुगन्ध एण्ड को०
पो० बाक्स १२२७, देहली ।

मेरी बनारस तथा पटना यात्रा

ले०--आयुर्वेद मार्तण्ड रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, विद्यापीठमंत्री

मैं २२ फरवरी को दिल्ली से सायंकाल की गाड़ी से चल कर साढ़े १२ बजे बनारस पहुंचा। वहां श्री अन्नपूर्णा मिल के मालिक श्री बाबूलाल जी ढांढणिया की मोटर व उनके आदमी स्टेशन पर थे। श्री वेदाचार्य पं० वेणीराम जी शास्त्री भी अपने प्रेमी विद्वानों सहित वहां उपस्थित थे। सेठ जी का बड़ा आग्रह था कि उनके पास ठहरा जावे किन्तु मैं श्री वेदाचार्य के निवास स्थान पर ही ठहरा।

दिन में कुछ वैद्य महानुभाव मिलने आये और २४-२-५३ को मैंने श्री अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय का निरीक्षण किया। मुझे यह जान कर कि इस विद्यालय के संस्थापक एक वैद्य थे और उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति विद्यालय को दान दे दी थी जिससे यह विद्यालय चल रहा है, बड़ी प्रसन्नता हुई। विद्यालय के प्रधान अध्यापक पं० लालचन्द जी हैं और उनके सहयोगी श्री ताराचन्द जी मिश्र हैं जो एक विशेष उत्साही व्यक्ति हैं। श्री मिश्र जी इंडियन मेडिसन बोर्ड के सदस्य भी हैं। इस विद्यालय के सभी अध्यापक साधारण सा वेतन ले कर आयुर्वेद की सेवा के उद्देश्य से अध्यापन कार्य करते हैं। मेरे हृदय में उस अध्यापकवर्ग की कर्तव्य-परायणता को देख कर आल्हाद हुआ और भावना बनी की विद्यालय की कुछ आर्थिक सहायता की जावे किन्तु मैं तो एक वानप्रस्थी हूं। अधिक क्या कर सकता था, पत्र पुष्प रूप से केवल १०१ रु० ही विद्यालय की सहायतार्थ दे सका।

२४ फरवरी को रात्रि को आठ बजे कविराज श्री सत्यनारायण जी शास्त्री के निवास स्थान पर वैद्यों से मिलने तथा वार्तालाप का अवसर मिला। वैद्यसभा काशी के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी उपस्थित थे, जिनमें पं० पूर्णचन्द्र जी शास्त्री, पं० राजनारायण जी शास्त्री, पं० वेणीराम जी शास्त्री, पं० शम्भूदत्त जी वेदपाठी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

काशी वैद्यसभा द्वारा अभिनन्दन के अवसर पर सभा के अध्यक्ष श्री सत्यनारायण जी शास्त्री ने, जो आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित हैं और राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र बाबू के आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं, आयुर्वेद के महत्व पर बड़ा रोचक एवं सुन्दर भाषण दिया। अपने कोष में बहुत ढूंढ़ने पर भी ऐसे शब्द मुझे नहीं मिल रहे हैं जिनके द्वारा उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाश कर सकूं। मेरे हृदय में शास्त्री जी का मान इस लिये नहीं है कि वे राष्ट्रपति के चिकित्सक हैं या उनके घर पर १४ नवम्बर १९५२ को राष्ट्रपति स्वयं

मिलनें गये थे । परंच मेरे हृदय पर उनके पांडित्य, सौजन्य एवं सरलता का प्रभाव है । आपकी वेशभूषा प्राचीन पुरुषों जैसी है । मैं तो उन्हें २५०० वर्ष पहले के वैद्यों की गणना में समझ कर ऋषिरूप की कल्पना करता हूं । ऐसे ही महानुभावों से आयुर्वेद का गौरव है । आप शुद्ध आयुर्वेदीय शिक्षा के पक्षपाती हैं ।

२७ फरवरी को बलदेव आयुर्वैदिक विद्यालय, बड़ागांव, बनारस का अवलोकन किया । यह ग्राम काशी से १७ मील की दूरी पर है और वहां पहुंच कर एकान्त तपोभूमि का सा अनुभव होता है । वैद्य बलदेव जी ने निजि भूमि में निज के धन से इस आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना की है और कई वर्षों से स्वयं ही इसे चला रहे हैं । वे आयुर्वेद के अच्छे पंडित और अध्यापक हैं । विद्यालय के साथ आतुरालय भी है शवच्छेदनालय भी । आप शुद्ध आयुर्वेदीय शिक्षा के पक्षपाती हैं । वर्तमान इंडियन मेडिसन बोर्ड के शिक्षा के पाठ्यक्रम से आप असन्तुष्ट हैं । विद्यापीठ की परीक्षायें दिलाते रहे हैं किन्तु आपका कहना है कि परीक्षा-केन्द्र बनारस होने से छात्र संख्या घट जाती है इसलिये केन्द्र यहां होना चाहिये । वैद्य जी की यह मांग उचित है और विद्यापीठ को इस पर ध्यान देना परम आवश्यक है । श्री बलदेव जी बड़े सिद्ध एवं ख्यातनामा चिकित्सक हैं, इनके यहां पंचकर्म चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध है और कायाकल्प भी कराते हैं । विद्यालय का सारा व्यय आप स्वयं उठाते हैं । बलदेव हाई स्कूल और डिग्री कालेज भी आपने बनाया हुआ है । आप जाति के वैश्य हैं, जो कुछ भी कमाते हैं सब शिक्षा में व्यय करते हैं । एक वैद्य हो कर इस प्रकार का दान करके विद्यालय चला रहे हैं यह वैद्यों के लिए गौरव की बात है । आपके एक दौहित्र श्री शिवमोहन एम० बी० बी० एस० डाक्टर हैं ये ही उनके उत्तराधिकारी हैं । यह नवयुवक बड़ा योग्य है और आयुर्वेद का भक्त है । अच्छा श्रृंखलावद्ध सुन्दर भाषण देता है । हमें ऐसे नवयुवकों पर गर्व करना चाहियें जो आयुर्वेद के सिपाही बन कर आयुर्वेद की सेवा करने को तैयार रहें ।

शतशोऽनुभूत प्रामाणिक औषधियों का प्राप्ति स्थान

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वेदिक प्रकाशन "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" में वर्णित और चिकित्सातत्व-प्रदीप" में संगृहीतप्रयोगानुसार--भस्म, कूपीपक्व, खरलीय रसायन, पाक, अवलेह, घृत, तैल आदि विशुद्ध गुणकारी औषधियां हमारे यहां बनाई जाती हैं ।

औषधियों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है । लिखें या मिलें ।

कृष्णगोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय

तार का पता : "औषधालय" डाक व तार घर : 'कालेड़ा' कृष्णगोपाल, वाया
नसीराबाद (अजमेर)

काशी के उपर्युक्त आयुर्वेद के कार्यों को देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। देश के अन्य वैद्यों से मेरी प्रार्थना है कि वे इनका अनुकरण करें।

काशी के विद्वानों नें हमारी सभाओं में भाग लिया तथा सभी प्रकाण्ड पंडितों नें स्वागत अभिनन्दन किया में उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूं।

कविराज श्री हरिरंजन मजूमदार एम० ए० के साथ आयुर्वेद विद्यापीठ तथा महासम्मेलन के कार्य-संचालन के विषय में लगभग २ घंटे तक वार्तालाप हुआ—उनका विचार है कार्य को इस प्रकार चलानें में कठिनाई होगी।

पटना में श्री सुखराम दास जी वैद्य के सदुद्योग से हमें गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज में जाने का अवसर मिला और श्री पं० हरिनारायण जी चतुर्वेदी - प्रिंसिपल महोदय से विचार-विनिमय किया। यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि प्रिंसिपल महोदय शुद्ध आयुर्वेदीय शिक्षा के समर्थक हैं। छात्र-सभा में हमने अपने विचार प्रकट किये जिनका समर्थन अध्यापकवर्ग ने किया।

पटना में श्री वैद्यनाथ भवन कलकत्ते वालों का एक वृहत् औषध-निर्माण कार्यालय है। इस कार्यालय को देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आयुर्वेदीय संसार में औषध-निर्माण की यह एक उत्तम संस्था है।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल—काठियावाड़—सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे. के. शास्त्री की अध्यक्षता चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखानें में भस्म, कूपीक्व, रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। हिन्दी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं अंग्रेजी के बड़े २५० पृष्ठ के सूचीपत्र का मूल्य रु० १, पोस्टेज तीन आना माफ। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करनें हैं। उपयुक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

आयुर्वेद लोक

निखिल भारतवर्षीयायुर्वेद विद्यापीठम्

आयुर्वेद-शिक्षणादर्श पाठ्यक्रमम्-निर्माणम्

मान्याः वैद्यमहानुभावाः,

निवेदनमदं यत् फरवरीमासे उपर्युक्तं विषये यत् पत्रं मया भारतवर्षस्य तथा च लंका प्रदेशस्य १०४ आयुर्वेदीयविद्यालयाना माचार्येभ्यः प्रमुखायुर्वेदज्ञभ्यश्च प्रेषितमासीत् तदेव सर्वेषां विदुषां सूचनार्थं निम्नोध्दृतमस्ति ।

आस्मिन् महत्त्वपूर्णकार्ये भवतामपिसहयोगमभिकांक्षते, अतएव प्राथ्र्यन्तेभवन्तः यत् प्रस्तुतविषये गाम्भीर्येण विचार्य तास्मिन् विषये स्वकीयं परामर्शं शीघ्रमेवस्मिन् कार्यालये प्रेषयन्तु । पाठयक्रमस्य विभिन्नेषु विशेयेषु केषां केषां विदुषां के के ग्रन्थाः प्राप्याः सन्ति तेषां नामानि प्राप्तिस्थानादिकं विवरणं च देयम् ।

भवतां प्रेषितेषु विचारपरामर्शेषु विचारं कृत्वैव पाठ्यक्रमसमितिः स्वकीयमन्तिमं मितिवृत्तं सम्पन्नं करिष्यति । अतः आवेद्यन्ते भवन्तः यत् स्वकीयवहुमूल्यसम्मतिं प्रेषयित्वानुग्रह्णन्तु मामिति ।

पत्र

माननीय महानुभावाः,

विदितमेवास्ति तत्र भवतां यत् ३८ तमे इन्दौर नगरीय नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलनें आयुर्वेद शिक्षणस्यादर्शपाठ्यक्रमनिर्माणार्थमेका समिति संघटिताभवत्, साच समिति स्वीये कार्ये प्रगतिशीला वर्तते । किन्तु विषयस्यास्य बहुगंभीरत्वात् महत्त्वपूर्णत्वाच्च कार्येऽस्मिन् भवत्सक्रियसहयोगप्राप्तिमभिवांछामि, आशासे च भवन्तः सहर्षं स्वीकरिष्यन्ति मदभिलषितम् ।

विद्यापीठस्य नियमावलि भवत् सेवायामद्यैव पृथक् डाक द्वारा प्रेषितास्ति । अस्यां नियमावल्यामायुर्वेदभिषक् आयुर्वेदविशारद, आयुर्वेदाचार्य, एतासां तिसृणां प्रचलित-परीक्षाणां पाठ्यक्रम, पाठ्यविधि, पाठ्यपुस्तकानां तथा ज्ञेयविषयाणां विवरणं भवन्तो

लप्स्यन्ते तच्चावलोकयन्तु भवन्तः। अनेन सहैव प्रस्तुत विषये मदीयं निम्नांकितं निवेदनमपि पठनीयम्। तत्पश्चात् सम्यग्विचार्य स्वकीयममूल्यं परामर्शं प्रेषित्वानुगृह्णन्तु माम्। पाठ्यक्रमश्च निम्नांकितानां परीक्षाणां निर्मितव्यः।

१. आयुर्वेद भिषक्–खण्डद्वये वर्षद्वये पाठ्यक्रमः। अस्मिन्नायुर्वेदस्य प्रारम्भिक शिक्षणस्य व्यवस्था भविष्यति।

२. आयुर्वेदविशारद–खण्डत्रये वर्षत्रयस्य पाठ्यक्रमः। एवं उपाधिपरीक्षायाः पाठ्यक्रमो भविष्यति तथा चास्मिन् ते छात्राः प्रवेशं लप्स्यन्ते ये ह्यायुर्वेद भिषक् परीक्षोत्तीर्णा न भविष्यन्ति किन्तु ये चायुर्वेदभिषक् परीक्षोत्तीर्णाः छात्रा अस्याम् परीक्षायामुप्रवेष्टुमभिलषिष्यन्ति ते ऋजुमार्गेणैवास्याः परीक्षायाः द्वितीयखण्डे तत्पश्चात् च तृतीय उपवेंष्टुं शक्यन्ते।

३. आयुर्वेदाचार्य–खण्डद्वये वर्षद्वयस्य पाठ्यक्रमः, अस्यां परीक्षायामायुर्वेद विशारद परीक्षोत्तीर्णाश्छात्रा प्रवेशं लप्स्यन्ते। एष च विद्यापीठस्य स्नातकपाठ्यक्रमो भविष्यति।

४. आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि–एषायुर्वेदस्य स्नातकोत्तरा सर्वोच्चा परीक्षा भविष्यति। एषाच परीक्षा विशेषानुसन्धानकार्यार्थं तथा गवेषणात्मकमौलिकग्रन्थादि लेखनार्थं लेखकानां कृते नियता भविष्यति। एषा हि विश्वविद्यालयानां प्रचलिता पी. एच. डी. परीक्षासमाना भविष्यति।

५. कल्पकः (कम्पाउण्डर)
६. परिचारकः (नर्सेज)
७. प्रसाविका (मिडवाईफ्रि)
८. दंतवैद्यः (डैन्टिस्ट)
९. नेत्र वैद्यः (आई स्पेशिलिस्ट)
१०. शल्य वैद्यः (सर्जन)
११. रसायनशास्त्री (फार्मेस्युस्ट)

एतासां सर्वासां परीक्षाणां पाठ्यक्रमाः क्रमशः इत्थं भवेयुः–

(क) ये उच्चयोग्यताया उपवैद्याः, वैद्याः, आयुर्वेदाचार्यस्तथा आयुर्वेदशास्त्रस्य तथैवैतस्य विभिन्ननामङ्गानां पारंगताः जटिलरोगाणां विशेषज्ञाः कल्पकाः परिचारकाः प्रसाविकाः दन्तवैद्याः नेत्र वैद्याः शल्यवैद्याः तथा च रसायनशास्त्रिणः प्रचुरसंख्यायामुपलब्धाः स्युः।

(ख) येषु च चिकित्सा कार्य-सम्बधिआधुनिकज्ञान विज्ञानस्य न्यूनतमानामावश्यकांशानां समावेशस्तत्तत्कक्षानुसारेण भवेत्।

(ग) ये च पाठ्यक्रमाः राज्यतः सम्मानिताः स्युः किन्तु येषु च डाक्टरीविषयाणां आवश्यकतातोऽधिकः समावेशः कदाचिदपि न भवेत्, अर्थात् एषां सर्वेषां पाठ्यक्रमाणां मूलाधारस्वरूपमायुर्वेदीयमेव स्यात्।

पाठ्यक्रमनिर्माणसम्बन्धे निम्नलिखितेषु विषयेषु श्रीमतां विचारसरणिं ज्ञातुमिच्छामि–

१. भिषग्विशारदपरीक्षयोः प्रवेष्टुमभिलषतां छात्राणां प्रारम्भिकयोग्यता कीदृशी भवेत् ।

२. उपर्युक्त परीक्षायाः संख्या ४ तः ११ पर्यन्तम् प्रतिपरीक्षायां पठनकालः कियान्भवेत् ।

३. प्रत्येक परीक्षायाः पाठ्यक्रमे पाठ्यविषयेण सहैव तद्विषयविशेषे समुचितस्तरस्य यानि यानि पाठ्यालोच्यपुस्तकानि भवन्तः समुचितान्यवगच्छन्ति तेषां नामानि लेखकप्रकाशक सहितानि लेख्यानि ।

४. येषु येषु विषयेषु भवद्विचारणायां समुचितस्तरस्य पुस्तकानि साम्प्रतमवधि नोपलभ्यंते तेषामुल्लेखः स्पष्टं करणीयः । विषय विशेषाणां प्रसिद्धाः विद्वांसो भवद्विचारणायां के के महानुभावाः सन्ति तदवश्यं लेखनीयम्, येन तैरेव विद्वद्भिस्तत्तत्पुस्तकलेखनकार्यं सांप्रतं कारयितव्यं स्यात् ।

परिस्थितिवशात् तथाच आवश्यकतानुसारं विद्यापीठस्य कार्यपद्धतौ स्वरूपेच परिवर्तनं साम्प्रतमपेक्षितमस्ति उपर्युक्त सर्वपाठ्यक्रमप्रचलनस्य साम्प्रतमेतत्कारणेनावश्यकता प्रीतयते यदायुर्वेदः कस्मिन्नंशे न्यूनोऽथवा पश्चाद्गामी अन्य चिकित्सा प्रणालिषु न प्रगण्येत् ।

श्रीमंतः आयुर्वेदस्य प्रोढ़ाः विद्वांसः सन्ति अतएवेतत्कष्टं भवते प्रीदयते एतत्पत्रानुसारं कार्यकरणे भवतां पर्याप्तमेवामूल्यश्च समयो व्ययी भविष्यति, परन्तु आयुर्वेद हितार्थं भवंतः सहर्षमंगीकरिष्यन्तीति विश्वसिति, कृपया स्वकीयपरामार्शं यथासम्भवं शीघ्रप्रेषित्वानुगृह्णन्तु माम् । पत्रप्राप्तिसूचना देया, विषयसम्बन्धिनी काचिदन्या सूचना भंवत्सापि लेखनीया ।

भवत् सहयोगार्थमेष कार्यालयो भवतामाभारी भविष्यति ।

विनीत :
श्रीदत्त शर्म्मा
(आयुर्वेद मार्तण्ड, रायबहादुर)
मंत्रीं,
निखिल भारतवर्षीयायुर्वेद विद्यापीठम्

आयुर्वेद शिक्षण के लिए आदर्श पाठ्यक्रम निर्माण

माननीय वैद्य बन्धु,

जैसा कि आप को विदित हैं भारत के दीर्घकालिन परतन्त्रताकाल में और वर्तमान शताब्दि के प्रारम्भ तक हमारे अन्य प्राचीन विज्ञानों की भांति आयुर्वेद की रक्षा एवं इसका पठन-पाठन प्राय: गुरु-शिष्य-प्रणाली से ही हुआ है। परन्तु आजकल के प्रोपेगण्डा युक्त दिखावटी युग में सीधी और सादी वस्तुओं की सार्थकता पर सन्देह होने लग गया है और बड़े बड़े उद्योगों एवं प्रतिष्ठानों की उपज, चाहे वह वास्तविक गुणों में कैसी हीं हो, ठीक स्तर की मानी जाने लगी है। इस विचारधारा का अवलम्बन आयुर्वेदीय पठन-पाठन में भी किया जा रहा है। हमारी केन्द्रीय और कुछ प्रान्तीय सरकारें तथा उनके "डाक्टर" परामर्शदाता गुरु-शिष्य-परम्परा को तुच्छ मानते हुए उसे उपहास की दृष्टि से देखने लगे हैं। परन्तु आधुनिक भव्य भवनाश्रयी विद्यालय जिनके निर्माण, सुसजन एवं आयोजन में लाखों रुपये व्यय होते हैं, हमारे देश को चिकित्सा सम्बन्धी मांग को पूरा करने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं। हमारा आज भी दृढ़ मत है कि गुरु-शिष्य-परम्परा ही आयुर्वेद पठन-पाठन का एक सर्वोत्तम साधन है। हम समझते हैं कि वर्षों तक विद्वान, चिरानुभवी एवं सुयोग्य गुरुओं के निरन्तर शिक्षण, प्रशिक्षण एवं निरीक्षण के आधीन विद्या-ग्रहण, चिकित्सा एवं कर्माभ्यास करनें वाले शिष्य उन स्कूलों एवं कालेजों की उपज से कहीं उपयोगी सिद्ध होते हैं जहां अध्यापकों और शिष्यों का सम्पर्क प्राय: क्लासरूम लैक्चर से अधिक नहीं होता। हमारी धारणा है कि पठन-पाठन का यही ढंग मौलिकत: हमारी संस्कृति के अनुकूल भारतोपयोगी एवं गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुसार है। यथेष्ट फलप्राप्ति के लिये यही एक सीधा सादा, सरल एवं परिस्थित्यनुकूल मार्ग है जो कि एक दम उपयुक्त, सस्ता और पक्का है। आयुर्वेद संसार के वर्तमान नेताओं, पीयूषपाणि वैद्यों, सफल चिकित्सकों, धुरन्धर विद्वानों एवं प्रौढ़ शास्त्रज्ञों ने इसी प्रणाली के आधीन शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर के परतंत्रता काल में भी आयुर्वेद के शीश को ऊंचा रखा है। फिर कोई कारण नहीं कि इस प्रणाली को दबाया जाय।

अस्तु, इसी प्रणाली को दृढ़ बनाने और सुरक्षित रखनें के ध्येय से ही बम्बई निवासी कुछ वैद्य मिले और विषय पर पारस्परिक विचार-विमर्श किया तदर्थ एक प्रश्नावलि बनाई गई और विषय में रुचि रखने वाले कुछ विद्वानों के उन पर मत संकलित किये गये। वह प्रश्नावलि उत्तरों सहित आपकी जानकारी के लिये नीचे दी जा रही है। अब इस विषय पर आप के भी विचार अपेक्षित हैं। अतएव आप से विनम्र-प्रार्थना है कि

प्रस्तुत विषय पर गम्भीर विचार करें और अपने विचारानुसार सभी प्रश्नों के उत्तर लिख कर ऐसे भेजें कि आगामी ५ अप्रैल तक इस कार्यालय में पहुंच जावें । आपके अमूल्य मत एवं सहयोग के लिये हम आभारी रहेंगे ।

विशेष:—आपकी सूचनार्थ यह भी निवेदन है कि उक्त प्रश्नोत्तरावलि कुछ राजकीय सरकारों के अधिकारियों के समक्ष रक्खी जा चुकी हैं तथा हमें आश्वासन दिया गया है कि वे सरकारें नियम रूप से इसे अपना लेंगी । परन्तु इस योजना को अखिल भारतीय रूप देनें के विचार से इसकी स्वीकृति भी अखिल भारतीय स्तर पर ही लेना चाहते हैं । उस दिशा में स्थानीय वैद्य-बन्धुओं से जो-जो सहायता आवश्यक होगी हम सूचित करेंगे ।

प्रश्न	उत्तर
गुरु-परम्परा से आयुर्वेद शिक्षा देने में आपका क्या मत है ?	१. हां, देनी चाहिए ।
२. इस प्रकार से अभ्यासक्रम के लिये कितने वर्ष चाहियें ?	२. नि० भा० आ० विद्यापीठ के भिषक् के लिए ३ वर्ष, वैद्य विशारद या आयुर्वेद विशारद के लिए ४ वर्ष और वैद्याचार्य या आयुर्वेदाचार्य के लिए ६ वर्ष ।
३. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापिठ के भिषग्, विशारद और आचार्य कोर्स में से आप कौनसा कोर्स रखना चाहते हैं ?	३. भिषक्, वैद्य विशारद या आयुर्वेद-विशारद डिप्लोमाकोर्स और वैद्याचार्य और आयुर्वेदाचार्य डिग्री कोर्स । इसी में सबको प्रत्यक्ष ज्ञान देने का भी समावेश कर लिया जाय ।
४. इसके अतिरिक्त दूसरा कोई अभ्यासक्रम बोर्ड, फैकल्टी या किसी समिति द्वारा विचारार्थ लिया गया है अथवा नहीं ?	४. नि० भा० आ० विद्यापीठ का कोर्स मान्य कर लेने पर इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी ।
५. यदि लिया गया हो तो उसका विस्तृत विवरण भेजें ?	५. नहीं ।

६. इस प्रकार के शिक्षण के लिये प्रवेश की इच्छा रखनें वाले विद्यार्थी की कम से कम कितनी आयु होनी चाहिये ?	६. १६ ।
७. उसकी प्रवेश योग्यता क्या होनी चाहिये ?	७. मातृभाषा की अन्तिम परीक्षा वर्नाक्यूलर फाइनल के साथ में संस्कृत की प्रथमा परीक्षा कलकत्ता, बनारस, वेदशास्त्रोत्तेजक सभा परीक्षा पूना, भारतीय विद्याभुवन परीक्षा, बम्बई, श्रावणमास दक्षिणा परीक्षा, बड़ौदा और तत्सम परीक्षायें । या नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा एक प्रवेश परीक्षा लेनी जिसमें संस्कृत का ज्ञान पंचतंत्र, रघुवंश २ सर्ग, कुमार सम्भव, लघुकौमुदी, तर्कसंग्रह का ज्ञान हो । विशारद और आचार्य के लिए उपरोक्त संस्थाओं की मध्यमा परीक्षा और तत्सम । मैट्रिक परीक्षा के संस्कृत विषय में ५० प्रतिशत अंक प्राप्त छात्र चाहे वह अन्य विषयों में असफल ही हों उनको भी प्रवेश देना चाहिये ।
८. फिजिक्स, कैमिस्ट्री, बायोलौजी आदि के विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता है अथवा नहीं ?	८. आयुर्वेद शास्त्र के अध्ययन के लिये इन विषयों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है । किन्तु यदि हमारें डाक्टर बन्धु या सरकार इन विषयों का विस्तृत ज्ञान आवश्यक समझें तो अत्यन्त आवश्यक विषयांश रखे जा सकते हैं । इसके लिए एक संक्षेपात्मक कोर्स कन्डेंस्ड् कोर्स बना लिया जाय । जब तक कन्डेंस्ड् कोर्स न बनें तब तक इसके बिना चला सकते हैं ।

९. क्या केवल संस्कृत प्रथमा उत्तीर्ण विद्यार्थी योग्य समझें जायेंगे ?	९. भिषक् के लिए प्रथमा और शेष सब के लिये उपरोक्त संस्कृत मध्यमा या तत्सम ।
१०. मैट्रिक में संस्कृत में उत्तीर्ण हुआ हो किन्तु किसी अन्य विषय में अनुत्तीर्ण हुआ हो तो उसको प्रवेश मिलना चाहिये अथवा नहीं ?	१०. इसका उत्तर विषयांक ७ में आ जाता है ।
११. उपरोक्त अभ्यासक्रम के साथ चोपड़ा-समिति द्वारा बताया हुआ पाठ्यक्रम पढ़ानें के लियें ६ मास अथवा एक वर्ष रखना आवश्यक हैं ?	११. जो विद्यार्थी सरकारी नौकरी करने के इच्छुक हों उनको आवश्यक सुधार के साथ हैल्थ कोर्स की शिक्षा दी जानी चाहिए । अन्य छात्रों के लिए ऐच्छिक रखना चाहिए ।
१२. उपरोक्त हेल्थकोर्स आपके राज्यों में चालू डिग्री कोर्स या डिप्लोमा कोर्स के कालेजों में पढ़ानें का प्रबन्ध हो सकेगा अथवा नहीं ?	१२. हां । सरकार की आज्ञानुसार व्यवस्था हो सकती है ।
१३. परीक्षायें खण्डशः ली जांय अथवा एक साथ ही ?	१३. खण्डशः ।
१४. उत्तीर्ण होने के लिये न्यूनतम कितनें अंक प्राप्त करने आवश्यक हैं ?	१४. निदान चिकित्सा के लिये ५० प्रतिशत तथा अन्य विषयों के लिए ४० प्रतिशत ।
१५. उपरोक्त परीक्षायें बोर्ड, फकल्टी या किसी अन्य समिति द्वारा लेनी चाहियें ?	१५. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों से युक्त एक समिति बनायेगी । समिति में जितने सदस्य नि० भा० आ० विद्यापीठ के होंगे उतने हीं राज्यों के भी होंगे । यह समिति शिक्षण, पाठ्यक्रम आदि सम्बन्धी सभी कार्य करेगी ।
१६. निदान चिकित्सा की प्रत्यक्ष परीक्षा के लिये विद्यार्थी को सरकार द्वारा निश्चित अस्पताल में परीक्षा-समिति	१६. हां ।

के समक्ष उपस्थित होना चाहिये अथवा नहीं ?	
१७. यदि गुरु-परम्परा स्वीकार की जाय तो किस प्रकार गुरु की योग्यता का निश्चय किया जायगा ?	१७. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की चालू नियमावलि को मान्य करना । २–विद्यापीठ मान्य संस्थाओं में जो अध्यापन कार्य कर रहे हों अथवा कर चुके हों । ३–आयुर्वेद विषयक मान्य ग्रन्थों का अनुवाद किया हो । या कोई नवीनग्रंथ लिखा हो । ४–जो प्रान्तीय बोर्ड, फैकल्टी या सरकार द्वारा नियुक्त सभासद विद्यापीठ की समिति में रहेंगे वे अपने राज्य के योग्य गुरुओं के या अध्यापकों के नाम की सूचना देंगे । ५–जो विद्यापीठ के परीक्षक रह चुके हों ।
१८. एक गुरु के यहां एक समय में कितनें विद्यार्थी अध्ययन पर सकते हैं ?	१८. पांच । अध्यापक चार्ट्स्, मोडल्स आदि अवश्य रखें ।
१९. अध्यापक को कुछ मानदेय-गुरुदक्षिणा स्वीकार करनी चाहिये अथवा नहीं ?	१९. हां । स्वीकार करना चाहिए ।
२०. यदि स्वीकार की जाय तो प्रत्येक छात्र से न्यूनतम कितनी ?	२०. ऐच्छिक रखना चाहिए । या प्रत्येक विद्यार्थी कम से कम ५ रुपया प्रतिमास दे ।
२१. जहाँ शक्य हो वहां योग्य वैद्य मिलकर उपरोक्त पाठ्यक्रमानुसार चला सकेंगे अथवा नहीं ?	२१. हां । चला सकते हैं ।
२२. उपरोक्त पाठ्यक्रमानुसार उत्तीर्ण छात्रों को क्या उपाधि दी जाय ?	२२. भिषक के ३ वर्ष के अभ्यासक्रम उत्तीर्ण करने वाले को भिषक् और ४ वर्ष का अभ्यासक्रम उत्तीर्ण करनें

	वाले को आयुर्वेद विशारद या वैद्य विशारद तथा ६ वर्ष वाले को वैद्य आचार्य या आयुर्वेदाचार्य ।
२३. सफल वैद्य को न्यूनतम कितना वेतन देना आवश्यक है ?	२३. रु० ८०-५-१२५ ।
२४. उत्तीर्ण छात्र को रजिस्ट्रेशन के योग्य समझा जाय अथवा नहीं ?	२४. हां । क्योंकि वे परीक्षोत्तीर्ण हो चुके होंगे ।
२५. यदि नहीं तो कितने वर्ष पश्चात् उसको रजिस्ट्रेशन के योग्य समझा जाय ?	२५. प्रश्न ही नहीं उठता । उत्तर ६ में आ जाता है ।
२६. इस रीति से उत्तीर्ण छात्र को कन्डेंस्ड कोर्स द्वारा डिग्री कोर्स के योग्य समझा जाय अथवा नहीं ?	२६. भिषक् वाले को प्रवेश नहीं देना चाहिए । संस्कृत मध्यमा उत्तीर्ण कर जिसने प्रवेश लिया हो और जिसने वैद्य विशारद, या आयुर्वेद विशारद उत्तीर्ण किया हो उसको वैद्याचार्य या आयुर्वेदाचार्य की डिग्री-परीक्षा में बैठने की अनुमति देनी चाहिये । आचार्य कोर्स डिग्री कोर्स ही है, कन्डेंस्ड् कोर्स का इन सब में समावेश हो जाता है ।
२७. अभ्यासक्रम पूर्ण कर के उत्तीर्ण होने के पश्चात् उन्हें एक वर्ष के लिये ग्रामों में जाकर कार्य करना अनिवार्य होगा अथवा नहीं ?	२७. सरकार यदि ग्राम्य-विस्तार में इन वैद्यों से वैतनिक कार्य कराये तो उन्हें एक वर्ष के लिये अवश्य कार्य करना चाहिए ।
२८. आज तक के विद्यापीठ के स्नातकों-भिषक्, विशारद, आचार्य और रजिस्टर्ड वैद्यों से काम ले सकते हैं अथवा नहीं ?	२८. इन सबको ६ मास का प्रत्यक्षीय अभ्यासक्रम का ज्ञान दे कर काम ले सकते हैं । किन्तु प्रथम मान्यता आचार्य को, दूसरी विशारद को और रजिस्टर्ड वैद्य को और भिषक् को क्रमशः देनी चाहियें ।

आ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन,
देहली ।

वामनराव दीनानाथ,
प्रधानमंत्री

राज्य के बजट में आयुर्वेद के लिए प्रथक् धनराशि प्रदान की जाय

इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा की देहली राज्य से मांग

गत ११ मार्च को इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा की ओर से आयोजित एक प्रेस-प्रतिनिधि सम्मेलन में सभा के अध्यक्ष कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल ने अपनें संक्षिप्त भाषण में नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में क्रमशः १० और १५ नवीन आतुरालय खोलनें की आवश्यकता पर जोर दिया तथा देहली राज्य सरकार से यह मांग की कि वह एक पूर्णरूप से सुसज्जित आतुरालय सार्वजनिक स्थान पर खोले और अन्य राज्यों के समान अपने वार्षिक बजट में आयुर्वैदिक कार्यों के लिए पृथक रूप से समुचित धनराशि की व्यवस्था करे।

अन्त में आपने पत्रकारों से आयुर्वेदोन्नति में सहयोग की अपील करते हुए सभा में उपस्थित प्रतिनिधियों का धन्यवाद किया।

शोक-समाचार

१. मुलतानी आयुर्वैदिक फार्मेसी दिल्ली के स्वामी, सुप्रसिद्ध चिकित्सक राजवैद्य पण्डित ठाकुरदत्त जी मुलतानी का गत फरवरी मास में हृदयगति रुक जाने से ७५ वर्ष की अवस्था में अकस्मात देहावसान हो गया। पण्डित जी आयुर्वेद के ही नहीं संस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे तथा आपनें कई ग्रंथ भी लिखे हैं। आप जैसे वयोवृद्ध एवं दीर्घानुभवी चिकित्सक की शीघ्र ही क्षतिपूर्ति किया जाना सम्भव नहीं।

२. श्री रामकृष्ण चिकित्सालय बैंगलोर के वैद्य श्री डी० के० भारद्वाज का हाल ही में असामयिक स्वर्गवास होगया। स्व० भारद्वाज कुशल चिकित्सक होने के साथ-साथ आयुर्वेद के सुयोग्य अध्यापक भी थे। गत कई वर्षों से नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ परीक्षाओं के बैंगलोर केन्द्र के अध्यक्ष चले आ रहे थे। आपके निधन पर वैद्य जगत शोकातुर है।

वैद्य-समाज की ओर से दोनों स्वर्गीय आत्माओं के आत्मीय जनों के साथ संवेदना एवं सहानुभूति प्रकट करते हुए हम वियुक्त आत्माओं की सद्गति की कामना करते हैं।

पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठावें

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायीसमिति का द्वितीयाधिवेशन

सर्व साधारण की सूचनार्थ निवेदन है कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायीसमिति का द्वितीयाधिवेशन आगामी २४, २५ तथा २६ अप्रैल के किसी एक अथवा दो दिनों में दक्षिण भारत के रमणीक नगर बेंगलोर (मायसोर राज्य) में होना निश्चित हुआ है। इसी के साथ नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी-समिति का भी अधिवेशन होगा।

मायासोर राज्य आयुर्वेद सम्मेलन का सर्व प्रथम अधिवेशन भी उपर्युक्त तिथियों में होना निश्चित हुआ है।

उपर्युक्त अधिवेशनों के सफलतापूर्वक आयोजन के लिये बैंगलोर के वैद्यों की एक वृहत् सभा श्री डा० वाई० पार्थनारायण जी पण्डित की अध्यक्षता में १ मार्च को बेंगलोर में सम्पन्न हुई जिसमें एक स्वागत-समिति का निर्माण किया गया। स्वागत के विभिन्न कार्यों को सुचारु रूप से वहन करने के लिए उपसमितियों का भी निर्माण किया गया है। महासम्मेलन स्थायी-समिति के उद्घाटन के लिए मायसोर राज्य के मुख्य मंत्री से प्रार्थना की है। अधिवेशन सम्बन्धी अन्य सूचनाएं प्रेस यथा पत्रों द्वारा प्रसारित कीं जाएंगी।

All India Ayurvedic Congress Governing Council and All Mysore Ayurvedic Conferences

At a meeting of Vaidyas of Bangalore held on 1.3.53. Shri Y. Parthanarayana Pandit, presiding, it was decided to convene the first Session of the All Mysore Ayurvedic Congress on 24th, 25th and 26th of April next. The Chief Minister of Mysore State has been requested to inaugurate. A Reception Committee and other sub-Committees were also constituted.

It was also decided to invite the Governing Council of the All India Ayurvedic Congress here in Bangalore city during the same dates.

As prominent Ayurvedic Pandits from all over India are expected to participate in the meeting, we request all Pandits of Mysore State to participate in the Conference.

All details pertaining to the Conference will be published through Press notes and leaflets very shortly.

SECRETARIES
All Mysore Ayurvedic Congress.

साहित्य-सत्कार

(समालोचनार्थ पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति प्राप्त होने पर केवल प्राप्ति स्वीकार ही की जावेगी।)

आयुर्वेद का इतिहास (प्रथम भाग)–लेखक-कविराज सूरमचन्द्र बी० ए० वैद्य, १२४/१, लोअर बाजार, शिमला। मिलने का पता:––प० भगवद्दत्त, ३/४०, ईस्ट पेटेल नगर, नई देहली। पृष्ठ संख्या ३००। मूल्य ८ रु.।

इस विषय पर ग्रन्थ लिखने का यह प्रथम प्रयास नहीं। अनेक लेखकों ने इस विषय पर लिखने का यत्न किया है जिनमें श्री गिरीन्द्र नाथ उल्लेखनीय हैं। श्री सूरम चन्द्र जी का वर्तमान आयुर्वेद का इतिहास लिखने में प्रयोजन, पूर्व लेखकों के अनेकों भ्रम मूलक सिद्धान्तों का खंडन करना भी है। श्री सूरम चन्द्र और बहुसंख्यक अन्य लेखकों में मतभेद का कारण यह है कि जहां वे अपने ज्ञान की आधारशिला पाश्चात्य लेखकों के अन्वेषण पर रखते हैं वहां श्री सूरम चन्द्र जी ने स्वतन्त्र रूप से इस विषय में अनुसंधान करने का यत्न किया है। लेखक के कथनानुसार पाश्चात्य लेखकों के परिणाम इस कारण अशुद्ध हुए हैं कि वे एक दो मिथ्या सिद्धान्तों को सत्य मान कर बनाए गए हैं। डार्विन का विकासवाद और उसके साथ यहूदी परम्परा को प्राचीनतम मान लेने से उनके मस्तिष्क में यह बात समा नहीं सकी कि आज से पहिले और विशेष रूप से यहूदियों के उन्नतिकाल से पूर्व कोई विद्वान हो भी सकता था। अतएव उन सब विद्वानों ने जिन्होंने इन दो मिथ्या बातों को सत्य मान कर भारतवर्ष के इतिहास में खोज की है वे भारत के इतिहास को पिचका कर आज से एक सहस्त्र वर्ष के भीतर लाने के यत्न में अति विकृत कर बैठे हैं। जहां वे ऐसा करने में असफल हुए हैं वहां वे इतिहास को मिथिकल (काल्पनिक) कह कर अपना पीछा छुड़ाने का यत्न करते हैं।

श्री सूरमचन्द्र जी ने अपना अन्वेषण स्वच्छ पाटी पर आरम्भ किया है और परिणाम उक्त लेखकों से भिन्न हुआ है।

आयुर्वेद के इतिहास के प्रथम भाग में विद्वान लेखक ने सृष्टि चक्र के आरम्भ से ही इस इतिहास का आरम्भ किया है और वेद, शास्त्र, उपनिषद् व ब्राह्मण ग्रंथ अथवा

इतिहास तथा पुराणों के अनेकानेक प्रमाणों से आयुर्वेद की परम्परा को स्थापन करने का यत्न किया है। लेखक अपने स्तुत्य कार्य में बहुत अंशों में सफल हुआ है। जहां-जहां शृंखला टूटी प्रतीत होती है वहां प्राचीन ग्रंथों के उपलब्ध न हो सकने के कारण है। देश का दुर्भाग्य है कि परकीयों ने यहां की पुस्तकों को इस कारण नष्ट-भ्रष्ट किया कि कुराण के पश्चात उन का संसार मे रहना व्यर्थ माना और दूसरे यूरोपियन भ्रममूलक धारणाओं से प्रभावित भारतीय अन्वेषणकर्ता मिथ्या पथागमी बन गए।

पं० सूरमचन्द्र जी का इस दिशा में प्रयास भारत की प्राचीन महानता को इस युग में स्थापित करने के अर्थ अत्यन्त श्लाघनीय है। इस पुस्तक का यह भाग चरक नागार्जुन इत्यादि के काल तक पहुंचा है। इसके आगामी भाग की उत्सुकता से प्रतीक्षा करना स्वभाविक ही है।

--गुरुदत्त, नई देहली.

नाड़ीत्व-दर्शम् ले० सत्यदेव जी वाशिष्ट, उपाध्यक्ष सनातनधर्म आयुर्वेद विद्यालय, भिवानी, पञ्जाब।

सम्पादक पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, सुप्रभात कार्यालय, बनारस आकार रायल आठपेजी, पृ. सं. २५१.. मूल्य ५)रू.। पुस्तक मिलने का पता--सुप्रभात

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वैदिक प्रकाशन

१. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह
प्रथमखंड, ७वां संस्करण अजिल्द ९।।)
२. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग-संग्रह
द्वितीय खंड, अजिल्द ६)
३. चिकित्सातत्त्व प्रदीप
प्रथम खंड सजिल्द ९।।)
४. चिकित्सातत्त्व प्रदीप
द्वितीय खंड, अजिल्द ८)
५. नेत्ररोग-विज्ञान सजिल्द १५)
६. सिद्ध परीक्षा पद्धति अजिल्द ८)
७. ज्वरविज्ञान अजिल्द ३)
८. औषध गुण धर्म विवेचन
अजिल्द ३)
९. गाँवों में औषएरत्न अजिल्द २)
१०. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग-संग्रह
गुजराती अनुवाद प्रथम भाग
सजिल्द १०)
सूचना--डाक खर्च, पैकिंग अलग होगा।

पुस्तकों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है, लिखें या मिलें।
प्राप्तिस्थान--कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय
पो० कालेड़ा--कृष्णगोपाल, वाया नसीराबाद (अजमेर)

प्रकाशन लाहौरी टोला, बनारस । लेखक के पते से भी मिल सकती है । संस्कृत न जाननें वालों के लिये सरल हिन्दी अनुवाद भी साथ हैं । वेद, उपनिषद्, पुराण, तन्त्र, सङ्गीत ज्योतिष, तथा चरकादि को मथन कर त्रिदोष और नाड़ी-विज्ञान को सप्रमाण सिद्ध किया है । इसकी विशेषता तथा लेखक का दावा यह है कि–वैद्य को बुलानें के लिये आये हुए दूत की नाड़ी परीक्षा कर दूर देशान्तरस्थ रोगी के रोग का लक्षण इस प्रकार बतलाना जैसे कि ज्योतिषी प्रश्न से बतलाते हैं । दूत की नाड़ी देख कर ही चिकित्सा का भी प्रबन्ध कर देना इत्यादि । (इस विषय को द्वितीयावृत्ति में सर्व साधारण वैद्यों के समझने लायक बना दें तो अच्छा हो ।) दूत के आने पर–शकुन से रोगी के रोग की साध्यासाध्यता का ज्ञान पुराणों में तथा चरक इन्द्रिय स्थान द्वादशाध्याय आदि में वर्णित है । दूत की नाड़ी देख देशान्तरस्थ रोगी के रोग का लक्षण बतलाना तथा चिकित्सा प्रबन्ध कर देना यह विषय आगे रिसर्च के लिये मार्ग दर्शक हो सकता है । पुस्तक के अन्त में काशी में स्थित एक वैद्यजी की नाड़ी देख कर देहली में रहनें वाले इनके पुत्र के स्वास्थ्य का समाचार ठीक बतला देना वैद्य जी ने स्वीकार किया । रावणादि कृत नाड़ी-ज्ञान विषय की व्याख्या सरल संस्कृत में सोपपत्तिक की गई है । यह अनेक वर्षों के गम्भीर अध्ययन तथा कठिन परिश्रम से लिखी गई है । पुस्तक पाठ्यक्रम में स्थान पाने योग्य है, नाड़ी ज्ञान के अभ्यासी वैद्य तथा विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है ।

श्री घनानन्द पन्त, विद्यापीठ उपाध्यक्ष
रा० ब० श्रीदत्त जी, विद्यापीठ-मंत्री ।

रसतन्त्रसार व सिद्धयोग-संग्रह द्वितीय खंड, लेखक तथा संग्रहकर्त्ता–श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज, प्रकाशक–कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, पो० कालेड़ा कृष्णगोपाल (जिला-अजमेर) पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य ६) ।

पुस्तक का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् पुनः पढ़ने और मनन करनें की

श्री बदरिकाश्रम का प्रसिद्ध लौह शिलाजीत

मधु, कस्तूरी, तथा हिमालय की जड़ी बूटियों का ६० वर्ष पुराना–विश्वस्त तथा प्रतिष्ठित फर्म । (प्रधान कार्यालय : नंदप्रयाग–गढ़वाल हिमालय । शाखायें : बदरीनाथ तथा लखनऊ) । विशेष विवरण के लिये पत्र व्यवहार का पता :

महेशानन्द एण्ड संस
अशोकनगर, लखनऊ

इच्छा बलवती हो उठती है । मान्य लेखक ने केवल इधर-उधर से ही योगों को एकत्र करके पुस्तक का रूप नहीं दे दिया है, प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक प्रयोग लेखक के अनुभव में आया है तभी उसे इस पुस्तक में स्थान दिया गया है ।

यदि मान्य लेखक विभिन्न रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते समय अपने अनुभव से यह भी लिख देते कि अमुक रोग की इस अवस्था में इस योग से इतना लाभ हुआ और यदि इतने दिन तक प्रयोग कराया जावे तो पूर्ण लाभ अपेक्षित है तो अत्यन्त उत्तम होता । उदाहरण के लिए मैं ३७८ पृष्ठ पर श्वित्रारियोग में उपयोग-शीर्षक से लिखे हुए कुछ शब्द उद्धृत करता हूं । "यह सफेद कोढ़ (Leukoderma) को सत्वर दूर करता है" मान्य लेखक का "सत्वर" शब्द बड़ा गोल-मोल है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित था कि इसके प्रयोग से भिन्न-भिन्न रोगियों में किस-किस प्रकार लाभ हुआ । शरीर में किन-किन अंगों के दाग़ इससे शीघ्र नष्ट हो गए तथा किस-किस स्थान के दाग़ों में बहुत समय लगा । क्योंकि प्रायः चिकित्साकाल में देखा जाता है कि जो अंग हर समय नग्न रहते हैं यथा आंख, कान, ओष्ठ, नासा, मस्तक पर बालों की जड़ों के साथ-साथ तथा हाथों की उंगलियों के पोर्वे आदि, इन स्थानों के दाग़ बहुत देर से जाते हैं तथा ज़ो अंग छुपे रहते हैं वह दाग़ जल्दी ठीक हो जाते हैं । अतः मान्य लेखक अगले संस्करण में इस प्रकार से अनुभव को भी साथ-साथ दें तो वैद्य-समाज को और भी लाभ होगा ।

आशा है मान्य लेखक मेरे इस सुझाव का अगले संस्करण में ध्यान देंगे ।

पुस्तक अत्यन्त ही उत्तम और बड़े परिश्रम से लिखी गई है तथा सभी वैद्यों के लिए संग्रहणीय है ।

—ओम् प्रकाश, देहली ।

देहली धर्मार्थ-दंतयज्ञ

अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदिक डेन्टल मिशन के संस्थापकगण वैद्य किशोरदासजी गुप्ता, बम्वई और वैद्य पांडुरग विष्णु जायदे, हुवली का आयुर्वेदिक प्राचीन दंतोत्पाटन की कला के प्रचारार्थ देहली में आगमन हो चुका है । मिशन का हेतु दंतोत्पाटन की प्राचीन काल के प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा साधारण जनता, केन्द्रीय सरकार, पार्लियामेंट के सदस्य और विदेशी राजदूतों को प्रभावित करते हुवे आयुर्वेद की श्रेष्ठता को सिद्ध कर दिखाना है । उक्त कार्य में कुछ संसदीय सदस्य एवं मंत्रीगण भी अपना सहयोग प्रदान कर रहे हैं । अतः वैद्य महानुभावों से भी निवेदन है कि वे अपने-अपने प्रभावित एवं परिचित व्यक्तियों के सहयोग का लाभ इस आयुर्वेदोन्नति के कार्य में अवश्य प्रदान करेंगे ।—संपादक

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, ½ तो०, ¼ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक--पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक--श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र--कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र--देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

बिक्रेता-- १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

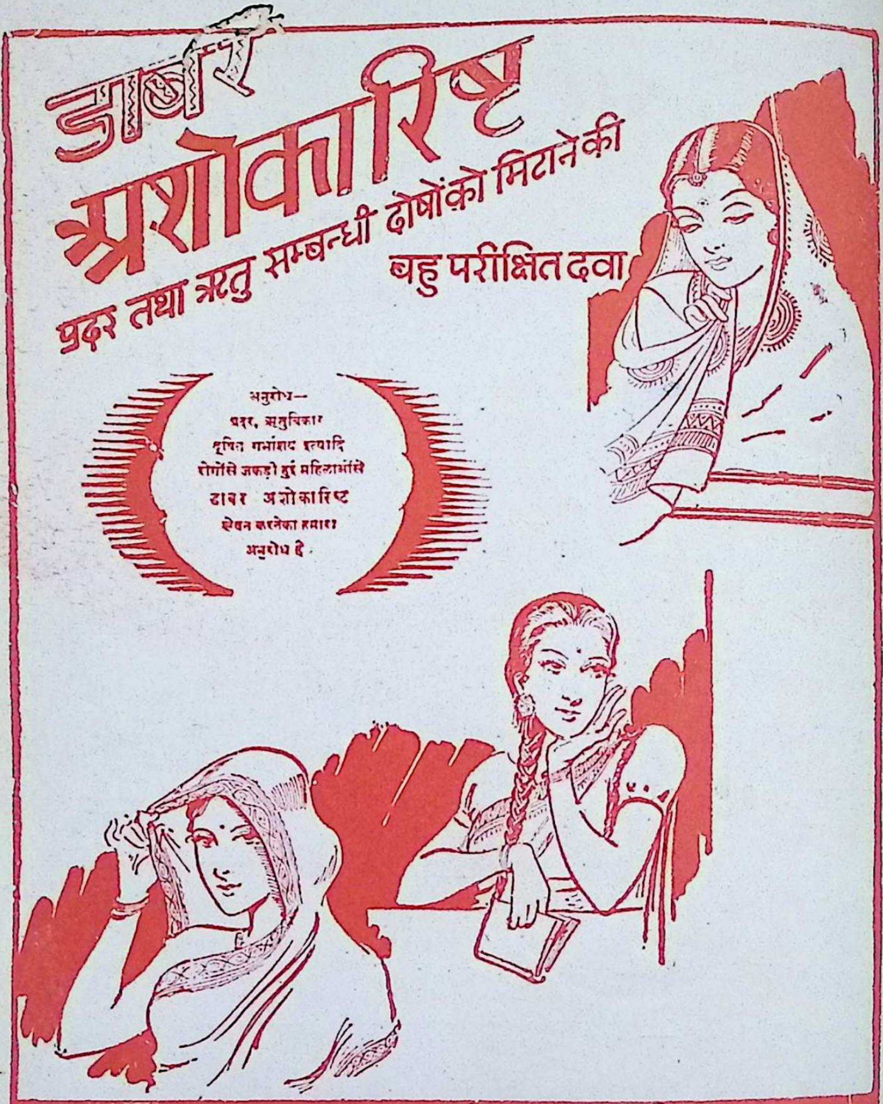

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रकः—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली।

अप्रैल
१९५२

चैत्र
२००९

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

[illegible]-पत्रिका
[illegible]

√६०
८ $\frac{1}{10}$

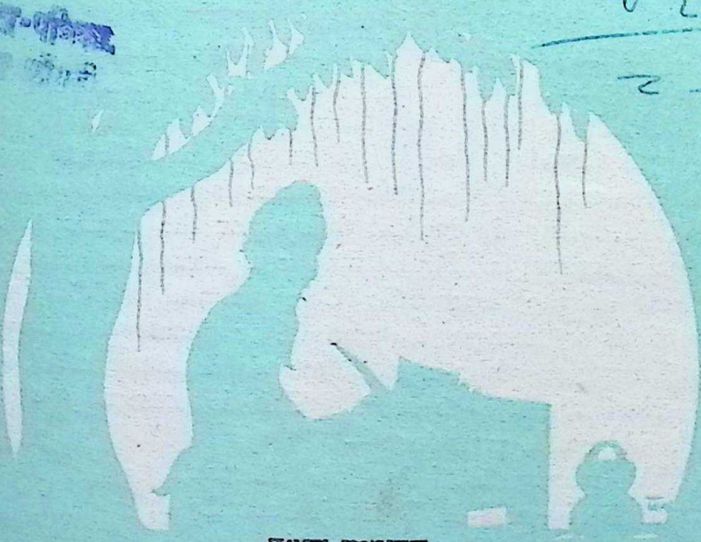

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी.ए., बी.आई.एम.एस.

वैद्यसमाज तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन से सम्बद्ध संस्थाओं से निवेदन

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, अध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, निकट भविष्य में ही आपके राज्य में पधारेंगे। ऐसा करने में उनका उद्देश्य आपके राज्य के मुख्य एवं स्वास्थ्य-मंत्री से मिल कर उन्हें देश की वर्तमान स्वास्थ्य सम्बन्धी नीति को सामने रख आयुर्वेद की स्थिति को समझाना होगा। यह आवश्यक है कि यह सम्पर्क १ जून १९५३ से पूर्व ही समाप्त हो जाए। व्यक्तिगत रूप से कोई भी वैद्य महानुभाव, अथवा आयुर्वैदिक संस्था अथवा प्रान्तीय आयुर्वेद मण्डल जो अपने राज्य या राज्यों के मुख्य एवं स्वास्थ्य-मंत्रियों के साथ श्री महासम्मेलनाध्यक्ष की भेंट का आयोजन कर सकें उन्हें सीधे ही श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी को लिखना चाहिए। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वे जो तिथियां उन्हें दें उनमें पर्याप्त अन्तर हो जिससे कि वे सम्पर्क के लिए वहां पहुंचने का दिन सुविधानुसार निश्चित कर सकें। यह विषय नितान्त महत्वपूर्ण और आवश्यक है। महासम्मेलनाध्यक्ष जी का पता निम्नलिखित है--

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा,
बहारिस्तान, ९–ए, बोमन जी पेटिट रोड,
कम्बाला हिल, बम्बई २६।

कार्यालय–
महालक्ष्मी मार्केट,
चांदनी चौक,
देहली।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधान मंत्री
अखिल भारतीय आयुर्वेद
महासम्मेलन।

An Appeal to the Vaidyas in General and Ayurvedic Organisations affiliated to the All India Ayurvedic Congress in particular

Vaidyaratna Shri Pt. Shiv Sharma, President, All India Ayurvedic Congress, will shortly visit your State to meet the Chief and Health Ministers thereof with a view to explain to them the position of Ayurveda *vis-a-vis* the medical and Health policy of the country. It is essential that this contact should be over before the Ist June, 1953. Any individual Vaidya or the Ayurvedic Society or the Provincial Ayurveda Mandal who can arrange a meeting between the President of the Ayurvedic Congress and the Chief and Health Ministers of his or their particular State or States should write to the President direct giving him a wide margin of dates to chose the day for his arrival for the contact. This is extremely urgent. The President's address is as under :—

Vaidyaratna Shri Pt. Shiv Sharma,
Baharistan, 9-A, Bomanji Petit Road,
Cumballa Hill, Bombay-26.

(Sd.) VAMANRAO DINANATH
, Vaidya,
General Secretary,
All India Ayurvedic Congress.

Office,
Mahalaxami Market,
Chandni Chowk, Delhi.

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक---कविराज पं० नानकचंद्र वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक---पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय---महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ३९
अंक ४

दिल्ली, चैत्र २००९, अप्रैल १९५३

मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. सम्पादकीय		१८९
२. स्थायी-समिति का बैंगलोर अधिवेशन		१९१
३. गलशोथ और गलशुण्डीशोथ	पुरुषोत्तमदेव	१९७
४. मधुमेह-चिकित्सा	डा० शंकरलाल भेड़ा	२०३
५. चूहे का चिकित्सा में उपयोग	हरिकृष्ण सहगल	२०७
६. आयुर्वेदोत्कर्ष की दिशा में हमारा कर्तव्य	पं० मनोहरलाल शास्त्री	२११
७. Role of Diamond on Cancer	Antubhai Vaidya	२१६
८. राजयक्ष्मा की चिकित्सा	नानकचन्द्र शास्त्री	२२५
९. आयुर्वेद-लोक		२२९
१०. महासम्मेलन-विद्यापीठ आय-व्यय तथा संतुलन-पत्र		२३९

सम्पादकीय

गत केन्द्रीय स्वास्थ्य-समिति अधिवेशन में जो हैदराबाद में जनवरी में हुआ था, आयुर्वेद की उपेक्षा की गई थी। और उसमें ग्रामों में वैद्यों को न भेजकर उन्हें पंच वर्षीय पाठ्यक्रम में जकड़ कर अल्पशिक्षित डाक्टरों को ही ग्रामों में भर देने का प्रस्ताव लाया गया था किन्तु वह स्वीकार न हो सका। उसके लगभग एक मास के अनन्तर फरवरी मास के अन्त में अखिल हैदराबाद आयुर्वैदिक सम्मेलन ताण्डूर में श्री शिवशर्माजी की अध्यक्षता में हुआ जिसमें आपने उक्त केन्द्रीय स्वास्थ्य-समिति की कृतियों की भली प्रकार से तर्क तथा युक्तिपूर्ण समालोचना की है। श्री शिवशर्मा जी का सम्पूर्ण भाषण पत्रिका के गतांक में प्रकाशित हो चुका है। इससे आपको ज्ञात हो गया होगा कि हमारे केन्द्रीय शासकों की भावना आयुर्वेद के प्रति कितनी घृणित है। हमारे राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी के आयुर्वेद के प्रति क्या विचार हैं ? राष्ट्रपति जी ने नागपुर में एक ऐलोपैथिक विद्यालय का उद्घाटन करते समय जो उपदेश पाश्चात्य विद्वानों को दिया है उसमें आपने कहा है कि, "प्राचीन चिकित्सा पद्धति का अध्ययन भी आप लोगों को अवश्य करना चाहिए और बिना जाने या समझे किसी विज्ञान को अवैज्ञानिक कहना युक्त नहीं होता।" जो चिकित्सा आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व महर्षियों द्वारा प्रचारित की गई थी और जिस के द्वारा अद्यावधि सहस्त्रों भारतीय लाभ उठा कर जीवन धारण कर रहे हैं उस विद्या को हेय तथा अवैज्ञानिक कहने का कभी किसी को अधिकार नहीं है। जिस चिकित्सा पद्धति को बड़े-बड़े देशों ने अपनाया और उसके ग्रन्थों को अपनी भाषा में अनुवाद कर उसको पढ़ा और उसके गुणों को जान कर यह शब्द उन्होंने कहे कि, "यह तो सर्व चिकित्सा पद्धतियों का पिता है" अर्थात् जन्मदाता है। ऐसा आयुर्वेद विज्ञान अपनी गुण-गरिमा से भारत ही क्या जगत को भी मुग्ध करता रहा है। इस पर अनेक आक्रमण हुए और सदा होते ही रहेंगे परन्तु यह सर्वदा शाश्वत रहने वाला विज्ञान अपनी सत्ता से सर्वदा विश्व का कल्याण करता हुआ उसे जीवन प्रदान करता रहेगा।

हमने यह सोचा था कि ब्रिटिश शासन के अनन्तर स्वराज्य हो जाने पर जिस प्रकार काँग्रेस अन्य सब विदेशी द्रव्यों का बहिष्कार कर स्वदेशोत्पन्न वस्तुओं का जनता

में प्रचार करेगी उसी प्रकार अपनी प्राचीन संस्कृति को तथा प्राचीन चिकित्सा-पद्धति को भी मान प्रदान कर अपने पूर्वजों के धन की रक्षा का सम्यक रीति से प्रबन्ध करेगी। परन्तु यहां तो नितान्त विरुद्ध भाव ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अर्वाचीन पद्धति को प्रोत्साहन देना यह सिद्ध करता है कि समुद्रान्त देशों को ही कोट्याधीश बनाने की प्रतिज्ञा हमारे शासकवर्ग ने ले रखी है। जहां कहीं भारत में चिकित्सा सम्बन्धी विद्यालय या चिकित्सालय उद्घाटन किये जाते हैं उन पर लाखों रुपयों का व्यय करके भारत सरकार अर्वाचीन पद्धति को प्रोत्साहन देती है। ऐसा करने से भारत का धन प्रतिवर्ष लाखों क्या करोड़ों की संख्या में विदेश में चला जा रहा है। अतः इस अवस्था को देख कर यही विचार होता है कि आयुर्वेदीय संस्था जो इस समय भारत में कार्य सञ्चालन कर रही हैं उन्हें सर्वप्रथम संगठित हो कर सर्व भारत में एक ही संस्था के आधीन हो कर कार्य सम्पादन करना चाहिये। इससे सारे भारत भर में आयुर्वेद की एक ही शंखध्वनि से सारा भारत ध्वनित हो कर अपने आगामी कार्यक्रम को निश्चित कर सकेगा। जब तक ऐसा नहीं होगा और सभी एक ही ध्वजा के नीचे नहीं आयेंगे तब तक कदापि हम कृत-कार्य नहीं हो सकते। "संघे शक्ति कलौयुगे," इति।

गत मार्च के पत्र में भारतीय वैद्यसमुदाय के सन्मुख एक सुझाव रखा था जिसमें मैंनें शुद्धायुर्वेदीय औषधियों के संग्रह तथा कृत्रिम (बनावटी) द्रव्यों का नियन्त्रण करनें के लिए लिखा था। वह सब ने ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा, उस पर आप अपनें विचार प्रकट करके अवश्य अनुग्रहीत करें।

——नानकचन्द्र शास्त्री

पत्रिका में "गोरक्ष संहिता" का प्रकाशन

सर्व साधारण वैद्य बन्धुओं को यह पढ़ कर प्रसन्नता होगी कि सम्मेलन पत्रिका में आगामी अंक से "गोरक्ष संहिता" क्रमशः प्रकाशित हो रही है जिन वैद्यों को इसके ग्रहण करने की इच्छा हो वह शीघ्र पत्रिका के ग्राहक बन जाएं। यह संहिता मछेन्द्रनाथ जी के शिष्य गुरु गोरखनाथ जी द्वारा संकलन की हुई अभी तक अप्रकाशित है। इसकी दूसरी प्रति-लिपि भी प्राप्त नहीं है। यदि किसी वैद्यमहानुभाव के पास हो तो वह सूचित करने की कृपा करें ताकि अच्छी प्रकार संशोधन हो सके। इसमें पारद के अलौकिक विधान हैं। यह संहिता वैद्यार्णव घनानन्द जी पन्त, देहली से प्राप्त हुई है। —सम्पादक

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

के प्रधान

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जो का महासम्मेलन स्थायी-समिति

तथा

अखिल मायसोर आयुर्वैदिक कांग्रेस के सदस्यों से अनुरोध

मित्रवृन्द,

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के गत इन्दौर-अधिवेशन के अवसर पर मायसोर आयुर्वैदिक कांग्रेस के प्रमुख श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित ने महासम्मेलन के आगामी वार्षिक अधिवेशन के लिए बैंगलोर का निमंत्रण दिया था। आगामी अधिवेशन के लिए और भी कई निमंत्रण प्राप्त थे अतः इस विषय में बैंगलोर के साथ अजमेर का आग्रह भी समानरूप से प्रबल था। परन्तु अजमेर राज्य में आयुर्वेद के सम्यक् प्रचारार्थ और साथ ही दक्षिण भारतीय जनता के हृदय में आयुर्वेद के प्रति जो उच्च सम्मान और आदर की भावना विद्यमान है उसको दृष्टि में रखते हुए मैंने डा० पण्डित से अजमेर के पक्ष में अपना निमंत्रण वापिस लेने के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रार्थना की जिससे कि अजमेर का निमंत्रण सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो जाये। डा० पण्डित ने मेरे इस विचार का समर्थन करते हुए बड़ी उदारतापूर्वक अपना निमंत्रण वापिस ले लिया। किन्तु उन्होंने यह अनुरोध किया कि इसके बदले में उन्हें यह आश्वासन दिए जाएं कि (१) मायसोर आयुर्वैदिक कांग्रेस यदि आगामी वर्ष भी अधिवेशन को आमंत्रित करे तो बैंगलौर के निमन्त्रण के पक्ष में सभी उपस्थित प्रतिनिधि सहानुभूतिपूर्ण विचार करेंगे तथा उसके पक्ष में मत प्रदान करेंगे और (२) महासम्मेलन की स्थायी-समिति का कम से कम एक प्रथम अथवा द्वितियाधिवेशन बैंगलोर में किया जायगा तथा महासम्मेलनाध्यक्ष कुछ दिन मायसोर में रह कर स्थानीय वैद्यों से सम्पर्क स्थापित करेंगे और उनका पथ-प्रदर्शन करेंगे। इन्दौर अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में उपस्थित प्रतिनिधियों की सहमति से मैंने डा० पण्डित की इन मांगों को स्वीकार कर लिया था। परिणामस्वरूप स्थायी-समिति का द्वितीयाधिवेशन अब बैंगलोर में २५ व २६ अप्रैल को किया जा रहा है। डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित का यह सत्प्रयत्न भी है कि भारत के समस्त वैद्यों का दक्षिण भारत के वैद्यों से निकट का सम्पर्क स्थापित हो सके—इसी भावना से उन्होंने इस अवसर पर अर्थात् २४, २५ व २६ अप्रैल १९५३ को अखिल मायसोर आयुर्वैदिक सम्मेलन करने का भी निश्चय किया है। उन्होंने एक प्रभावशाली स्वागत-समिति का निर्माण कर लिया

है एवं स्थायी-समिति तथा मैसूर आयुर्वेदिक कांग्रेस के प्रतिनिधियों के निवास के साथ-साथ प्रत्येक के प्रान्त की रुचि के अनुसार भोजन का प्रबन्ध भी कर दिया है।

डा० पण्डित व अखिल मायसोर आयुर्वेदिक कांग्रेस की सहायतापूर्ण, सेवापरायण एवं सहयोगी भावना की मैं अत्यधिक सराहना करता हूं। यह हमारा कर्तव्य है कि हम सब स्थायी-समिति के सदस्य, चाहे हमारे कुछ भी विचार हों अथवा हमारा झुकाव चाहे जिस ओर भी हो, बैंगलोर में होने वाली स्थायी-समिति की वैठक में अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित हों। मायसोर आयुर्वेदिक कांग्रेस के उत्साह एवं सेवाभाव की प्रशंसा में तथा उनको प्रोत्साहित करने के ध्येय से कम से कम हम इतना तो अवश्य ही कर सकते हैं।

शिवशर्मा
अध्यक्ष
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

An appeal from Vaidyaratna Shri Pt. Shiv Sharma, President of the All India Ayurvedic Congress, to the members of the Governing Council of the All India Ayurvedic Congress and the All Mysore Ayurvedic Congress

Friends,

At the last Session of the A.I. Ayurvedic Congress held at Indore—the spokesman of the Mysore Ayurvedic Congress, Dr. Y. Parthanarayan Pandit, had invited the next annual session of the All India Ayurvedic Congress for Bangalore. As there were several invitations for the next session, there was a tie between Ajmer and Bangalore. In view of the need of the Ajmer State to have a session to popularise Ayurveda there; in view of the high esteem in which Ayurveda is held in the South and in order to have unanimity over the acceptance of the invitation I made a personal appeal to Dr. Y. Parthanarayan Pandit to withdraw his invitation in order to allow Ajmer to have a unanimous verdict in its favour. Doctor Pandit very generously and sportingly withdrew his invitation to achieve unanimity. But he appealed in turn that he should be given an assurance that (1) next year all the delegates present should sympathetically support the Bangalore invitation if the Mysore Ayurvedic

Congress still wishes to invite it, (2) that at least the first or the second meeting of the Governing Council of the All India Ayurvedic Congress shall be held at Bangalore and (3) that the President of the All India Ayurvedic Congress shall spend some days in the Mysore State to contact and guide the Vaidyas there. I, as the President of the Indore Session, with the general approval and concurrence of the delegates present, accepted these demands. Consequently the second meeting of the Governing Council is now being held at Bangalore on the 25th and 26th of April 1953. Dr. Y. Parthanarayan Pandit in his noble endeavour to bring all Vaidyas of India into a closer contact with the Vaidyas of the South has decided to hold the All Mysore Ayurvedic Conference on the same occasion *i.e.*, on the 24th, 25th and 26th of April 1953. He has formed an influential Reception Committee and made arrangements not only for the stay of the members of the Governing Council and the delegates of the Mysore Ayurvedic Conference but also for their board according to their provincial tastes.

I have greatly appreciated Dr. Parthanarayan Pandit's and the All Mysore Ayurvedic Congress's spirit of co-operation, helpfulness and service. It is our duty that all of us, the members of the Governing Council, whatever our views or loyalties, may be, should attend the Bangalore meeting of the Governing Council in our largest number. This is the least we can do to appreciate and encourage the enthusiasm and the spirit of service of the Mysore Ayurvedic Congress.

23rd March, 1953. (Sd.) SHIV SHARMA.

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी-समिति तथा अखिल मायसोर आयुर्वैदिक कांग्रेस के अधिवेशन

मान्य महानुभाव,

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का द्वितीयाधिवेशन वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में २५ व २६ अप्रैल १९५३ को किया जाना निश्चित हुआ है। बेंगलोर में अ० भा० स्थायी-समिति का अधिवेशन प्रथम बार ही हो रहा है। मायसोर प्रांतीय आयुर्वेद सम्मेलन अ० भा० समिति का बहुत धन्यवाद मानता है कि उन्होंने स्थायी-समिति का द्वितीयाधिवेशन बेंगलोर में करने का निमंत्रण स्वीकार किया। यह एक सुयोग है कि दक्षिण व उत्तर भारत के सदस्य पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करें और एक दूसरे को

समझे एवं अ० भा० आयुर्वेदिक संस्था को दृढ़ करने के महान कार्य में सहयोग दें और इस प्रकार एक अति शक्तिवान और प्रतिनिधि आयुर्वेदिक संस्था का निर्माण करें। प्रजातन्त्र के इस युग में, जब की साधारण जनता के विचार शासन की नीति निर्धारण में यथेष्ट प्रभाव रखते हैं, ऐसी संस्था का होना अत्यावश्यक है। अब समय आ गया है कि हमें इस महान् संस्था के द्वारा, मानव-समाज की सेवा में अपनें उचित भाग की मांग करनी चाहिए जिससे आज हमें वंचित रखा जा रहा है।

स्थायी-समिति से एक दिन पूर्व अर्थात् २४ अप्रैल १९५३ को अखिल मैसूर आयुर्वेदिक कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन भी होगा। इस अधिवेशन से सम्बन्धित एक आयुर्वेदिक प्रदर्शनी का भी प्रबन्ध किया गया है जिसे शिक्षणात्मक बनाने का पूर्ण यत्न किया जा रहा है। इसमें कूपीपक्व रसायनों की निर्माण-विधि का प्रदर्शन किया जाएगा तथा त्रिदोष, पंचमहाभूत और सप्त धातुओं के विभिन्न पहलुओं पर प्रदर्शन-चित्रों द्वारा प्रकाश डाला जाएगा। कठिनता से प्राप्त होने वाली जड़ी-बूटियों का संग्रह और मैसूर राज्य की औषध-निर्माणशालाओं की नाम-सूची भी प्रदर्शित की जायेगी। प्रत्येक औषध निर्माणशाला से प्रदर्शनी में अपना स्टाल रखने की प्रार्थना की गई है। निर्माण-कर्त्ताओं और वैद्यों से हमारा यह निवेदन है कि वे प्रदर्शनी में भाग लेकर समिति से सहयोग करें।

हमें अभी बहुत कुछ करना है। आयुर्वेदिक चिकित्सा की उपयोगता सिद्ध करने के लिए हमें देशव्यापी संगठनों द्वारा बहुत सा क्रियात्मक कार्य करना शेष है। अतएव अनेकों समस्याओं के सुलझाव में सहयोग देनें के लिए स्थायी-समिति के अधिवेशन के अवसर पर आपकी उपस्थिति अत्यावश्यक है। मैं आपसे और आपके सह व्यवसायियों से इस विचार विनिमय में भाग लेनें की प्रार्थना करता हूं। यदि आने से पूर्व आप हमें अपने कार्यक्रम से सूचित कर देंगे तो यहां आपके निवास को यथासाध्य आरामपूर्ण बनाने का प्रबन्ध करा दिया जायेगा।

शेष सूचनाओं के लिए कृपया मंत्री, प्रदर्शनी समिति, २४४, थर्ड मेन रोड, चमराजपेट, बेंगलोर २, पर पत्र व्यवहार करें।

भवदीय,
वाई पार्थनारायण पण्डित,
अध्यक्ष-स्वागत-समिति।

All India Ayurvedic Congress Governing Council and All Mysore Ayurvedic Congress Conferences

Dear Sir,

It has been proposed to hold the 2nd session of the Governing Council of the All India Ayurvedic Congress under the Presidentship of Vaidyaratna Pandit Shiv Sharmaji on 25th and 26th of April 1953

at Bangalore. This is the first time that the All India Governing Council is being held at Bangalore. The Provincial Organisation is highly grateful to the All India Council for having accepted the invitation to hold the second meeting of the Governing Council in Bangalore. This is an opportunity for the South and North Indian. members to meet and understand each other, and co-operate in the great task of strengthening the All India Ayurvedic Organisation, and thereby build up a powerful and representative institution on behalf of Ayurveda. It is unnecessary to stress the importance of such an institution in this age of democracy, when the opinions of the common people count much in moulding the policy of administration. The time has come when we should claim, through this great organisation, our due share in serving humanity, which is being denied to us today.

The 1st Session of the All Mysore Ayurvedic Congress shall also be held a day before the Governing Council Session on the 24th of April, 1953.

An Exhibition has also been arranged in connection with the above Conference. Arrangements are being made to make the Exhibition quite instructive. The preparations of Kuppi Rasas will be demonstrated. Tridosha, Panchabhutha and Saptadhatu in various aspects will also be demonstrated by charts. Collection of rare herbs and a list of the pharmacies in Mysore State shall be exhibited. Steps are being taken to request every Pharmacy to put up its stall in the Exhibition. Manufacturers and Vaidyas are requested to co-operate with the Committee by participating in the Exhibition.

There is much to do on our part also. We have to do a lot of spade work through a net work of organisations to demonstrate the competency of the Ayurvedic treatment. Hence your presence at the time of the Session of the Governing Council is needed in helping to solve many problems. I request you and your friends of the profession to attend the deliberations. If you intimate your programme, necessary arrangements will be made to make your stay here comfortable.

For further details please contact the Secretary, Exhibition Committee, 244, 3rd Main Road, Chamarajapet, Bangalore-2.

Yours faithfully,
Y. PARTHANARAYANA, PANDIT
Chairman,
Reception Committee.

गलशोथ और गलशुण्डीशोथ

ले०—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार, हैदराबाद २

१—गलशोथ (Pharyngitis)

यह शोथ दो प्रकार की होती हैं। तीव्र और चिरस्थायी। तीव्र गलशोथ आमतौर पर श्लेष्मज्वर, रोमान्तिका (खसरा)[1] तथा आन्त्रज्वर के साथ होती हैं। इसमें रोगी को देखने में लाल तथा सूजा हुआ और उसमें खुजली भी रहती है। रोगी हर समय खांसता तथा उसकी आवाज भीं कुछ भारी सी रहती हैं।

चिरस्थायी गलशोथ ऋतु परिवर्तन के समय विशेषतः सर्दी और बसन्त ऋतु में सर्दी लगकर जुकाम और खांसी होकर झट जुकाम हो जाता है। यह रोग बच्चों में अधिकतर होता है तथा आर्द्र प्रदेशों में अधिकतर पाया जाता है।

कारण—इस चिरस्थायी रोग का कारण बहुत कुछ नाक में ही होता है। नासिका में प्रतिश्याय सम्बन्धी रोग होकर उनका गले पर असर पड़ता है। नाक में से गिरने वाली बलगम भी गले को प्रभावित करती है। दांत या गलशुण्डी पकी हुई हो तो उसमें भी गला खराब रहता है।

इस रोग का प्रधान कारण कफ का प्रकोप है इसलिये जिन रोगियों को आमवात अजीर्ण रहता हो उनका गला खराब ही रहता है। क्षयरोगियों तथा गले का दुरुपयोग करने वालों (व्याख्याता या चीखने वाले) में भी गलशोथ रहती है। क्योंकि सिर नीचा नीचा करके बोलनें से गले के स्वरयन्त्र के सामनें आ जानें से गले पर जोर पड़ने पर उसमें सूजन हो जाती है।

सम्प्राप्ति—गले की श्लेष्म-कला सूजकर मोटी हो जाती है। गलतोरण[2] तथा कौआ[3] मोटे और लम्बे हो जाते हैं। गले के ऊपर बलगम की तह छाई हुई होती है। उभरी हुई शिरायें गले में दिखाई देती हैं। इसी प्रदेश में उर्ध्वगलग्रन्थि शोथ[4] भी होती है। नासा पश्चिम शुण्डियां भीं सूजी हुई होती हैं। गले के बीच-बीच में जो लसिका ग्रन्थियां होती हैं उनमें मोटे-मोटे दानें दिखाई देते हैं। इन्हीं के कारण गला दानेदार[5] होता है। कभी-कभी जो श्लेष्म-ग्रन्थियां हैं उनके ढेर के ढेर उठे हुये मालूम देते हैं और

---

1. Measles. 2. Pillars. 3. Uvala. 4. Adenoiditis. 5. Granular pharyngitis.

अन्त में श्लेष्म प्रकोप बढ़ते-बढ़ते फिर वात प्रकोप होकर श्लेष्म-कला क्षीण होकर शुष्क हो जाती है। इसे शुष्क गलशोथ[६] कहते हैं।

लक्षण–रोगी का नासिका का पिछला द्वार बन्द होनें से एक विशेष प्रकार की आवाज (खौं खौं) करता है। जिन बच्चों को बार-बार जुकाम होने की प्रवृत्ति होती हैं उनको यह अधिक होता है। १५-२० वर्ष की आयु के बाद यह नहीं होता। नासापश्चिम द्वार अवरुद्ध होने से बालक नाक से सांस न लेकर मुख से सांस लेता है। और जब वह सोता है तो खुर्राटे की आवाज होती है। साधारणतया यह रोग थोड़े दिनों के बाद ठीक हो जाता है, अन्यथा इसके निम्न उपद्रव होने लगते हैं।

उपद्रव–बचपन से ही बालकों में इस रोग के कारण मध्यकर्ण में शोथ हो जाती है। कईयों की आंखों की पलकें भी सूज जाती हैं। कई बार बच्चों को किसी अस्पष्ट कारण से ज्वर चढ़ता रहता है, इसी रोग का हीशक करना चाहिये। इसी मार्ग से कई बार क्षयरोग के जीवाणु भी प्रवेश कर जाते हैं। यही खांसी और बलगम के कारण मुख रोग, दन्तरोग तथा पेट में जाने से उदर सम्बन्धी अनेक विकार हो जाते हैं।

पहिचान–इस रोग की पहिचान कठिन नहीं है। यदि कोई बालक मुख से सांस लेता हो, सोते समय मुख से खुर्राटें की आवाज करता हो, काम शीघ्रता से हो जाता हो तो उसमें उर्ध्व गलग्रन्थि शोथ[७] समझना चाहिये। ऐसे बालक बुद्धू होते हैं तथा उनका मानसिक व शारीरिक विकास भी भली भांति नहीं हो पाता।

चिकित्सा–उर्ध्व गलशोथ के रोगियों को जुकाम से बचना चाहिये। नासिका की शोथ के लिये क्षारीय जल तथा लाक्षादि तैल का नस्य लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त कफशामक तथा निर्बलता नाशक उपाय काम में लाने चाहियें। इसके लिये लोहभस्म, च्यवनप्राश, वासाखण्डकूष्माण्ड आदि दे सकते हैं। मलबन्ध न होने देने के लिये हरीतकी चूर्ण भी दे सकते हैं। कफ वर्धक भोजन देना भी निषिद्ध है।

तीव्र गलशोथ में रोगी को बोलने नहीं देना चाहिये। हल्का सा विरेचन देना चाहिये। शोथ हटाने के लिये मुख में खदिरादि वटी या मुलहठी का सत्व मिश्री और इलायची की गोलियां रख सकते हैं। सुहागा और मिश्री आदि की गोलियां भी रख सकते हैं, या शहद में डालकर चबायें तो वे प्रलेप का काम करती हैं। कफ शमन के लिये कफकेतु मधु के साथ या लवंगादि चूर्ण या दशमूल कषाय का पान करा सकते हैं। टंकण जल के गण्डूष भी रोगी के लिये लाभप्रद हैं।

---

[6] Pharyngitis Sicca. [7] Adenoiditis.

चिरस्थायी गलशोथ रोग में रोग के कारण को दूर करने का यत्न करना चाहिये। टंकण या पोटाशियम् हरित आधा चमचा लेकर १ पाइन्ट पानी में डालकर गन्डूष करें। मैन्डलस् पैन्ट¹ भी लगा सकते हैं। खदिरादि वटी लघु या वृहत मुख में रखें। इस रोग में हरीतकी का प्रयोग (दशमूल हरीतकी, चित्रक हरीतकी, च्वनप्राश) उत्तम है। योगराज गुग्गुलु या चन्द्रप्रभा भी दे सकते हैं। खसखस के बीजों का प्रयोग भी हितकर है। इन्हें खूब पीसकर पानी में घोटकर और फिर छानकर अकेले ही या इनमें बादाम या चारों मगज मिलाकर दे सकते हैं।

२—गलशुण्डी-शोथ (Tonsillitis)

यह दो प्रकार की होती है। (क) तीव्र। (ख) चिरस्थायी।

(क) तीव्र गलशुण्डी-शोथ--

गलशुण्डी श्लैष्मिक तन्तुओं से बनी एक ग्रन्थि है। जिसमें विशेष प्रकार के गढे (Crypts) होते हैं। यदि शोथ गलशुण्डी के अन्दर हो तो शोथस्राव इन गढों में एकत्रित होकर गढों के मुख पर श्वेत धब्बों के रूप में दिखाई देता है। जब इन गलशुण्डियों को जरा दबाओ तो इन गढों में से शोथस्राव रिस आता है। कभी-कभी शोथ गलशुण्डी की पृष्ठ पर अधिक होती है तब शोथस्राव प्रायः सारी पृष्ठ पर अवास्तविक झिल्ली के रूप में जम जाता है। इसका वास्तविक डिप्थीरिया की झिल्ली से भेद करना चाहिये। दोनों में भेद यह है--

अवास्तविक झिल्ली श्वेतरंग की होती है और वास्तविक जरा भूरे रंग की। अवास्तविक को चिमटी से पकड़ कर उतार सकते हैं और उतारने में नीचे से शोथयुक्त गलशुण्डी की पीठ निकल आती है। परन्तु वास्तविक झिल्ली को उखाड़ना पड़ता है जिसमें से नीचे से रक्तस्राव हो जाता है। अवास्तविक झिल्ली की परीक्षा पर पूय जीवाणु दिखाई देते हैं लेकिन वास्तविक झिल्ली में डिप्थीरिया रोग के जीवाणु दिखाई देते हैं।

कारण--यह रोग बच्चों को पहिले वर्ष की समाप्ति पर होता है। पहिले वर्ष में नहीं होता। कईयों का विचार है कि यह पैतृक प्रवृत्ति है, क्योंकि यह देखा गया है कि जिन माता पिता को गलशुण्डी रोग की प्रवृत्ति हो तो उनके बच्चों को भी हो जाती है।

दूसरों का विचार है कि यह पैतृक प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु एक ही घर में रहने से संक्रमण हो जाता है। आश्रमों में भी एक को होकर दूसरों को हो जाता है।

तृतीय विचार यह है कि जिन लोगों में श्लेष्म प्रवृत्ति या आमवात की प्रकृति

---

1. Mandle's paint.

होती है उनको होता है। यह आमवात का पूर्वरूप है। उसके लिये वह यह युक्ति देते हैं कि जिनको आमवात रोग होता है, उनको यह रोग प्रायः होता है, और जिनको यह रोग हो जाता है उनको आमवात प्रायः होता है। वर्तमान वैज्ञानिक दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध इसलिये भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि दोनों में एक ही प्रकार के पूय जीवाणु पाये जाते हैं।

(४) गलशुण्डियों में शोथ समीप रचनाओं से भी प्रसार करके आ जाती है। गला, स्वरयंत्र, नासिका या मुख से कभी-कभी क्षोभक पदार्थों के खाने, क्षोभक गैस सूंघने से भी शोथ हो जाती है।

(५) तापमान में सहसा परिवर्तन होने से भी यह रोग हो जाता है, जैसे रोटी खाते-खाते ठंडा पानी पीलें इत्यादि।

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिए अत्युत्तम महौषधि

नव रत्न रस

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है। शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि का विशिष्ट कार्य है तथा नपुंसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव-यौवन प्रदान करता है। स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है। वन्ध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है। बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बनाकर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान, स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। क्षय, जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है।

नवरत्न रस निरोगी के लिए रसायन और रोगी के लिए पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है। २८ गोली की प्रति शीशी का मूल्य ५) रु०

ऊँझा फार्मेसी लि० (गुजरात) ऊँझा

लक्षण--रोगी के गले और ग्रीवा में वेदना होती है। जब जिव्हा दबाकर गला देखा जाये तो गलशुण्डी सूजी हुई दिखाई देती है। कभी-कभी तो सूजन इतनी अधिक होती है कि दोनों गलशुण्डियां आपस में मिल जाती हैं। एक भेद (tollicular) में तो गलशुण्डियों पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं और उनको दवाने पर यह धब्बे एकत्रित स्राव के प्रतीत होते हैं। यदि गढों को साफ किया जाये तो गढे भी शोथ-युक्त दिखाई देते हैं। यदि गलशुण्डियों पर झिल्ली आई हुई तो उसे सुगमता से उतार सकते हैं। उतारनें पर नीचें से गलशुण्डी-शोथ निकल आती है। गले की विशेषतः जबड़े की लसिका ग्रन्थियां भी सूजजातीं हैं, और उनमें स्पर्शक्षमता भी हो जाती है। इनके अतिरिक्त व्यापी लक्षण तापमान का उच्च होना, साधारणतः १०३° फ तक लेकिन भयंकर अवस्था में १०५° तक, इसके अतिरिक्त बच्चों में वमन, अतिसार तथा आक्षेप भी होने लगते हैं, सर्दी सिरदर्द तथा टांगों में वेदना होती है।

इस रोग का भ्रम डिफ्थीरिया से हो सकता है। उसके भेदक लक्षण हम पहिले देख चुके हैं।

चिरस्थायी गलशुण्डी-शोथ--चिरस्थायी शोथ के कारण आरम्भ में तो गलशुण्डी बढ़ी हुई होती है। इनमें सौत्रिक तंतु उत्पन्न हो जाता है जो धीरे-धीरे सिकुड़ता जाता है, और अन्त में इतना सिकुड़ जाता है कि गलशुण्डी सूज कर छोटी हो जाती है। प्रारम्भ में गलशुण्डी बढ़ी हुई होती है, तो गले में हल्का सा क्षोभ हो जाता है। यह गलशुण्डी कभी-कभी तीव्र रूप धारण करती है। गलशुण्डियां इतनी बड़ी हो जाती हैं कि दोनों की ओर की मिलकर मुख का पिछला द्वार बन्द कर देती हैं, यहां तक कि नासा पश्चिमद्वार भी बन्द हो जाता है, इससे बच्चे को नासिका द्वारा श्वास लेने में कठिनाई हो जाती है रोगी के मुख द्वारा सांस लेनें में मुख के अन्दर की झिल्ली सूज जाती है और कठोर हो जाती है। जिव्हा नीचे गिरी रहती है। तालु को सहारा न मिलने के कारण वह चपटी नहीं रहती और नासिका गुहा की ओर उठ आती है, इससे नासिका गुहा और भी छोटी हो जातीं हैं और इसमें अधिक श्वासावरोध हो जाता है। और बच्चा मुख द्वारा श्वास लेने को और भी अधिक बाधित हो जाता है।

गलशुण्डी शोथ अग्रकपालास्थि स्रोतसों में पहुंच कर वहां शोथ का कारण बनती है, श्वासावरोध होने से वक्षस् पूरी तरह से न फैलने से रोगी और भी निर्बल हो जाता है। पाण्डु रोग के अतिरिक्त हल्का-हल्का ज्वर भी बच्चों में रहने लगता है अब उसकी मांसपेशियों और ग्रन्थियों में वेदना आरम्भ हो जाती है। ऐसी अवस्था में आमवात से भेद करना चाहिये। यदि हम गलशुण्डियों, को दबायें तो गढ़ों में से दुर्गन्ध युक्त स्राव निकलता है और कभी-कभी उनमें पस भर जाती है। यदि शुण्डियां क्षीण हों तो श्वास सम्बन्धी लक्षण तो लुप्त हो जाते हैं, परन्तु पाण्डु और ज्वर फिर भी बनें रहते हैं।

गलशुण्डी शोथ चिकित्सा--गलशुण्डी शोथ में रोगी को अन्य सम्बन्धियों से पृथक रखें। यद्यपि यह रोग घातक नहीं है, किन्तु फिर भी बच्चों को विशेषत: पृथक रखना ही चाहिये। औषधि कोई विशेष न होनें से लाक्षणिक या स्थानिक चिकित्सा के तौर पर बड़ी सावधानी से गढ़ों को दबाकर शोथ स्राव निकाल कर कास्टिक लोशन २% का स्पर्श कर सकते हैं। गले में सुहागा और पोटाशियम क्लोरेट की गोली रखें या इसके गण्डूज रोगी कर सके तो करवावें। गले के बाहर सेक करें।

औषधि के लिये रसकर्पूर २–३ ग्रेन और प्रातः मगनेशिया या हरीतकी का चूर्ण १ ड्राम की मात्रा में दें। गले पर बफारे के लिये उबलते पानी में शूलहर या युक्लिप्टिस् का तेल डाल सकते हैं। आमवात तथा कफप्रकोपशामक औषधियां (दशमूल कषाय, पूठयादिकषाय, लघुपंचमूल आदि या कफकेतु मधु के साथ) दे दें।

चिरस्थायी गलशुण्डी शोथ की चिकित्सा एक समस्या है। इसका कारण यह है कि कइयों का यह विचार है कि इनको निकाल देना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इनको निकालने से ज्वर हट जाता है और स्वास्थ्य भी उन्नत होने लगता है, परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि भोजन प्रणाली के वास्तविक रक्षक अर्थात् गलशुण्डियों के हट जाने पर कृमि अब सीधे आंतों में जा पहुंचते हैं, और उनके द्वारा कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। देखा गया है कि जिन बच्चों की गलशुण्डियां निकाल दी गई हैं वे शीघ्र ही अन्य संक्रामक रोगों (क्षयरोगादि से) पीड़ित हो जाते हैं। लेकिन जब उनमें सौत्रिक तन्तुओं की अधिकता हो जाए और चिकित्सा में लाभ प्रतीत न हो तो शल्य-चिकित्सा से उन्हें निकलवा देना ही हितकर है। औषधि के लिए कफ वातशामक औषधि चित्रक हरीतकी, दशमूल हरीतकी, कालक चूर्ण आदि दें। कालक चूर्ण को अंगुली में लगाकर दोनों गलशुण्डियों को प्रतिदिन कुछ अर्से तक दबाते रहने से छोटे बच्चों में लाभ होता देखा गया है।

शतशोऽनुभूत प्रामाणिक औषधियों का प्राप्ति स्थान

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वेदिक प्रकाशन "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" में वर्णित और चिकित्सातत्व-प्रदीप" में संगृहीतप्रयोगानुसार--भस्म, कूपीपक्व, खरलीय रसायन, पाक, अवलेह, घृत, तैल आदि विशुद्ध गुणकारी औषधियां हमारे यहां बनाई जाती हैं।

औषधियों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है। लिखें या मिलें।

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

तार का पता : "औषधालय" डाक व तार घर : 'कालेड़ा' कृष्णगोपाल, वाया नसीराबाद (अजमेर)

मधुमेह चिकित्सा

ले०–आयुर्वेदाचार्य डा० शंकरलाल भेड़ा, एम० बी० बी० एस०, बम्बई

चिकित्सासूत्र––

सामान्यतः प्रमेह की चिकित्सा क्रिया की पद्धति से दो विभागों में विभक्त की गई है, क्योंकि प्रमेह के रोगी दो तरह के होते हैं। १. रोगी स्थूल और बलवान होते हैं। २. कई रोगी कृश और दुर्बल होते हैं। इनमें जो रोगी कृश (अल्पबल मांस) हों उसकी प्रथम से ही बृंहण (बलमांस बढ़ाने वाली) चिकित्सा करनी चाहिए, परन्तु जो रोगी दोष बल सम्पन्न हो और उसमें स्निग्धता अधिक हो उसकी प्रारम्भ में ही संशोधन चिकित्सा करनी चाहिए। जैसा चरक आदेश करते हैं––

स्थूलः प्रमेही बलवान्निहैकः, कृशस्तथैकः परिदुर्बलश्च।
संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोष बलाधिकस्य॥

सुश्रुत ने भी स्थूल में हेतु भेद से प्रमेह के दो विभाग करके १. सहज २. अपथ्य निमित्तज भेदों से वर्णन किया है। वे सहज का कृश में समावेश करते हुये इस तरह स्पष्ट करते हैं कि जो माता पिता के बीज दोष से प्रमेही होता है वह कृश, रूक्ष, अल्पभोजी आदि होता है। दूसरा स्थूल, अधिक भोजी, स्निग्ध, शय्यासन तथा स्वप्नशील होता है। अर्थात् सहज प्रमेही का शरीर कृश होता है, तथा अपथ्य से प्रमेही होने वाले का शरीर स्थूल होता है। जैसा सुश्रुत लिखते हैं––

द्वौ प्रमेहौ भवतः सहजोऽपथ्य निमित्तश्च॥
तत्र सहजो मातृपितृ बीज दोषकृतः, अहिता चारजोऽपथ्य निमित्तः।

तयोः पूर्वेणोपद्रुतः कृशो रुक्षोऽल्पाशी पिपासुर्भृशं परिसरणशीलश्च भवति। उत्तरेण स्थूलो बह्वाशी स्निग्धः शय्यासन स्वप्नशीलः प्रायेणेति। चिकित्सासूत्र चरक के सदृश हैं, जैसा कि––तत्र कृशमन्नपान प्रतिसंस्कृताभिः क्रियाभिश्चिकित्सेत। स्थूलमपतर्पण युक्ताभिः। यहां पर अपतर्पण शब्द से संशोधन और लंघन आदि का ग्रहण किया गया है।

अपतर्पणतीति अपतर्पणं लंघनं, अपतर्पणानि व्यायाम शोधनानि तिक्तकटुकानिच इति उल्हणः।

मधुमेह की चिकित्सा में इन चिकित्सासूत्रों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। आयुर्वेदाचार्यों ने इस रोग का निदान दो तरह वर्णन किया है। जिस प्रमेह के रोगी

के मूत्र में मधुरा हो उसे (१) इक्षुमेह (किसी किसी के मत में शीतमेह भी) कहते हैं जो कफज प्रमेह हैं। वातज प्रमेहों में (२) मधुमेह (यह चरकोक्त संज्ञा है) या क्षौद्रमेह (यह सुश्रुतोक्त नाम है) इक्षुमेह कफ जन्य होनें से सन्तर्पण जनित है। इसकी चिकित्सा संशोधन पूर्वक होनी चाहिये। मधुमेह अथवा क्षौद्रमेह वातज होनें से अपतर्पण जन्य कारण से प्रारम्भ से ही वृंहण चिकित्सा उपादेय हैं। प्रमेहों की चिकित्सा में विशेषतः मधुमेही के लिये निदान पर अधिक विचार रखना चाहिये, क्योंकि निदान का परित्याग भी चिकित्सा का एक मुख्य अंग है।

सामान्यतः क्रिया योगो निदानं परिवर्जनम्"

यह सिद्धान्त है। क्योंकि निदान के अच्छे ज्ञान से ही निदान विरोधी औषध, आहार-विहार देश इष्य कालादि का निर्णय होनें पर ही चिकित्सा में सफलता मिलती है। इसलिए इक्षुमेह में विशेषतः कफ दोष हैं, यह स्निग्धधातु ही है, इनमें ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये जो मेंद निस्सारक हो (औषध, अन्न विहारादि)। वातानुबन्ध में सन्तर्पण का ध्यान रख करके चिकित्सा करें। निदान के विषय में चरक ने इतना स्पष्ट किया है कि जिन हेतुओं से जो प्रमेह उत्पन्न होते हैं, उन-उन प्रमेहों में उन-उन हेतुओं का सेवन नहीं करना चाहिये। रोग विशेष के हेतु का सेवन करना उस रोग से बचाने में सहायक होता है, उसी तरह उस रोग के उत्पन्न हो जानें पर उस रोग की निवृत्ति भी करता है। भाव यह है कि स्वस्थ पुरुषों में बिमारियां पैदा न होनें के लिए हेतुओं (निदान) के परित्याग का सामान्य विधान है। वही उत्पन्न रोगों की चिकित्सा भी है अर्थात् हेतु का त्याग बढ़े हुये दोषों को अधिक बढ़नें नहीं देता है।

चरक—

यै र्हेतुभिर्ये प्रभवन्ति मेहा स्तेषु प्रमेहेषु न ते निषेव्याः।
हेतोरसेवा विहिता यथैव जातस्य रोगस्य भवेच्चिकित्सा॥

चरक विमान में—

व्याधीनां निदान विपरीतं भवति कार्यम्। यथा अपतर्पण निमित्तानां व्याधीनां नान्तरेण पूरणमस्ति शान्तिः, तथा पूरण निमित्तानां नान्तरेणापतर्पणमिति। इतना स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

चिकित्सा—

सुश्रुत ने इक्षुमेह में अरणी कषाय तथा क्षौद्रमेह (मधुमेह) में कदर (खदर सदृश वृक्ष) तथा सुपारी की त्वचा के कषाय का उपयोग बतलाया है।

इक्षुमेहिनं वैजयन्ती कषायम् । क्षौद्रमेहिनं कदर क्रमुक कषायं पाचयेत् । इति सु० चि० १२ अ०)

मधुमेह में सम्प्रयुज्यमान औषध——

बसन्त कुसुमाकर–इस योग का व्यवहार विशेष होता है। गुड़मार मामज्जक शिलाजत्वादिवटी (सिद्धयोग-संग्रह)।

सुश्रुत में–नवायश लौह, शिलाजतु प्रयोग बतलाये हैं। चरकोक्त लोध्रासव तथा क्वाथ लाभप्रद प्रतीत होते हैं। मैंनें कई बार-कपित्थ पुष्प चूर्ण, आमलक स्वरस, त्रिवङ्ग भस्म का प्रयोग किया है चिरकाल तक सेवन करनें से लाभप्रद हैं।

इस रोग में कटुतिक्त द्रव्य (सुदर्शन चूर्ण आदि) से शर्करा भाग अत्यधिक कम होता है। सप्तरंगी का प्रयोग महाराष्ट्र में करते हैं।

मधुमेह में अत्यन्त आवश्यक्ता के बिना अपतर्पण चिकित्सा नहीं करनी चाहिये क्योंकि अपतर्पण चिकित्सा से यह रोग पैदा होता है।

देहाग्नि बल वर्णौजः शुक्र मांस विवर्धनः ।
ज्वरः कासानुबन्धश्च पार्श्वशूलमरोचकः ।।१।।
श्रोत्र दौर्बल्यमुन्मादः प्रलापो हृदयं व्यथा ।
विण्मूत्र संग्रहः शूलं जंघोरुत्रिकसंश्रयम् ।।२।।
पर्वास्थिसन्धिभेदश्च ये चान्ये वातजाः गदाः ।
ऊर्ध्ववातादयः सर्वे जायन्ते तेऽपतर्पणात् ।।३।।

चरक नें——

शस्तमुल्लेखनं तत्र विरेको रक्त मोक्षणम् ।
व्यायामश्चोपवासश्च धूमाश्च स्वेदनानि च ।।१।।
सक्षौद्रश्चामया प्राशः प्रायो रुक्षान्नसेवनम् ।
चूर्णप्रदेहा ये चोक्ताः कण्डु कोठ विनाशनाः ।।२।।
त्रिफलारग्वधं पाठां सप्तपर्णं सवत्सकम् ।
मुस्तं निम्बं समदनं, जलेनो क्वथितं पिवेत् ।।३।।
तेन मेहादयो यान्ति, नाशमभ्यस्यते ध्रुवम् ।
मात्राकालप्रयुक्तेन सन्तर्पणसमुत्थिताः ।।४।।

अन्यञ्च—

कुष्ठं गोमेदकोहिंगु क्रोञ्चास्थि ह्यूषणं वचा ।
वृषकैले श्वदंष्ट्रा च खराह्वा चाश्म भेदकः ।।१।।
तक्रेण दधिमण्डेन वदराम्लरसेन वा ।
मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहं च पीतमेतद् व्यपोहति ।।२।।

अन्यञ्च—

तक्राभया प्रयोगैश्च त्रिफलायास्तथैव च ।
अरिष्टानां प्रयोगैश्च यान्ति मेहादयः शमम् ।।

वसन्तकुसमाकर का रसामृत योग मुझे अधिक उत्तम प्रतीत हुआ है ।

मधुमेह में—इक्ष्वाकुकल्प (चरकोक्त)
मधुमेह में—कल्याण मोदक (करक कल्प)
मधुमेह में—दन्तीद्रवन्तीकल्प (चरकोक्त)

चिकित्सक बड़ी सावधानी से इन विधियों का प्रयोग कर अवश्य यशोभागी वन सकता है । (अपूर्ण)

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल—काठियावाड़—सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे. के. शास्त्री की अध्यक्षता चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीक्व, रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। हिन्दी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं अंग्रेजी के बड़े २५० पृष्ठ के सूचीपत्र का मूल्य रु० १, पोस्टेज तीन आना माफ । बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं ; उपयुक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें ।

चूहे का चिकित्सा में उपयोग

ले०—कविराज हरिकृष्ण सहगल, बाग़ीचीं अलाउद्दीन, देहली

प्रणम्य गौरीसुत भाखुपत्रं
वृषध्वजं शंकरमप्यह व

अर्थात–चूहे की सवारी वाले गणेशदेव और बैल की सवारी वाले शंकर को प्रणाम।

चूहे का परिचय

चूहा घरों में रहने वाला चौपाया हैं। साधारण चूहे छः इंच के लगभग होते हैं। सुश्रुत में इनकी सविष १८ जातियां बताई हैं, जैसे पत्रक, कपिल, कोकिल, अरुण, महाकृष्ण, श्वेत, कपोत आदि। परन्तु साधारणतया चार प्रकार के चूहे दृष्टिगोचर होते हैं, एक छः इंच के कृष्ण वर्ण, दूसरी २½ इंच की नाजुक चुहिया, तीसरी फुट भर लम्बी घूंस और चौथे दूध के वर्ण से श्वेत चूहे। एक प्रकार का अमरीकन ट्री रैट भी होता है, यह वृक्षों का चूहा कहलाता है। आकृति में गुलहरी से मिलता हुआ परन्तु उससे कुछ बड़ा होता है। यह गुलहरियों को भगा देता है और गुलहरी भी तो कुछ चूहे की जाति की जान पड़ती है। उसकी मुखाकृति शरीर की बनावट चूहे से मिलती जुलती है। रंग और पूंछ का भेद है। जैसे बिल्ली शेर की जाति से हैं इसी तरह से गुलहरी को भी उसकी जाति से मानना पड़ेगा। और फिर एक विशेष बात भी तो है कि चूहा और गुलहरी दोनों ही गण्डमाला चिकित्सा में व्यवहृत होते हैं। गुलहरी की भस्म तवाशीर के साथ गण्डमाला की खास दवा है।

घरेलू चूहा वर्ष में ८ बार बच्चे देता है, चूहिया एक झोल में १० बच्चे जनती हैं, चूहों का एक जोड़ा एक वर्ष में ८० पैदा करता है। उन बच्चों के भी ३-४ मास में बच्चे होनें आरम्भ हो जाते हैं।

चूंहे की फूंक से शरीर भाग सुन्न हो जाता है। चूहा काटने से पूर्व दंश स्थान को सुन्न कर देता है। चूहे का दंश विशेष गहरा नहीं होता और उसमें पीड़ा भी नहीं होती। २-३ मास में चूहे के विष का प्रभाव होता हे। हेमन्त व बसन्त ऋतुओं में चूहे के विष का विशेष क्रोप होता है। चूहे के विष से शरीर में गांठें पड़ती हैं, हाथ पैरों में सूजन, संधि-पीड़ा, मूर्च्छा, ज्वर, अरुचि, दुर्बलता, श्वास, वमन, शरीर का पीलापन, मुख नाक से रक्त का गिरना, दाद, खाज सिद्धम कुष्ठ आदि लक्षण होते हैं। असाध्य लक्षणों में चूहे की गंध

और शोथ विशेष होते हैं । आधुनिक शोध अनुसार इसके विष के किटाणु भी उपदंश के कीटाणुओं के समान होते हैं और उपदंश चिकित्सा से नष्ट होते हैं ।

चूहे के दंश स्थान पर दशांग लेप लगाना चाहिये व महायोगराज गुग्गुल खिलाना चाहिये । मूषा कर्णि बूटी के क्वाथ से दंश स्थान को धोना व पीना लाभ करता है। अपामार्ग के पत्तों का क्वाथ पीना भी लाभदायक है । पुनर्नवा चूर्ण का १ या २ मा० मधु से प्रातः सायं सेवन भी इस विष से मुक्त करता है । इसी प्रकार हाथी की लीद का लेप भी गुण करता है ।

प्लेग का रोग पहले चूहों में फैलता है और फिर मनुष्यों में फैलता है, प्लेग से आक्रान्त चूहा कुछ सूझा हुआ, खड़े कानों वाला, दृष्टि हीन होता है । वह बेचैन होता है इधर उधर भागता है । और घरों में चूहे मरनें लगते हैं । शास्त्र ने क्या खूब कहा है ।

पतन्ति मूषकाः यत्र, नृत्यन्ति विरमन्ति च ।
सद्यस्तद्गृह त्यक्त्वा, सकुटुम्बी बने बसेत् ।।

प्लेग से मृत चूहे को मिट्टी का तैल डालकर जला देना चाहिये । चूहे की पूंछ काट नीले रंग में भिगो कर छोड़ने से सर्व चूहे भाग जाते हैं । एक बर्तन में राल और सल्फयूरिक ऐसिड मिलाकर रखें और उसे चमच द्वारा चूहों के बिल में डालें तो वह भाग जाते हैं । बिल्ली की विष्ठा और हड़ताल से रंगे चूहे देखकर भी चूहे भाग जाते हैं। संखिया को आटे में लगाकर डालनें से चूहे उसे खाकर मर जाते हैं । चूहों को पिंजरों द्वारा और अन्य कई तरीकों से पकड़ा जाता है । प्रति शहर में जहां म्यूनिसिपल कमेटियां हैं चूहों को पकड़नें और गैस द्वारा मारने के लिये अलग एक महकमा रहता है ।

मूषक मांस

चूहे का मांस मलाया, स्याम, चीन आदि देशों में खाने का रिवाज है परन्तु हिन्दू, इसाई व मुसलमान और भू के अन्य किसी भाग पर इन्हें नहीं खाते । डा० हेनरी शेयर मैन के कथनानुसार चूहे का मांस किसी रोग को उत्पन्न करने वाला तथा अन्य किसी मांस से गुणों में हीन नहीं हो सकता ।

ट्री रैट (गुलहरी) की भस्म को तवाशीर के साथ मिलाकर खाने से गण्डमाला में लाभ होता है । गुलहरियां दो रंग की होतीं हैं एक लाल रंग, इनकी पूंछ गुच्छेदार सुनहरी होती है और दूसरी हरीं वर्ण की होती है । अकसीर मोती झारा का योग इस प्रकार है ।

गुलहरी की मेंगनी लेकर और पीस कर उसमें सम भाग गुड़ मिला एक माशा

प्रमाण गोली बनावें । १ से ३ गोली तक प्रातः दोपहर रात को पानी से दिया करें ।

चक्रदत्त के मूषक तैल में मूषक माँस पड़ता है। गुद्भ्रंश पर भी मूषक तैल लगावें । एक महात्मा का योग–चहे के त्वचा रहित मांस को खरल में डाल कर पीसें, ४ मा० कलमी शोरा डाल मर्दन करें जब गोली बनानें लायक हो १४ गोली बनावें । प्रातः ही एक गोली प्रतिदिन शीतल जल से गण्डमाला निवाणार्थ सेवन करें । मूषक को मीठे तैल में तल कर उस तैल को गण्डमालाओं पर लगाना चाहिये । चूहे का पेट फाड़ कर सर्पदंश पर लगानें से विष दूर होता है ।

रस रत्न समुच्चय में आचार्य वागभट ने लिखा है कि हीरे को खटमल के रक्त में ४ भावना दें फिर सुगंधित मूषक के मांस में लपेट कर सम्पुट में बन्द करके ३० बार बराह पुट में पाक करके अन्य औषध रसों से भस्म करें ।

चूहे का सिर कतान के कपड़े में बांध कर मिर्गी व सिर-पीड़ा के रोगी के सिर पर बांधनें से लाभ होता है । चूहें का सिर व मेंगनी जला कर शहद में मिला कर लगाने से बालचर व गंज को दूर करता है । चूहे का पेट फाड़ कर गण्डमाला के व्रण पर बांधने से भी लाभ होता है । चूहे को जला कर भस्म करें, इसे अर्श के मस्सों पर लगाने से शोथ व व्रण दूर होते हैं व मस्से सूख कर अर्श को आराम होता है ।

चूहे की चर्बी

चूहे की चर्बी को गुदा में लगाने से मलाशय के व्रणों को शीघ्र आराम होता है । यह चर्बी मलाशय में स्वयं ही ऊपर चढ़ती जाती है । गर्भाशय के व्रणों कैंसर आदि तक में इसके विशेषगुण से लाभ उठाया जा सकता है ।

चूहे के अण्ड को स्त्री पास रखे तो गर्भ नहीं ठहरता । परन्तु इस समय की गर्भ निरोध की उत्सुक पाश्चात्य तीतरियों कें लियें ऐसा करना सम्भव नहीं । चूहे के नेत्र को ज्वर वाला बांधे तो ज्वर नहीं होता ।

चूहे की मेंगनी

चूहे की मेंगनियों को सिरका के साथ लेना गुर्दा व मसाना की पथरी को निकालता है, पलकों पर मेंगनी घिस कर लगाने से वह जम जाती है । आंख में लगानें से जाला कटता है ।

चूहे की ४ से ८ रत्ती तक मेंगनी पीस कर दूध में मिला, दो समय पिलावें रक्त प्रदर में अचूक लाभ करती है, परन्तु कब्ज करती है, यह प्रयोग मन्दाग्नि वाली स्त्रियों को न देना चाहिये । श्वेत प्रदर में चावल के धोवन से दें ।

चूहे की मेंगनी पानी के साथ पीस कर बिच्छु के काटे स्थान पर लगाने से विष उतर जाता है।

झाड़ चूहा

काले रंग का बिना पुच्छ का कांटों वाला यह चूहा बहुत उपयोगी है सर्प की पुच्छ को पकड़ गोल गेंद बन जाता है। गण्डमाला चिकित्सा में इसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

छछूंदर

छछूंदर को घीस भी कहते हैं, भूमि के साथ घिसटती चलती है, डरती नहीं, नाक अर्थात थूथनी इसकी बहुत लम्बी होती है, इसके शरीर में तीव्र गंध है जिस खाद्य पदार्थ के ऊपर से यह निकल जाये, बहुत दिनों तक उसमें से गंध नहीं जाती।

छछूंदर का रक्त

आंख की सुर्खी, त्वचा के धब्बे, छाइयां तथा हजीरे इसके लगानें से दूर होते हैं।

छछुंदर का भेजा

रोगन गुल में मिला कर माथे पर लेप लगाने से नकसीर का रक्त वंद होता है। रक्तस्राव स्थान पर लगाने से रक्त रुकता है।

छछूंदर का सिर

इसके सिर को काट कर ज़ाजस्फ़ेद में मिला कर कान व नाक में रखें तो उसकी बू दूर होती है, इसकी भाप देने से मूत्र कृच्छ्र दूर होता है इसका ऊपर का ओष्ठ काट कर तावीज की तरह पहरने से मौसमी ज्वर दूर होता है। तथा बच्चों के दांत आसानी से निकल आते हैं।

श्री गणेश देवता ने चूहे को अपना वाहन बना कर अलंकारिक भाषा में वैद्यों का ध्यान चिकित्सा में चूहे की उपयोगिता पर आकर्षित किया है। वैद्यों को चूहे से घृणा त्याग कर चिकित्सा में इसका प्रयोग आरम्भ करना चाहिये।

पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठावें

सामयिक विचार

आयुर्वेदोत्कर्ष की दिशा में हमारा कर्तव्य

ले०--श्री पं० मनोहर लाल शास्त्री, वैद्यराज, देहली

आयुर्वेद इतिहास में ब्रह्मा नें आयुर्वेद शास्त्र को एक लक्ष श्लोकमयी ब्रह्मसंहिता के नाम से, जिसमें एक संहस्र अध्याय थे, प्रादुर्भूत किया, किन्तु स्वल्प बुद्धि के कारण वह संहिता उस रूप में नहीं रही और उसके पश्चात्-नाना प्रकार की संहितायें अष्टांग आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न अंगोपाङ्गो को प्रख्यात करती हुई आविभूत हुईं ।

आयुर्वेद त्रिदोष विज्ञान तथा हेतु लिंगौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणं, त्रिसूत्रं शाश्वतं नित्यं बुबुधेदं पितामहः ' इस सूत्र के अनुसार चिकित्सा के त्रिसूत्र ऐसे हैं जो किसी भी अन्य चिकित्सा पद्धति में नहीं मिलेंगे । संसार में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के प्रचलित होनें पर आज भी यह त्रिदोष विज्ञान अक्षुण्ण और अजेय है ।

अष्टांग आयुर्वेद में यद्यपि आज काय-चिकित्सा ही वैद्यों के लिये अपेक्षित सी हो गई है, किन्तु इसमें वैद्यों का क्या दोष है ?

भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के बाद अन्य प्रगतियों के साथ सरकार आयुर्वेद की उन्नति की चर्चा भी कर रही है, पर यह मेरा और आपका भ्रम है । इधर केन्द्रीय तथा प्रांतीय मंत्रियों की मनोहारिक वक्तृतायें नित्य सुनने में आती हैं, पर उनका मूल्य शून्य से कुछ अधिक महत्व नहीं रखता । पंचवर्षीय योजना में भी ऐलोपैथी के सामनें आयुर्वेद के साथ सौतेली मां जैसा बर्ताव किया गया है । प्रजातन्त्र राज्य में यह पक्षपात कहां तक शोभा देता है, यह आप स्वयं विचार कर देखें । आज सरकार आयुर्वेद और ऐलोपैथी के समन्वय की बात बड़े जोरों से कह रही है, किन्तु आप सावधान रहें, कहीं यह समन्वय का तूफान आयुर्वेद ज्योति को समाप्त ही न कर दे । आपको पहिले अपने घर में समन्वय करना पड़ेगा, तब कहीं बात बनेगी । कुनेन और गुडूची सत्व के समन्वय से बना ज्वरारि रस आयुर्वेद के लिये क्या महानता प्रदान करेगा ?

'आयुर्वेद सिद्धान्त'

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च यत्र तस्योक्तमायुर्वेदः स उच्यते ।।
याभिः क्रियाभिः जायंते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्णं तद्भिषजां मतम् ।।

यह है आयुर्वेद का सिद्धांत। जिस प्रकार वैद्यों के लिये काय-चिकित्सा का क्षेत्र ही रह गया है, उसी भांति सभी डाक्टर सर्जन नहीं होते। फिर एक काय-चिकित्सा के लिये कितना समन्वय आपस में किया जा सकता है, यह बात विचारणीय है। प्राय: कहा जाता है कि आयुर्वेद में अनाटोमी और फिजियालोजी बहुत कम है, इसलिये ऐलोपैथी की अनाटोमी और फिजियालोजी पढ़ लेनी चाहिये, किन्तु आयुर्वेद में चिकित्सक के लिये जिस पंचमहाभूत और आत्मा सहित षड् धातुक समुदायात्माक पुरुष राशि का निर्देश किया है, क्या उस पंचमहाभूत और आत्मा का विवरण ऐलोपैथी में कहीं है ?

वात पित्त और कफ शारीरिक रोगों के करने वाले हैं और रजोगुण तथा तमोगुण मानसिक रोगों के। क्या ऐलोपैथी में इस विषय में कुछ है ? रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र रूप धातु और ओज के विषय में पाश्चात्य चिकित्सकों नें क्या कुछ कहा है ?

शरीर के आधारभूत पंचमहाभूत तथा त्रिदोष सिद्धांत जो आयुर्वेद के मौलिक सिद्धांत हैं और जिनके बल पर चिकित्सा करते हुये हम शतप्रतिशत सफल होते हैं वे ही जब ऐलोपैथिक अनाटामी में नहीं है, तब ऐसी अनाटामी से आयुर्वेद का क्या विशेष हित हो सकता है ? अतः हमें शरीर विज्ञान को ही नहीं, अपितु अष्टांग आयुर्वेद के आत्मोपदेश प्रत्यक्ष अनुमान युक्ति से सिद्ध करके विकास करना चाहिये। मैंने केवल संक्षिप्त उदाहरण देकर आपलोगों को इस विषय का दिग्दर्शन कराया है। इतना समय नहीं कि मैं आपको उदाहरण पर उदाहरण देकर उकता दूं, आप सभी आयुर्वेद विषय के निष्णात विद्वान एवं संरक्षक हैं।

आयुर्वेद को समुन्नत करनें के लिये वर्त्तमान काल में जिन उपायों की परमावश्यकता है, अब मैं उन पर थोड़ा प्रकाश डालते हुये अपनें विचार प्रकट करूंगा।

शास्त्र चिकित्सा

यद्यपि आयुर्वेद-शिक्षा के लिये भारत में आज सैकड़ों विद्यालय खुले हुये हैं, जिनमें सहस्त्रों रुपयों का व्यय होता है, हजारों छात्र शिक्षा पाकर स्नातक भी बन जाते हैं। प्रान्तीय सरकार भी पुष्कल धन व्यय करके स्कूल कालेजों की स्थापना कर रही है। इन सब बातों के होते हुये भी सन्तोष नहीं होता है कि इन विद्यालयों की शिक्षा से आयुर्वेद के पूर्ण चिकित्सक बनकर अन्य चिकित्सक विद्वानों की समानता कर सकें। प्रचलित विद्यालयों की उच्च परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी चिकित्सा के सम्पूर्ण अंगों में अपूर्ण ही रहते हैं। केवल चरक सुश्रुत आदि के प्रमाणों को कण्ठस्थ कर लेने से ही विद्वान नहीं बन सकते। जब तक कि उसमें अन्य चमत्कृति न हो तथा वैज्ञानिक खोज का विज्ञान हृदय

में न हो। सबसे प्रथम ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो पाश्चात्य और नव्य शिक्षा के पूर्ण विद्वान हों, विद्यार्थी भी संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता होने चाहियें।

पाठ्यक्रम चाहे हिन्दी भाषा में क्यों न हो, किन्तु सर्वांगपूर्ण होना चाहिये, और साथ ही शल्य-शालाक्य चिकित्सा का भी अभ्यास क्रियात्मक रूप से सिखाया जाना चाहिये। आज हम देखते हैं कि व्रण चिकित्सक, वस्तिकर्म, शिराव्यध, नेत्रोपचार यह सब दूसरों के ही हस्तगत हैं।

शरीर को भली प्रकार समझकर चिकित्सा करना ही श्रेयस्कर है।

विद्यालयों में आतुरालय, शवच्छेदारुय, प्रयोगशाला तथा बनौषध उद्यान की परमावश्यकता है, जिससे छात्रों को प्रत्यक्ष ज्ञान कराया जा सके।

बनौषधि-विज्ञान

जैसे अन्य विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है, उसी प्रकार बनौषधियों के विज्ञान की भी आवश्यकता है। बनौषधियों का पूर्ण ज्ञान न होने से पंसारी, अत्तार व मालियों पर ही हमारा विश्वास रहता है। जो कुछ उन्होंने दे दिया, वह वही मान लिया जाता है। इसी कारण बहुत से प्रयोग यथार्थ फलप्रद नहीं होते।

वास्तव में हमारा जो बनौषधि-निघण्टु है वह भी संदिग्ध औषधियों से भरा हुआ है। और कई बार निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन में भी संदिग्ध औषधियां आती हैं, और उन पर चर्चा भी चलती है, तो भी सर्व-सम्मत अभी तक कोई भी सिद्धांत स्थिर नहीं हुआ, कि अमुक औषध यही है। प्रायः मतभेद ही रहता है।

यह एक दुःख का विषय है कि आज उन दिव्य औषधियों का परीक्षक कोई नहीं है।

अतः यह उपयुक्त होगा कि मुख्य-मुख्य स्थानों में एक ऐसा विपिन लगाया जावे, जैसे-दशमूल के प्रत्येक वृक्ष, कुटज, अर्जुन, अगस्त्य, हरीतकी, अशोक, विभीतक आदि-आदि, जिससे छात्र वर्ग का भी विशेष लाभ हो।

विशेषज्ञ

प्रायः आयुर्वेद के प्रत्येक चिकित्सक प्रत्येक रोग की चिकित्सा करने में पूर्ण अनुभव नहीं रखते और न ही प्रत्येक रोगी की चिकित्सा के पूर्ण साधन उनके पास हैं किन्तु जब रोगी आता है तब चिकित्सा तो करनी पडती है। चाहे वह रोग मुक्त हो या न हो। चाहे कितना भी प्रसिद्ध वैद्य क्यों न हो, प्रत्येक रोग की चिकित्सा में पूर्ण अनुभवी

नहीं बन सकता । जैसा कि चरक महर्षि ने लिखा है–

"अत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रिया विधौ ।"

जिन वैद्यों की प्रसिद्धि एक-एक रोग द्वारा हुई है वे अवश्य उन-उन रोगों में सफलता प्राप्त करते हैं । जैसे कोई वैद्य अर्श चिकित्सक हो, उसे अर्श चिकित्सा के सभी साधनों से सम्पन्न होना चाहिये । शस्त्र, पात्र, क्षार सूत्र, तैल, घृत, अग्निकर्म आदि-आदि सभी साधनों से सम्पन्न होने पर ही वह सुचारु रूप से चिकित्सा कर सकता है । वैद्यों को भी चाहिये कि वें उसी रोग के विशेषज्ञ द्वारा चिकित्सा करानें की अनुमति रोगी को दें । इस प्रकार संग्रहणी, राजयक्ष्मा, जलोदर, कुष्ठ, क्लैव्य, वन्ध्यत्व, मधुमेह आदि जटिल रोगों के विशेषज्ञों की परमावश्यकता है ।

विदेशी चिकित्सकों में यह परिपाटी प्रचलित है और वे एक-एक विषय के विशेषज्ञ बनकर पारस्परिक सहयोग से धन व यशोलाभ प्राप्त करते हैं ।

यह कार्य कालिजों को अपने हाथ में लेना चाहिये और छात्रों को यथारुचि भिन्न २ रोगों के लिए विशेष शिक्षा का प्रबन्ध कर विशेषज्ञ बनानें का यत्न करना चाहिये । क्योंकि आज आयुर्वेद के चिकित्सकों में इस प्रकार का अभाव है और इसी कारण जनता का ध्यान विदेशीय चिकित्सकों की ओर जाता है ।

ग्रन्थ प्रकाशन

यदि आज हम आयुर्वेद शास्त्र और अन्य चिकित्सा शास्त्र की तुलना करें तो कहना होगा कि हमारा यह शास्त्र आर्ष होते हुए भी इसमें बहुत कुछ न्यूनता है । आर्ष ग्रन्थों में इस समय चरक सुश्रुत ही माने जाते हैं । अन्य कई संहितायें लुप्त हो चुकी हैं । बाद में जो भी ग्रन्थ बने, वें प्रायः इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर बने ।

हर्ष की बात है कि इस ओर विद्वान वैद्यों का ध्यान गया है और ग्रन्थ निर्माण का कार्य सम्पन्न हो चला है । किन्तु फिर भी सन्तोष की बात नहीं है । क्योंकि अभी तक आयुर्वेद के अष्टांगों पर कोई उत्तम ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते । आयुर्वेद के प्रत्येक

शर्बतों के बढ़िया एसेन्स

शर्बत व तैल आदि बनानें की सभी आवश्यक सामग्री हमसे मंगवालें और अपना कारोबार चालू करके धन कमाएं ।

बी० डी० सुगन्ध एण्ड को०
पोस्ट बक्स नं० १२१७, देहली ।

अंग की विशद विवेचना के साथ २ नव्य और पाश्चात्य विषयों का मन्थन करके इस पथ की ओर अग्रसर होना नितान्त आवश्यक है।

अब में आपका अधिक समय न लेकर केवल इतना निवेदन करूंगा कि आयुर्वेद में नवीन अन्वेषण और विश्वस्त रसायनशालाओं की भी परमावश्यकता है।

अन्वेषण के बिना औषधि-निर्माण रसायन क्रिया की हुई औषधि का रोगी पर प्रभाव तथा मल, मूत्र, रक्त आदि की जांच होना कठिन है।

अनुमान कीजिये कि हम किसी धातु की भस्म बनाते हैं तो पूर्व उसका संशोधन किया गया, पुनः वनस्पतियों द्वारा या पारा, गन्धक ताल आदि द्वारा उसकी भस्म की गई, भस्म के पश्चात् उसमें क्या कुछ परिवर्धन हुआ, मुख्य पदार्थ कितने अंश में रहा, कितना अंश गया, तथा किन तत्वों का परिवर्तन हुआ, इन सब बातों की जांच होनी चाहिये।

इसी प्रकार मकरध्वज आदि कूपी पक्व रसों की परीक्षा भी अन्वेषण के बिना नहीं हो सकती। मल, मूत्र, रक्त, श्लेष्म, पूय आदि में किन वस्तुओं का समावेश किन अंशों में है यह सब विषय अन्वेषण की अपेक्षा रखता है। इसके साथ ही साथ एक रसायनशाला की भी आवश्यकता है जिसमें वैज्ञानिक ढंग से औषधियों का निर्माण हो और सब प्रकार के औषध-निर्माण यंत्र प्रस्तुत रहें। इसमें वैद्यों को चिकित्सा-कार्य में भी बड़ी सफलता मिलेगी। अन्वेषण का प्रबन्ध विद्यालयों में होना अत्यन्त आवश्यक हैं। ऐसी अवस्था में आयुर्वेद विज्ञान में एक नई शक्ति का संचार होगा और वैद्य लोग भी आजकल के वैज्ञानिकों से कम नहीं माने जायेंगे।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम
हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य
हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान
विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।
तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७६६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

ROLE OF DIAMOND ON CANCER

By

Ayúrvedacharya Dr. Antubhai Vaidya,
D. Sc. (Ayur)

Director, Ayurveda Research Institute,
BOMBAY

(*Continued from February issue page 94*)

Etiology of Cancer :—Instead of writing pages on the cause of Cancer, it will not be far from truth if we say that the cause of Cancer is not known definitely so far. Many a speculating causes are supposed, blamed and attempted to be justified to know the cause of Cancer, but it is nothing but darkening the counsel by words without knowledge. Few subjects over the Cancer are more difficult to present within unavoidable narrow limitation of space.

INCIDENCE

Age :—There are no hard and fast age limit regarding the recurrence of Cancer, but normally the carcinoma occurs in the latter life. While sarcoma occurs in young adults. This age incidence has marked coincidence with the site of the tumour. Such as Neuromate of adrinals occurs in infancy, Glioma in childhood, Sarcoma of bone between 15 to 25 years. Tumours at certain sites vary according to functional cycle; examales are breast, prostate, and ovary.

Sex :—The parts like uterus, breast have no counterpart in the male, but sex incidence of the other parts of body not connected with the reproduction is sometimes striking. In the upper alimentary tract the classic example is Post cricoid Cancer found in Women—90% of the cases. Cancer of lower part of Oesophagus and stomach is more common in man. At certain sites the sex incidence may be explained on the occupational grounds or habits. Cancer of breast and ovary is common amongst the women who have not performed their sex function i.e. nulliparas women. While cancer of the cervix is common in multiparus women.

Racial Incidence :—I think it is no use speculating over the racial statistics, if we are to consider the physiological Human being the same everywhere, it may be attracting the attention because of certain different habits in different parts of the world. The cancer of inner side of the things is well known amongst the Kashmiris, because of the extreme cold the carrying of the burning 'Kangri' in that situation; Cancer of buccal cavity is more in India, the alleged cause is the habit of bettle chewing. Dutch women are more liable to get the cancer of alimentary tract and in Britain the cancer breast is more common in women.

But the factors such as influence of civilization, specific habits limited to civilised persons etc. are the views without any scientific corroboration.

Heridity :—The contradictory and diverse medical opinion, and valueless general statistics are so unsatisfactory that it baffles anyone's mind who tries to think over it.

We do hear of families affected by cancers. In my practice I have come across three such families, in one the grand mother had the cancer cervix, the son had cancer colon, the daughter had cancer breast. It is useless to cite such examples, because if we are to take the principles of genetics in the view then this variation in the site of cancers is more puzzling.

From the experimental work of Slye we are aware of the remarkable results she has demonstrated by continued inbreeding of mice of cancer-bearing ancestory. She has however shown that tendency to tumours of specific organs is heriditary. From her experiments she has concluded that cancer is inherited as a mendelian recessive. But the divergence in acceptance of the opinion amongst genetics is also well-known. Some regard it as Mendalian dominant and some recessive.

Pre-cancerous conditions in Human being :—Certain proportion of cases which eventually culminate in cancer have as their precursor the long continued irritative process of prolifective nature. The examples are the tumour of ectopic tests, pigmented wart ultimately running into malignant mole, polyposis coli undergoing cancerous change.

Various forms of chronic irritation are blamed and the examples are cancer of tongue arising out of the ulcer, due to offending tooth, or cancer occurring in the tongue with syphilitic glossitis, cancer lower lip in the pipe smokers, skin cancer usually occurs when skin is subjected to chronic irritation, such as old ulcers, burns, lupus, cancer af Gall bladder which has harboured the stones for number of years.

The subject of chronic irritation as the probably cause of cancer is though accepted for certain examples, still has the controversial opinion on it. Some physical agencies, other chemical and others gain result from chronic infection. This diversity at first glance does not seem to indicate the involvement of specific activity but, it does show the fact that chronic irritation as such may not be giving rise to cancer but it produces the ground for it. The general accepted rule is that chronic irritation interferes with the nutrition perhaps because of lymphetic stasis produced by it thus rendering cells more liable to undergo malignant proliferation.

Occupation :--Khengri Cencers of the Kasmiris, the Cancer scrotum of the workers in refining Shale oil industry is Scotland and Irridiction cancer in radiologist are the examples of occupational cancers.

Occupational cancers vary in frequency incidence and clinical cause. But they arise only in small proportion of exposed persons. Majority of the persons developing occupational cancer develop pre-cancerous conditions like, demotosis of various forms, growth may begin after a number of years after the individual has changed the occupation.

IV. Fundamental feature of tumour growth :—
Biology of Tumour Cell.

Morphologically the tumour cells resemble the cells of the tissue from which they are derived, but the cells which were originally part and parcel of the normal tissue must have something fundamentally different in them, which is responsible for making them assume the malignant character. It is suggested that they differ in character and disposition of the chromosome constituents of the genes.

Chemically :—Majority of normal cells require oxygen, malignant cells subsist principally by anacrobic glycolysis even though oxygen is available. This property of malignant cells might be enabling them to flourish under the circumstances prejudicial to the normal cells. Even then there is difference in degree and not in kind, becauss in retina cells possess the glycolytic faculties equal to the malignant cells. Also the cells actively growing are similarly endowed to smaller extent though they are normal cells. Still we are led now here by studying the biological and chemical properties of the normal and malignant cells, because it is believed that most, if not all, of the cells do possess the capacity to grow limitless, in normal cell this capacity is restricted, while in-malignant cell the capacity to grow limitless is unrestricted ; the reason why it should remain unrestricted is not known.

VI. Discàrded theories that cancer is due to the cell rests and due to parasite hold no ground, and do not explain the diversity of the site of cancer, and also they first exploit the various pre-cancerous lesions.

VII. **Carcinogenic Agents** :--Recently the coal tar product particularly the Hydrocarbons with four or five carbon rings arrayed in condensed formation are held responsible for cancer. The experimental cancers have been produced in rabits by painting the ear with the tar-products. A curious fact that sterols like, oestrine chlesterol bile salts, male harmones, vit. D. have similar structure. It is quite fair to speculate that these substances in the body might be undergoing the structural alteration as to prove carcinogenic to the individual, and thus in particular pre-cancerous conditions might be responsible for evoking the cancerous change. But the diversity of the precancerous conditions and also varieties of cancer are so perplexing entities that we cannot with certainty assign the cause of cancer, or the causes of Cancer.

From the above discussion about the probable causes of cancer, all we have to conclude is that we plead our ignorance so far as cause or causes of Cancer are concerned.

Classification of Tumours :—No classification of tumours can be said to be perfect till we have clearly arrived at the Etiology of the same. However they may be attempted to be classified either on (1) Histological basis or on Hystogenetic basis. It may be accepted till we are fortunate to find out the causative agent or agents.

Malignant and non-malignant :—

(1) Non-malignant tumours of connective tissue origin.
Fibroma, Lupome, Myxoma, Chondroma, Osteoma, Myoma, Glomangioma, Xanthoria.

(2) Malignant tumour of connective tissue origin.
Sarcoma

(3) Innocent tumours of epithelial origin.
1. Papilloma 2. Adenoma

(4) Malignant Epithelial tumours.
Carcinoma or Epitheloma

(5) Teratomes and Mixed tumour.

(6) Tumours derived from Mucous :—Glioma, Neurinoma, Ganytromucoma, Paragarylioma, Glomangioma, Argentiaffinoma.

(7) Those derived from Endothelioma :—Endothelioma, Haemingioma, Lymphergioma

(8) Melanoma

(9) Chorion Espitheloma

The tumours which defy the accurate classification in light of our present knowledge.

These are :—

Giantcell tumour of bone , Odentoma, Chordoma, etc.

Pathology :—In view of the limitation of Space and time it will be out of place to start to describe in detail the pathology of all the tumours. No doubt there is nothing more fascinating than the pathology of tumours, but we know that we consider a thing interesting in the medical science when it is not clear-cut entirely in understanding it. I shall therefore restrict myself to the malignant varieties.

Sarcoma and Carcinoma :—The tumour of connective tissue origin, usually occurs in young subjects less common than carcinoma is a very rapidly growing tumour. When it affects the bones it usually affects during the growing period and surprisingly affects the growing ends of the bones i.e. on lower extremity, the bones nearer the knee, and in upper extremity, the bones away from the elbow are affected. There may be no particular reason attached to this selectimity but the growth period coinciding with the growing ends does arouse the interest.

It may also arise in the previously benign tumour, such as in uterine myoma, fibroma, or chondroma.

The cells of sarcoma remain well differentiated, and accordingly we may call them as spindle cell sarcoma, or round cell sarcoma, or Lympho sarcoma.

The cells have well defined nucleus and neudilous when the nature of the parent tissue is recognisable which we name accordingly as fibrosarcoma, osteosarcoma, or chondrosarcoma and so on and those in which the parent tissue is not differentiated, we term it as spindle cell or round cell or mixed cell sarcoma.

To the naked eye it looks a fleshy mass, fungative bleeding and if it is very vascular sometimes pulsating too. The blood vessels are usually ill supported and thin, but abundant. It is likely to undergo mucoid degenerative change with subsequent liquifaction and cyst formation.

Microscopically :—The cells are of connective tissue origin with little inter cellular matrix outlines of the cells are usually indistinct because of plenty of cytoplasm in them, but neuclid are well marked and large. The cells may be seen actually dividing. According to the type of the cell predominent it is classed Hystologically, spindle shaped round cell or mixed type.

The method of spread is different from that of carcinoma. Sarcoma spreads early, both locally and distally. It spreads mainly by blood stream. So secondary deposits are found in lungs, liver etc. The prediliction for mode of spread by blood stream is explained by the fact that it is very vascular tumour.

Lymph spread by sarcoma is not important and the success of the treatment depends only upon its spread. If it has spread to distant organs by blood stream then local removal of the limb is not advocated much even though the secondaries are reported to have retrogressed after the removal of the primary growth.

However the fallicious cases of spontaneous cure are also reported but then doubt remains whether such "cures" were real sarcomas or something harmless.

Carcinoma :—Usually known as Cancer it is the tumour of Epithalial origin and differing from sarcoma fundamentally in the origin, appearance, occurrence, mode of spread and also microscopically.

It usually occurs in the late life, spreads merely by lymphatics and cells are arranged in sheets.

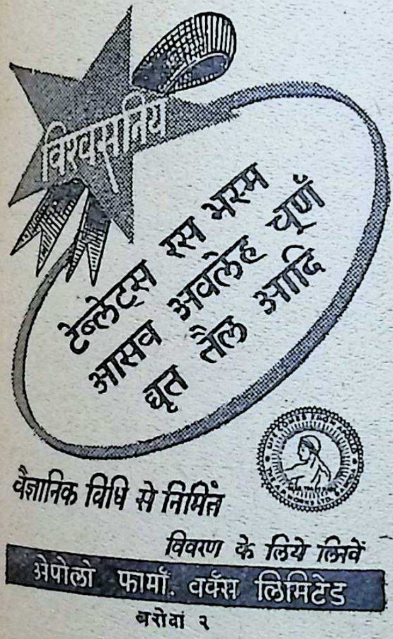

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें। (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें। (३) महासम्मेलन और वैद्य-समाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (६) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट और शुद्ध भाषा में हों। (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें।

Thus main types of Cancers are recognised.

(a) Squamous cell carcinoma.

(b) Basal cell carcinoma.

(c) Glandular carcinoma.

Squamous cell carcinoma :—Usually arises in skin or in any epthithelium which has first gone metaplastic. It may develop spontaneously or in the previously existing lesion, subject to chronic irritation by mechanical thermal or chemical or bacterial agencies.

Eozema, warts, Hyperkenetosis of skin may form the precursor of cancerous change in them.

It may be papillary or Ulcerative variety.

Miscroscopically the cells form the irregular masses of solid clumps, spreading irregularly in the subcutaneous tissue. The characteristic cells make the stralified appearance of the epthithelium give rise to epithelial pearls or cell rests.

It spreads by direct infiltration of the adjacent tissues ; rate of growth is not the fixed entity. It spreads with the passage of the time to the neighbouring lymph glands and is not so vascular. So, the blood spread, if at all it occurs in cancer, is very late.

In certain situation such as naso pherynx tonsils cells show great anaplasia, as to resemble the sarcoma. Such sarcomatous cancers are rapidly growing and also spread rapidly.

(*To be continued*)

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम, सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है ।

राजयक्ष्मा की चिकित्सा

ले०–वैद्य श्री नानकचन्द्र शास्त्री, देहली

पत्रिका के गत अंकों में हम राजयक्ष्मा के उत्पादक कारणों, लक्षण तथा निदान के विषय में विस्तार से लिख चुके हैं। अब चिकित्सा का वर्णन करेंगे। चिकित्सा करते समय सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि यक्ष्मान्वित रोगी दुर्बल है अथवा बलवान। यदि रोगी बलवान हो और उसमें दोष अधिक संचित हों तो उसे स्नेहन तथा स्वेदन करके स्निग्ध तथा मृदु द्रव्यों से वमन, विरेचन कराना चाहिए। परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रोगी शोधन द्वारा निर्बल न हो जाए। उक्तञ्च:–– बलिनो बहुदोषस्य स्निग्धस्विन्नस्य शोधनम्। ऊर्ध्वाधो यक्ष्मिण: कुर्यात्सस्नेहं यत्नकर्शनम्। इति।

वमन कराने के लिए मैनफल का चूर्ण ३ माशा दुग्ध के साथ या मधुर द्रव्य के रस से अथवा वमनकारक द्रव्ययुक्त यवागू घृत मिलाकर दें, इससे संचित कफ निकल जाएगी।

विरेचनार्थ––त्रिवृत अथवा काली निशोथ या अमलतास का गूदा चीनी तथा घृत मिलाकर बलाबल विचार कर दें अथवा दुग्ध के साथ तर्पण करें। मुनक्का, विदारीकन्द, खम्भारी मांस रस के साथ सेवन करावें। ऐसा करने से दोषों का शमन हो जाता है तथा बल क्षीण नहीं होता।

इस प्रकार शुद्ध कोष्ठ हो जाने पर बृंहण, अग्नि दीपन तथा हृद्य अन्न-पान का प्रयोग करें जो वातनाशक तथा हल्के हों–जैसे चावल, रक्त तण्डुल, गेहूं, यव तथा मूंग आदि। बकरी का दुग्ध, अजाघृत, अजामांस सेवन करने से लाभ होता है। क्रव्याद जीवों के मांस रोगी से गुप्त रख कर देने पर यक्ष्मा का नाश करते हैं। इन जीवों के मांस का यदि रोगी को ज्ञान हो जायेगा तो उसे वमन होने की सम्भावना है जिससे रस, बल तथा ओज का नाश होता है अतः गुप्त रूप से ही देना चाहिये। यह केवल मांस खाने वाले रोगी के लिए ही कहा गया है यथा "मांस सात्म्याय मासमिति।" पित्त कफ की अधिकता में मृगादि जीवों का मांस रस तथा वाताधिक्य में प्रसह जीवों के मांस से बनाये हुए वेशवार (पिसित मांस) को सरसों के तेल अथवा घृत में भून कर दोषानुसार प्रयोग कराना चाहिए। अच्छे रसयुक्त, मृदु, स्निग्ध पदार्थ मधुर द्रव्यों के साथ देना भी हित होता है। कच्ची मूली, कुलथी आदि का यूष घृत से भृष्ट कर दोषानुसार देने से लाभ होता है।

मांस रस––अजा मांसरस घृत से स्निग्ध करके पिप्पली, यव, कुलथी, सोंठ आदि

डाल कर सिद्ध कर लें तथा आमले के रस व अनार के रस से अम्ल कर दें। इससे षड्लक्षणयुक्त यक्ष्मा अर्थात् मीनस, श्वास, कास, सिरपीड़ा, स्वरभंग और अरुचि नष्ट होती है।

जल—पंचमूल से सिद्ध किया हुआ या भूमि आँवले से बनाया हुआ जल, धनिया और सोंठ से बनाया जल अथवा शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुग्द्पर्णी से सिद्ध किया हुआ जल यक्ष्मा रोगी को दोषानुसार कल्पना कर अनुपान से प्रयोग करें। रोगी को हर प्रकार से पवित्र रखना चाहिए।

घृत—दशमूल के क्वाथ तथा कल्क से दुग्ध डाल कर सिद्ध किया हुआ अथवा बला कल्क और माँस रस से बनाया हुआ घृत, अथवा बला कल्क में दशगुणा दुग्ध डाल कर सिद्ध किए हुए घृत में मधु डाल कर सेवन कराने से यक्ष्मा की शान्ति होती है। खजूर, दाख, मुलहठी, फालसा और पिप्पली इनके कल्क से सिद्ध किया हुआ घृत पिप्पली चूर्ण डाल कर पीने से स्वर भंग, कास, श्वास को नष्ट करता है।

दशमूल के कल्क से सिद्ध किए हुए दुग्ध से घृत बना कर पिप्पली और मधु मिश्रित का यक्ष्मा रोगी को चटाने से स्वरभेद, शिरोव्यथा पार्श्वशूल, श्वास, कास और ज्वर नष्ट होता है। इसी प्रकार पंचमूल से पकाए हुए दुग्ध से घृत निकाल कर देनें से भी लाभ होता है।

यदि यक्ष्मा रोगी का मुख विरस हो तो उसे दोनों समय दातुन कराना चाहिए। मुख-धावन कषाय से अर्थात् त्रिफलादि क्वाथ से कुल्ले करावें तथा कवल धारण करें।

मुखधावन-दालचीनी, मुस्तक, इलायची व धनिया; मुस्तक, आमला, दालचीनी; दारु हरिद्रा, दालचीनी व यवानी; तेजबल का छिलका, पिप्पली; यवानी, इमली; यह पांच योग मुख-धावन के लिए कहे गए हैं। इनकी गुटी बना कर मुख में धारण करें अथवा चूर्ण बना या घोल कर कवल धारण करें। इससे रुचि बढ़ती है और मुख का शोधन होता है।

यवानीषाण्डवम्—अजवायन, इमली, सुण्ठ, अम्लवेतस, अनारदाना, बेर प्रत्येक एक कर्ष; धनिया, सोंचल, जीरा श्वेत, दालचीनी प्रत्येक आधा कर्ष; पिप्पली १००, मरिच २००, शर्करा ४ पल इन सबका चूर्ण बना सेवन करें। इससे जिह्वा शुद्ध होती है। हृदय के लिए हितकर, रुचिकारक, हृदय व पार्श्वशूलनाशक, विबन्धनाशक, कास श्वासहर, ग्राहि, ग्रहणी तथा अर्श रोग को दूर करनें वाला है।

इसी प्रकार तालिषादि चूर्ण तथा शीतोपलादि चूर्ण दोष, बलाबल का विचार कर

प्रयोग करना चाहिए। शीतोपलादि चूर्ण का प्रयोग हाथ पैरों की दाह तथा शुष्क कास में घृत व मधु मिला कर करना चाहिए।

स्नान—श्वेत सरसों का कल्क तथा अन्य गन्ध द्रव्य मिलाकर देह में मालिश करें पश्चात ऋतु के अनुकूल जलसे स्नान करा दें, सुगन्धि (इतर आदि) तथा पुष्पमाला को धारण करें। प्रिय मित्रों के दर्शन तथा नृत्य वाद्य आदि को, जो मनको प्रिय हों, सेवन करें। दुग्ध तथा घृत की वस्ति का प्रयोग भी हित होता है। तथा दैवव्यपाश्रय अर्थात् अथर्व वेद के मन्त्रों द्वारा हवन पूजन और दानादि करना भी रोग की शान्ति करते हैं।

रस प्रयोग—रास्नादिलोह राजयक्ष्मा में जहां कफाधिक्य हो, स्वरभेद, कास का अधिक वेग हो तो ३ रत्ति मधु के साथ देने से सर्वोपद्रव नाश होकर बल वर्ण अग्नि को बढ़ाता है। प्रयोग-रास्ना, अश्वगंधा, कर्पूर, मण्डूकपर्णी, शिलाजतु, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद यह सब समान भाग तथा लोहभस्म सबके बराबर अर्थात १४ तोले डालकर सबको भली प्रकार खरल कर इसकी तीन रत्ति मात्रा देने से प्रचुर लाभ देखा गया है।

राजमृगांकोयथा—रससिन्दूर ३ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, रजतभस्म १ भाग, शुद्धमनसिल २ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध ताल २ भाग, सर्व प्रथम रससिन्दूर तथा गन्धक को मिलाकर शेष द्रव्यों को शनैः शनैः मिला दें, उन्हें बड़ी-बड़ी पीले वर्ण की वराटिकों में भर दें। फिर सुहागा अजा दुग्ध में पीसकर उन कर्पदिका का मुख बन्द कर दें, छोटी हांडी में भर कर उसका मुख बन्द करके गजपुट में आग दें। शीतल होने पर सब द्रव्यों को निकालकर पीस लें।

इस राजमृगांक रस को १ रत्ति से लेकर बलाबल के अनुसार चार रत्ती तक पिप्पली चूर्ण मिलाकर मधु से अथवा मरिच चूर्ण मिलाकर अर्थात् मात्रा से चतुर्थ भाग पिप्पली चूर्ण या मरिच चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। वातश्लेष्म से होने वाले क्षय में घृत से देना चाहिये। इसके सेवन से एकादश लक्षण युक्त यक्ष्मा शांत होता है। इस पर मांस रस तथा स्निग्ध आहारादि उपयोग कराना चाहिये।

इसी प्रकार मृगांक रस का प्रयोग तथा जिन रसों में स्वर्ण का मिश्रण हो उनका सेवन विशेष लाभदायक होता है।

वृहत् लोकनाथरस—इस रस का प्रयोग शार्ङ्गधर संहिता में देखें—इसका प्रयोग कास, श्वास की अधिकता होने पर मरिच चूर्ण के साथ अवश्य कराना चाहिये। इससे यक्ष्मा के अनेक उपद्रव शान्त होते देखे गये हैं। इसमें रस प्रयोग करने वाला रोगी ककाराष्ठक का परित्याग करके की ही लाभ उठा सकता है। कलिङ्ग, तरबूज, करेला, केला, मकोय, कसुम्भिशाक, ककौड़ा, पेठा, ककड़ी यह ककाराष्ठक कहलाता है तथा इनका रस सेवन त्याज्य माना है अतः इन्हें तथा तैल से बने पदार्थ, बिल्व, कांजी, क्रोध करना स्त्रीसंग वा इनका चिन्तनादि, दिन्न का सोना, रात्रिजागरण यह सब यक्ष्मा रोगी को सर्वदा त्यागने चाहिए।

हृद्य, स्वादु, तृप्तिकर अन्न तथा फलों का प्रयोग पथ्य होता है तथा शुद्धवायु का सेवन, स्वच्छ स्थान में वास रखना, ग्रीष्मऋतु में जिन पर्वतों पर चीड़ आदि की बहुलता हो, ऐसे प्रदेशों का परिभ्रमण करना लाभदायक होता है ।

चन्द्रामृतरस--यह रस अष्टविध कास को नष्ट करता है । इसके सेवन करने से यक्ष्मा में होने वाले कास, रक्तपित्त, श्वास आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ।

अन्य कई रसों का प्रयोग बलाबल का विचार कर वैद्य कर सकते है । जिन रसों में स्वर्ण का प्रयोग किया गया है उनका प्रयोग विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है । लेख के विस्तारभय से यहां उनको नहीं वर्णन किया गया । वह सब आयुर्वेदज्ञ विद्वान् भली प्रकार जानते हैं ।

वैद्यों के विशेष ज्ञान वर्द्धक प्रयोग यहां उद्धृत किये जाते हैं जिनके प्रयोग से शीघ्र लाभ तथा यश प्राप्त होगा ।

माधवाचार्य--शुद्धतालस्य भागेन सुधाचूर्णं समांशकम् । रक्त कार्पास साहेण मर्द्दये च दिनत्रयम् । मूषायां निक्षिपेत्सर्वं सप्तवारं पुटं भवेत् । सिन्दूरं हरितालस्यचेन्द्रगोपप्रभं भवेत् ।।

अर्थात् शुद्ध ताल को लेकर उसके साथ चूना समांश मिलाकर रक्त कपास के रस में मर्द्दन कर मूषा में रखकर इसी प्रकार सातवार लघुपुट से पाक करने से हरिताल का सिन्दूर समानवर्ण होगा, उसे पीसकर शीशी में डाल रखें । यह "तालसिन्दूर" नाना रोगों को अनुपानभेद से नष्ट करती है यथा-पान के रस में ½ रत्ति से १ रत्ति तक श्लेष्मा के क्षय में दें । गोक्षुर क्वाथ से रक्तक्षय में, नारियल के जल से वातश्लेष को नष्ट करें ।

हरीतकी चूर्ण मिलाकर देने से श्वास क्षय को दूर करें । पिप्पलीचूर्ण से कास क्षय में दें, मिश्री तथा मधु सहित पित्तक्षय में दें । निर्गुण्डी के चूर्ण से कफ ज्वर को नष्ट करें। मक्खन से मिलाकर देने से हिक्वाच्छर्दि का निवारण करता है । तुलसीरस संयुक्तं चातुर्थिक विनाशनम्, अर्जुनत्वक्चूर्ण युक्तं शुक्रमेह विनाशनम् । कार्पासीबीज चूर्णेन बहु मूत्रं प्रणश्यति ।

शंखचूर्णेन संग्रहणीमतिसारं विनाशयेत् । उन्मतरस संयुक्तं क्रमि कुष्टं विनश्यति ।
अपामार्गरसेनापि गुदरोगो विनश्यति । वृश्चिकालिरसैर्युक्तं मेहं कृच्छ्रं विनश्यति ।
एतत्समांशकं चूर्णमयोक्तं भाषितं तथा । तालसिन्दूर योगेन नाना रोग हरं परम् ।।

इस ताल सिन्दूर का सेवन करने वाला रोगी क्षय के नाना उपद्रवों से मुक्त होकर बलवान् तथा वीर्यवान् हो जाता है । वैद्यमहानुभाव इसका निर्माण तथा उपयोग करने के अनन्तर इसके गुणों को पत्रिका में प्रकाशनार्थ प्रेषित करनें की कृपा कर कृतार्थ करें ।

आयुर्वेद लोक

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, अध्यक्ष, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, द्वारा प्रेषित दो पत्र

(१) स्वास्थ्य-मंत्री, बम्बई राज्य के नाम, बम्बई, १८ मार्च, १९५३

मान्य महोदय,

मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि बम्बई मैडिकल प्रैक्टिशनर्ज एक्ट, जिसके अन्तर्गत विभाजन के फलस्वरूप विस्थापित वैद्यों का रजिस्ट्रेशन भी आरंभ किया गया है, की रजिस्ट्रेशन के लिए मान्य संस्थाओं की सूची में कुछ ऐसी संस्थाओं के नाम आने से रह गए हैं जिनके स्नातक योग्यता में उन संस्थाओं के स्नातकों से किसी प्रकार भी हीन नहीं हैं जिन्हें रजिस्ट्रेशन के लिए स्वीकृति योग्य समझा गया है।

मुझे ज्ञात हुआ है कि बंबई सरकार नामावलि में अंकित संस्थाओं की सूची पर पुनर्विचार कर रही है और यदि तथ्य इस बात के पक्ष में हुए तो उसमें परिवर्तन किए जाने की भी संभावना है।

रजिस्ट्रेशन के लिए मान्य संस्थाओं की सूची में स्थान पाने योग्य संस्थाओं की नामावलि तैयार करनें का प्रश्न अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी-समिति के अप्रैल १९५३ के अन्तिम सप्ताह में बेंगलोर में होने वाले अधिवेशन के विचार्य-विषयों में रखा गया है। इस अधिवेशन की समाप्ति पर शीघ्र ही यह सूची बम्बई सरकार के विचारार्थ उपस्थित की जायगी।

जब तक इस सूची का सरकार द्वारा निरीक्षण हो, आपसे यह निवेदन है, तब तक ऐसी संस्थाओं के स्नातकों को, जिनका नाम रजिस्ट्रेशन के लिए मान्य सूची में विद्यमान नहीं है, राज्य द्वारा परिदण्डित किया जाना बन्द कर देना चाहिए विशेषकर इस सत्य को दृष्टिगत रखते हुए कि (१) वे पाकिस्तान के अपने घरों में, जहां से वे निष्कासित किए जा चुके हैं, लौट कर नहीं जा सकते, (२) अपनी संस्थाओं में उन्होंने पूर्ण शिक्षा

प्राप्त की है जो कि अधिकांश स्थानीय रजिस्टर्ड वैद्यों द्वारा प्राप्त शिक्षा से कहीं अधिक है तथा (३) उनके चिकित्सा कार्य को वन्द कर देने का अर्थ, विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि राज्य की ओरं से कोई सहायता न प्राप्त हो और वैकल्पिक व्यवसाय का भी अभाव हो, उनके लिंए भूख से मरना होगा। इसके अतिरिक्त यदि विस्थापित वैद्यों के लिए भी वही नियम रखे जावें जो कि बम्बई राज्य के वैद्यों के लिए प्रथम बार रजिस्टर्ड करते समय रखे गए थे (और एक निष्पक्ष सरकार द्वारा उन्हें वैसे ही वर्ताव की आशा करनें का अधिकार है) तो उनके परिदण्डित किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

अतएव भारतीय वैद्यसमाज की ओर से मैं बम्बई सरकार से अनुरोध करता हूं कि शरणार्थी वैद्यों के रजिस्ट्रेशन से सम्बन्धित जो भी अभियोग चलाए जाने वाले हैं उन्हें कृपया वापिस ले लिया जाए। अन्यथा कम से कम यह तो उचित रूप से अवश्य ही किया जा सकता है कि सूची पुनः अवलोकन किए जाने तक इस अभागे वर्ग के विरुद्ध अभियोगों को स्थगित कर दिया जाए।

यहां मैं आपका ध्यान विशेषतया एक अभियोग की ओर दिलाना चाहता हूं जो कि कविराज डी० आर० वाशिष्ट के विरुद्ध प्रेजीडेंसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय, गिरगाम (कोर्ट नं० ४, केस नं० ५७० सन् ५२) में विचारार्थ पड़ा है। कल ता० १९-३-५३ को इस केस की सुनवाई होगी। मुझे आशा है कि राज्य यह अभियोग वापिस लिए जानें का निर्देश देगा या कोई ऐसी तिथि देगा जो राज्य द्वारा सूची पर पुर्नविचार समाप्त करनें के बाद पड़ती हो।

भवदीय
ह० शिवशर्मा

(२) स्वास्थ्य-मंत्री हैदराबाद राज्यके नाम, बम्बई, २६ मार्च, १९५३

माननीय महोदय,

गत फरवरी के अन्त में मुझे द्वितीय अखिल हैदराबाद वैद्य-सम्मेलन की अध्यक्षता के लिये हैदरावाद जानें का सुयोग हुआ था। इस अवसर पर मैंने विभिन्न वैद्यकीय मतावलम्बी संस्थाओं, जिनमें इण्डियन मैडिकल एसोशियेशन के सदस्य तथा आयुर्वेदिक और यूनानी कालिजों के छात्र भी सम्मिलित हैं, के समक्ष भाषण दिए। हैदराबाद राज्य में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की साधारण रूप-रेखा तथा स्थिति को अध्ययन करने में भी मैंने इस अवसर का उपयोग किया जिससे मुझे यह अनुभव हुआ कि राज्य में आयुर्वेद की साधारण स्थिति और विशेषकर आयुर्वेदीय प्रशासन में पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है।

आप से मेरा यह निवेदन है कि आप निम्नलिखित सुझावों पर जो आयुर्वेदिक

शिक्षण तथा चिकित्सा से क्रमशः लाभान्वित होने वाले आयुर्वैदिक व्यवसाय, छात्र एवं जनता सभी के हित में हैं सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की कृपा करें।

१. एक अति उच्च योग्यताप्राप्त वैद्य की आधीनता में एक स्वतंत्र आयुर्वैदिक डायरेक्टोरेट का निर्माण किया जाए। आयुर्वेद के डायरेक्टर आयुर्वेद विभाग के प्रशासन के लिए सीधे मंत्री-मण्डल के प्रति उत्तरदायी हों।

२. आयुर्वेद सम्बन्धी नीति-निर्धारण, शिक्षा-निर्देश तथा विधि-निर्माण के लिये एक भारतीय चिकित्सा-पद्धति बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए जो केवल एक परामर्शदात्री संस्था न होकर पूर्ण अधिकार-सम्पन्न संस्था हो।

३. आयुर्वैदिक आतुरालय के व्ययार्थ बजट में पृथक धनराशि की व्यवस्था की जाए।

४. स्वदेशी चिकित्सा-पद्धति बोर्ड द्वारा बनाई गई नियमावलि के आधार पर आयुर्वैदिक कालेज के लिए एक पृथक नियमावलि का प्रकाशन किया जाए।

५. आयुर्वैदिक कालेज के प्रोफेसरों तथा लेक्चरार्ज का वेतन-स्तर ग्रामवैद्यों के वेतन-स्तर से पर्याप्त उन्नत होना चाहिए। एक बड़े राज्य की उच्च तथा महत्वपूर्ण शिक्षण संस्था राजकीय आयुर्वैदिक कालेज को उचित पद मिलना चाहिए जिसका कि वह वास्तव में अधिकारी है। आयुर्वैदिक आतुरालय के अधिकारी वैद्यों, देशी औषध-निर्माताओं तथा आयुर्वैदिक कालेज के सभी लेक्चरार्ज का पद राज्य के गजेटिड आफिसरों के समान होना चाहिये।

उपर्युक्त सुझाव मैंने इस विश्वास से दिए हैं कि हैदराबाद सरकार द्वारा उन पर गम्भीर विचार किया जाएगा जो सर्वथा अपेक्षित है। हैदराबाद जाकर मैंने जो देखा उससे यदि मुझे यह विश्वास न हो जाता कि हैदराबाद सरकार स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों को हृदय से पुष्पित-पल्लवित होते तथा देश में अपना उचित स्थान ग्रहण करते देखना चाहती है, जिससे परतंत्रता काल में वे वंचित रखे गए, तो मैं यह सुझाव देने का साहस कभी न करता।

भवदीय
ह० शिवशर्मा

झुंझनू डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अधिक औषधालय खोले

वैद्य श्री विरंची लाल, अध्यक्ष, झुंझनू जिला वैद्य-सम्मेलन द्वारा पता चला है कि झुंझनू जिले का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आयुर्वेदीय चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा करने में बिलकुल उदासीन है, जब कि राजस्थान के दूसरे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इस दिशा में काफी प्रशंसनीय

कार्य कर रहे हैं। सवाई माधोपुर के जिला बोर्ड द्वारा ३८ आयुर्वेदीय औषधालय सुचारु रूप से कार्य कर रहे हैं। जयपुर के जिला बोर्ड ने भी पिछले दिनों ४८ वैद्यों और १९ उपवैद्यों की आवश्यकता निकाली थी।

झुंझनू जिले में आयुर्वेद के केवल ५ औषधालय जिला बोर्ड की ओर से हैं। जरूरत इस बात की है कि निकट भविष्य में ही कम से कम २० औषधालय देहातों में और कायम किये जायें। जब मैं जिला बोर्ड का सदस्य था, तब स्वास्थ्य-विषयक योजना प्रस्तुत की थी, किन्तु वह तो अब खटाई में पड़ गई है, कम से कम औषधालय खोलने का काम तो जिला बोर्ड को अविलम्ब हाथ में लेना चाहिये।

वैद्यों व औषधालयों की सहायता अंधकार में ?

श्री उदय लाल महात्मा, देवगढ़ से लिखते हैं कि राजस्थान के कर्मचारियों की अव्यवस्था के कारण वैद्यों व औषधालयों की आर्थिक सहायता अब तक भी पास होकर नहीं मिल रही है, जब कि नूतन वर्ष आरम्भ होने जा रहा है। सहायता न मिलने के कारण औषधालयों द्वारा ग्रामीण दीन रोगियों को औषध वितरण करने में जो कष्ट उठाना पड़ रहा है वह असहनीय है।

राजस्थान सरकार को इस ओर शीघ्र ध्यान देकर अविलम्ब इस प्रश्न को हल करना चाहिये।

समस्त आयुर्वेदीय शिक्षण-संस्थाओं में एक जैसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता

पैप्सु आयुर्वेदिक कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में पं० कान्तिनारायण मिश्र का भाषण

पं० कान्तिनारायण मिश्र ने गत २२ फरवरी को रामपुरा फूलमण्डी में पैप्सु आयुर्वेदिक कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए कहा कि जब तक आयुर्वेद की समस्त शिक्षण-संस्थाओं में एक प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था नहीं होगी तब तक योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सकों की प्राप्ति असम्भव है। अतएव इसकी व्यवस्था अत्यावश्यक है।

आपने आगे कहा कि देश की शक्ति का अनुमान उसकी जनता के स्वास्थ्य से लगाया जा सकता है। जनता का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिर रहा है। इसकी रोक-थाम के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने परम्परागत आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-नियमों तथा स्वस्थ-वृत्त का पालन करें। आयुर्वेदीय स्वस्थवृत के नियमों को प्रारम्भिक पाठशालाओं तथा सकेण्डरी स्कूलों के पाठ्यक्रम का अंग बना देना चाहिए।

अन्त में आपने पैप्सु संघ के प्रत्येक वैद्य से पैप्सु आयुर्वेदिक कांग्रेस का सदस्य बनने की अपील की जिससे कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के पद पर पहुंचाया जा सके।

श्री बनवारी लाल आयुर्घेद विद्यालय देहली

के स्नातक-मण्डल का वार्षिक अधिवेशन आगामी १८ तथा १९ मई को मनाये जाने का निश्चय किया गया है ।

खीरी जिला वैद्य-सम्मेलन गोला गोकर्णनाथ

दिनांक ११ फरवरी को आयुर्वेद-विभाग के उपसंचालक श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी M. Sc. आयुर्वेदाचार्य उत्तर-प्रदेश द्वारा जिला वैद्यसम्मेलन का उद्घाटन समारोह बड़ी सुन्दरता से सुसम्पन्न हुआ । आपने उद्घाटन करते हुए आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की वैज्ञानिकता पर महत्वपूर्ण भाषण दिया और वैद्यों का ध्यान आयुर्वेद की वनौषधियों के अन्वेषण की तरफ आकर्षित किया । जिला वैद्य-सभा की तरफ से आपको अभिनन्दन समर्पित किया गया, पश्चात् अन्य वैद्यों के भाषण इत्यादि हुए । पश्चात् प्रधान मंत्री जी ने जिला वैद्य सभा की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई और वैद्यों के संगठन् पर प्रकाश डाला । तदन्तर जिला वैद्य सभा का नवीन निर्वाचन निम्न प्रकार से हुआ ।

सभापति--श्री पं० पुरुषोत्तम देव शुक्ल वैद्य ।
उपसभापति--श्री पं० गिरधारी लाल शर्मा वैद्य तथा श्री पं० रमनारायण शर्मा वैद्य ।
प्रधान मंत्री--श्री अम्बिका प्रसाद मिश्र ।
सहायक मंत्री--श्री पं० भगवती प्रसाद पांडे आयुर्वेद रत्न तथा श्री पं० हरि प्रसाद जी ।
कोषाध्यक्ष--श्री पं० लालता प्रसाद तिवारी, आयुर्वेद रत्न ।
निरीक्षक--श्री पं० श्यामबिहारी लाल शुक्ल वैद्य शास्त्री ।

माधव सेवा समिति सीकर द्वारा श्वांस-चिकित्सा शिवर का आयोजन

सीकर (डाक से) गोविन्दगढ़ मलिकपुर के पास धोबलाई नामक ग्राम में आयोजित श्वांस (दमा) चिकित्सा शिविर सानन्द सम्पन्न होगया । आस-पास के इलाके से काफी संख्या में बीमार आये । आयोजकों की ओर से ६५० बीमारों को औषधि प्रदान की गई । १०० बीमारों का पथ्यादि का प्रबन्ध भी किया गया था । इन बीमारों को ३, ४ रोज तक रख कर व औषधि देकर छुट्टी देदी गई थी ।

माधव सेवा-समिति के प्रधान चिकित्सक व इस प्रान्त के प्रसिद्ध वैद्य श्री प्रहल्लाद राय जी द्वारा आविष्कृत यह औषधि बिल्कुल निरापद है । इस दवा से कितना ही पुराना श्वांस क्यों न हो निश्चित लाभ पहुंचता है । शिविर में जिन सौ बीमारों को यह औषधि दी गई थी उनसे बातचीत करनें पर पता चला कि उनमें से अधिकांश को निश्चित रूप से फायदा हुआ है ।

इस औषधि को सर्वविदित करनें के लिये विचार किया जा रहा है इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिये प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यकर्त्ता श्री बद्रीनारायण सोढाणी, बजाज भवन, सीकर से पत्र व्यवहार करना चाहिये ।

तोरावटी तहसील वैद्यसभा, श्रीमाधोपुर

का वार्षिक चुनाव गत १८ जनवरी को हुआ जिसमें निम्न पदाधिकारी चुने गए :—

सभापति—पं० बृजमोहन शास्त्री, रींगस, उपसभापति—श्री विश्वेश्वरप्रसाद, श्री माधोपुर तथा श्री कल्याणदत्तजी, नीमका थामा, मंत्री—वैद्य रामचन्द्र शर्मा, श्रीमाधोपुर, उपमंत्री वैद्य धनपति शर्मा, कांवट, तथा कोषाध्यक्ष—वैद्य सूर्यदत्त शास्त्री, थोई ।

श्री नगर वैद्यसभा भीलवाड़ा (राजस्थान)

ता० १६-३-१९५३ को श्रीनगर वैद्यसभा भीलवाड़ा का निम्न निर्वाचन वैद्य श्री छीतरलाल जी त्रिपाठी जी के निवास स्थान पर श्रीमान वैद्यभूषण पं० काशीनाथजी शास्त्री के सभापतित्व में सानन्द सम्पन्न हुआ ।

सभापतिः—श्रीमान वैद्यभूषण पं० काशीनाथजी शास्त्री, उपसभापतिः—वैद्यश्री पं० रामचन्द्र जी ब्रह्मचारी, प्रधानमन्त्रीः—वैद्यराज पं० परशुराम जोशी, उपमन्त्रीः—वैद्यश्री कन्हैयालाल जी, प्रचारमन्त्रीः—वैद्यश्री भूरालाल जी महात्मा, कोषाध्यक्षः—वैद्य श्री गुलाबचन्द्र जी महात्मा ।

पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन

पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन की कार्यकारिणी की बैठक ता० १-३-५३ को श्री पं० प्रकाशनाथ जी तिवाड़ी तथा माननीय पं० हरिदत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में हुई । जिसमें अन्य प्रस्तावों के साथ-साथ यह प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए कि पंजाब राज्य-सरकार पंजाब मेडिकल कौंसिल या अन्य किसी संस्था के कहने पर 'आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी प्रैक्टिशनर्ज़ एक्ट, १९४९ में किसी प्रकार का संशोधन न करे, द्राक्षासव तथा अन्य आसव आदि बनाने पर कोई प्रतिबन्ध न लगाए तथा सरकार पंजाब में उच्चकोटि का एक आयुर्वैदिक कालेज खोले । सरकार द्वारा देशी चिकित्सा पद्धति की २० डिस्पेंसरियाँ खोलने पर धन्यवाद दिया गया तथा आशा प्रकट की कि सरकार और भी अधिक औषधालय खोलेगी ।

आयुर्वेद के विकास और पुननिर्माण के लिए मोंहता आयुर्वेद सदन का प्रशंसनीय प्रयत्न

मोहता आयुर्वेद आसन की स्थापना

उदयपुर (डाक से) ता: २४-३-५३ राजस्थान विश्व विद्यापीठ, मोहता आयुर्वेद सदन के अंतर्गत आयुर्वेद के विकास और पुमनिर्माण के लिए "मोहता आयुर्वेद आसन" की स्थापना कर दी गयी है । गत २८,२९,३० मार्च को राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री माननीय श्री रामकिशोर व्यास द्वारा आसन का उद्‌घाटन किया गया । इस अवसर पर भारत के

सुप्रसिद्ध विद्वान् और आयुर्वेद मनीषि डॉ० प्राणजीवन मेहता ने आयुर्वेद सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों पर तीन मौलिक·लिखित भाषण दिए। मोहता आयुर्वेद सदन की ओर से इन तीनों भाषाणों को पुस्तकाकार प्रकाशित कराया जायगा।

आयुर्वेद सम्मेलन हाथरस

नगर आयुर्वेद सम्मेलन हाथरस एवं तहसील-आयुर्वेद-सम्मेलन का वार्षिक संयुक्त अधिवेशन श्री वैद्य लक्ष्मणाचार्यजी के सभापतित्व में हुआ। जिसमें नवीन वर्ष के लिए पदाधिकारियों का चुनाव निम्न प्रकार से किया गया।

सभापति––श्री वैद्य पं० बेंकटेश्वर जी राजवैद्य, उपसभापति–प्यारेलाल जी गांगेय, पूर्णानन्द जी, सासनी, प्रधानमंत्री––दीनदयालु शर्मा, ए. एम. एस. उप-मंत्री––श्री वैद्य लक्ष्मणदत्त जी, वैद्य शिवदत्त जी, छोंक, कोषाध्यक्ष––पूरणदत्त जी तिवारी, आय-व्यय-निरीक्षक––रामस्वरूप जी मिश्र।

जी० ए० मिश्रा आयुर्वैदिक फार्मेसी झांसी के आयुर्वैदिक इंजेक्शनों का निर्माण-कार्य पुनः आरम्भ

झांसी, २ अप्रैल। 'आयुर्वेद में सर्वप्रथम इन्जैक्शन औषधियों के अनुसन्धानकर्ता सुविख्यात श्री डाक्टर राधागोविन्द मिश्र डी. एस-सी. ए. की ५८ वर्ष पुरानी वैज्ञानिक रसायनशाला जी. ए. मिश्रा आयुर्वैदिक फार्मेसी, झांसी का आयुर्वैदिक इंजेक्शन-निर्माण-कार्य इसी सप्ताह से पुनः आरम्भ हो गया है। भारतीय वैद्य और हकीम समुदाय में यह समाचार बड़े हर्ष से सुना जायगा।

स्मरण रहे, एक वर्ष पूर्व उत्तर-प्रदेश सरकार के मैडिकल विभाग द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध के कारण आयुर्वैदिक इंजेक्शनों का निर्माण-कार्य बन्द कर दिया गया था। इंडियन मैडिसिन बोर्ड, वैद्य सम्मेलनों, आयुर्वेद के सभी प्रमुख नेंताओं तथा चिकित्सक-समाज द्वारा प्रतिबन्ध का विरोध किया गया था।

शोकपूर्ण निधन

दुर्गा आरोग्य-मन्दिर, सीतावर्डी नागपुर के अध्यक्ष आयुर्वेदाचार्य डा० विद्याविलास जी शुक्ल का गत २७-३-५३ को विषय ज्वर से केवल ३४ वर्ष की अल्पायु में ही असामयिक देहावसान हो गया।

शुक्ल जी मध्य-प्रदेश आयुर्वेद बोर्ड के सदस्य तथा आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिंसिपल थे। प्रान्त की कई वैद्यकीय एवं सामाजिक संस्थाओं से आपका निकट सम्बन्ध था। शुक्ल जी का शिष्य सम्प्रदाय सारे महाराष्ट्र तथा मध्य-प्रदेश में फैला हुआ है।

हम वैद्य-समाज की ओर से मृतात्मा के परिवार से हार्दिक संवेदना प्रकट करते हुए उनकी सद्गति एवं चिरशान्ति की कामना करते हैं।

महासम्मेलन की सदस्यसंख्या में वृद्धि करने की परमावश्यकता

"आयुर्वेद को भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान कराना" तथा "अष्टांग आयुर्वेद के पुनरुज्जीवनार्थ सर्वांगपूर्ण एवं सर्वसाधन सम्पन्न आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करना," अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ये दो मुख्य उद्देश्य हैं। परन्तु इनकी सिद्धि अनवरत प्रयत्न एवं सामूहिक सहयोग से ही संभव है। अभी तक लगभग २००० दो सहस्त्र सदस्यों के सहयोग से आयुर्वेद महासम्मेलन का कार्य चलता आया है परन्तु परिवर्तित स्थिति में इतने से कार्य न चल सकेगा। भारतवर्ष एक महाद्वीप के समान विशाल देश है, इसके कोने कोने में वैद्यबन्धु विराजमान हैं, उनकी संख्या तीन लाख से अधिक कही जाती है, प्रायः सभी वैद्यबन्धु सुसम्पन्न सौभाग्यवान, अपने व्यवसाय में सफल तथा कुशल एवं प्रसन्नावस्था में है, आयुर्वेद से उनका जीवनोपार्जन भली भांति हो रहा है, फिर कोई कारण नहीं दीखता कि आयुर्वेद को उन्नति के शिखर तक पहुंचाने के लिये, जिसमें देश, जाति एवं राष्ट्र का ही हित निहित नहीं अपितु, उनकी स्वार्थ-सिद्धि एवं सम्मान वृद्धि भी सन्निहित है, अधिकाधिक सहयोग न दें तथा अपनी आय का बहुत थोड़ा भाग भी इस महान यज्ञ में भेंट न करें। मेरा दृढ़ मत है कि अब महासम्मेलन के कार्य को सुचारू रूप से चलाये रखने के लिए इसके न्यूनातिन्यून १०,००० दस सहस्त्र सदस्य होने चाहिएं। अतएव महासम्मेलन के वर्तमान सदस्यों से साधारणतया एवं सम्बद्ध संस्थाओं से विशेषतया विनम्र प्रार्थना है कि अधिकाधिक नये सदस्य बनाने का भार ग्रहण करें। आशा है सदस्यगण एवं सम्बद्ध संस्थायें अपना पुनीत कर्तव्य समझ कर सदस्यतावृद्धि के इस आन्दोलन में इस कार्यालय को अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, प्रधानमंत्री, वामनराव दीनानाथ वैद्य,

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वैदिक प्रकाशन

१. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह प्रथमखंड, ७वां संस्करण अजिल्द ६।।)
२. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग-संग्रह द्वितीय खंड, अजिल्द ६)
३. चिकित्सातत्त्व प्रदीप प्रथम खंड सजिल्द ९।।)
४. चिकित्सातत्त्व प्रदीप द्वितीय खंड, अजिल्द ८)
५. नेत्ररोग-विज्ञान सजिल्द १५)
६. सिद्ध परीक्षा पद्धति अजिल्द ८)
७. ज्वरविज्ञान अजिल्द ३)
८. औषध गुण धर्म विवेचन अजिल्द ३)
९. गाँवों में औषधरत्न अजिल्द २)
१०. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग-संग्रह गुजराती अनुवाद प्रथम भाग सजिल्द १०)

सूचना—डाक खर्च, पैकिंग अलग होगा।

पुस्तकों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है, लिखें या मिलें।

प्राप्तिस्थान--कृष्णगोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय

पो० कालेड़ा--कृष्णगोपाल, वाया नसीराबाद (अजमेर)

विद्यापीठमंत्री का अभूतपूर्व सम्मान; काशी के विद्वद्-समाज द्वारा स्वागताभिनन्दन

(विशेष संवाददाता द्वारा)

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री आयुर्वेद-मार्त्तण्ड रा० बहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्म्मा गत २३ फरवरी को काशी पधारे। पण्डित जी नें नगर में विभिन्न आयुर्वेदीय क्षेत्रों की गतिविधि का निरीक्षण किया तथा वैद्यसमुदाय से आयुर्वेदोन्नति के विषय में वार्तालाप किया। काशी के पण्डितों की ओर से आपको एक अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया गया। विद्यापीठ के इतिहास में यह प्रथम ही अवसर है कि इसके मंत्री का काशी के महापण्डितों नें इस प्रकार भव्य अभिनन्दन किया।

पटना में भी—

श्री रायबहादुर जी पटना भी गए। वहां बिहार प्रान्तीय धारासभा के अध्यक्ष की प्रधानता में आयोजित एक विराट सभा में भाषण देने का आपको अवसर मिला। बिहार के राज्यप्रमुख नें आपको एक चाय-पार्टी पर आमंत्रित किया, जहां आपनें आयुर्वेद सम्बन्धी विषयों पर बातचीत की। पटना के प्रमुख वैद्यों से भी आपने वार्तालाप किया।

(पत्रिका के गतांक में प्रकाशिक श्री विद्यापीठ-मंत्री द्वारा स्वलिखित "मेरी बनारस तथा पटना यात्रा" में यात्रा का संक्षिप्त वृत्तान्त पाठक पढ़ ही चुके हैं। काशी के विद्वद्समाज की ओर से जो अभूतपूर्व सम्मान उन्हें दिया गया वह नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के लिए निस्सन्देह गौरव का विषय है। अतः हम उस अभिनन्दन-पत्र को भी यहां प्रकाशित कर देना उचित समझते हैं, जो काशी के ९६ प्रकाण्ड पण्डितों द्वारा उन्हें समर्पित किया गया। ——सम्पादक)

परमादरणीययशोराशिसमुन्नतमानसानां विविधानवद्यविद्याविद्योतितान्तःकृतीनां
श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठाननिष्ठानां विद्वद्वरिष्ठानां रायबहादुरादिराजपदवीविभूषितानाम्
पण्डित-श्रीदत्तशर्म-महाभागानाम्
करकमलयोः सादरमर्पितं

स्वागताभिनन्दनम्

द्विजकुलालङ्काराः!

अद्येदम् महत्सौभाग्यमस्माकं वाराणसेयविदुषां यद् भवादृशाम् 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' इति साक्षात्कारयताम् प्राच्यप्रतीच्योभयविधानेंकविद्याटवीविहरण-पञ्चाननानाम् आस्तिक्यसत्यसदाचारादिगुणगणगणनीयानां वाराणसीमधिगतानां स्वागत-समारोहाय समयमुपलभांमहे।

त्यागतपोमूर्त्तयः!

वेदशास्त्र-धर्मरक्षणकार्यें समागता विपत्तीस्त्यागतपोबलाभ्यां निराकृत्य लोकसंग्रहेणापूर्वेण निस्स्पृहैस्तत्रभवद्भिः श्रीमद्भिर्या सेवा प्रसार्यते को नाम भारतीयसंस्कृतिसमुपासकस्तां न श्रद्दध्यात्?

न्यायमूर्त्तयः !

राजकीयसम्मानितविचारपतिपदस्थैः परमकरुणाकवलितप्रभावैः प्रविदितप्रभूतसद्विद्याविचारचर्चैश्चिरकालं यावत् कृतो जनतानुग्रहस्तन्मण्डलस्थैरद्यापि गीयते ।

परमश्रद्धेयाः !

सर्वस्वसमर्पणपुरस्सरमायुर्वेदशास्त्रप्रचारपरायणान् हृषीकेशस्थ-आत्मविज्ञानभवनादिनिर्माणकार्येणामरकीर्तिम् प्रतिष्ठापयतस्तत्रभवतोऽद्य प्रसङ्गात् समधिगतान् वाराणसीम् परम्प्रसादमधिगच्छामश्शब्दैरेतैरभिनन्दन्तः, चिरायुषस्सत्यसङ्कल्पाश्च भवन्तो भवन्तु इति भवानीपतेर्भगवतो विश्वनाथात् कामयामहे वयम्--

वाराणसेया विद्वांसः--

यहाँ ९६ पण्डितों के नाम हैं जिन्हें स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं किया जा रहा है।

नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद् का निमन्त्रण

सम्मानीय वैद्यबन्धु वर्ग !

निखिल भारतीय-आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद् का आगामी अधिवेशन २० मई, १९५३ से भारत के सुप्रसिद्ध नगर हरिद्वार में प्रारम्भ होना निश्चित हुआ है। इस अधिवेशन में समस्त भारत के प्रसिद्ध आयुर्वेद-विशेषज्ञ सम्मिलित होकर समालोच्य विषय **'द्रव्य के रस-गुण-वीर्य्य-विपाक-प्रभाव के निर्णय का स्वरूप क्या है?'** पर विवेचन-पूर्वक समुचित निर्णय करेंगे। जिससे कि सदियों से अवरुद्ध आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा।

अतः सभी आयुर्वेद-विशेषज्ञों से सानुरोध विनम्र निवेदन है कि इस महत्वपूर्ण अधिवेशन में सम्मिलित होकर आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति के निमित्त किये जाने वाले इस पुनीत ज्ञान-यज्ञ में योगदान देनें का अनुग्रह करें।

जिन आयुर्वेद-विशेषज्ञों के निबन्धों को समालोच्य विषय निबन्ध-निर्णायक-समिति विवेचन योग्य समझेगी उन महानुभावों की सेवा में परिषद् की ओर से विशेष निमन्त्रण पत्र भेजा जाएगा तथा उनके निवासस्थान और भोजन-व्यवस्था का प्रबन्ध श्री आयुर्वेद भवन लि० के द्रव्य-व्यय से किया जाएगा। अन्य जो महानुभाव दर्शक रूप में सम्मिलित होना चाहें वे अपनें खर्चे से निवास स्थान और भोजन-व्यवस्था का प्रबन्ध करा सकते हैं। इस विषय में अध्यक्ष--"प्रबन्ध नियोजन समिति" से पत्र व्यवहार कर उचित व्यवस्था की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

विनम्र-निवेदक--
वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री
अध्यक्ष--प्रबन्ध नियोजन समिति--नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद
C/O श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
गुसाईं पुरा, झाँसी (उ० प्र०)

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली

३१ अक्टूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय-व्यय पत्र

	व्यय					
महासम्मेलन कार्यालयः—						
वेतन	१,०४९	१५	९			
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	९३८	२	३			
डाक तथा तार	७७८	१०	३			
यातायात	२३	५	०			
प्रचार	१८८	१०	६			
यात्रा	८४६	१३	६			
आडिट फीस	२५	०	०			
बैंक कमीशन	१५	०	०			
फुटकर व्यय	१२८	५	३			
उपकरण पर घटती	११२	०	०			
कर्मचारी रक्षा-कोष	१०५	११	०			
गाजियाबाद विशेषाधिवेशन व्यय	७९०	०	०	५००१	९	६
जनरल ऑफ आयुर्वेद—लेखन तथा मुद्रण सामग्री	२,९४८	१४	६			
,, डाक व्यय	१३६	१२	०			
,, फुटकर व्यय	३७	३	०			
,, बैंक कमीशन	१	८	०	३,१२४	५	६
आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका—						
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	६,०३७	१०	६			
डाक व्यय	४२५	३	९			
वेतन	१,७४६	१३	३			
यातायात	१२	१२	६			
बैंक कमीशन	६	१३	०			
फुटकर व्यय	८	३	०			
	८,२३७	८	०	८,२३७	८	०
				१६,३६३	७	०

	आय					
महासम्मेलन कार्यालयः—						
संरक्षक सदस्यता शुल्क	२००	०	०			
आजीवन ,, ,,	२,४००	०	०			
मान्य ,, ,,	४,३१५	०	०			
प्रान्तीय सम्बद्धता शुल्क	५०५	०	०			
साधारण संस्था ,, ,,	८०	०	०			
ब्याज	२,०८६	११	९			
प्रतिनिधि शुल्क (३८ वां आयुर्वेद महासम्मेलन) इन्दौर	४३५	०	०			
भेंट--आयुर्वेद विद्यालय, बरनाला से	५१	०	०			
पुस्तक–बिक्री	९७	३	०			
फुटकर आय	२७५	१२	०	१०,४४५	१०	९
जनरल ऑफ आयुर्वेदः—						
ग्राहक शुल्क तथा बिक्री	९६४	९	९			
विज्ञापन	३१७	६	०			
फुटकर आय	६२	४	०	१,३४४	३	
आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिकाः—						
विज्ञापन	२,८८०	११	०			
ग्राहक शुल्क व बिक्री	२४६	०	०	३,१२६	११	
व्यय की आय से अधिकता जो कि सन्तुलन पत्र में ले जाई गई				१,४४६	१३	६
				१६,३६३	७	०

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली

३१ अक्टूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष का सन्तुलन-पत्र

देय							सम्पत्ति						
स्थिर कोषः—	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०		रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
गत वर्ष का	२४,३५८	१४	४				उपकरण गत वर्ष का	१,१२१	०	०			
कम किया (गत वर्ष में प्राप्त धन							इस वर्ष में वृद्धि	२३	१५	६			
राशि, जो कि इस वर्ष सदस्यता								१,१४४	१५	६			
मध्ये जमा की)	१०	०	०				उपकरण पर १०% घटती	११२	०	०	१,०३२	१५	६
	२४,३४८	१४	४				पुस्तकालय	२१०	२	०			
व्यय की आय से अधिकता को							बिक्रीय पुस्तकें	१६६	०	०	३७६	२	०
कम किया	१,४४६	१३	६	२२,९०२	०	१०	विभिन्न ऋणि				२,४२६	१५	०
१९५३ वर्षीय सदस्यता शुल्क				४५०	०	०	प्राप्य ब्याज				८,७०१		०
देय बिल				१,०६६	८	०	निधि समिति कोषः—						
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ				७२,९१८	८	८	पंजाब नेशनल बैंक						
आयुर्वेद औषध निर्माता संघ				७५०	०	०	(फिक्स डिपोजिट)	११,२४८	१३	९			
							नेशनल सेविंग्ज सर्टीफिकेट्स	५८,११०	०	०			
							पोस्टल कैश सर्टिफिकेट्स	१०,०००	०	०			
							नाथ बैंक लि० (दिवालिया)	२,००२	०	०	८१,३६०	१३	९
							सैण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया लि०	३१०	११	९			
							नाथबैंक लि० (दिवालिया)	८००	१५	३			

				सण्ट्रल बैंक ग्राफ इण्डिया लि०	३१०	११	६			
				नाथबैंक लि० (दिवालिया)	८००	१५	३			
				युनाइटिड कार्मशियल बैंक	२,५२८	८	६			
				नक़द रोकड़	५४८	१५	६	४,३८६	३	३
कुल योग	९८,०८७	१	६	कुल योग				९८,०८७	१	६

विजयकुमार शर्मा	तिलकराम शर्मा	शिवनाथ शर्मा	वामनराव दीनानाथ	शिवशर्मा
अकाउन्टेन्ट	कार्यालय मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	अध्यक्ष

ऑडीटर का प्रमाणपत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद-महासम्मेलन के ता० ३१ अक़्टूबर १९५२ को समाप्त होनेवाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन-पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों के सहित जांचा और समस्त जानकारी तथा सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र हमारी पृथक् रिपोर्ट के अतिरिक्त ठीक प्रकार बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र, हमें दी गई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर और महासम्मेलन की पुस्तकों के अनुसार अ० भा० आ० महासम्मेलन की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

नई सड़क, देहली।
ता० २८-३-५३

आडीटर की मुद्रा

जे० सी० माथुर एेण्ड कम्पनी
चार्टर्ड अकाउंन्टेन्टस्

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, देहली

३१ अक्टूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष का सन्तुलन-पत्र

देय	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०	सम्पत्ति	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
स्थिर कोषः—					
गत वर्ष का	८४,२४१ १२ ०		उपकरण गत वर्ष का	२,६६७ १० ३	
कम किया (गत वर्ष में प्राप्त धनराशि जो इस वर्ष सदस्यता शुल्क में परिवर्त्तित की गई)	२ ० ०		नवीन उपकरण का मूल्य	७२ २ ६	
				२,७३९ १२ ९	
			उपकरण पर घटती	५१६ ० ०	२,२२३ १२ ९
	८४,२३९ १२ ०		पुस्तकों कास्टॉक (विद्या० प्रकाशन)		१,१५१ ४ ०
आय की व्यय से अधिकता को जमा किया	३,४४६ १४ ३	८७,६८६ १० ३	अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन	७२,९१८ ८ ८	
विभिन्न कोषः—			शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मा० कोष-व्यय	८४९ २ ०	
पुरष्कार खाता	१५२ १० ०				
विवश्विद्यालय कोष	६,८५१ ५ ९		विश्व विद्यालय कोष व्यय	२१८ ७ ०	७३,९८६ १ ८
श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष	१६,५०५ १५ ६	२३,५०९ १५ ३	विभिन्न ऋणि		३८४ १५ ६
देय बिल		१,१७३ १३ ६	श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मारक कोषः—		
१९५३ वर्षीय परीक्षा शुल्क		१३५ ० ०	ट्रेजरी सेविंग्ज सर्टिफिकेट	१०,००० ० ०	
पुस्तक विभाग से आय (गत वर्ष)		३३१ ७ ६	युनाइटेड कॉमर्शियल बैंक कैश सर्टिफिकेटस्	४,९९५ ० ०	१४,९९५ ० ०
,, बिक्री		३,०४४ ४ ६			
,, दातव्य धनराशि		१,६३४ १ ६	पुस्तक विभाग-वर्ष भर में प्राप्त पुस्तकें		३,३४२ १० ९

				बैंकों में जमा:—						
				पंजाब नेशनल बैंक लि०:—						
				श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष	६०४	११	६			
				विश्वविद्यालय कोष	५५०८	९	९			
				चालू खाता	१,५१२	१	९			
				बचत खाता	१,७७४	३	१०			
				सैंट्रल बैंक ऑफइन्डिया बचत खाता	११,५९१	२	३	२०,९९०	१३	१
				नकद रोकड़				४४०	१०	९
कुल योग	१,१७,५१५	४	६	कुल योग				१,१७,५१५	४	६

विजयकुमार शर्मा	तिलकराम शर्मा	शिवनाथ शर्मा	श्रीदत्त शर्मा	वामनराव दीनानाथ	हरिदत्त शर्मा
अकाउन्टेंट	कार्यालय मंत्री	कोषाध्यक्ष	विद्यापीठ मंत्री	प्रधान मंत्री	अध्यक्ष

आडिटर का प्रमाणपत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के ता० ३१ अक्तूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों सहित जांचा और समस्त आवश्यक जानकारी तथा सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र हमारी पृथक् रिपोर्ट के अतिरिक्त ठीक बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र हमें प्राप्त हुई सूचनाओं एवं जानकरी के आधार पर तथा विद्यापीठ की पुस्तकों के अनुसार नि० भा० आ० विद्यापीठ की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

नई सड़क, देहली।
तारीख २८-३-५३

जे० सी० माथुर एण्ड कम्पनी
चारटर्ड अकाउन्टेन्टस

(आडीटर की मुद्रा)

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, देहली

३१ अक्टूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय-व्यय-पत्र–

व्यय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
वेतन खाता	१२,६६८	४	९			
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	१,७६९	०	०			
डाक तथा तार व्यय	१,१२७	१३	०			
केन्द्र तथा परीक्षण व्यय	१,२४१	११	०			
रेलवे पार्सल	१४७	१	६			
यातायात	१०९	११	०			
यात्रा	१९	०	०			
बैंक कमीशन	१०	४	०			
विविध व्यय	२००	१३	०			
आडिट फीस	१००	०	०			
उपकरण पर घटती	५१६	०	०			
कर्मचारी रक्षाकोष	५६०	३	०			
पुस्तक विभाग व्यय	७७	१५	६	१८,५४७	१२	९
आय की व्यय से अधिकता जो संतुलन-पत्र में ले जाई गई				३,४४६	१४	३
				२१,९९४	११	०

आय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
आचार्य शुल्क	४,७२५	०	०			
वैद्याचार्य शुल्क	३९०	०	०			
आ० विशारद ,,	५,९५०	०	०			
वैद्य विशारद ,,	१,५३०	०	०			
आयुर्वेद भिषक् ,,	६,७८३	०	०			
विलम्ब शुल्क	८०१	०	०			
गुणाङ्क ,,	२२६	०	०			
पुनः संशोधन शुल्क	४२०	०	०			
उपप्रमाण पत्र तथा प्रमाण पत्र प्रतिलिपि शुल्क	१८४	८	०			
सम्बद्ध संस्था शुल्क	४१५	०	०			
ब्याज	१७१	११	०			
विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर लाभ–	२१०	०	०			
फुटकर आय	१८८	८	०	२१,९९४	११	०
				२१,९९४	११	०

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, १/२ तो०, १/४ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक—पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र—कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र—देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

विक्रेता— १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

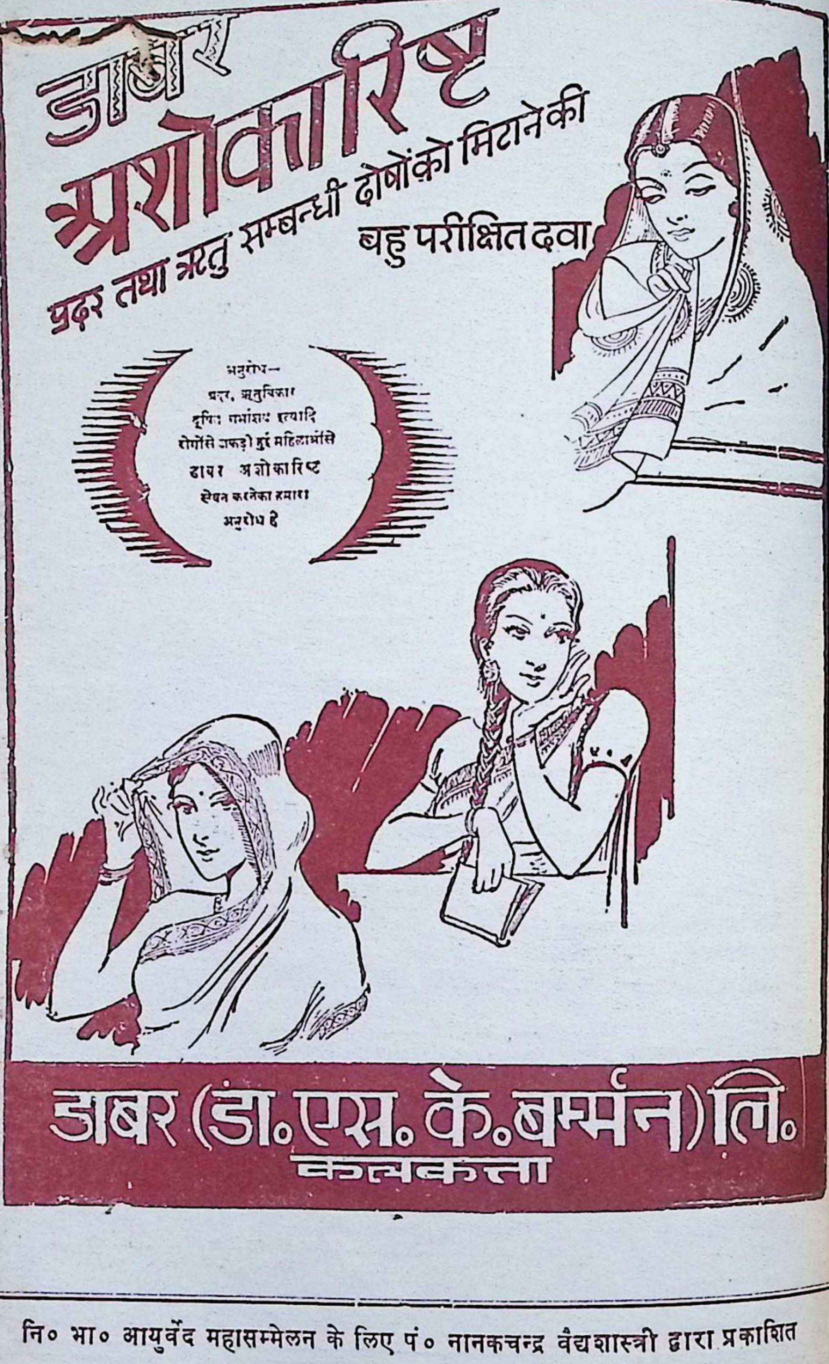

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰
कलकत्ता

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रक:—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली ।

मई
१९५३

वैशाख
२०१०

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

१२६६
16 2/10

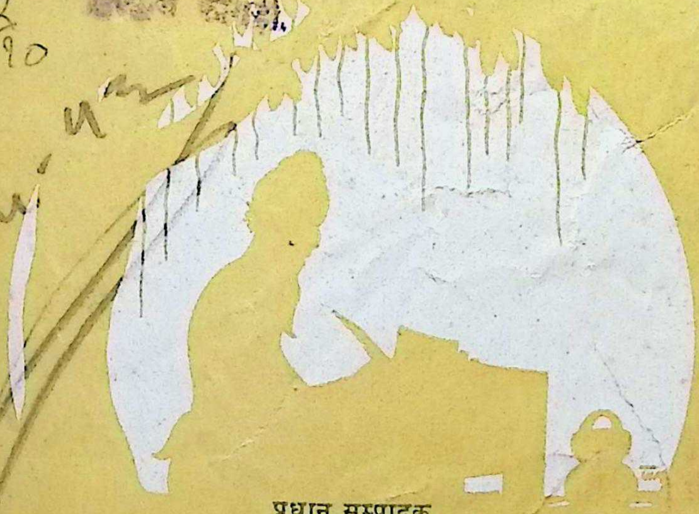

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस.

देवों के वैद्यराज अश्विनीकुमार

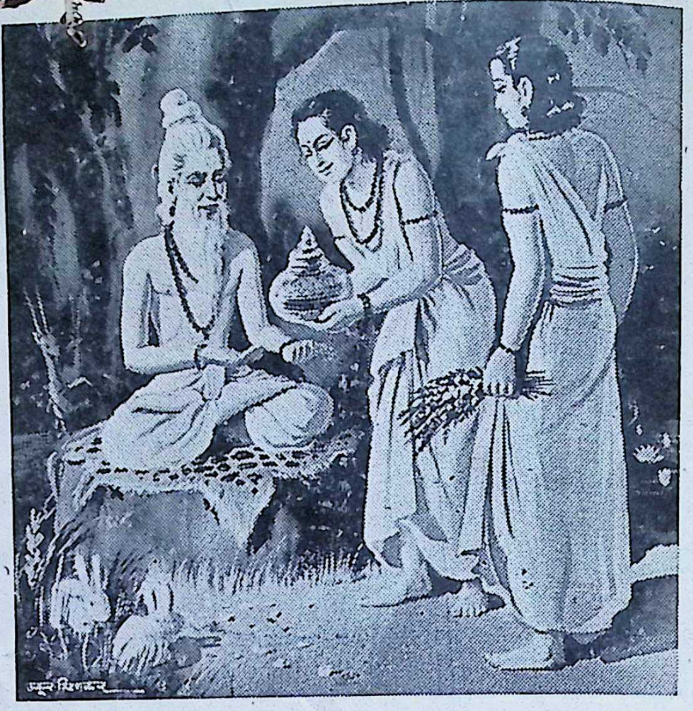

देवों के वैद्यराज श्री अश्विनीकुमार च्यवनऋषि को यौवन प्राप्त करने के लिए च्यवनप्राश दे रहे हैं।

,"च्यवनप्राश" यह पौष्टिक कल्प हम ताजे आँवलों से बनाते हैं। च्यवनऋषि ने यह औषध (कल्प) यौवन प्राप्त करने के लिए पहले बनवाई और हजारों वर्षों से एक बलदायक और पौष्टिक औषधि के रूप में इसका प्रयोग होता आया है। इस कल्प में हम ने संशोधित की हुई आठ वनस्पतियाँ (अष्टवर्ग) प्रयुक्त की हैं। आँवले में अब "सी" व्हिटामिन रहने की खोज भी सर्वसम्मत हो गई है। यह औषध (कल्प) विशेषतया बनाई गई है। अग्निमांद्य, स्वपनावस्था, मलावरोध और स्नायुओं की (Nervous system) दुर्बलतादि में यह बड़ी प्रभावशाली है और इसके सेवन से पचनेन्द्रिय और मस्तिष्क विशेष शक्तिशाली बन जाते हैं।

(धूतपापेश्वर इंडस्ट्रीज़ लि०, पनवेल द्वारा प्रकाशित)

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक––कविराज पं० नानकचंद्र वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक––पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.

पत्रिका कार्यालय––महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ३९
अंक ५

दिल्ली, बैशाख २०१०, मई १९५३

मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

सम्पादकीय

क्या आयुर्वेदज्ञों को आयुर्वेदेतर चिकित्सा-विज्ञानों का अध्ययन करना चाहिए ?

आजकल कुछ वैद्यबन्धुओं की यह धारणा बनती जा रही है कि आयुर्वेदेतर किसी चिकित्सा पद्धति का अध्ययन व मनन करना आयुर्वेदावनति का कारण बन जाएगा । इधर कुछ आयुर्वेद पत्रों में इस विचारधारा का पृष्ठपोषक आन्दोलन भी उठता दिखाई दे रहा है । हमारे विचार में इस मनोवृत्ति को बढ़ावा देना आयुर्वेद का अनहित करना है । आज के युग में जबकि विभिन्न विचारधाराओं में कठोर संघर्ष चल रहा है, केवल मात्र एक क्षेत्रीय ज्ञान के आधार पर हम अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करने में सफल नहीं हो सकते । बिना अन्धकार का अनुभव किए प्रकाश की श्रेष्ठता सिद्ध करना कैसे संभव हो सकता है ? कटु रस का आस्वादन किए बिना माधुर्य से उसकी हीनता कैसे दर्शाई जा सकेगी ? अतः आयुर्वेद हित-साधकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि आयुर्वेदेतर अन्य चिकित्सा पद्धतियों का सम्यक्

अध्ययन भौर मनन कर उनसे आयुर्वेद की श्रेष्ठता सिद्ध कर । अन्यथा प्रगति की इस दौड़ में हम कदापि विजयी न हो सकेंगे ।

यहाँ हम एक उदाहरण देना उचित समझते हैं । जब श्री शंकराचार्य दिग्विजय करनें अपने शिष्यमण्डल के साथ केरलाधिपति की सभा में प्रविष्ट हुए तो वह बौद्धे भिक्षुओं के जाल में फंसा हुआ था और उसकी सभा में, जहां अनेक भिक्षु लोग अपने धर्म के प्रचारार्थ विचार विनिमय कर रहे थे, भगवान् शंकर ने केरलाधिपति को लक्ष्य करके कहा कि "हे पिक् यदि इन मलिन शोक से आकुल तथा श्रुति वेद की निन्दा करने वाले भिक्षुओं से, जो त्याज्य हैं, तेरा संग न हो तो तू प्रशंसा योग्य हो जायगा ।" इससे पूर्व शंकर स्वामी जी ने बौद्धों के शास्त्रों के अध्ययनार्थ उनके विद्यालय में प्रविष्ठ होकर उनकी सर्वमान्य विद्या का भली प्रकार अध्ययन किया था और शास्त्रवाद द्वारा उन पर विजय प्राप्त की थी । इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी शास्त्र का पूर्व अध्ययन किये बिना उसकी हीनता को सिद्ध नहीं किया जा सकता । अतएव हमारे विचार में वैद्यों को हर एक पद्धति का ज्ञान अपनी पद्धति के विशिष्ठ ज्ञान के साथ साथ आवश्यकीय रूप से होना चाहिए ताकि वह उन पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकें और आयुर्वेद की उनसे उत्कृष्ठता सिद्ध करने की क्षमता प्राप्त कर सकें ।

--नानकचंद्र शर्मा

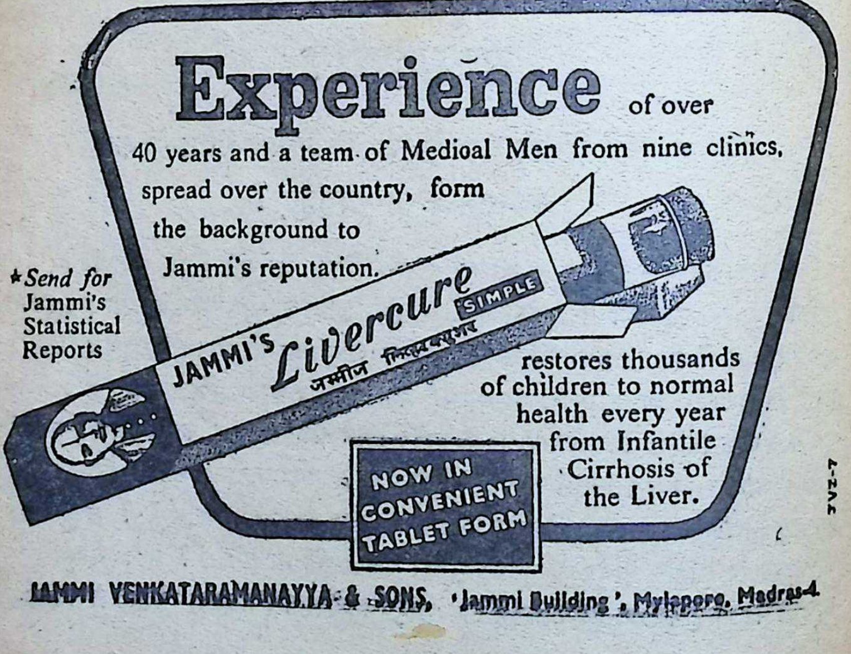

Experience of over 40 years and a team of Medioal Men from nine clinics, spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

*Send for Jammi's Statistical Reports

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, 'Jammi Building', Mylapore, Madras-4.

अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति

एवं

विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति

के

सम्मिलिताधिवेशन का कार्यविवरण

स्थान--भरद्वाज नगर, राजा वेंकटराम हाल, बसवंगुडी, बंगलौर।

समय--उद्‌घाटन ता० २५-४-५३ सायं ५-३० बजे माननीय श्री टी० चिनैया, मंत्री, स्वास्थ्य तथा स्वायत्त शासन विभाग, मायसोर राज्य द्वारा।

पहली बैठक--ता० २५-४-५३ रात्रि ९ बजे से १२-३० बजे तक।

दूसरी बैठक--ता० २६-४-५३ प्रातः ९ बजे से १-३० बजे तक।

उपस्थिति–वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा महासम्मेलनाध्यक्ष, बम्बई। श्री पं. हरिदत्तजी शास्त्री, विद्यापीठाध्यक्ष, जालन्धर। श्री डा. वाई. पार्थनारायण पण्डित, अध्यक्ष, मायसोर आयुर्वेदिक कांग्रेस, बंगलौर। श्री डा. ए. लक्ष्मीपति, मद्रास। श्री प. सु. राम शर्मा, प्रधान तामिलनाड आयुर्वेद महामण्डलम्, श्री एस. वी. राधाकृष्ण शास्त्री, प्रधानमंत्री, तामिलनाड आयुर्वेद महामण्डलम्, टेपाकुलम्। श्री वी. बी. नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली। श्री दामोदरानन्त हलसीकर, हुबली। श्री आर. सी. भरद्वाज, मंत्री श्री रामकृष्ण विद्यापीठ, बंगलौर। श्री मुक्कामल वेंकट शास्त्री, बेजवाड़ा। श्री मरुलाराध्य शास्त्री, अध्यक्ष, निखिल कर्णाटक आयुर्वेद मंडल, बीजापुर। श्री चन्द्रमणिप्रसाद, अध्यक्ष, विन्ध्य-प्रदेश आयुर्वेद प्रचारिणी सभा, रीवां। श्री जगदीशप्रसाद शर्मा, प्रतिनिधि, श्री इंद्रप्रस्थीय वैद्यसभा, देहली। श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली। श्रीदत्त शर्मा विद्यापीठ-मंत्री, ऋषिकेश, श्री वामनराव दीनानाथ, महासम्मेलन प्रधानमंत्री, बंबई।

अधिवेशनार्थ निम्नांकित महानुभावों के सम्मतिपत्र प्राप्त हुए:--

श्री मंत्री, बिहार प्रांतीय वैद्यसम्मेलन, मुजफ्फरपुर। मंत्री, हिलाचल आयुर्वेद सम्मेलन, माजरा। मंत्री, महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्यमंडल, नासिक। मंत्री, सौराष्ट्र वैद्यसभा, राजकोट। मंत्री, नेपाल आयुर्वेदीय संस्था, काठमांडू। मंत्री, सीकर वैद्यसभा, श्रीमाधोपुर। मंत्री, जिला वैद्यसभा, बिलासपुर। मंत्री, जिला वैद्यसभा, मथुरा। आचार्य, श्री मुक्तानन्द

संस्कृत पाठशाला, धमदा। माधव आयुर्वेद कालिज, अर्नाकुलम। द्विवेदी आयुर्वेद विद्यालय, कानपुर। श्री आयुर्वेद विद्यालय, कानपुर। मंत्री–पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन, जालन्धर। जिला वैद्यमण्डल, भटिंडा।

सर्वश्री वैद्य जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग। गोवर्धन शर्मा छांगाणी, नागपुर। क० प्रतापसिंह, इंदौर। मणिराम जी, रतनगढ़। ख्यालीराम द्विवेदी, इन्दौर। खण्डपरशु छत्रसिंह बारौठ, बड़ौदा। घनानन्द पन्त, देहली। श्री कृष्णानन्द, कालेड़ा बोगला। नानकचन्द्र शर्मा, देहली। नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी। रामदेव ओझा, मुजफ्फरपुर। किशोरी मोहनदास, कलकत्ता। वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर। मुन्शीराम शर्मा, भटिण्डा। गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। कपिलदेव त्रिपाठी, पटना। रविन्द्रचंद्र चौधरी, मिरजापुर। पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैदराबाद। माधव गणेश जोशी, पूना। पं० मेलाराम, देहली। रामचन्द्र शर्मा, अजमेर। माधवप्रसाद, जोधपुर। काशी भावे, फैजपुर। स्वामी चेतनानन्द, देहली। सत्यनारायण मिश्र, कानपुर। रामप्रसाद दीक्षित, सरदार शहर। ऋषिराम शर्मा, अलवर। धर्मदत्त चौधरी, खन्ना। यमुनाप्रसाद शास्त्री, जबलपुर। सुरेन्द्रकुमार काव्यतीर्थ, देवघर। ओमप्रकाश, अजमेर। श्री राम शर्मा, बम्बई। रामदयाल त्रिपाठी, हरदा। मदनमोहन पाठक, अमृतसर। हरिराम वराठे, भुसावल। केदारनाथ शर्मा, नागपुर। जगदीशचन्द्र वैद्य, सहारनपुर। ओमप्रकाश इंदु, फगवाड़ा। सुखदेव बली, फगवाड़ा। चेतनानन्द, हरियाबाद। दुर्गादास, फगवाड़ा। वैकुण्ठनाथ शर्मा, गुहाटी। रमेशचन्द्र, अजमेर। शिवजी जेठाभाई, माण्डवी। हरिशंकर पाठक, मुजफ्फरपुर। बद्रीदास त्रिपाठी, कानपुर। गिरधर शर्मा, अजमेर। ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल। दिनेशचन्द्र शर्मा, अजमेर। जनार्दन शर्मा, रायगढ़। रामनाथ पाण्डेय, इटावा। सिद्धिशंकर शर्मा, शाहपुर राजस्थान। लालमणि मिश्र, हमीरपुर। वासुदेव शास्त्री, उज्जैन। लक्ष्मीकान्त दामोदर, नागपुर। मणिलाल हाड़े, अहमदाबाद। गुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर। सोमप्रकाश शर्मा, संगरूर। सूर्यदेव शर्मा, मेरठ। घासीराम शर्मा, देवास। रामस्वरूप शर्मा, जीरा। शिवशंकर उपाध्याय, हरिया सराय, दरभंगा। सूर्यकान्त शर्मा, भगवतगढ़। विनायकदत्त शर्मा, अमृतसर। विरंचिलाल, इस्लामपुर। जोगेन्द्र सिंह, पेप्सु। रमेशचन्द्र शर्मा, अजमेर।

कार्य-विवरण

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

१. गताधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२. कार्यवाही की स्वीकृति के अनन्तर श्री प्रधान जीं नें स्थायी-समिति के गताधिवेशन के पश्चात् स्वर्गस्थ वैद्यबन्धुओं के असामयिक देहावसान पर शोक सहानुभूति का निम्नांकित प्रस्ताव उपस्थित किया जो सभा ने खड़े होकर एक मिनट का मौन

धारण करके स्वीकार किया :—

शोक प्रस्ताव—अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का यह सम्मिलिताधिवेशन वैद्यगुरु श्री डी. के. भरद्वाज बंगलौर, वैद्यश्री ठाकुरदत्त मुलतानी, देहली, वैद्यश्री हरिवंश मिश्र, सुमेरा-बिहार, वैद्यश्री अयोध्याप्रसाद मिश्र, मुजफ्फरपुर, वैद्यश्री उमाशंकर वृन्दावन, उत्तरप्रदेश, तथा वैद्यश्री विद्याविलास शुक्ल, नागपुर के असामयिक देहावसान पर शोक सहानुभूति प्रकट करता हुआ परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि उनकी दिवंगत आत्माओं को सद्गति एवं उनके शोकाकुल परिवारों को इस वेंदना को सहन करनें की शक्ति प्रदान करे ।

३. नवीन सदस्यताओं एवं सम्वद्धताओं का विषय उपस्थित हुआ तथा निम्नलिखित सदस्यताएं एवं सम्वद्धताएं स्वीकार हुईं :—

क—संरक्षक सदस्यता—श्री सदाशिव रेड्डीं, सिरागुप्पा, बल्लारी ।

ख—आजीवन सदस्यता—

१. श्री रामचन्द्र प्रफुल्ल, देहली । २. श्री इन्द्रमणि शर्मा, देहली । ३. श्री रमानाथ शास्त्री, देहली । ४. श्री जगदीशप्रसाद कौशिक, देहली । ५. श्री भगवद्दत्त शर्मा, देहली, ६. श्री विष्णुदत्त पौण्याल, भिवानी । ७. श्री द्वारकाप्रसाद पाण्डेय, तुमसर, उत्तर प्रदेश । ८. श्री हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी, (मुंघेर बिहार) । ९. श्री बृजमोहन शर्मा, रींगस, जयपुर । १०. श्री मूलचन्द्र, अजमेर । ११. श्री क्षत्रपालसिंह, विदंकी, फतहपुर । १२. श्री गोविन्दराम शास्त्री, वभनान (बस्ती) । १३. श्री रामचन्द्र मल्लिक, कलकत्ता । श्री दयानिधि स्वामी, ऋषिकेश, (देहरादून) १५. श्री पुरुषोत्तमदत्त गिरधर, भिवानी, (हिसार) । १६. श्री ज्योतिप्रसाद, देहली । १७. श्री जयन्ती मोहनलाल ठाकर, वम्बई । १८. श्री रविशंकर माटुभाई, नासिक, वम्बई । १९. श्रीं वी. जे. पण्ड्या, बम्बई ।

ग—वे सभी मान्य सदस्य जिनका शुल्क २५-४-५३ तक प्राप्त हुआ है ।

घ—सम्वद्धता—१. मायसोर आयुर्वैदिक कांग्रेस, बंगलौर । २. महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य मण्डल, नासिक, ३. बिहार प्रांतीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर ।

ङ—विद्यापीठ सम्वद्ध संस्थाएं—१. श्री रामकृष्ण विद्यापीठ, बंगलौर । २. श्री एम्प्रेस संस्कृत आयुर्वेद विद्यालय, बहराईच । ३. श्रीकृष्ण संस्कृत पाठशाला, पिपरिया, होशंगाबाद । ४. श्री मुक्तानन्द संस्कृत पाठशाला, धमदा, द्रुग । ५. श्री भारत हितचिन्तक विद्यालय, मुजफ्फरपुर । ६. श्री भोंसले वैद्य शास्त्र महाविद्यालय, नागपुर ।

४. निश्चय हुआ कि निम्नलिखित महानुभावों को महासम्मेलन की कार्यकारिणी के

सदस्यरूप में निर्वाचित किया जावे :—

सर्वश्री डा० ए. लक्ष्मीपति, मद्रास । एम. वेंकट शास्त्री, बेजवाड़ा । डा० वी. सुब्रह्मण्यम, श्रीरंगम । वी. बी. कृष्ण शास्त्री, बंगलौर । गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद । जगदीश्वर शर्मा, गोहाटी । जोगेशचन्द्र घोष, ढाका । कालीदास चट्टोपाध्याय, कलकत्ता । हरिवक्ष जोशी । कलकत्ता, विजयकाली भट्टाचार्य, कलकत्ता । पूर्णचन्द्र, रथपुरी श्रीराम शर्मा, बम्बई । सोमेश्वर मायाशंकर भट्ट, बम्बई । माधवप्रसाद नारायणशंकर शास्त्री, अहमदाबाद । शशिकान्त भूलाभाई पण्ड्या, अहमदाबाद । चुनीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा । जीवराम कालीदास शास्त्री, गोंडल । महाशंकर नरोत्तमभट्ट, कच्छभुज । भीकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर । सुन्दरलाल शुक्ल, जबलपुर । गोवर्धन शर्मा छांगाणी, नागपुर । पुरुषोत्तम शास्त्री हिर्लेकर, अमरावती । ख्यालीराम द्विवेदी, इन्दौर । रामनारायण शास्त्री, इन्दौर । मंगलदास स्वामी, जयपुर । नन्दकिशोर शर्मा, जयपुर । मणिराम, शर्मा, रतनगढ़ । उदयचन्द्र भट्टारक, जोधपुर । शिवशर्मा द्विवेदी, अजमेर । तनसुख जी व्यास, ब्यावर । रामनारायण शर्मा, पटना । वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर । रामरक्ष पाठक, बेगूसराय । दुर्गादास शास्त्री, बनारस । जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग । बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर । गणेशदत्त सारस्वत, हरिद्वार । चन्द्रमणिप्रसाद, रींवा । कैलाशचंद्र अग्रवाल, देहली । मनोहरलाल, देहली । घनानन्द पन्त, देहली । भुवनचन्द्र जोशी, देहली । धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, देहली । रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली । कुंवर रामेश्वरसिंह. जालन्धर । विप्रबन्धु, अमृतसर । प्रकाशनाथ तिवाड़ी, अमृतसर । विश्वनाथ, जम्मू । रामप्रसाद शर्मा, पटियाला ।

५. निश्चय हुआ कि निम्नलिखित महानुभावों को विद्यापीठ कार्यकारिणी के सदस्य रूप में निर्वाचित किया जावे :—

सर्वश्री नानकीनाथ धार, श्रीनगर । देवराज शास्त्री, अमृतसर । पुरुषोत्तमदत्त गिरधर, भिवानी । रामप्रसाद शर्मा, पटियाला । स्वामी चेतनानन्द, देहली । मनोहरलाल, देहली । जगदीशप्रसाद शर्मा, देहली । नानकचंद्र शास्त्री, देहली । जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग । बलदेव प्रसाद, बनारस । कालिकाप्रसाद शास्त्री, बनारस । लालचंद्र, बनारस । सागरदत्त, हरिद्वार । भगवन्तराय जैन, कनखल । स्वामी दयानिधि, ऋषिकेश । गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ । नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी । हनुमत्प्रसाद शास्त्री, रामगढ़ । मणिराम शर्मा, रतनगढ़ । नन्दकिशोर शास्त्री, जयपुर । जयरामदास स्वामी जयपुर । नारायणदत्त, सिंगरावट । अम्बालाल वैद्यशास्त्री, अजमेर । जीवराम कालीदास शास्त्री, गोंडल । रामेश्वर शास्त्री मिश्र, ग्वालियर । प्रतापसिंह कविराज, इन्दौर । वासुदेव शास्त्री, उज्जैन । ख्यालीराम द्विवेदी, इन्दौर । भीकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर । गोवर्धन शर्मा छांगाणी,

नागपुर। पुरुषोत्तम शास्त्री, हिर्लेकर, अमरावती। कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई। श्रीराम शर्मा, बम्बई। लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद। रामनारायण शर्मा, पटना। रामरक्ष पाठक, बेगूसराय। हरिनारायण चतुर्वेदी, पटना। वैद्यनाथ मिश्र, मुज़फ्फरपुर। रामदयालु जोशी, पटना। दामोदर अनन्त हलसीकर, हुबली। नोरीराम शास्त्री, बेजवाड़ा। डा० लक्ष्मीपति, मद्रास। वी० वी० नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली। डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर। डा० जोसफपीटर, एरनाकुलम। पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैदराबाद। गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। एम० विश्वेश्वर शास्त्री, मद्रास। श्री शचीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, कलकत्ता। श्री उपेन्द्रनाथदास, देहली।

६. अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के सन् १९५१-५२ वर्षीय आय-व्यय पत्र तथा सन्तुलन पत्र विचारार्थ उपस्थित किये गये। इस विषय में श्री प्रधानमंत्री नें बताया कि यह हिसाब वर्तमान मन्त्रिमण्डल के कार्यकाल का नहीं है तथा ३१ अक्तूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष से सम्बन्ध रखता है। इन पर आडीटर की ता० १०-४-५३ की रिपोर्ट जो इस कार्य-विवरण के अन्त में परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित है, पढ़ कर सुनाई गई। निश्चय हुआ कि प्रस्तुत रिपोर्ट में ओषध-निर्माता संघ की आय तथा पुस्तक विभाग के आय-व्यय के जमा खर्च का जो सुझाव आडिटर महोदय ने दिया है उसे इस वर्ष में कार्यान्वित किया जाए। परन्तु श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष तथा विश्वविद्यालय कोष के सम्बन्ध में जो साधारण व्यय हो रहे हैं उन्हें पूर्ववत् अभी सन्तुलन पत्र में ही दिखाया जाय। श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष के जो १०००० रुपए विद्यापीठ के सन्तुलन पत्र में होते हुए महासम्मेलन के नाम ट्रैजरी सेविंग्स सर्टिफिकेट्स में जमा किये गये हैं यह सर्वथा ठीक हैं क्योंकि विद्यापीठ के पृथक् रजिस्टर्ड संस्था न होनें के कारण सरकारी सर्टिफिकेट्स में सभी धनराशियां आयुर्वेद महासम्मेलन के नाम में ही जमा कराई जाती हैं। तदुपरांत प्रस्तुत आय-व्यय तथा संतुलन पत्र स्वीकार हुए।

विशेष—ये सभी पत्र आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के अप्रैल १९५३ के अंक पृष्ठ २३९ से २४४ पर प्रकाशित हो चुके हैं।

७. ब्यावर, अजमेर राज्य में सम्पन्न होनें वाले ३९वें अखिल भारतीय महासम्मेलन के लिए महासम्मेलन की स्वागत समिति द्वारा प्रस्तावित १५-१६ तथा १७ नवम्बर १९५३ की तिथियों पर विचार हुआ तथा वे सर्वसम्मति से स्वीकार हुईं।

८. (क) केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् के आगामी अधिवेशन से पूर्व ही आयुर्वेदीय शिक्षण एवं शासन के सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य के मुख्य एवं स्वास्थ्य-मंत्री को मिलनें तथा उन

तक आयुर्वेद जगत का मन्तव्य भली प्रकार पहुंचाने के लिए महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी की यात्रा के आयोजन पर विचार हुआ तथा सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्री प्रधान जी ऐसी यात्रा का कार्यक्रम बनावें। परिस्थित्यानुसार श्री अध्यक्ष महोदय वायुयान द्वारा भी जा सकेंगे तथा उन्हें इसका किराया महासम्मेलन कोष से दिया जा सकेगा।

उपर्युक्त प्रस्ताव पास होनें के अनन्तर श्री अध्यक्ष जी ने कहा कि मैं सदस्य महानुभावों के विश्वास और उदारता का आदर करता हूं परन्तु में चाहता हूं कि महासम्मेलन कोष से कम से कम व्यय करके यह कार्य सम्पन्न किया जाय। अतएव महासम्मेलन कोष से मैं प्रथा के अनुसार केवल सेकण्ड क्लास का किराया ही लेता रहूंगा। परन्तु वायुयान की यात्रा के लिए तथा पूर्व लिखित अथवा नवीन लिखे जाने वाले भाषणों, स्मृति-पत्रों एवं पत्रकों के मुद्रणार्थ अथवा प्रेस कांफ्रेंस आदि में जो अधिक व्यय होगा उसकी पूर्ति बम्बई के कुछ धनिकों से रुपया लेकर करूंगा। इससे इस कार्य के साथ महासम्मेलन का सम्पर्क भी बना रहेगा और महासम्मेलन पर अधिक आर्थिक भार भी नहीं पड़ेगा।

तदुपरान्त श्री अध्यक्ष जी ने यह भी कहा कि "आवश्यकतानुसार यदि मैं उपयुक्त समझूं तो भारत के किसी देश विशेष में सम्पर्क-स्थापना का यह कार्य में अन्य सुयोग्य व्यक्तियों को भी सौंप सकूं तथा इस द्रव्य में से उनका भी व्यय चुकाया जा सके ऐसी अनुमति भी स्थायी-समिति दे।"

श्री अध्यक्ष जी के इस वक्तव्य का सभी सदस्यों नें स्वागत किया और इसे धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया।

(ख) निश्चय हुआ कि श्री शिवशर्मा जी "आयुर्वेदरक्षा कोष" के नाम से आवश्यकतानुसार धन एकत्रित कर अपनें निर्णयानुसार व्यय करें और उसकी सूचना स्थायी-समिति को देते रहें।

९. स्वास्थ्य-मंत्रियों, मुख्य-मंत्रियों तथा संसद् एवं राजकीय परिषदों के सदस्यों में वित्तीर्ण किए जाने के लिए आयुर्वेद-पक्ष समर्थक साहित्य पत्रकों के रूप में प्रकाशित करने पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि ऐसा साहित्य प्रकाशित किया जाय। एतदर्थ जो व्यय हो उसकी व्यवस्था चालू वर्ष के आनुमानिक व्यय में से ही की जाय।

१०. बम्बई सरकार के बोर्ड आफ आयुर्वैदिक रिसर्च, जिसमें डाक्टरी सदस्यों का प्रभुत्व है, की सदस्यता श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी स्वीकार करें अथवा नहीं, इस पर विचार हुआ। पर्याप्त वाद विवाद के पश्चात यह समझा गया कि यह विषय

(शेष पृष्ठ २९० पर)

अथ गोरक्ष संहिता प्रारम्भः

संशोधन कर्ता--विद्यार्णव श्री घनानन्द पन्त आयुर्वेद वृहस्पति D Sc. तथा
श्री राधावल्लभ पन्त, देहली।

योगीश्वर मत्स्येन्द्रनाथ जी के शिष्य श्री गोरक्षनाथजी नवीं शताब्दी में हुए हैं। 'स्वच्छन्दे कोटि सम्मिते' (१-१२०) इसी संहिता में प्रोक्त इस वाक्य से यह संहिता स्वच्छन्द भैरव संहिता का पारद प्रक्रिया का एक भाग है। सुना जाता है कि जब गोरक्षनाथ जी का उत्तराधिकारी गद्दी में बैठता है तब ही यह संहिता जिस सन्दूक में बन्द रहती है उसकी चाबी भी उत्तराधिकारी को दी जाती है। इसी कारण इसके उद्धरण और किसी ग्रंथ में नहीं मिलते। अब मैंनें अपनी रसेन्द्र सार संग्रह की टीका में इसके उद्धरण दिये हैं।

इसके प्रतिपाद्य विषय पारद से सोना चांदी बनाना आदि--'महद्भूतिमवाप्नोति खेचराद्यणिमाष्टकम्' ।। प० १-६६ ।। बड़ी सम्पत्ति मिलती है, पारद की गोली को मुख में रख कर आकाशचारी हो सकता है, बहुत छोटा रूप धारण (अणु) कर सकता है और पहाड़ के समान भारी भी हो सकता है इत्यादि। यह प्रति श्री यादव जी के पुस्तकालय से हमें मिली है। दूसरी प्रयत्न करने पर भी नहीं मिली है। अत्युपयोगी पुस्तक होने से यथामति संशोधन कर पत्रिका में प्रकाशित की जातीं है। किसी महोदय के पास इसकी दूसरी प्रति हो तो हमें सूचना मिलनें पर किसी भी शर्त पर हम संशोधनार्थ ले सकेंगे।

गोरक्षनाथजी की मूर्ति अभी तक नैपाल के सिक्के में रहती है। काबुल आदि स्थानों पर इनके मठ भी हैं। रसार्णवादि में शिवागमादि पूर्वाचार्यों के नाम मिलते हैं पर गोरक्षसंहिता में पूर्वाचार्यों के नाम नहीं मिलते। गोरक्षनाथजी के विषय में अनेक लेख 'कल्याण' गोरखपुर में निकले हैं। —वैद्य घनानन्द पन्त, राधाबल्लभ पन्त भिषगाचार्य धन्वन्तरि।

(१)

सहाय सहिता सिद्धिर्द्रव्य मन्त्र तपोयुताः।
राज्ञोऽधिकारि पुरुषाः परायत्ताश्च ये नराः ।।१।।

पशवोऽधिकार रहिता विशेष ज्ञान वर्जिताः।
पापिष्ठा द्रव्यहीनाश्च क्रोध लोभ समन्विताः ।।२।।

असत्वा गुप्ति रहिता नित्यं कपट वर्त्तिनः।
धर्म ज्ञान विनिर्मुक्ताः प्रजा पीडन तत्पराः ।।३।।

न तैः सह समायोगः कर्त्तव्यो रस साधनें।
रस कर्म च विज्ञानं मन्त्र शास्त्रौषधीव(बं)लम् ।।४।।

मणि रत्नं सिद्धिकार्यं नैव तेषां प्रकाशयेत् ।
यदा प्रकाशस्तेषां. . .सहतैस्तु प्रसाधयेत् ॥५॥

नैव सिद्धि मवाप्नोति तथा ? वा दैव योगतः ।
कदाचित्सिद्धिमायाति तदानु संहरेद्ध्रुवम् ॥६॥

विज्ञानार्थी च द्रव्यार्थी घन वल्यं ? च कारयेत् ।
निर्दया: पाप मतयो द्रव्य लोभ समन्विताः ॥७॥

अति पात्रे तु ? सं स्थं तु शास्त्र रत्नं मणि रसम ।
द्रव्यं चापहरेत्क्षिप्रं बध (घं) बन्धं च कारयेत् ॥८॥

तस्माद्गुप्ततरा कार्या रसविज्ञानसंहिता ।
नान्यत्तु शोभनं किंचिन्ना न्यत्किञ्चिदशोभनम् ॥९॥

अज्ञानाल्लोक हास्यं तु (?) अङ्गक्लेश करं भवेत् ।
अर्थं क्षयं तथोद्वेगं व्यसनस्य प्रदायकम् ॥१०॥

स तृप्तं व्यसनं चैतत्संजातं न त्यजेत्क्वचित् ।
ज्ञानाद्भोग प्रदे त्वेतत्सर्वं सिद्धि प्रसाधनम् ॥११॥

राज्य प्रसाधनं चैव सर्व भूत वशं करम् ।
साधनं देव देवानां राजमृत्यु विनाशनम् ॥१२॥

अविज्ञाते तु न भवेत्सम्यक् ज्ञात्वा तु कारयेत ।
ये नराः शुद्ध मनसो महाकुल समुद्भवाः ॥१३॥

वीरावीर प्रचण्डाश्च धनवन्तो महायशाः ।
तृणे च काञ्चने येषां समंचित्तं समास्थितम् ॥१४॥

प्रतिष्ठाः सर्व शास्त्रेषु सिद्धान्ते वाम दक्षिणे ।
विशेष मार्गं संपन्ना हानि वृद्धि समाःसदा ॥१५॥

सिद्धासिद्धैः (सिद्धय सिद्धयोः) समानित्यं शूरास्त्याग समन्विताः ।
असिद्धेनोपहासेन सिद्धे तु नाभिनन्दति ॥१६॥

मन्त्र तन्त्र सहैत्तेन सिद्धि साधन मेव च ।
रसकर्मादिकं ज्ञानं सहतेनैवकारयेत् ॥१७॥

मृत्युदारिद्रसंयुक्तः सिद्धिमायाति सत्वरम् ।
मदोन्मत्तो गजो ह्येष दारिद्र तनु संभवः ॥१८॥

वने च रमते ताव त्परिभूतासने रतः ।

न श्रृणोति विधिं यावद्भवजस्य निबन्धने ।।१९।।

आशु पञ्चाननस्यैव नादं श्रुत्वा त्यजेत्क्षणात् ।
रसोपरस दंष्ट्राणि अग्नि जिह्वा रसायनम् ।।२०।।

हेमतारनखः सिंहो दारिद्रचकरि दारणः ।
कृष्णजीमूत निसितो निशायां व्योम्नि सर्वतः ।।२१।।

स नि रश्मि निरुद्धे तु अलिर्लीनो न दृश्यते ।
तद्वज्ज्ञान विहीनो स्वभूत यो न प्रकाशयेत् ।।२२।।

तस्माज्ज्ञानं तु वक्तव्यमायुर्भूत प्रसाधनम् ।
दारिद्र मेव दुःखं च क्लेश दोषा विदुःसहम् ।।२३।।

नान्यथा प्रशमं यान्ति विनातद्वाद रश्मिभिः ।
यथार्करश्मि संघातं क्षणं शीतापहं भवेत् ।।२४।।

दारिद्रजंतथा दुःखं हीयते वादरश्मिभिः
सिद्धि कर्म प्रदं ह्येतन्मुनयोऽपि न दास्यते ।।२५।।

किं पुनर्मानुषाः क्षुद्राः तस्माद्वादं तु सिद्धिदम् ।
शास्त्रात्तुज्ञायते सर्वं यथावत्कर्मयोगतः ।।२६।।

शिव पूजाविधानेन दीप्तमन्त्रैर्लभेद्रसम् ।
तपसा वा भवेत्प्राप्तिर्भूत योनैव चान्यथा ।।२७।।

भवजस्य क्रियां ज्ञात्वा भुक्ति मुक्ति मवाप्नुयात् ।
साक्षाच्छिवः समाख्यातोभवजः पुण्यदायकः ।।२८।।

शिवो यथा पूज्यमेतद्बीजं प्रोक्तं शिवोद्भवम् ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव भुक्ति मुक्तिप्रदोभवेत् ।।२९।।

सर्वजीव मयोह्येष सर्वभूतेषु संस्थितः ।
सर्वरत्न प्रधानस्तु पवित्रः पुण्य दायकः ।।३०।।

अस्यैकस्य महान्दोषो यदि सह्यस्तुवह्निना ।
सह्यं येन कृतं देवि वह्निना सूतकस्य च ।।३१।।

साधितं अ (?) मरत्वं च महद्भूतिं समाप्नुयात् ।
सर्वभूत मयो ह्येष पञ्चभूतैरधिष्ठितः ।।३२।।

अक्षयो ह्यमरश्चासौ मम देहाद्विनिर्गतः ।
दिव्य भूतात्समायातो भवजः पाञ्चभौक्ति(ति)कः ।।३३।।

आर्द्रत्वेत्वाप उद्दिष्टं घनत्वे पृथिवी स्थिता ।
चापल्ये संस्थितो वायुस्तेजस्तेजः समाश्रितम् ।।३४।।

सूक्ष्मत्वात्तु तस्यैव आकाशं तु व्यवस्थितम् ।
न तस्य पृथिवी तत्वं घनत्वापादने क्षमा ।।३५।।

नासौ क्लिद्यति तोयेन अग्निना नैव दह्यते ।
वाते नोड्डीयते नैव तूलवच्च कदाचन ।।३६।।

अनिलेन त्वसौनैव कदाचिच्चैव शुष्यति ।
रसो नाकाशहीनोऽपि कश्चिद्धारयितुंक्षमः ।।३७।।

न तेन देव दैत्याश्च न सिद्धा न च गुह्यकाः ।
गच्छन्ति तेन मार्गेण येन गच्छति सूतकः ।।३८।।

न तेन चानिलो याति न चाग्नि सलिलं न हि ।
अति सूक्ष्मेण रन्ध्रेण येन गच्छति सूतकः ।।३९।।

निक्षिप्य (?) आयसे यन्त्रे त्वरन्ध्रे संधिवर्जिते ।
कीर्त्ति तो निगडैर्बद्धो यावच्चौष्माविभावशा (सौ ?) ।।४०।।

संधिरन्ध्र विनिर्मुक्त सिद्ध योगीव निष्क्रमेत् ।
महाश्रृंखलयंत्राणि स्तम्भयेत्स सुकीलनात् ।।४१।।

अग्नि तापात्क्षणेनैव भवेन्नाग वलोपमः ।
महास्तनितनादेन बलान्निवसि(विश)ते जलम् ।।४२।।

नभस्तलं चोत्पतेत संघाताद्वायु रूपिणः ।
सूक्ष्मी भूत्वा क्षितौतिष्ठे दनिवार्योदुरासदः ।।४३।।

अग्राह्य (?) शिवो ह्येष ज्ञान कर्म विनारसः ।
तस्याष्टौ च गुणाः सिद्धाः प्रकटाःसुमहद्भुताः ।।४४।।

गुरोर्गुरुतरो ह्येष नान्यद्गुरुतरो भवेत् ।
लघोर्लघुतरो ह्येष नान्यल्लघुतरो भवेत् ।।४५।।

व्रजेज्जल स्योपरितो लघुत्वे तु व्यवस्थितः ।
अणोरणुतरो ह्येष न चान्ये ह्यणुरूपिणः ।।४६।।

बद्धस्य महिमानत्वं नान्यस्य महिमाद्भुतः ।
प्रयोगाप्तिस्तु बद्धेन सु प्रकाम्यास्तु सर्वतः ।।४७।।

ईशत्वं सर्वतस्तस्य वशित्वं च महामरैः ।

बद्धंनैवोपयुक्तेन यति तुल्य गुणो भवेत् ॥४८॥

अणिमादिगुणावाप्ति,र्जायते नात्र संशयः ।
महा क्लेशेन योगीव प्राप्नुयान्नैव मेव तत् ॥४९॥

वद्धे नैवोप युक्तेन सर्वजेन लभेद्ध्रुवम् ।
खेचराद्यणि माव(वा)प्तिर्लभते ह्यचिरेणसः ॥५०॥

आमयान्मूर्छितो हन्ति ह्यमरत्वंभतौ(मृतो)भवेत् ।
खेचरत्वाणिमाद्यन्तु येन वद्धस्तु सूतकः ॥५१॥

वद्धे नेन्द्रं च धनदं यमंजयति सत्व(र)म् ।
लोकपालान्सुरान्सिद्धा न्दैत्यानुरग दानवान् ॥५२॥

यक्ष रक्षो ग्रहानुग्राञ्जये नैवात्र संशयः ।
महाबलसमोपेतःचक्रवर्त्तिसमं नृपम् ॥५३॥

बल सौर्येण दानेन रस सिद्धो जयेत्सदा ।
एते गुणास्तु सहजा सूतकस्य महात्मनः ॥५४॥

शिववद्ध्यायको ह्येष सर्व धातु गतो रसः ।
अबद्धो वाऽथ वद्धो वा व्यापकः सर्वजोभवेत् ॥५५॥

यन्त्रलोपेन सहसा गरुड़े शशिभास्करे ।
उत्पले चन्द्रके लीनो वाह्यस्थो विशते रसः ॥५६॥

सर्वा यास गतो वद्धो व्यापकः किञ्चिदग्निगः ।
उत्तमत्व प्रदो ह्येष षड्वीजसमयोजितः ॥५७॥

यथा स्वायंभुवैर्बीजैर्दीप्तैराशु नियोजितः ।
पातितत्व समोपेतैर्बीजै स्तैस्तु पतित्वताम् ॥५८॥

वीजद्वय समोपेत उत्तमत्वं च नीयते ।
अबद्धस्य गुणाञ्चा (श्चा) न्ये लोकविस्मयकारकाः ॥५९॥

आयसं च कृतं यन्त्रमष्टाप्द (?) ष्ट हस्तकम् ।
चतुर्भिरष्ट भिर्वाऽथ दिशा सु विनिवेशयेत् ॥६०॥

शृङ्खलै र्ली (र्लो) ह ताम्रस्थ पलानां तु शतद्वयम् ।
गुहा गन्तं (तं) तु तत्कार्यं शृङ्खलाभिः सुयन्त्रितम् ॥६१॥

मूषाधः खा(ख)दिराङ्गारैर्मृदु मग्निं तु कारयेत् ।
मध्यानुमाना नलिका ह्यायसात्वग्नि संस्थिता ॥६२॥

मध्यस्थञ्चा (श्चा) लयेद्भूस्त्रा मेकां सर्वं मुखोसुताम ।
वृत्तांत्तुक क्ष य (छ) (?) पाकारां चालयेत्तुमनांमनाक् ।।६३।।

न वाध स्तत्र संस्था च त्रिरूर्ध्वमस्तु जापिनः ।
बलाग्नि धारणो पेतं दीप्त मन्त्रान्समुच्चरेत् ।।६४।।

चक्रे वा अम्बुजेवाऽथ आयसेनोपरिस्थिताः ।
उत्पत्ते गगना भोगमग्नि तापः शनैः शनैः ।।६५।।

ब्रह्माण्डस्योर्ध्वखण्डे च विचरेदग्नि तापनात् ।
यन्त्र मध्ये भवेत्कीलं रेचके ना ध्रियोगतः ।।६६।।

नयेदष्टदिगाभोगे कुम्भकेन निरोधयेत् ।
अग्नि तापं शनैर्दत्वा शीतलेन क्षितिं व्रजेत् ।।६७।।

धारणा देह संस्थ स्तु सर्वरोगहरो भवेत् ।
अग्नि सोमार्क संलीनः सृष्टि हृष्टानु संयतः ।।६८।।

विषाग्नि शस्त्र संपातैः क्रूर सत्वामयान्यजे (?) त् ।
वशी करोति भूतानि सर्वं विघ्न हरो भवेत् ।।६९।।

अबद्ध (ध) स्य बीजानि बद्धो दिव्याञ्जयेद्रसः ।
यत्र तिष्ठति गेहान्त स्तत्र रक्षा सदा भवेत् ।।७०।।

उरगाग्नि दस्यु दुष्टा न क्षेत्रं प्रभवन्ति ते ।
वने पथि जले वाऽथ दुष्ट रक्षा करो भवेत् ।।७१।।

यत्र तिष्ठति देह स्थो मन्त्रलब्धस्तु सर्वजः ।
दुष्कृतं त्वा पदो रोगा नतस्य प्रभवन्ति ते ।।७२।।

चण्डी च लङ्घनं नैव समयाचार लङ्घनम् ।
गुरो द्रोहः शिवद्रोहो मन्त्रविघ्नैर्न गृह्यते ।।७३।।

सर्वं विघ्न विनिर्मुक्तः शुभैर्मन्त्रैः शिवं जयेत् ।
एते यस्य गुणाः सन्ति किं न सिध्यति सूतकः ।।७४।।

रसोत्तमेन संयुक्तो मध्यमेवाऽधमेन वा ।
सवेदिकं कृतं लिङ्गं व्योम युक्तोऽथ सर्वजः ।।७५।।

स्वच्छन्दा स्तु मयाऽऽख्याता अग्निष्टोम हृदाणुना ।
दशदा स्मरणे नाथ संबत्सरमखेन वा ।।७६।।

वर्णि स्वर महालक्ष्मी कामोदय महो दयैः ।

खेचरी चक्र योगेन महामारी मखेन वा ।।७७।।

उत्तरोत्तर कालाख्यो मातृतन्त्रहृदाणुना ।
स्वच्छन्दो कौलवे नाथ वर्षा विया मुखेन वा ।।७८।।

स्वायंभुकौलवेनैवदीप्ताद्येन मखेनवा ।
एभिरेतत्क्रमेणैव भवजं दू(पू)जयेत्सदा ।।७९।।

अथ तेन कृतं लिङ्गं स सिद्धि मवाप्नु यात् ।
सिद्ध यन्त्रं प्रतिष्ठन्ति खेचरा ह्यणिमाष्टकम् ।।८०।।

दीप्ता घोरेण योगेन पूज्यमानस्तु सर्वजः ।
सिद्धेनैवात्र संदेहःस्पर्शात्तस्य महोदयः ।।८१।।

जरा दारिद्र मृत्युघ्नः सरावं नात्र संशयः ।
पुण्यश्चैव पवित्रश्च सर्वपाप क्षयंकरः ।।८२।।

दर्शनात्स्पर्शनाच्चैवश्रवणात्सूतकस्यतु ।
सर्वाग्नि मुख देवाश्च ध्यानाहार भवन्ति ते ।।८३।।

कः करिष्यति सूताग्न्यैर्मेलनं साधु पुङ्गवः ।
सर्वे स्तुवन्ति वरदा आयुष्यं च प्रयच्छति ।।८४।।

महदेतत्कृतं पुण्यं सत्कृतं सूत बन्धनम् ।
एकतः सर्व यज्ञा स्तु एकतः सूतकः कृतः ।।८५।।

शतकोटि सहस्त्रेण सूतकस्तु विशिष्यते ।
एकं हि तद्भवे द्वित्तं येन वद्धस्तु सूतकः ।।८६।।

एको हि स पुमाँल्लोके सूतको येन भक्षितः ।
यत्पुण्यं संस्कृते सूते विधिना शास्त्रकर्मणा ।।८७।।

न तत्पुण्यं भवेदेव अश्वमेध शतै रपि ।
सु पात्रे सु(तु) यथा दानें सु क्षेत्रे वीज संततिः ।।८८।।

तथा रस गते सूते न नाशमुपगच्छति ।
सर्वेषां चैव दानानां हेम दानं महागुणम् ।।८९।।

पात्रेषु व हि (ह्नि) ? र्गं ण वान्सूतकः शिववत्स्वयम्।
तेषु दत्तं महापुण्यं कल्पान्तर शिवाक्षयम् ।।९०।।

सर्व पात्रेषु लभते भोगं तत्पार लौकिकम् ।
जन्मान्ते वेंह लभते भोगान्भूरि गुणोदयान् ।।९१।।

एकाग्र भावः सततंवह्नौ सूतक दानतः ।
एतत्कर्म न कुर्वन्ति दारिद्रापहृता नराः ।।९२।।

मूढ़ाः कुबुद्धिवश गा अल्प पुण्या निरुद्यमाः ।
स एव एकः पुरुष (स्तत्) स्तीर्थं तत्तपोवनम् ।।९३।।

विधिना संस्कृतो येन सर्वजः सर्व कामदः ।
तदेकं भूतलं पुण्यं रसज्ञो यत्र तिष्ठति ।।९४।।

सदेशोऽपि भवेत्पुण्यो यत्रतिष्ठति नित्यशः ।
भवजेन तु बद्धेन उपयुक्तेन मानवः ।।९५।।

महद्भू तिमवाप्नोति खेचराद्यणिमाष्टकम् ।
एते गुणा रसेन्द्रस्य बद्धस्य तु विधानतः ।।९६।।

एभिर्गुणैः समानत्वं यदि योगीशमाप्नुयात् ।
गुरूणा संप्रयुक्तेन उपदेशेन तत्वतः ।।९७।।

कालान्तर वशाज्ज्ञानी प्राप्नुयान्नैव ते गुणाः ।
पुण्यो मृतो पमा (मो) ह्येष देवानां तृप्तिदायकः ।।९८।।

सूतकेन कृतं हेम तेन यागो यदा कृतः ।
तत्पुण्यं च पवित्रं च देवा स्तृप्तिमवाप्नुयुः ।।९९।।

रस विद्धं पवित्रं तु यत्कृतं चाङ्गुलीयकम् ।
तेन हस्तेन यत्किञ्चिद्दत्तं भवति चाक्षयम् ।।१००।।

धारितं चैव तद्देहे रुजो गरहरं भवेत् ।
सर्वं यत्नेन सूतं तु सर्वायासेन संस्कृतम् ।।१०१।।

सर्वेण तपसा चैव सम्यग्ज्ञात्वा विधानतः ।
महद्भू ति मवाप्नोति खेचराद्यणिमाष्टकम् ।।१०२।।

क्रिया वैकल्य योगेन कदाचिन्नाफलं भवेत् ।
तदा शिवस्य यद्दत्तं तद्दान फलमाप्नुयात् ।।१०३।।

अर्थस्य विनियोगेतु द्विधाख्यातं च नान्यतः ।
स्वच्छन्दस्य च यजने सूतकस्य निबन्धने ।।१०४।।

द्वावेतावक्षयौ ख्यातौ दत्त नष्टास्तथा परे ।
अतिपात्र मयोरीशस्त्वतिपात्रं हुताशनः ।।१०५।। (क्रमशः)

पंचमहाभूत सिद्धान्त और विश्व का विकास

कविराज महेन्द्रकुमार शास्त्री बी० ए०, आयुर्वेदाचार्य, बम्बई।

(मार्च अंक पृष्ठ १६३ से आगे)

जिस प्रकार रस्सी तथा रस्सी की गांठ वायु और बबूणा माँस एवं मांसतन्तु एक ही वस्तु है, इसी प्रकार उक्त दोनों पिण्ड भी आकाशीय ही हैं। जिस प्रकार रस्सी की शिथिल गांठ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं इसी प्रकार यह कण भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं ।यही भाव अंगरेज़ी विश्वकोष (British Encyclopaedia) में Ether के विषय में बताया गया है।

"Everything in the material universe consists of ether, and matter itself being in all probabeity one of its modifications."

"Familiar thing that we call matter is afterall a manifestation of ether energy."

"Matter is composed of ether, being built up of electrons and protons, whose constitution has not yet been ascertained but which somehow is constructed of ether perhaps, in some sense analogous to that in which à knot in a piece of string is constructed of string or a vartex in air is composed of air or the fibre of a muscle is still essentially flash." Yet a modified piece of ether like an electron can move from one place to another, the analogy of loose knot slepping along a string may be helpful."

भारतीय दार्शनिकों के अनुसार आकाश एक भावात्मक अतिन्द्रिय पदार्थ है, जिसमें शब्दोत्पत्ति होती है। आकाशत्व में स्पर्श, संघर्ष अथवा अवरोधक गुण का सर्वथा अभाव है। अतः आकाश में उत्पन्न शब्द सर्वथा फैल जाता है। किन्तु हम अपनी ऐन्द्रियक शक्ति की न्यूनता के कारण सुन नहीं सकते जब वही एन्द्रियक शक्ति की कमी यन्त्र द्वारा पूर्ण कर लेते हैं तो हमें दूरस्थ जन की भी वाणी स्पष्ट सुनाई देती है। "वायरलेस टेलीग्राफी" या रेडियो के यन्त्रों का यही रहस्य है। एक प्रकार से वह हमारी शक्तिशाली कर्णेन्द्रिय है। इसी शब्दमात्र धर्मी आकाश में समस्त ब्रह्माण्ड निमग्न है, इसी के द्वारा सूर्य चन्द्रादि

परस्पर आकर्षण द्वारा सम्बन्धित हैं। अभावात्मक होने पर यह बातें नहीं हो सकती।

काशृदीप्तौ धातु से आकाश शब्द बना है। अत: प्रकाश का कारण है। तामस अहंकार से उत्पन्न होने पर भी यह सत्त्व गुण बहुल है। अतएव "सत्त्व बहुलमाकाशं" ऐसा कहा गया है। सत्त्व बहुलता के कारण ही यह विभु तथा स्वर्गगत है। प्रत्येक कण में व्याप्त है। इसे "कार्य आकाश" कहा गया है। वर्तमान वैज्ञानिक भी परमाणु (Atom) में घन-विद्युत्कण एवं ऋणविद्युत्पिंड के मध्य में आकाश को मानते हैं। इस प्रकार आकाश सर्व भूतों का कारण कहा गया। आकाश में स्वजातीयाकर्षण शक्ति अन्य भूतों की अपेक्षा न्यून है अतएव वह सूक्ष्म रूप में हैं अथवा उसके घटकतत्व इतने सूक्ष्म हैं कि उनमें मिलकर भी घनता और गुरुता नहीं आसकती, वह इससे रहित हैं अतएव गतिमान् हैं।

वायु : "वा गति गन्धनयो:" धातु से वायु शब्द बना है। शब्द तन्मात्रा सहित (आकाशोत्पादक प्राकृतिक शक्ति) स्पर्श तन्मात्रा से वायु की उत्पत्ति हुई है। अतएव इसे आकाश सम्भूत कहा गया है "आकाशाद्वायु:" (तैत्तरीय) "आकाशात्तु विकुर्वाणात् सर्वगन्ध वह: शुचि:" (मनु:) इस वायु में शब्दोत्पत्ति तथातद्वहन दोनों ही होते हैं। गति इसकी विशेषता है। यह भी अतीन्द्रिय एवं विभु है जैसा कि सुश्रुत ने कहा है :

"स्वयम्भूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दित: ।
स्वातन्त्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगतत्वात्तथैवच ॥
सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोक नमस्कृत: ।

सर्ग के प्रारम्भ में आकाश तत्व प्रशान्त गतिरहित अचल था जैसा कि "मृत्युनैवेदमावृतं आसीत्" इस वृहदारण्यक वाक्य से पता चलता है कि सर्ग के आदि में गति का सर्वथा अभाव था। इस गतिरहित आकाशतत्व में सर्वप्रथम गति अथवा गतिमूलक तत्व की सृष्टि हुई। संसार में गति रहित कोई भी वस्तु नहीं है। सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु से लेकर महान् पर्वतों तक में गति है। भेद केवल शीघ्रता का है। यदि गति न हो तो प्रतिक्षण परिवर्तन होना असम्भव है। सब वस्तुएं एक रस रहें। अत: गति का कारण वायु है अतएव चरक में वायु को विश्वकर्मा का रूप दिया गया "सहि विश्वकर्मा विश्वरूप: सर्वगा: सर्वतन्मात्राणां विधाताभावानामणु विभु: विष्णु: क्रान्ता लोकानाम्" सूक्ष्मतमाणु में विद्युत्कणों की गति का भी यही कारण है अतएव कठोपनिषद् में "यदियं किंच जगत सर्वं प्राण: एजति निस्सृतम्" कहा गया है और वेदान्तसूत्रों में "कम्पनात्" के निर्माण का कारण है। वस्तुत: संसार की स्थिति उत्पत्ति और विनाश में यह एक महत्वपूर्ण पदार्थ है। अतएव "स्थित्युत्पत्ति विनाशेषु भूतनामेष कारणम्" कहा गया है तथा कठोपनिषद् में "वायुर्यथैकोभुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव"। यह समस्त जगत में गतिमूलकतत्व रजोगुण बहुल है। प्रकृति राजसी शक्ति का प्रतिनिधि है। अतएव 'रजो बहुलो वायु:' ऐसा कहा गया है।

अग्नि : "वायोरग्नि: "तैत्तरीयोपनिषद् के इस वाक्य के अनुसार तथा मनु के

"वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोधिष्णु तमोनुदम्।
ज्योतिरुत्पद्यते भास्वद्रूप गुणमुच्यते ॥

वाक्यानुसार शब्द स्पर्श तन्मात्रासहाय्य से रूपतन्मात्रा (प्राकृतिक प्रकाशक शक्ति) से अग्नि की उत्पत्ति होती हैं। गतिवान् वायु तत्व के प्रकट होनें पर उसके स्पर्श संघर्ष आदि गुणों के परिणामस्वरूप अग्नि या ताप की उत्पत्ति होती है। गति अवरोध का परिणाम ही अग्नि है। वर्तमान काल के महान् वैज्ञानिक हर्बर्ट स्पेन्सर महोदय का भी यही कथन है "गति के अवरोध के कारण ही कभी अग्नि कभी विद्युत तथा कभी चुम्बक कभी प्रकाश उत्पन्न होता है। (Motion that is arrested produces under different circumstances heat electricity magnatism or light. "Light is electromagnetic phenomena and it is entirely dependent on the properties of ether." (Eneyclo. Brita.) इसका आम उदाहरण विद्युत्प्रकाश है। जब हम विद्युत के प्रवाह वायु शून्य विद्युत दीपकों (बल्ब) में बन्द कर देते हैं तो वही-वही विद्युत् प्रवाह प्रकाश के रूप में परिणत हो जाता है। वस्तुत: भारतीय ऋषियों के अनुसार अग्नि प्रकाश, विद्युत चुम्बकादि एक मूल तत्व के अवान्तर भेद मात्र हैं। इसलिए कठोपनिषद् में कहा हैं' "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव"। अथर्व वेद में भी "ये अग्नयोऽप्सु ये वृत्रे ये पुरुषे ये चाश्मसु आविवेश औषधीर्यो वनस्पतीन् तेभ्योऽअग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्" "इसी अभिप्राय से कहा गया है। शब्द तथा स्पर्श तन्मात्रा के कारण यह सूक्ष्म तथा लघु गुणयुक्त है तथा उष्ण तीक्ष्णादि स्वगुण युक्त भी है अतएव दहन, प्रकाशन, पचन, प्रभा रूपादि भावों का कारण है। यह सत्व तथा रजोबहुल है। क्योंकि इसकी उत्पत्ति आकाश तथा वायु उत्पादक शक्ति सहित स्वोत्पादक शक्ति से हुई है जो प्रकृति के सात्विक तथा राजसिक भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अत: "सत्वरजोबहुलोऽग्नि:" कहा है सुश्रुत ने।

यद्यपि दृश्यमान सूर्यादि पांच भौतिक हैं तथापि अग्न्यंश की प्रधानता के कारण उन्हें आग्नेय कहा जाता है। इसी दृष्टि से छान्दोग्य में कहा गया है। "यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूप, यच्छुक्लं तदयां, यत्कृष्णं तदन्नस्य।" तेज का शुद्ध रूप इन्द्रियागोचर है।

आपस् (जल)

शब्द, रूप, तथा वायु तन्मात्राओं सहित रस तन्मात्रा से (तन्मात्रा-प्राकृतिक उत्पादक शक्ति) जल की उत्पत्ति हुई। यह जल गति तथा द्रव का प्रतिनिधि है। अतएव "रसांतर्गच्छतीति रस:" कहा गया है "ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृता:" इति मनु के वाक्यानुसार अग्नि से अप् तत्व की उत्पत्ति हुई है। द्रवता संसार में अग्नि या

उष्मा के कारण ही उत्पन्न होती है। अग्नि के बिना द्रवता नहीं है। शब्द रूप रस स्पर्श गुणयुक्त सर्व प्रकार की द्रवता स्निग्धता, रसता आदि का मूल कारण है। यह अप् तत्व भी चराचर व्यापक है जैसा ऋग्वेद ने कहा है :--

यूयं हिष्ठाभिषजो मातृतमा विश्वस्यस्थातुर्जगतो जनिभीः"

दृश्यमान स्थूल जल पांच भौतिक है परन्तु इसमें अप् तत्व की प्रधानता के कारण इसे "जल" का नाम भी दिया गया है। इसकी उत्पत्ति लघुस्थिर आदि गुणों के कारण सत्व तमो बहुल है जैसा कि "सत्वतमो बहुला आपः" इति।

पृथिवी--शब्दादि तन्मात्राओं सहित गन्ध तन्मात्रा से "भू" तत्व की उत्पत्ति हुई है। रस गुणात्मक जलों के उत्पन्न होने के कारण पृथ्वी में संघात गुण आया है। इस संघातात्मक पृथिवी तत्व के उत्पन्न होने पर ही मूर्त्त जगत की सृष्टि हो सकती है। संघात ही का नाम भूतत्व है। जैसा कि बृहदारण्यक में भी कहा है।

"तद्यदयां शरआसीत् सहमन्यत सा पृथिवी अभवत्"

अर्तात् जल की गति मत्ता द्रवभाव ही संघात रूप में परिणत हो गया। शब्द स्पर्श, रूप रस गन्ध गुणात्मक वह "भू तत्व" तमो (Inertia) बहुल है। अतएव "तमो बहुला पृथिवी" ऐसा सुश्रुत नें कहा है। समस्त ब्रह्माण्ड में स्थिरत्व, गुरुत्व, स्थूलत्व मूर्त्तत्व आदि संघात्मक भावों का कारण है। मूर्त्त सृष्टि भूतत्व की उत्पति के पश्चात् ही उत्पन्न होती है। अन्यथा संघात के अभाव में किसी भी वस्तु का स्वरूप निर्माण असम्भव है।

(क्रमशः)

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे. के. शास्त्री की अध्यक्षता चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीक्व, रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। हिन्दी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं अंग्रेजी के बड़े २५० पृष्ठ के सूचीपत्र का मूल्य रु० १, पोस्टेज तीन आना माफ। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं : उपयुक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

मधुमेह चिकित्सा

ले०—डा० शंकरलाल भेड़ा, आयुर्वेदाचार्य, बम्बई।

(गतांक से आगे)

मधुमेह में अन्न——यवः प्रधानस्तु भवेत् प्रमेही (चरक)। मधुमेही के लिए यव प्रधान खाद्य है, तथा इसके सेवन से मधुमेह में बहुत फायदा होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए। यव के गुणों में "प्रवृद्धमूत्रो" लिखा है। अर्थात् मूत्र की राशि कम करने वाला तथा "मेदोमरुत्तृड्हरण" भी बतलाया है अर्थात् मेद से आवृत्त वायु और तृष्णा कम करने वाला है। इसलिए भी मधुमेह में उपयुक्त है। आयुर्वेद में यव के सत्तु अपूप, मन्थ, वाट्य, कुल्माष, धान, क्षार आदि अनेक चिकित्सा में लाभदायक पदार्थ बनाए जाते हैं। जैसा चरक में लिखा है:——

हन्याद् व्याधीन् यवापूपो यावको वाट्य एव च।
उदावर्त्त-प्रतिश्याय-कास मेह गल गुहान् ॥

निष्कर्ष——मधुमेह, व्यान, अपान वायु प्रकुपित जन्य रोग हैं। अतः व्यान अपान चिकित्सा विधि पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। पाश्चात्य देशों में चिकित्सोपयोगी जौ के कई प्रकार के (पर्लवार्ली-डायटेस्टयास्ट आदि) पदार्थ बनाये जाते हैं।

अन्नों में यथा प्राप्त कुधान्य विशेष अधिक लाभप्रद होते हैं। क्योंकि यह रूक्ष कटु विपाकी कफनाशक मूत्र की राशि कम करने वाले तथा विशेषतः कषाय रस वाले होते हैं। सुश्रुत में कुधान्यों का वर्णन इस प्रकार मिलता है——

कोर-दूषक-श्यामाक-नीवार-शान्तनुवरकोद्दालक-प्रियङ्गु मधूलिका-नान्दीमुखी कुरुविन्द-गवेधुक वरुक-तोदपर्णी मुकुन्दक वेणुयव प्रभृतयः कुधान्य विशेषाः। बाजरा, ज्वार, यव, मकई इस रोग के प्रधान खाद्य हैं। गेहूं थोड़े खानें चाहिएं। चरक में ऐसी पथ्य विधि निर्देश की है——

मन्थाः कषायाः यव-चूर्ण लेहाः प्रमेह-शान्त्यै लघवश्च भक्ष्याः। ये विष्किरा ये प्रद्रुता विहंगास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ।१। यवौदनं रुक्षमथापि वाट्य मद्यात्ससक्तूनपि चाप्यपूपान्। मुद्गादि-यूषै रथतिक्त शाकैः पुराण शाल्योदन माददीन ।२।

दन्तीङ्गुदी तैल युक्तं प्रमेही तथाऽतसी सर्षप तैल युक्तम्। स षष्ठकं स्यात्तृण धान्यमन्नं यव प्रधानस्तु प्रमेही ॥३॥ निशिस्थितानां त्रिफला कषाये स्युस्तर्पणाः क्षौद्र-युतायवानाम्। तान् सीधुयुक्तान् प्रपिवेत्प्रमेही प्रायोगिकान्मेह वधार्थमेव ॥४॥

ये श्लेष्ममेहे विहिता कषायास्तैर्भावितानांच पृथक् यवानाम। सक्तून पूपान

सगुडान्सधानान् भक्ष्यां स्तथाऽन्यान् विविधाश्चखादेन् ।।५।। खराश्व गोहंश पृषदभृतानां तथा यवानां विविधाश्चभक्ष्याः । देयास्तथा वेणुयवायवानां कल्पेन गोधूममयाश्च भक्ष्याः ।।६।। भृष्टान यवान् भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कान्च सक्तून्न भवन्ति मेहाः । इत्यादि गोधूम षष्ठिक-तथा शाली चावल एक वर्ष पुराने खाने चाहिएं ।

दालों में--मूंग (हरित) मसूर, चणक-अरहर आदि पथ्य है ।

शाकों में--कूष्माण्ड, परवल, मूली, तण्डुलीयक, मेथी, वास्तूक, चिल्ली, पालक, सुश्रुतोक्त–मण्डूकपर्ण्यादि गण प्रोक्त यथा प्राप्त शाक पथ्य हैं । यद्यपि शाकों में सामान्य दृष्टि से प्रोटीन-मेद आदि शरीर पोषक गुण अत्यन्त ही कम होने पर भीं आधुनिक विद्वान इनमें कुछ विशेषताएं मानते हैं जैसे शाकों में १ सेल्यूलोज Cellulose भी होता है, इससे मल साफ आता हैं तथा मलावरोध नहीं होता । २ खनिज क्षार होते हैं शरीर रक्षा के लिए रक्त में क्षारीय भाग होना अत्यन्त आवश्यक है । यह क्षार अल्कलाईन Alkaline के रूप में होता है । इसलिए शाकों का सेवन लाभदायक हैं । ३ शाकों में जीवनीय द्रव्य Vitamins विटामिन्स भी होते हैं जो Scurvy नहीं होनें देते । ४ शाकों के सम्बन्ध से भोजन में रुचि, स्वादुता एवं सुगन्धि पैदा होती है । शाकों में कार्वोहाइड्रेट कम होता है । इसलिए मधुमेहियों के लिए भी सामान्यतः लाभदायक है । शाक हमेशा ताजा खाना चाहिए । इस विषय में आचार्य ऐसा उपदेश देते हैं ।

कर्कशंपरिजीर्णं च कृमिजुष्टमदेशजम् ।
वर्जयेत् सर्वशाकं तद् यदकाल विरोधि च ।।इति।।

फल--दाड़िम, मातुलुंग, जम्वीर, कपित्थ नारंग, आमलक, विल्व क्षीरिवृक्ष आदि (न्यग्रोध, उदम्वर, अश्वत्थ, प्लक्ष और वेतस तथा अश्मन्तक) फल चरक के मतानुसार मूत्र संग्राहक होते हैं । अर्थात् मूत्र की राशि कम करने वाले होते हैं ।

जम्वाम्रप्लक्ष वटकपीतनोदुम्वराश्वत्थ भल्लातकाश्मन्तक सोमवल्का इति देशेमानि मूत्र संग्रहणीयानि भवन्ति । क्षीर वृक्ष के फल अधिक संख्या में कषाय रस प्रधान हैं । इनके फलों में रसायनिक दृष्टि से ट्यानिक, ट्यानिक एसिड, ग्यालिक, ग्यालिक एसिड इत्यादि कषाय रस के अम्ल होते हैं । कषाय प्रधान होने के कारण इनके साधारण गुण धर्म कषाय रस के साथ होते हैं । इसलिये संग्राहक हैं ।

जामुन प्रयोगः--जामुन का प्रयोग चरकादेशानुसार मूत्रसंग्राहक है (अर्थात् मूत्र की राशि कम करने वाला है ।) इस देश में अत्यंत प्राचीन काल से आयुर्वेद मतानुसार जामुन का प्रयोग मधुमेह में एवं वहु मूत्र में हो रहा है । इन रोगों में जामुन के बीजों का प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि जामुन के बीजों में जम्बुलाईन नामक एक ग्लुको साईड Glucoside पदार्थ होता है । जिसके प्रभाव द्वारा मधुमेह में शर्करा एवं मूत्र की राशि कम हो जाती है ।

सिद्धियोग के प्रमेहाधिकार में "न्यग्रोधोदुम्बरा श्वत्थ श्योनाकारग्वधासनम् ।

आम्रं कपित्थं जम्वुञ्च प्रियालं कुंकुमं धवम् ।। इस श्लोक की व्याख्याओं में श्री कण्ठ दत्त नें लिखा है--आम्रकपित्थ जम्बूनां फलास्थि । इति । पाश्चात्य वैद्यक में भी मधुमेह की चिकित्सा में जामुन का प्रयोग किया जाता है ।

मधुमेह में सूखे मेवेः--बादाम-अखरोट-कांजू (अभिषुक) चिलगोजा (निचुल) पिस्ता (निकोचक) आदि पथ्य हैं । इनमें शर्करा जातीय पदार्थ बहुत कम होते हैं, तथा पित्त, कफ, वात नाशक, स्निग्ध, उष्ण, शरीर पुष्टिकर, वलकारक होने से पौष्टिकांश वाले हैं । इसलिये मधुमेह रोगियों के लिये लाभदायक हैं । इनमें रासायनिक संगठन की दृष्टि से १५-२० प्रतिशत प्रोटीन ५०-६० प्रतिशत चरबी, ९-१२ प्रतिशत कार्वोहाइड्रेट, ३-५ प्रतिशत सेल्युलोज, १ प्रतिशत खनिज क्षार ४-५ प्रतिशत पानी होता है । अर्थात् प्रोटीन और चर्बी इनमें अधिक होनें से इनकी इन वचनों से मधुमेह में उपयोगी बतलाया है । मेरे ध्यान से मधुमेह की मेदोदोषज रोगों मे सुश्रुत ने गणना की है । जैसा कि--

ग्रन्थिवृद्धि गलगण्डार्वुद मेदौ जौष्ठ प्रकोप मधुमेहाति स्थौल्याति स्वेद प्रभृतयो मेदौ दोषजाः । मधु में मेदहर प्रधान गुण होनें से मधुमेह में मेददूष्य के कारण यह अतींव लाभप्रद है ।

चरक नें यहां तक स्पष्ट किया है--प्रमेहीं मधु सम्प्रयुक्तान् क्षौद्रयुता यवानाम् । आदि । करंज छाल और नीम के फलों का मधु में सुश्रुत नें विधान बतलाया है ।

करंज किंशु कारिष्ट फलं जन्तु प्रमेह नुत् । इति । इसी तरह आरुस्कर तथा तौबरक फल भी उपादेय हैं ।

आरुस्करं तौबरकं कषायं कटुपाकि च ।
उष्णक्रमिज्वरानाह मेहोदावर्तनाशनम् ।।

विल्व पत्र स्वरस--मधुमेह में अत्यन्त ग्राह्य है ।

विल्व पत्रन्तु वातनुत् ।

तैल--तैल के गुणों में सुश्रुत ने "वद्धमूत्र अनिलबलास क्षयकर-तिक्तकषायानुरस-वृंहण-प्रीणन, सर, वृष्य आदि गुण वतलाये हैं, इसलिये यह पथ्य हैं ।

तिल--यह मधुमेह में सर्वथा पथ्य है, यह अल्प मूत्र (मूत्र की राशि कम करने वाला, वातनाशक, तिक्तकषाय एवं संग्राही हैं । इसके लिये स्व० भट्ट जी लिखते हैं--यथा बहुल मूत्रत्वे तिलाः वैद्यैः किला हृताः । तथा न किञ्चिद परं भेषजं प्रतिभाति मे ।। इति ।

सुश्रुत में-निम्ब, अलसी, कुसुम, मूली, देवदाली, कुटज, कोषातकी, आक, कम्पिल्लक, रक्त एरण्ड, काला जीरा, करंज, पीलु, इंगुदी, सैहंजना-सूर्यावर्त, विडंग, मालकांगनी-इनके बीजों के तेल का प्रमेह में कटु रस तथा विपाक में भी, मृदुविरेचक, वात कफनाशक होने से पथ्य-वर्ग में निर्देश किया है । भल्लातक तैल तथा तुवरक तेल का भी विधान लिखा है ।

मधुमेह में विरेचन तथा वमनः--मधुमेही को विरेचन-वमन देना चाहिये । तथाद्यश्च मलेऽपनीते, मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम् ।

मूत्र--प्रमेह में माहिष मूत्र का सुश्रुत में विधान है । दुर्नामोदर शूलेषु कुष्ठमेहां विशुद्धिषु । अनाह शोथ गुल्मेषु पाण्डु रोगेषु माहिषम् ।

मधुमेह में जल--मधुमेह में जल बहुत कम पीना चाहिये इसके लिए हमे इतने वचन मिले हैं--व्रणेच मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत (भोज. प्रत्यश. उपोद्घात) मधुमेह में मन्द जल सेवन विधि एलोपैथिक पद्धति वाले नहीं मानते हैं । विज्ञ जन विचार करें ।

मधुमेह में स्नुही प्रयोग--

पाण्डुरोगोदरे गुल्मे कुष्ठे दूषी विषार्दिते ।
श्वयथौ मधुमेहे च दोषो विभ्रान्त चेतसि ।।१।।
रोगैरेवं विधैर्ग्रस्तं ज्ञात्वा स प्राणमातुरम् ।
प्रयोजयेन्महावृक्षं सम्यक् सह्यावचारितम् ।।२।।
सद्यो हरति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम् ।

मधुमेह में:--आस्थापन का निषेध है । चरक कहते हैं आस्थापन से रोगवृद्धि हो जाती है (आस्थापने पुनर्वृद्धिः)। मधुमेह में अनुवासन वस्ति नहीं करनी चाहिए । जैसा चरक आदेश करते हैं :--

य एवानास्थाप्यास्त एवाऽननुवास्याःस्युः विशेषत स्त्वमुक्त भक्त नवज्वर पाण्डुरोग कामला प्रमेहार्श प्रभृतयः । वहां पर यह हेतु निर्देश किया है, "नवज्वर पाण्डुरोग कामला प्रमेहिणाँ दोषानुत्क्लिश्योदरं जनयेत" । इति ।

मधुमेह में निरूह वस्ति--जैसा चरक लिखते हैं ।

यष्टया कृष्णा फलिनी शताह्वारसांजनंश्वेतवचाविडंगै । कलिङ्ग पाठाम्बुद सन्धवैश्च कल्कैः स सर्पिर्मधु तैल मिश्रः ।।२।। अयं निरूहः क्रिमि कुष्ठ मेह वघ्नोदराजीर्णं कफातुरेभ्यः । रुक्षौषधैरत्यपतर्पितेभ्य एतेषु रोगेष्वपि सत्सुदत्तः ।।२।। निहत्य वातं ज्वलनं प्रदीप्य विजित्य रोगाश्चबलं करोति ।।३।। विडंगादि तैल (च० सि० अ० ४)

यह तैल, पान, अभ्यंग, अनुवासन द्वारा इस रोग में अत्यन्त लाभप्रद हैं ।

प्रवृद्ध मेह चिकित्साः--बढे हुये प्रमेह वाले रोगी व्यायाम, कुस्ती आदि खेल घोड़े हाथी रथ आदि की सवारी, पैदल मुसाफिरी करना घूमना, फिरना अस्त्र (शस्त्रविहित धनुष) उपास्त्र (शास्त्र नियम वर्जित धनुष) का उपयोग करें ।

प्रवृद्ध मेहास्तु व्यायाम नियुद्ध क्रीड़ा गजतुरगरथ पदातिचर्या परिक्रमणान्यस्त्रो पास्त्रेवा सेवेरन । सुश्रुत ।

उपद्रव--सामान्यतः ही सभी प्रमेह (मधुमेह) दुश्चिकित्स्य होते हैं। क्योंकि आयुर्वेद महर्षियों ने सभी प्रमेहों की दुश्चिकित्स्यों में गणना की हैं फिर यदि प्रमेह रोगी विशेषतः मधुमेही प्राणबल क्षय, मांसक्षय, श्वास·तृष्णा, शरीर के सब धातुओं की क्षीणता, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार, हिक्का इन उपद्रवों से युक्त तथा प्रति दिन मूत्र का अधिक परिमाण में त्याग करता है और शराविकादि पीड़िकाओं से पीड़ित हो तो असाध्य होता है।

प्राणमांस क्षयश्वास तृष्णा शोषवमि ज्वरैः ।
मूर्च्छातिसार हिक्काभिः पुनश्चैतैरुपद्रुताः ॥
वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥

हृद्ग्रहौ लौल्य मनिन्द्रास्तम्भः कम्पः शूलं बद्ध पुरीषत्वं चेति वातजानाम्, हृदय का जकड़ा-सा रहना, सर्वरसाभिकांक्षा निन्द्रानाश शरीर अकड़ जाना, कांपना मूत्र और मलावरोध यह मधुमेह वातज के उपद्रव हैं।

यथोक्तोपद्रुवा विष्ठमति प्रस्तुतमेववा ।
पिडका पीड़ितं गाढ़ं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥

वाग्भट्ट में मधुमेह के उपद्रवों म यह विशेषता बतलाई है।

वातिकानामुदावर्त कंठ हृद्ग्रह लोलताः ।
शूल मुन्निद्रताशोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ इति

प्रमेह के अरिष्ट लक्षण--

सुश्रुत में प्रमेही को जल पीना अशुभ लिखा है। जैसा–मेहातिसारिणां तोय पानम्। इति। चरक में ऐसा मिलता है--

स्नातानुलिप्त गात्रेपि यस्मिन् गृध्नन्ति मक्षिकाः ।
स प्रमेहेणैव संस्पर्शं प्राप्यतैनैव हन्यते ।१।
स्नेहं वहुविधंस्वप्नेचाण्डालैः सहयः पिवेत् ॥१॥
वध्यते स प्रमेहेण स्पृश्यन्तेऽन्ताय मानवः ॥२॥

निष्कर्ष--मधुमेह की सभी चिकित्सा विधियों पर गम्भीरता से निष्पक्ष विचार करने पर यह चिकित्सा क्रम स्थिर करना चाहिये। इस रोग में शर्करा की अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्था में "इंस्यूलीन" (Insulin) के उपायों से शर्करा को कम करके सर्वांश में लाभ पहुंचाने की दृष्टि से आयुर्वेदीय चिकित्सा ही उत्तम है।

यह सस्ती से सस्ती, निरुपद्रवी, सर्वसाधारण सुलभ तथा सर्वथा लाभप्रद हैं। इस रोग में आलू (सभी कन्द) शर्करा-चावल सर्वथा त्याज्य हैं। इस रोग की चिकित्सा में ओजःक्षय की चिकित्सा पद्धति–तथा पाचन दूष्य, देश काल प्रकृति-रोगावस्था, बलादिकों पर पूर्ण ध्यान देने से अवश्य सफलता मिल सकती है।

वातरोग

ले०--श्री धर्मदत्त वैद्य, कनखल

(मार्च अंक पृष्ठ १६८ से आगे)

वातिकनाड़ी—नाड़ी में भी हृदय के समान रक्तप्रेरक शक्ति रहती है जो रक्त संचरण में सहायक होती है। यदि नाड़ी की यह शक्ति अर्थात् उसका वह बल जिससे कि वह हमारी देखने वाली अंगुली पर टकराती है कम हो (निर्बलानाड़ी) (२) उसकी प्रति-मिनट गति तीव्रतर हो (द्रुतानाड़ी) (३) उसका उठाव या उत्पुलति छोटी हो जाय (तन्वी नाड़ी) और परिणामतः हृदय से उसके प्रत्येक स्पन्दन में शरीर की ओर जाने वाले रक्त की मात्रा कम हो जाय तो इसे वातिकनाड़ी कहते हैं। बड़ी आयु में पहुंचने पर वात प्रकोपक कारणों की अधिकता से नाड़ी की रचना में लघुता, रूक्षता, खरता आदि भाव उत्पन्न हो जाते हैं (कठिनानाड़ी) जिस से उसकी रक्तप्रेरक शक्ति मन्द हो जाती है। इस प्रकार नाड़ी कठिन हो गई हो तो 'रक्तभार' या ब्लडप्रेशर भी बढ़ा हुआ होता है।

वातिक अस्थि रोग--अस्थियों में एक अस्थि-निर्माण की स्वाभाविक शक्ति रहती है जिसके कारण वे रक्त में से कैल्सियम तथा फासफोरस इन दो तत्वों को लेकर अपना यथावत निर्माण कर लेतीं और अपने को दृढ़ बना लेती हैं। दो वर्ष से ऐसे बालकों में जिन्हें उचित पोषक आहार नहीं मिलता विशेषतः जिन्हें विटामिन 'डी' पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता यह शक्ति क्षीण हो जाती है और उनकी अस्थियां सुकुमार एवं कोमल रह जाती हैं एवं दबाव पड़नें पर विषमाकृति हो जाती हैं इसे वातिक अस्थि-रोग या विषमास्थि-रोग (रिकेट्स) कहते हैं।

वातिक संधि रोग--संधियों पर आघात लगने पर भी उनके संधिकोषों में कोई शोथ या सूजन नहीं होती अर्थात् उनमें आघात प्रत्याघात आदि को सहन करनें की विशेष शक्ति रहती है। परन्तु शरीर में किसी विषद्रव्य की उपस्थिति के कारण उनकी यह शक्ति क्षीण हो जाती है और तब स्वल्प आघात पहुंचने पर भी संधि कोष में शोथ हो जाता है। शरीर में 'आम' विष की उपस्थिति विशेष हो और उसके कारण संधियों में शोथ हो गया हो तो इसे आमवातिक संधि शोथ या आमवातिक संधि रोग (Rheumatic तथा Rheumatoid arthritis) कहते हैं।

वातरक्त--शरीर के अवयवों में एक विशेष शक्ति है जिससे वे मांसादि जान्तव प्रोटीन्स यथावत् पचा कर अपने में विलीन कर लेते हैं। उनकी यह प्राण शक्ति निर्बल हो जाय तथा मांसादि का सेवन विशेष किया जाय तो यूरिकाम्ल की मात्रा रक्त में बढ़

जाती है। इस मल के कारण हाथ पांव की छोटी छोटी संधियों में जो शोथ और शूल के लक्षण हो जाते हैं उसे वातरक्त (Gout) कहते हैं।

वातिकत्वग्रोग–चर्म या त्वचा के दो स्तर होते हैं उनमें से बहिश्चर्म को ही वास्तविक त्वचा कह सकते हैं उसकी उत्पत्ति अन्तश्चर्म की श्लैष्मिक स्तर से होती है। जब इस श्लैष्मिक स्तर का पोषण मन्द हो जाता है तब बहिश्चर्म भी रूक्ष, कर्कश और श्यामवर्ण हो जाता है तथा त्वग्गत स्नेहन ग्रन्थियों का पोषण मन्द हो जाने से भी त्वचा में शुष्कता उत्पन्न हो जाती है। जिन त्वग्रोगों में यह लक्षण विशेष होते हैं उन्हें वातिक त्वग्रोग कहते हैं।

वातिक मानसरोग––मन का स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्क में वात प्रकोप होने पर या मस्तिष्क की प्राण शक्ति निर्बल होने पर जो विकार रोग होते हैं उन्हें वातिक मानस रोग कहते हैं। मस्तिष्क में बुद्धि, धृति (कन्ट्रोलिंग पावर) स्मृति, एकाग्रता आदि की स्वाभाविक शक्तियां होती हैं। इनकी निर्बलता से मनुष्य आवेशप्रधान या भाव प्रधान हो जाता है। परन्तु साधारणतया ऐसे व्यक्ति को रोगी नहीं कहा जाता।

वातिक उन्माद––परन्तु जब मस्तिष्क की यह शक्तियां अति निर्बल हों तब मानस विकार स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणतया जब मस्तिष्क अति निर्बल होता है अर्थात् उसकी प्राण शक्ति अत्यन्त हीन होती है तब कोई एक प्रबल मानस भाव उच्छृंखल हो कर न्यूनाधिक स्थिर रूप से व्यक्ति को अपने काबू में कर लेता या दबा लेता है। मनुष्य दीर्घ काल या स्थिर रूप से उस भाव के आधीन हो जाता है। इस रोग में एक प्रबल भाव मद के रूप में मनुष्य में सर्वोपरि हो जाता है इस लिए इसे 'उन्माद' कहते हैं। मस्तिष्क की प्राण शक्ति के विशेष निर्बल हो जाने से उत्पन्न उन्माद को वातिक उन्माद कहते हैं।

वातिक अपतन्त्रक––मस्तिष्क की प्राणशक्ति इसकी अपेक्षा कम निर्बल हो जो स्वल्प कारण से तो निर्बल हो जाती हो पर फिर ठीक हो जाती हो तो प्रबल हुआ हुआ मानसभाव थोड़े समय के लिये मनुष्य को दबा लेता है और फिर उसे छोड़ देता है। इस प्रकार जब कोई भाव मनुष्य को समय समय पर दबा कर अपने आधीन करले तब इस रोग को अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) कहते हैं अर्थात् जिस रोग में मनुष्य का अपना तन्त्र जाता रहे उसे अपतन्त्रक कहते हैं। जब मस्तिष्क की निर्बलता के कारण ही विशेषतया यह रोग हो तब इसे वातिक अपतन्त्रक कहते हैं।

वातिक अतत्वाभिनिवेश––जब कोई अयथार्थ या भ्रमात्मक विचार या चेष्टा मनुष्य के ऊपर हावी हो जाय और जागते समय उसका पीछा न छोड़े एवं जितना ही वह उस बात को अपने से हटाने का यत्न करे उतना ही वह उस पर अधिक अधिकार करती जाय तब इसे अतत्वाभिनिवेश कहते हैं अर्थात् इस रोग में मनुष्य एक अयथार्थ

विचार या चेष्टा या भ्रम के वशीभूत हुआ हुआ दिखाई पड़ता है। वैद्य के हजार प्रेरणा करने पर भी उसका यह मिथ्या विचार या भ्रम या व्यर्थ चेष्ठा हटती नहीं। मस्तिष्क की प्राणशक्ति की हीनता से यह रोग हुआ हो तब इसे वातिक अतत्वाभिनिवेश कहते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों के वातिकरोग (१) वातिक घ्राणनाश––नासिका की श्लेष्मकला से प्रारंभ हो कर मस्तिष्क के घ्राणग्राहक केन्द्र तक जाने वाले घ्राणवाही स्रोतस् में घ्राण ग्रहण करने की विशेष शक्ति रहती है प्रधानतया इस शक्ति की हीनता से घ्राणनाश हुवा हो तो इसे वातिक घ्राणनाश कहते हैं।

(२) वातिक तिमिर रोग––नेत्र गोलक के पश्चिम पटल या दृष्टि पटल से प्रारंभ होकर मस्तिष्क के दृष्टिग्राहक केन्द्र तक जाने वाले दृष्टिवाही स्रोतस् में जो रूप ग्रहण करने की एक विशेष प्राणशक्ति रहती है यदि वह वात प्रकोपक कारणों से निर्बल हो जाय तो वातिक दृष्टिनाश या वातिक तिमिर रोग हो जाता है।

(३) वातिक बाधिर्य––आभ्यन्तर कर्ण से प्रारंभ होकर मस्तिष्क के शब्दग्राही केन्द्र तक जानें वाले शब्दवह स्रोतस् में शब्द को ग्रहण करने की जो विशेष शक्ति रहती है यदि वह क्षीण हो जाय तो वातिक बाधिर्य या कर्णघोष के रोग हो जाते हैं।

(४) वातिक अरसज्ञता––जिह्वा के अग्रिम दो तिहाई भाग से जो रसवाही स्रोतस् सप्तम मस्तिष्क नाड़ी द्वारा तथा पिछले एक तिहाई भाग से जो रसवाही स्रोतस् नव मस्तिष्क नाड़ी द्वारा मस्तिष्क के रसग्राही केन्द्र तक जाते हैं उनमें जो रस ग्रहण करने की विशेष शक्ति है उसके क्षीण हो जाने से वातिक अरसज्ञता का रोग हो जाता है।

(५) वातिक स्पर्शनाश––त्वचा से स्पर्श, वेदना, ताप आदि प्रतीतियों को सुषुम्ना-

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम
हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य
हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान
विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।
तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

काणु तथा वहां से मस्तिष्क के संज्ञाग्राही क्षेत्र तक पहुंचाने वाले संज्ञावह स्रोतसों में एक संज्ञाग्रहण करने की विशेष शक्ति रहती है। यदि वात प्रकोपक कारणों से यह क्षीण हो जाय तो त्वचा में वातिक सुप्ति या वातिक स्पर्शनाश का रोग हो जाता है।

वातिक शूल--कपाल, चेहरे, मुख, गाल आदि की त्वचा तथा श्लेष्मकला से स्पर्श, वेदना आदि का वहन पन्चम मस्तिष्क नाड़ी द्वारा होता है। इस स्रोतस की प्राण शक्ति के हीन हो जाने पर जो ललाट शंख प्रदेश आदि में शूल होता है उसे वातिक शूल कहते हैं। इसी प्रकार त्वचा से मस्तिष्क तक जाने वाले संज्ञावाही स्रोतसों की वातिक शक्ति के क्षीण हो जानें से नाना प्रकार के शूल और वेदनायें होती हैं जिन्हें वातिक शूल कहते हैं।

ज्ञानवाली स्रोतसों की यह प्राणशक्ति प्राय: किसी तीव्र या चिर रोग की विष के दुष्प्रभाव से या मल, मूत्रादि द्वारा शारीरिक विषों के भली प्रकार न निकलने और उसके शरीर के अन्दर अधिक मात्रा में संचित हो जाने से क्षीण होती है।

कर्मेन्द्रियों के वातिक रोग--(१) मस्तिष्क से सुषुम्नाकाणु और वहां से हस्त पाद इन दोनों शाखाओं की मांस पेशियों तक आने वाले चेष्ठावाही स्रोतसों में एक चेष्ठा वाहक शक्ति रहती है जब यह क्षीण होती है तब एकांगनैर्बल्य एकांगधान, एकांगघात आदि वातरोग होते हैं।

(२) अक्षिव्युदास--नेत्र गोलकों के चेष्ठावाही स्रोतसों में जो तृतीय, चतुर्थ तथा षष्ट मस्तिष्क नाड़ियों के द्वारा मस्तिष्क से नेत्र तक आते हैं एक विशेष चेष्टाप्रद शक्ति रहती है, जब यह निर्बल हो जाती है तब अक्षिव्युदास नामक रोग हो जाता है।

(३) मुख के वातरोग---मस्तिष्क से मुख की मांस पेशियों तक आने वाले चेष्ठावाही स्रोतसों में जोकि सप्तम मस्तिष्क नाड़ी द्वारा आते हैं एक चेष्टाप्रद शक्ति रहती है जिसके क्षीण हो जाने से अर्पित, मुखस्तम्भ, वर्त्मस्तम्भ आदि रोग हो जाते हैं।

(४) कण्ठ का वातिक रोग--मस्तिष्क से गले तथा कण्ठ तक आनें वाले चेष्ठावाहक स्रोतस दश मस्तिष्क नाड़ी द्वारा आते हैं इनकी चेष्ठाप्रद शक्ति के हीन जाने से कण्ठोध्वंस रोग हो जाता है।

(५) ग्रीवा का वातरोग--ग्रीवा की मांस पेशियों के संचालन करनें वाले चेष्ठावाही स्रोतसों की जो एकादश मस्तिष्क नाड़ी द्वारा मस्तिष्क से नीचे उतरते हैं प्राणशक्ति क्षीण हो जाय तो ग्रीवानैर्बल्य, ग्रीवाकम्प, वातिकमन्यास्तम्भ आदि वातिकग्रीवा रोग हो जाते हैं।

(६) जिह्वा का वातरोग--जिह्वा को चेष्ठा देने वाले स्रोतसों की जो द्वादशतम मस्तिष्क नाड़ी द्वारा मस्तिष्क से नीचे उतरते हैं चेष्ठाप्रद शक्ति क्षीण हो जाय तो वाक्संग या मूक रोग हो जाता है।

(७) मलमूत्र सम्बन्धी वातरोग--मल तथा मूत्र को प्रवृत्त करने तथा प्रवृत्त हुए हुए इनके वेगों को अवरोध करने की विशेष शक्ति है वह मस्तिष्क से सुषुम्नाकाणुतक और वहां से मलाशय तथा मूत्राशय तक आने वाले चेष्ठावाही स्रोतसों में रहती है। इसके क्षीण हो जाने से मल और मूत्र पर से मनुष्य का नियन्त्रण उठ जाता है। जिससे मलावरोध तथा मूत्रसंग (मलमूत्र के विलम्ब से उतरनें) तथा मलमूत्रोत्संग (अर्थात मल मूत्र के स्वयं प्रवृत्त होने) के रोग हो जाते हैं।

वातिक प्रकृति--शरीर के अवयवों में विरोधी भावों तथा बाह्याभ्यन्तर विषों को सहन करने की अर्थात् उनसे शीघ्र प्रभावित न होनें की विशेष शक्ति रहती है। इस शक्ति के कारण शरीर विपरीत स्थितियों में भी अर्थात् शीत में भी उष्ण, विचलित कर देने वाली अवस्था में भी स्थिर तथा निर्बल कर देने वाली अवस्थाओं में भी गुरु, स्निग्ध और दृढ़ बना रहता है। परन्तु जब यह स्वाभाविक क्षमता या सहन शक्ति कम होती है तब वह किञ्चित विपरीत कारण से भी विचलित हो जाता है, गुरु होने के स्थान पर लघु हो जाता है, स्निग्धि होने के स्थान पर रूक्ष हो जाता है तथा उष्ण होने के स्थान पर शीत हो जाता है। इसी लिए उसे ऐसे भाव या औषध आहार विहार जो चल लघु रूक्ष और शीत गुण होते हैं अनुकूल नहीं होते।

इसी प्रकार मन में भीं विरोधी भावों और विपरीत अवस्थाओं को सहन करने की विशेष शक्ति रहती है जिसके कारण मनुष्य विपरीत अवस्थाओं में भी स्थिर शान्त और निश्चिन्त रहता है। परन्तु जब उसकी यह स्वाभाविक क्षमता हीन हो जाती है तब वह स्वल्प विक्षोभक कारणों से भी भ्रान्त विचलित, विक्षुब्ध, विषण्ण एवं चिन्तित हो जाता है। जब मन की यह शक्ति स्वभावतः हीन होती है तब वह स्वल्प कारणों से भी वातिक मानस रोग से अर्थात मानसिक अस्थिरता, भ्रमशीलता, चिन्ताशीलता, अधीरता और विषण्णता आदि से ग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार के शरीर और मन वाले व्यक्ति को वातिक प्रकृति का कहते हैं।

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम,
सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है।

अथाग्नेय पुराणान्तरगत सर्व रोग हराण्योषधानि

ले०–श्री पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री

धन्वन्तरिरुवाचः––चतुर्विधाश्चरोगाः शरीरागन्तु मानसा सहजादयः भवन्ति । शारीरान्तर कुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः । आगन्तवो विघातोत्थाः सहजाःक्षुज्जरादयः । शारीरागन्तु विनाशाय सूर्यवारे घृतंगुड़म् । लवणं संहिरण्यं च विप्रायाचर्य समर्पयेत् ।। चन्द्रे चाभ्यंगदो विप्रे सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।। तैलं शनैश्चरे दद्यादाश्विने गो रसान्नदः । घृतेन पयसा लिंगं संस्नाप्य स्याद्रुगुज्झितः । गायत्र्या जुहुयाद्वन्हौ दूर्वां त्रिमधुराप्लुताम् । यस्मिनत्रे व्याधिमाप्नोति तस्मिन्स्नानं वलिः शुभे । मानसानां रुजादीनां विष्णोः स्त्रोत्रं हरं भवेदिति दैव व्यपाश्रय मुपक्रमम ।।

अर्थात् मनुष्य देह में चार प्रकार के रोग होते हैं यथा शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा सहज । शारीरिक–ज्वर कुष्ठादि. मानसिक–क्रोधलोभादि, आगन्तुज–चोट आदि से होने वाले यथा सहज–जराक्षुदातृषा आदि स्वाभाविक होते हैं । इनकी दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहते हैं । शारीरिक तथा आगन्तुक रोग नाश के लिए रविवार के दिन घृत गुड़-लवण तथा स्वर्ण आदि द्रव्यों को ब्राह्मण का पूजन कर उसे दे तो रोग नष्ट होता है । सोमवार के दिन विप्र अभ्यंगार्थ घृत दे तो रोगों से मुक्त होते हैं । शनिवार के दिन तैल देने से तथा आश्विन मास में दुग्ध तथा अन्नदान से रोग नष्ट होता है । घृत तथा दुग्ध से शंकर को स्नान कराने से रोग मुक्त हो जाता है तथा गायत्री मन्त्र से दूर्वाघृत मधु तथा शर्करा मिला कर हवन करें । जिस नक्षत्र में रोग उत्पन्न हुआ हो उसी में स्नान तथा बलिदान करना शुभ होता है । मानसिक रोगों के नाशार्थ विष्णु के स्त्रोत्र स्मरण करना हितकर होता है ।

अथ मृत्युञ्जय कल्पाः

धन्वन्तरिरुवाच—कल्पान्मृत्युञ्जयान्वक्ष्ये ह्यायुर्दान् रोगमर्दनान् । त्रिशती रोगहा सेव्या मध्वाज्यत्रिफलाऽमृता । पलं पलार्द्धं कर्षं वा त्रिफलां सकलां तथा । विल्वतैलस्य नस्यंच मासं पञ्चशती कविः । रोगापमृत्यु वलिजित्तिलंभल्लातकं तथा । पञ्चांग वाकुची चूर्णं षण्मासं खदिरोदकैः क्वाथैः कुष्ठं जयेत्सेव्यं चूर्णं नीलकुरण्टजम् ।। अर्थात् मृत्यु तथा रोगों के जीतने वाले कल्पों का वर्णन करते हैं यथा १. चार तोले, २ तोले व १ तोला त्रिफला का चूर्ण मधु घृत तथा गुडूची का चूर्ण मिला कर सेवन करने से रोग हरता है तथा तीन सौ वर्ष की आयु होती है । २. विल्व तैल की नस्य एक मास तक लेनें से पांच

सौ वर्ष जीता है और कवि हो जाता है । ३. बावची पञ्चांग चूर्ण खदिर के क्वाथ के साथ सेवन करने से कुष्ठ नाश होता है । नीलकुरण्ड के पञ्चांग का चूर्ण भी कुष्ठ हरता है। ४. क्षीरेण मधुनावापि शतायुः खण्डदुग्ध भुक् । ५. मध्वाज्य शुण्ठी संसेव्य पलं प्रातः समृत्युजित् । ६. वलिपलित जिज्जीवेन्माण्डूकी चूर्ण दुगधपाः । उच्चटा मधुनाकर्ष पयः पा मृत्युजिन्नरः । ८. मध्वाज्यैः पयसा वापि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् । ९. पलाश तैलं कर्षेकं षण्मासं मधुना पिवेत् । दुग्धभोजीपञ्चशती सहस्रायुभवेन्नरः । अर्थात् दुग्ध में मधु मिलाकर तथा चीनी मिलाकर दुग्ध पीने से सौ वर्ष की आयु होती है । प्रातःकाल मधु तथा घृत के साथ शुण्ठी का चूर्ण सेवन करने से मृत्यु को हरता है । ६. मण्डूकी (ब्राह्ममाण्डूकी) का चूर्ण दुग्ध के साथ सेवन करने से बलिपलित रहित होकर मनुष्य जीता है । ७. उटंगण बीजों का चूर्ण कर्ष भर लेकर दुग्ध के साथ पीनें से मृत्यु को जीतता है । ८. निर्गुण्डी का चूर्ण मधु घृत तथा दुग्ध के साथ पीनें से मृत्युजित् होता है । ९. पलाश के बीजों का तैल एक कर्ष मधु के साथ छः मास तक सेवन से दीर्घायु होती है ।

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिए अत्युत्तम महौषधि

नव रत्न रस

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है । शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि का विशिष्ट कार्य है तथा नपुंसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव-यौवन प्रदान करता है । स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है । वन्ध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है । बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बनाकर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान, स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है । क्षय, जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है ।

नवरत्न रस निरोगी के लिए रसायन और रोगी के लिए पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है । २८ गोली की प्रति शीशी का मूल्य ५) रु०

ऊँझा फार्मेसी लि० (गुजरात) ऊँझा

१०. ज्योतिषमति पत्ररसं पयसा त्रिफलां पिवेत् । ११. मध्वाज्यं तत स्तद्वच्छतावर्यारजः पलम् । १२. क्षौद्राज्यैः पयसा वापि निर्गुण्डी रोग मृत्युजित् १३. पंचाँग निम्बचूर्णस्य खदिर क्वाथ भावितम् । कर्ष भृंगरसेनापि रोगजिच्चामरो भवेत् । १४. रुदन्तिकाज्य मधु भुग्दुग्ध भोजी च मृत्युजित् । १६. कर्ष चूर्णं हरितक्याभावितं भृंगराड्रसैः । घृतेन मधुनाऽसेव्य त्रिशतायुश्च रोगजित् । अर्थात् १०. माल कंगनी के पत्तों का रस तथा त्रिफले का चूर्ण दुग्ध के साथ पीवे । ११. शतावरी का चूर्ण एक पल मधु घृत के साथ पान करे । १२. निर्गुण्डी के चूर्ण को मधु घृत के साथ खाने से रोग तथा मृत्यु को हरने वाले उक्त तीनों योग हैं । १३. निम्ब के चूर्ण को खदिर के क्वाथ की भावना देकर एक कर्ष भंगरे के रस के साथ सेवन करनें से रोगों को हरे तथा अमरत्व करता है । १४. रुद्रवन्ति का चूर्ण मधु घृत के साथ खाकर दुग्धपान करे तो रोग तथा मृत्युनाश होता है । १५. हरीतकी के कर्ष भर चूर्ण को भंगरे के रस की भावना देकर घृत से पीनें से तीन सौ वर्ष जीता है और रोग भागते हैं ।

१६. वाराहिकाभृंगरसं लौहचूर्णं शतावरी । साज्यं कर्षं पंचशती, १७. कार्तचूर्णं शतावरी । भावितं भृंगराजेन मध्वाज्यं त्रिशती भवेत् । १८. आम्रामृतात्रिवृत्तुल्यं गन्धकं च कुमारिका । रसैर्विमृज्यद्वेगुज्जे साज्यं पंचशताब्दवान् । १९. अश्वगन्धा पलं तैलं

विश्वख्याति
टैब्लेट्स रस भस्म
आसव अवलेह चूर्ण
घृत तैल आदि

वैज्ञानिक विधि से निर्मित

विवरण के लिये लिखें

अपोलो फार्मा. वर्क्स लिमिटेड

बरोदा २

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें । (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें । (३) महासम्मेलन और वैद्य-समाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (६) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट और शुद्ध भाषा में हों । (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें ।

साज्यं खण्डं शताब्दवान् । २०. पलं पुनर्नवाचूर्णं मध्वाज्य पयसा पिवन् । २१. अशोक चूर्णस्य पलं मध्वाज्यं पयसार्त्तिनुत् । २२. तिलस्य तैलं समधुनस्यात्कृष्णकचः शती । २३. कर्षमक्षं समध्वाज्यं शतायुः पयसा पिवन् । २४. अभयां सगुड़ां जगध्वा घृतेन मधुरादिभिः । दुग्धान्नभुक्कृष्णकेशोऽरोगी पन्चशताब्दवान् । २५. पलं कुष्माण्डिका चूर्णं मध्वाज्यपयसा पिवन् । मासं दुग्धान्नभोजी च सहस्रायुर्विरोगवान् । अर्थात १६. वाराही कन्द का चूर्ण भंगरे का रस, लौहभस्म, शतावरी, इन सब का चूर्ण एक कर्ष मात्राबलादि देख कर घृत के साथ सेवन करनें से पांच सौ वर्ष जीता है । १७. सोने की भस्म, शतावरी भंगरे के रस से भावना दे कर युक्त मात्रा से खाने पर तीन सौ वर्ष की आयु होती है । १८. आम्र, गिलोय, तिरवी तथा गन्धक इन सब को समान भाग लेकर घी कुवार के रस में भावना दे कर मर्दन कर २ रत्ती मात्रा घृत से खाये तो दीर्घायु होय । १९. असगन्धा एक पल (४ तोले) तिल तैल, घृत तथा खण्ड के साथ खाने से सौ वर्ष की आयु होती है । २०. इसी प्रकार पुनर्नवा के मूल का एक पल चूर्ण घृत मधु के साथ सेवन कर दूध पीवे तो दीर्घायु होवे । २१. अशोक की त्वचा का चूर्ण एक पल मधु घृत के साथ सेवन कर दुग्धपान करे तो दीर्घायु होय । २२. तिल तैल तथा मधु मिला कर नस्य लेने से केश कृष्ण होकर सौ वर्ष जीवे । २३. बहेड़े का एक कर्ष चूर्ण मधु घृत से सेवन करे तो सौ वर्ष जीयें । २४. अभया (हरड़) का चूर्ण गुड़ मिला कर घृत तथा दुग्ध से सेवन कर दुग्धान्न का भोजन करे तो केश काले तथा रोग रहित दीर्घायु होय । २५. कुष्माण्ड का चूर्ण मधु घृत से लेकर ऊपर से दुग्ध पीने से तथा एक मास तक दुग्धान्न भोजन करनें से निरोग होकर दीर्घायु होता है । २६. शालूक चूर्ण भृंगाज्यं समध्वाज्यं शताब्दकृत् । २७. कटुतुम्बी तैलनस्यं कर्षं शत द्वयाब्दवान । २८. त्रिफला पिप्पली शुण्ठी सेविता त्रिशाब्दकृत् । २८. शतावर्या पूर्वयोगः सहस्रायुर्बलाति कृत । २९. चित्रकेण तथा पूर्वस्तथा शुण्ठी विडंगतः । लोहेन भृंगराजेन वलया निम्बपत्रकैः । खदिरेण च निर्गुण्ड्या कण्टकार्याऽथवासकात । वर्षात्रिवातद्रसैर्वा भावितो वटिका कृतः । चूर्णं घृतैर्वा मधुना गुडाद्यैर्वारिणा तथा ओं ह्रूंसइतिमंत्रेण मन्त्रितो योगराजकः । मृत सञ्जीवनी कल्पो रोग मृत्युञ्जयो भवेत । सुरासुरैश्चमुनिभिः सेविताः कल्पसागराः इति । यह मृत्युञ्जय कल्प अत्यन्त सुलभ है इसके सेवन से अवश्य प्राणी दीर्घायु को प्राप्त कर सकता है, वैद्य लोग इसका अनुभव करके लाभ उठायें । (क्रमशः)

पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठावें

आयुर्वेद एलोपैथी का समन्वय ?

लेखक--कविराज श्री कृष्णपद भट्टाचार्य-आयुर्वेद सरस्वती,
आचार्य-महागुजरात आयुर्वेद महाविद्यालय-नड़ीयाद ।

बम्बई सरकार की रिसर्च कमेटी के चेयरमैन माननीय डा० के. एस. म्हस्कर साहब के विशेष आह्वान पर मुझको अभी हाल ही में बम्बई जाना पड़ा था और आयुर्वेद सम्बन्धी बातों के सिलसिले में उन्होंने मुझसे पूछा कि "आप आयुर्वेद ऐलोपैथी के समन्वय में विश्वास रखते हैं" ? मैंने तत्क्षण ही उत्तर दिया--बिल्कुल नहीं । दोनों का समन्वय सम्-अन्वय या समान-मेल कभी भी नहीं होगा । डॉक्टर साहब हंसते हुए बोले कि जादवजी भाई और पं० शिवशर्मा जी दोनों समन्वय में पूर्ण विश्वास रखते हैं; सुनते ही मैं विचार मग्न होगया और फोन द्वारा शिवशर्मा जी को सूचना भेजते ही शर्मा जी ने मुझे अपने यहां बुला भेजा और प्रायः तीन घंटे तक दोनों में बातचीत होती रहीं। बातचीत के दरम्यान में मैंने शर्मा जी से पूछा कि आप अपनें समन्वय की व्याख्या मुझे सुनाइये और उन्होंने जब समन्वय की पूरी व्याख्या सुनाई तो मैंने कहा आपके द्वारा उच्चारित समन्वय शब्द की ध्वनि अन्यत्र अपने स्थान से भ्रष्ट हो गई है । आप जिसे समन्वय कहते हैं–जिसकी व्याख्या आपनें दीर्घक्षण सुनाई उसे तो मैं समावेश और सन्निवेश कहता हूं । और मुझे आशा है भविष्य में आप और आचार्य यादव जी महाराज समन्वय न कह कर समावेश और सन्निवेश के ही प्रयोग करेंगे । इसलिए कि आवश्यकतानुसार अन्य शास्त्रों की अच्छी चीजों का सन्निवेश या समावेश आयुर्वेद में हो सकता है, जिससे आयुर्वेद की स्वतंत्रता में किसी प्रकार की चोट न पहुंचे–में आपकी इस बात से पूर्ण सहमत हूं ।

फ़िर आयुर्वेद जीवन के विज्ञान के कारण अति विशाल है–इसलिए उसमें निरन्तर अनुसंधान होता रहना चाहिए और जिस शाखा में (ऐलोपैथी-होम्योपैथी और अन्य वैज्ञानिक तथा दार्शनिक शास्त्रों में) जब अच्छे स्थायी आविष्कार अनुसंधान से प्राप्त होंगे उसका समावेश आयुर्वेद नें अवश्य होगा और समावेश आयुर्वेद की रीति के अनुसार ही होगा । आपकी बात से भी मैं पूर्ण सहमत हूं। परन्तु आयुर्वेद के साथ ऐलोपैथी का सम-अन्वय समन्वय या समान-मेल कैसे हो सकता है ? समन्वय तो दो समान वस्तुओं में ही हो सकता है। फिर पश्चिम के साथ पूर्व का समन्वय कैसे होगा ? अमरीका वाले गधे को बुद्धिमान जीवों में प्रधान समझते हैं और हम गधे को सबसे अधिक मूर्ख समझते हैं । अमरीका वाले कुत्ते को सबसे अधिक पवित्र जीव समझते हैं, हम सबसे अधिक अशुचि समझते हैं । दोनों का समन्वय हो सकता है ? हाथी के साथ शिशुमार का समन्वय हो सकता है ? कहां सायंस ऑफ लाइफ-विशाल जीवन का विज्ञान और कहां मेडिकल साइंस–औषधियों का जड़ विज्ञान, कहां अति विशाल आयु की जड़ चेतन लीला और कहां उसके एक क्षुद्रतम अंश औषधि विज्ञान का जड़ मेला ? दोनों का समन्वय कैसे होगा ?

एक पहलवान के साथ दुर्बलकाय शरीर का समन्वय इसलिये हो सकता है कि दोनों लंबाई में एक बराबर हैं ? एक हीं पिता से जन्म लेकर एक मुस्लिम भाई और हिन्दू भाई का समन्वय या समान-मेल नहीं हो रहा है, क्योंकि एक सवेरे उठ कर पूर्वदिशा में सूर्यनारायण के लिए खड़ा होगा और दूसरा मक्का की ओर देखेगा। क्या बराबर खड़े हुए दोनों भाई का सम्-अन्वय हो सकेगा ? अगर इसे समन्वय समझा जायगा तो आयुर्वेद-ऐलोपैथी का भी समन्वय होगा। नारी और पुरुष का समन्वय इसलिए होता है कि जितना भाग नारी में पुरुष का है उतना ही भाग पुरुष में नारीत्व का हैं।

हमें एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि आत्रेय अग्निवेश सम्प्रदाय के आचार्य लोग आयुर्वेद के चेतन भाग के अनुसंधान में लवलीन थे, इसलिये चरकादि ग्रंथ में जड़ से चेतन शरीर की आलोचना अधिक देख पाते हैं। ये सब (जड़) में शिव (चेतन) को ढूंढने में व्यस्त रहे और आत्मा, मन, बुद्धि, अहंकार आदि को ढूंढ निकाला। दूसरी ओर धन्वन्तरि सम्प्रदाय के आचार्य शव और शिव दोनों के ही अनुसन्धान में मग्न हुए, इसलिये धन्वन्तरि सम्प्रदाय के आचार्य शव और शिव युक्त अष्टांग आयुर्वेद (शल्य-शालाक्य-कौमारभृत्य-भूतविद्या-अगद-काय-रसायन-बाजीकरण) के अनुशीलन में तत्पर रहे। आधुनिक ऐलोपैथी धन्वन्तरि सम्प्रदाय-के शवज्ञान या जड़ज्ञान की पुत्री है। इसलिए ऐलोपैथी या जड़विज्ञान के अन्य भागों में जो आविष्कार होंग वहां तक जड़ भाग में जड़ का समावेश हो सकता है। शेष आयुर्वेद विशाल जीवन की चेतना का शास्त्र है। औषधि का विज्ञान ऐलोपैथी में शेष आयुर्वेद है नहीं इसलिए उसके आयुर्वेद में समावेश करने का भी कुछ वस्तु नहीं।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र शिव को शव समझ कर शव की चिकित्सा में मग्न है और आयुर्वेद शव में शिव को देख कर स्तम्भित होकर शिवतत्व में लीन हो गया। दोनों का समन्वय कहां होगा ? जो लोग ऐलोपैथी आयुर्वेद का समन्वय चाहने वालें हैं वे भट्टस्य कट्यां शकटः प्रविष्टः करानें वाले हैं। इस युग में शकटेः भट्ट प्रविष्टः न होकर उल्टा ही होनें लगा। भट्ट के ही कटि प्रदेश में शकट का प्रवेश होगा।

मेरी बात सुनकर माननींय शिवशर्मा जी हंस पड़े और कहनें लगे कि "शब्दानां बहवो अर्थाः" समन्वय से मेरा मतलब क्या है, आप समझ गए हैं। अगर मेरे द्वारा प्रयुक्त शब्द की ध्वनि अन्यत्र अन्य रूप लेती हैं तो उसका भी में प्रतिकार करने को तैयार हूं। मेरा समन्वय और आपके द्वारा कथित समावेश और सन्निवेश कोई भेद रखते नहीं। जहां तक मेरी जानकारी है यादव जी भी समन्वय समावेश और सन्निवेश को एक पर्यायवाची ही समझते होंगे।

"कर्ण रोग"

संग्रहकर्त्ता--पं हरिचरण जी वैद्य वाचस्पति, करौलबाग, देहली ।

(१) सर्दी से उत्पन्न कर्णशूल में:--आक के पत्तों का रस ½ पाव, अद्रक का रस ½ पाव, अहिफेन ६ माशे, तैल सरसों ½ सेर । सब मिलाकर तेल साधित करें ।

(२) गर्मी से उत्पन्न कर्णशूल में:--गेंदा पुष्प का रस ½ पाव, तिल तैल ½ पाव । तैल साधित कर कान में टपकावें ।

(३) कान में वेदना हो, भीतर शोथ होकर पस पड़ जाये तो--तिल तैल १ सेर, धस्तूपत्र स्वरस १ पाव, छत्ताडेमू ½ पाव, लशुन स्वरस १ छटांक । तैल साधित कर कान में टपकायें ।

(४) कर्णमूल शोथ में:--पुष्करमूल, दालचीनी, चित्रक, गुड़, दन्तबीज, कुठ, कासीस । आक के दूध में पीस कर लेप करने से कर्ण मूल शोथ ठीक होता है ।

(५) साधारण श्लैष्मिक कर्ण शूल में—आक के पके पीले पत्तों पर घी लगाकर आग पर तपा कर उनका स्वरस निकाल लें । कान में टपकानें से शूल दूर होता है ।

(६) वात्तिक कर्ण शूल में अत्यन्त तीव्र वेदना हो तो:--लशुन ४ माशे, आम्ला ४ माशे, हरताल वर्कि ४ माशे, तैल सरसों ४ तोला और दूध बकरी १६ तोले मिला कर तैल साधित करें । कर्णनाद को अत्यन्त लाभ पहुंचाता है ।

(७) कान लगातार बहता ही रहे (जीर्ण) । गोश्तखोरा ३ माशे, सर्षप तैल १½ तोला, इन दोनों को हल करके कान में टपकावें ।

(८) कर्णस्राव में अन्य योग:--किक्कर के फूल २ माशे । खूब बारीक पीस कर नलकी में डाल कर कान में बुड़ंकना । पहिलें नीम के पानी से कान को अच्छी तरह धोलें ।

(९) पस को बाहर लाने के लिए:--समुद्र झाग १ माशा, वराटिका १ माशा, मद्यसार १ तोला । कान में ड़ालकर साफ़ कर ।

(१०) कर्णस्राव प्रक्षालन:--टङ्कणाम्ल १० रत्ती, जल ५ तोले लोशण बनाकर अथवा नीम के पानी से प्रयुक्त करें ।

(११) पनसिका (कान के भीतर एक सरसों के दानें के समान फुंसी होती है । अत्यन्त कष्टदायक होती है) उसके लिए:--पीपल वृक्ष के ताजा और बड़े-बड़े पत्ते लें और चिलम के आकार की पोंगी बनालें उसमें चिलम के समान अंगारा रखें । नीचें कटोरा रख ऊपर से फूंकते रहें । उसमें पसीना के समान जल-विन्दु निकलेंगे । पश्चात् उसमें राई के समान मात्रा में कपूर मिला कर कान में इसे ५ बून्द तक टपकायें । इससे पनसिका ठीक होती है ।

(१२) कर्ण पटल शोथ वाधिर्य:--हींग १ छटांक, सोंठ १ छटांक, तैल सरसों ६ छटांक, पानी पाकार्थ २४ छटांक । तैल साधित कर लगातार प्रयोग करें । कर्णनाद, झंकार, बन्द होना ठीक होता है ।

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वैदिक प्रकाशन

१. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह प्रथमखंड, ७वां संस्करण अजिल्द ६।।)
२. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग-संग्रह द्वितीय खंड, अजिल्द ६)
३. चिकित्सातत्त्व प्रदीप प्रथम खंड सजिल्द ६।।)
४. चिकित्सातत्त्व प्रदीप द्वितीय खंड, अजिल्द ८)
५. नेत्ररोग-विज्ञान सजिल्द १५)
६. सिद्ध परीक्षा पद्धति अजिल्द ८)
७. ज्वरविज्ञान अजिल्द ३)
८. औषध गुण धर्म विवेचन अजिल्द ३)
९. गाँवों में औषएरत्न अजिल्द २)
१०. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग-संग्रह गुजराती अनुवाद प्रथम भाग सजिल्द १०)

सूचना--डाक खर्च, पैकिंग अलग होगा ।

पुस्तकों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है, लिखें या मिलें ।
प्राप्तिस्थान--कृष्णगोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय
पो० कालेड़ा--कृष्णगोपाल, वाया नसीरागाद (अजमेर)

आयुर्वेद लोक

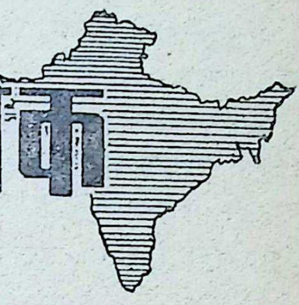

मेरा स्वास्थ्य आयुर्वेद पर ही निर्भर

भारत सरकार के रेलवे मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के उद्‌गार

कन्या गुरुकुल हरिद्वार के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व करते हुए भारत सरकार के रेलवे मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा कि--

"मेरा आयुर्वेद में ही परम विश्वास है। उसी के नाते में बहुधा बीमार नहीं पड़ता। मुझे आप दुर्बल या छोटा-सा देख रहे हैं पर में स्वस्थ हूं। यह मैं मानता हूं कि काफी गहरे सिद्धांत आयुर्वेद में हैं, उनकी खोज एवं आयुर्वेद की उन्नति होनी चाहिये। कन्याओं का तो इस शास्त्र से और भी घनिष्ट सम्बन्ध है। मेरे विचार से तो कन्याएं इस विज्ञान द्वारा जनता की अधिक सेवा कर सकती हैं।

में किसी पैथी की निन्दा नहीं करता, जिनमें जो विशेषताएं हैं उनकी में कद्र करता हूं लेकिन आयुर्वेद मुझे अन्यन्त प्रिय है और सार्वजनिक-स्वास्थ्य-विकास के परम लाभ के लिए उपयोगी भी।"

श्री शङ्करदाजी शास्त्री पदे पुरस्कार

श्री शङ्करदाजी शास्त्री पदे पुरस्कार की तृतीय प्रतियोगिता के लिये आयुर्वेद संबंधी किसी भी वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, अनुसंधान, स्वास्थ्य, निदान, द्रव्यगुण कौमारभृत्य, ऊर्ध्वांग-चिकित्सा आदि विषयों की जीवित लेखकों की मौलिक पुस्तक पर इस वर्ष विचार होगा। यदि टीका ग्रन्थ की विचार सरणी स्वतन्त्र मौलिक ढंग की हो तो उस पर भी विचार होगा। पुस्तक डबलक्राउन १६ पेजी के कम से कम १०० पृष्ठों की अथवा अन्य आकार की होनें पर अन्दाज़ इतनें पृष्ठों की होनी चाहिये। पुस्तक लेखक या प्रकाशक अथवा अन्य किसी की ओर से भी आ सकती है। जो पुस्तक अब तक नहीं आई वह पहले की प्रकाशित होनें पर भी भेजी जा सकती है। प्रत्येक पुस्तक की ५ प्रतियाँ आनी चाहियें। सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पर ५००) का पुरस्कार मिलेगा।

पता दीजिए

श्री शङ्करदाजी शास्त्री पदे स्मारक समिति को "चिकित्सा सार" नाम की एक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई है। पुस्तक में आयुर्वेद तथा यूनानी मत से रोगों की चिकित्सा दोहे चौपाइयों में लिखी गई है। पुस्तककर्त्ता कोई "सारस्वत द्विज" हैं। पुस्तक खण्डित है यदि किसी के पास यह पुस्तक हो तो कृपा कर हमें सूचित करें ताकि पुस्तक पूर्ण करने का प्रयत्न हो। स्मारक समिति "शैलोदक" सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करना चाहती है। जिसके पास ऐसा साहित्य हो वह कृपया सूचित करें।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, अध्यक्ष। श्री-शङ्करदाजी शास्त्री
पदे स्मारक समिति, ३ सम्मेलन मार्ग, प्रयाग।

अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन

के कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक जो ९-४-५३ को हुई, में आयुर्वेदालंकार डा० धर्मानन्द केसरवानी जिनके विरुद्ध सल्फाड्रग्स व स्ट्रेप्टोसाईसिन आदि के प्रयोग सम्बन्धी उत्तर-प्रदेशीय मेडिकल कौंसिल द्वारा केस चलाया जारहा था, के मामले पर विचार हुआ और एक प्रस्ताव द्वारा श्री धर्मानन्द केसरवानी को कौंसिल के विरुद्ध उनकी विजय पर बधाई दी गई और प्रसन्नता प्रकट की गई कि उच्च न्यायालय ने विषय की ठीक जांच करके आयुर्वेद के गौरव और गुरुकुल के राष्ट्रीय शिक्षण का महत्व सुरक्षित रखा।

दूसरे प्रस्ताव द्वारा चिकित्सा विभाग के डायरेक्टर द्वारा कौंसिल के सभापति पद से श्री केसरवानी के मामले पर रोम विश्वविद्यालय से पत्र-व्यवहार करते समय जो आयुर्वेद को आबसीलीट मृत या अप्रचलित कह कर अपमानित किया गया है, उसके लिए अत्यन्त खेद प्रकट किया गया तथा एक विदेशी सरकार व विदेशी विश्वविद्यालय के सम्मुख देश प्रचलित जनप्रिय चिकित्सा विज्ञान का अपमान जनता व सरकार का अपमान करने के समान गुरुतर अपराध बताया गया तथा आशा प्रकट की गई कि सरकार ऐसे द्वेषभाव रखने वाले डाक्टर अधिकारियों के अनुचित एवं अभद्र कार्यों को निरुत्साहित करेगी।

--रवीन्द्रचन्द्र कुलश्रेष्ट

आयुर्वेद प्रचारिणी सभा, रीवाँ द्वारा राष्ट्रपति को रजत अमृतघट तथा मानपत्र भेंट

रीवां, २९ मार्च। आज यहां राष्ट्रपति महोदय का शुभागमन हुआ। इस अवसर पर विन्ध्य प्रांतीय आयुर्वेद प्रचारिणी सभा की ओर से राजवैद्य श्री जमनाप्रसाद जी ने रजत अमृत घट तथा अभिनन्दन पत्र श्री राष्ट्रपति जी की सेवा में भेंट किए।

मानपत्र में जिसे श्री चन्द्रमणिप्रसाद ने पढ़कर सुनाया यह प्रार्थना की गई कि

आयुर्वेद को भारत की चिकित्सा पद्धति घोषित किया जाय। राज्याश्रय अभाव होने के कारण विकासावरुद्ध इस प्रणाली के विकास का उत्तरदायित्व स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारी सरकार पर है जिसके लिए सरकार अधिकाधिक सहायता प्रदान करे तथा भारतीय जंगलों पहाड़ों में बहुलता से प्राप्य दिव्य जड़ी-बूटियों का अनुसंधान किया जाए।

—चन्द्रमणिप्रसाद

नवम जिला वैद्य सम्मेलन इटावा

इटावा, २८ जनवरी। गत २४ व २५ जनवरी को नवम जिला वैद्यसम्मेलत इटावा श्री पं० दरबारीलाल जी शर्मा के सभापतित्व में समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन श्री बनारसीदास जी सचिव, स्वास्थ्य-विभाग उत्तर-प्रदेश ने तथा प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी, डिप्टी डायरेक्टर आयुर्वेद विभाग, उत्तर-प्रदेश ने किया। सभापति महोदय ने आयुर्वेद को पुनः राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाने पर बल दिया। श्री कुलकर्णी जी का पंच महाभूत, त्रिगुण, रसवीर्य विपाक पर गम्भीर भाषण हुआ। सम्मेलन में जिले के लगभग ३०० वैद्यों ने भाग लिया। बाहर से पधारने वालों में श्री मनोहरलाल जी शास्त्री तथा जगदीशद्रसाद जी, देहली, श्री दयानिधि शर्मा व श्रीमती सरोजिनी देवी वैद्या, मेरठ आदि मुख्य थे। इस अवसर पर हुई शास्त्र-चर्चा परिषद की अध्यक्षता वैद्यश्री मनोहरलाल शास्त्री, देहली, तथा महिला परिषद की अध्यक्षता श्रीमती सरोजिनी देवी वैद्या, मेरठ ने की। रोगी परीक्षण का निशुल्क आयोजन भी किया गया जिसमें २५० रोगियों का निरीक्षण हुआ।

सम्मेलन में लगभग ९ प्रस्ताव पारित हुए जिनमें से प्रथम, तृतीय, छठे, तथा नवम प्रस्ताव में क्रमशः सरकार से अनुरोध किया गया कि (१) आयुर्वेदिक अनुसंधान के प्रकाशनार्थ एक आयुर्वेदिक मासिक पत्रिका राजकीय स्वास्थ्य-विभाग की ओर से प्रकाशित हो, (२) सरकार एक आयुर्वेदिक प्रदर्शनालय की स्थापना करे, (३) ग्राम पंचायतों में एक-एक वैद्य लिया जाय तथा (४) सर्वजनीन स्वास्थ्य रक्षार्थ गोबध बन्द किया जाए।

अन्य पाँच प्रस्तावों द्वारा एक आयुर्वेद शिक्षा परिषद की स्थापना, जिले में वैद्यों का एक ही संघ, इटावा में आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का निश्चय किया गया तथा वैद्यों से अनुरोध किया गया कि वह चिकित्सा के साथ-साथ ऋतुचर्या व स्वस्थवृत्त का भी नियमित रूप से प्रचार करें। इस कार्य के लिए एक धन्वन्तरि सेवक दल के निर्माण का भी निश्चय किया गया।

—रामनाथ शास्त्री इटावा

धार जिला आयुर्वेद मण्डल कार्य-समिति की बैठक

दिनांक २८-३-५३ को धार नगर में हुई जिसमें जिले में आयुर्वेदिक कार्य को प्रगति

देने के लिए यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक वैद्य संगठन में हार्दिक सहयोग दे, वैद्यसमाज द्वारा जन-सम्पर्क बढ़ाया जावे तथा जनता को आयुर्वैदिक स्वास्थ्य-सिद्धांतों से परिचित कराया जावे, ग्रामों में कम से कम समय में स्वास्थ्य-प्रचार किया जावे तथा जनता के सहयोग से आवश्यक स्थानों पर स्वावलम्बी आयुर्वेद सेवाश्रम कायम करने का प्रयत्न किया जावे । यह निश्चय तहसील वैद्यसभाओं के पास भेज दिए गए हैं ।

समिति द्वारा सरकार से अनुरोध किया गया कि देदला ग्राम औषधालय में शीघ्र एक वैद्य की नियुक्ति करे । विकास विभाग द्वारा ग्रामों में रखी गई स्वास्थ्य-पेटियों की वितरण व्यवस्था में वेद्यों की जो उपेक्षा की गई है उसे दूर किया जाए तथा शिक्षा विभाग द्वारा धार नगरी में एक "आयुर्वैदिक कक्षा" अविलम्ब चालू की जावे ।

श्री मालवा आयुर्वेद सम्मेलन, जीरा

(फिरोजपुर) का पंचम वार्षिक महोत्सव दिनांक ९-४-५३ को बड़े समारोहपूर्वक वैद्यराज श्री कृष्णदयाल जी शास्त्री अमृतसर के सभापतित्व में मनाया गया । क० श्री विप्रबन्धु जी एम. ए. के कर कमलों द्वारा धन्वन्तरि पताका लहराई गई तथा क० पं. प्रकाशनाथ तिवाड़ी, क० रामेश्वर सिंह कंवर, जालन्धर, पं. छविदत्त शास्त्री, पं० ज्ञानचन्द्र जोशी अमृतसर के सारगर्भित भाषण हुए । ४० वैद्यों के एक बोर्ड द्वारा सैकड़ों रोगियों की निशुल्क चिकित्सा व्यवस्था भी की गई।

ग्राम आयुर्वेद सम्मेलन दूधवाखारा

का वार्षिक अधिवेशन वैद्यरत्न श्री प्रभुदत्तजी के सभापतित्व में दिनांक २४-४-५३ को सम्पन्न हुआ । वैद्यराज श्री पुष्करदत्त जी, कालुवास, आयुर्वेद सम्मेलन के स्थायी संरक्षक चुनें गए । आप, वैद्य श्री लक्ष्मी नारायण एवं वैद्य श्री पं. कन्हैयालाल शास्त्री धन्वन्तरि मन्दिर निर्माणार्थ धन-संग्रह में बड़े प्रयत्नशील हैं--शीघ्र कार्य बन जाने की आशा है । आगामी वर्ष के लिए निम्न पदाधिकारी चुनें गए--प्रधान-श्री आचार्य प्रभुदत्त शर्मा वैद्य रत्न, उपप्रधान--पं. पुष्करदत्तजी शास्त्री, उपमंत्री-वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण विजय ।

राजस्थान सरकार की सतर्कता

श्री उदयलाल महात्मा, देवगढ़ से लिखते हैं कि राजस्थान के जागरूक वैद्यों के अथक प्रयत्न और राजस्थान के उच्चाधिकारियों की सतर्कता व सहयोग से साल भर की एड वैद्यों को मार्च ५३ में मिल गई । साल समाप्ति का समय निकट होने से सुना है कि कई एक औषधालयों की सहायता लेप्स भी हो गई । फिर भी सामयिक सतर्कता के लिए संबंधित अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं ।

इस वर्ष एडेड औषधालयों के लिए सरकार ने नये नियम बनाए हैं उनको शीघ्र

कार्यरूप में परिणित कराते हुये मिलनें वाली सहायता को सरकार पूर्ववत् त्रैमासिक पेमेंट का प्रबन्ध करायेगी जिससे चिकित्सा काल में औषधालयों को आर्थिक कठिनाई और रकम लेप्स होने की चिन्ता का सामना न करना पड़े ।

दी राजस्थान इंडियन मेडिसन एक्ट नं. ५ सन् १९५३ का २१ मार्च ५३ के राजपत्र में प्रकाशित हो चुका है उसके अनुसार पूर्ण आयुर्वेद समर्थक बोर्ड का सर्वानुमति से योग्य निर्वाचन यथाशीघ्र होकर रजिस्ट्रेशन कार्य का आरम्भ हो जाना चाहिए ।

आशा है सम्बन्धित अधिकारी इस ओर शीघ्र ध्यान देकर आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन देंगे ।

राजस्थान के आयुर्वेद महारथियों का भी यह परम कर्त्तव्य है कि वे पदलोलुपता, पक्षपात से बिलग रह कर आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के आसन पर बैठाने के लिए उपरोक्त बोर्ड जो ११ सदस्यों का बनत नेंाला है उसमें कुल ही आयुर्वेद मर्मज्ञ, जनसेवी, दूरदर्शी और शासन कुशल योग्य कर्मठ व्यक्तियों का सर्वानुमति से इस जन-तंत्रात्मक युगानुसार उत्तम निर्वाचन शीघ्रातिशीघ्र कर 'राजस्थान प्रांतीय वैद्य सम्मेलन' द्वारा नामावलि प्रेसित कर उक्त एक्ट को कार्यरूप में परिणित करावें ।

श्वास रोग की अव्यर्थ औषधि

कविराज रामसिंह वैद्य आयुर्वेदाचार्य, संचालक, सेठ वीरुमल धर्मार्थ औषधालय, नूरपुर (काँगड़ा) से सूचित करते हैं इस औषधालय में श्वास रोग की जो अचूक तथा अव्यर्थ औषधि निर्माण हुई है वह श्लैष्मिक श्वास तीड़ित रोगियों को ९५ प्रतिशत लाभ पहुंचा रही है । जिस किसी दुःखी भाई को आवश्यकता हो वह रोग का पूर्ण विवरण भेज कर उक्त पते से औषध प्राप्त कर सकता है ।

चुनाव

वैद्य श्री सम्पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर ने सीकर जिला वैद्य सभा कार्यकारिणी के सं. २०१० के निम्न चुनाव की सूचना भेजी है:--

सभापति–वैद्य श्री शिवदेव चौमाल, फतेहपुर । उप-सभापति–वैद्य श्री हनुमत्प्रसाद शास्त्री, रामगढ़ तथा वैद्य श्री अर्जुनप्रसाद जोशी, लक्ष्मणगढ़ । प्रधानमंत्री–वैद्य श्री पूर्णानन्द शास्त्री, श्रीमाधोपुर । संयुक्तमंत्री–वैद्य श्री पूर्णमल, सीकर । कोषाध्यक्ष–वैद्य श्री ब्रजमोहन शास्त्री, रींगस । आय-व्यय निरीक्षक—रामेश्वर जी, दांता, रामगढ़ ।

तहसील वैद्य मण्डल डालमियां दादरी

तहसील वैद्यमण्डल के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ । निम्न सज्जन पदाधिकारी चुने गए । मीटिंग १-४-५३ को बुलाई गई थी:--

प्रधान–श्री स्वामी गिरधानन्द जी, उपप्रधान–वैद्य रामरिच्छपाल जी, कोषाध्यक्ष–स्वामी नन्दकिशोर जी, मन्त्री–धर्मवीर जैन, उपमंत्री–हरिप्रकाश जी आयुर्वेदाचार्य ।

श्री बम्बई और उपनगर वैद्य सम्मेलन द्वितीय अधिवेशन

श्री बम्बई और उपनगर वैद्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन ता. २२ मार्च १९५३ को श्रीयुत वैद्यराज वेणीमाधव जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ जिस का उद्घाटन राज्य के स्वास्थ्य-मंत्री माननीय श्री शांतिलाल जी शाह के करकमलों द्वारा किया गया ।

प्रातः माननीय आरोग्य-मंत्री का स्वागत करते हुए वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी नें सम्मेलन का उद्घाटन करने की प्रार्थना की । श्री शिवशर्मा ने अपनें भाषण में आयुर्वेद की वर्तमान आवश्यकताओं की मांग की तथा आयुर्वेद के शत्रुओं द्वारा उसके विनाश के लिए सतत रचनें वाले षड्यंत्रों से उन्हें परिचित कराया । आपने कहा कि आयुर्वेद को डाक्टरों के पंजे से छुड़वाइये और वैद्यसमाज को उसकी उन्नति करने का मौका दीजिए । आपनें यह भी कहा कि हम श्री स्वास्थ्य-मंत्री की कठिनाईयों से परिचित हैं, किन्तु हम उनसे भी अधिक कठिनाई में हैं अतएव हमारी समस्याएं सामने रखते हैं तथा आशा करते हैं कि आप अवश्य ही इन पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करेंगे । श्री शांतिलाल जी शाह नें सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए वैद्य समाज से संगठन की प्रार्थना की तथा अखिल भारत के वैद्यसमाज को एकसूत्र हो जानें की सलाह दी, आपनें आयुर्वेद के प्रति सहानुभूति प्रकट की एवं यथाशक्य सहायता का आश्वासन दिया । तत्पश्चात् स्वागताध्यक्ष श्री वैद्य गजानंद जी शर्मा ने समागत सज्जनों का स्वागत करते हुए सरकार की आयुर्वेद-विरोधी नीति की कटु आलोचना की एवं वर्तमान पाठ्यक्रम की निन्दा करते हुए भारतीय संस्कृति की अनुपम देन प्राचीन गुरुपरम्परा प्रणाली को पुनः चालू करनें के लिये सरकार से प्रार्थना की । तदनन्तर सम्मेलनाध्यक्ष श्री वैद्यराज वेणीमाधव जी शास्त्री ने हर्षध्वनि के बीच अपना आसन ग्रहण किया । सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री वैद्य श्रीराम शर्मा ने बाहर से आये हुये शुभेच्छा-संदेश पढ़कर सुनाये, जिनमें श्री वै. बांपालाल जी शाह (सूरत) वै. पाण्डुरंग हरि देशपांडे (पूना), वै. वामनराव दीनानाथ, बम्बई (आप इस सम्मेलन के प्रमुख सूत्रधार होते हुये भी अस्वस्थ होने के कारण सम्मेलन में नहीं पधार सके), वै. गणेशकृष्ण पाटणकर भिषग्रत्न, वै. विष्णुशास्त्रीदाते, नाशिक, वै. वासुदेव महेश्वर बाक्रे, बेलगांव, आदि कें मुख्य थे ।

सम्मेलनाध्यक्ष नें अपना भाषण देते हुए वर्तमान पाठ्यप्रणाली को दूषित बताया तथा उसके स्थान में शीघ्रही विशुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम लागू करने का सरकार से अनुरोध किया । आपनें आयुर्वेद संशोधन के वर्तमान दृष्टिकोण की कटु आलोचना की तथा सम्पूर्ण आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से अष्टांग आयुर्वेद के संशोधन की मांग की । ४ बजे से खुलाधिवेशन प्रारम्भ हुआ, जिसमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये ।

कतिपय मुख्य प्रस्तावों का सारांश निम्नप्रकार है—

१. अहमदनगर जिले के बोटे ग्राम में प्रसरित अभी तक अनिर्णीत रोग के अनुसंधान के लिए वहां पर सरकार द्वारा स्थापित मोबाइल (चलता-फिरता) हास्पीटल में आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा करने के लिए भी १२ शय्यायें दी गईं उसके लिए राज्य के स्वास्थ्यमंत्री और डायरेक्टर आफ पब्लिक हेल्थ को धन्यवाद। २. अ. भा. आ. म. की परीक्षाओं को राज्य में मान्यता प्रदान करने की प्रार्थना। ३. केंद्रीय एवं प्रांतीय सरकारों से आयुर्वेद व युनानी से सम्बंधित बोर्ड, फेकल्टी, समिति, आदि पर वैद्येतरों की नियुक्ति न करने का अनुरोध: ४. वर्तमान आयुर्वेदिक संशोधन समिति की पुनर्रचना कर उसे केवल वैद्यों के हाथों में सौंपनें की बम्बई सरकार से प्रार्थना। ५. कामगार कल्याण योजना में वैद्यों को भी डाक्टरों के समान हीं स्थान देने की सरकार से प्रार्थना। ६. सभी प्रांतीय सरकारों विशेषकर बम्बई सरकार से किसी भी अन्य प्रांत में रजिस्टर्ड वैद्य को अपनें राज्य में चिकित्सा करने की अनुमति देने की प्रार्थना। ७. बम्बई के वर्तमान वैद्यकीय नियमों में संशोधन करना इत्यादि। सम्मेलन में बम्बई तथा उपनगरों के प्रायः सभी वैद्य महानुभाव उपस्थित थे।

शोक–समाचार

भूतपूर्व प्रेज़ीडेन्ट मारवाड़ आयुर्वेदिक बोर्ड जोधपुर व वर्तमान उपसभापति राजस्थान आयुर्वेदिक बोर्ड तथा प्रधान स्थानीय श्री कल्याण कारिणी वैद्य सभा ब्यावर एवं सफल चिकित्सक श्रीमान ब्यावर नगर निवासी आयुर्वेद पंचानन रा० सा० व्यास तनसुखजी का स्वर्गवास ता० १०-५-५३ को सायंकाल ७½ बजे लम्बी बिमारी के बाद हो गया। स्थानीय वैद्य-सभा ने शोक-प्रस्ताव पास किया तथा दिवंगत आत्मा की शान्ति के हेतु श्री भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना की गई। —मंत्री, कल्याणकारिणी वैद्यसभा।

शतशोऽनुभूत प्रामाणिक औषधियों का प्राप्ति स्थान

हमारे प्रसिद्ध आयुर्वेदिक प्रकाशन "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" में वर्णित और चिकित्सातत्व-प्रदीप" में संगृहीतप्रयोगानुसार––भस्म, कूपीपक्व, खरलीय रसायन, पाक, अवलेह, घृत, तैल आदि विशुद्ध गुणकारी औषधियां हमारे यहां बनाई जाती हैं।

औषधियों के प्रचारार्थ प्रचारकों की आवश्यकता है। लिखें या मिलें।

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

तार का पता : "औषधालय" डाक व तार घर : 'कालेड़ा' कृष्णगोपाल, वाया नसीराबाद (अजमेर)

स्थायी-समिति का कार्यविवरण

(पृष्ठ २५२ का शेष)

इतना सरल नहीं जितना प्रतीत पड़ता है तथा महासम्मेलन की स्थायी नीति से गहन सम्बन्ध रखता है। तदुपरान्त निश्चय हुआ कि इस पर स्थायी-समिति के आगामी अधिवेशन में विचार हो और तब तक स्थिति पूर्ववत समझी जाय।

११ जो राज्य केन्द्रीय सरकार की आयुर्वेद विरोधी नीति का समर्थन नहीं करते उनकी नीति पुष्ट करने लिये योजना निर्माण पर विचार हुआ, निश्चय हुआ कि आयुर्वेद के प्रति शासन की भावी नीति के सम्बन्ध में श्री अध्यक्ष महोदय द्वारा एक स्मृतिपत्र तैयार कराया जाय तथा इसे उन-उन सरकारों के अधिकारीवर्ग के पास भेजा जाय जहां से महासम्मेलन की ध्येय सिद्धि में सहायता मिलनें की सम्भावना समझी जाय।

१२. वैज्ञानिक इतिहास की ७ वीं अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिये श्री डा० डी० नारायणराव, गण्टूर, का पत्र उपस्थित हुआ। पर्याप्त विचार-विमर्ष के अनन्तर निश्चय हुआ कि क्योंकि डा० डी० नारायणराव की योग्यता एवं आयुर्वेद सम्बन्धी कार्यों की प्रशंसा स्वयं श्री डा० श्रीनिवासमूर्ति तथा श्री डा० ए० लक्ष्मीपति जैसे विश्वसनीय व्यक्तियों नें की है अतएव आयुर्वेद प्रचार दृष्टिकोण को आगे रखकर श्री डा० डी० नारायणराव की उक्त यात्रा के सम्बन्ध में ७०० रुपया मार्ग-व्यय महासम्मेलन की ओर से दिए जायं। श्री डा० डी० नारायणराव महासम्मेलन के आजीवन सदस्य बन जायें तथा यह घोषित करें कि उक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में वे अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रतिनिधि रूप में भाग लेंगे और वहां पर आयुर्वेद के इतिहास का सम्यक् प्रतिपादन करेंगे।

१३. अखिल भारतीय आयुर्वेद औषध-निर्माता संघ की वैधानिक स्थिति पर विचार हुआ। निश्चय हुआ कि क्योंकि जिस नियमावली के आधार पर उक्त संघ का संगठन हुआ था वह रद्द हो चुकी है तथा प्रचलित नियमावलि में इसके संगठन की कोई व्यवस्था विद्यमान नहीं अतएव इसकी वैधानिक स्थिति के अभाव में अब इस प्रश्न को न उठाय जाय।

१४. भवन-निर्माण समिति के कार्य पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि उक्त समिति अपने प्रयत्न जारी रखे।

१५. वैद्य श्री विष्णु प्रकाश आत्रेय, प्रधानमंत्री, तहसील वैद्यसभा, बागपत, पो० ढिकोली

(उत्तर प्रदेश) के उस पत्र पर जिसमें उन्होंने प्रत्येक ग्राम, नगर, तहसील, तालुका तथा जिला में वैद्यों के दृढ़ संगठन स्थापित करने और सामयिक आयुर्वेद साहित्य के प्रकाशन द्वारा आयुर्वेद प्रचार के विषय का सुझाव प्रस्तुत किया है विचार हुआ। निश्चय हुआ कि इस प्रकार के संगठन का विषय महासम्मेलन की नियमावलि से सम्बन्ध रखता है अतएव आगामी महासम्मेलन पर ही इस पर विचार हो सकता है। साहित्य प्रकाशन आदि के बारे में अपनी सामर्थ्य के अनुसार महासम्मेलन कार्य कर ही रहा है।

१६. श्री रवीन्द्र चन्द्र चौधरी, प्रिंसिपल, सनातनधर्म आयुर्वेद विद्यालय, मिरजापुर, उत्तरप्रदेश के उस प्रस्ताव पर जिसमें उन्होंने सरकार से अनुरोध किया है कि वैद्यों पर से सल्फाड्रग्स, एन्टी बायोटिक्स तथा अन्य डाक्टरी औषधियों के प्रयोग सम्बन्धी प्रतिबन्ध उठा लिये जायं, विचार हुआ। निश्चय हुआ कि जिन-जिन प्रान्तों में सरकारी नियमों के अनुसार भावी वैद्यों को डाक्टरी चिकित्सा का प्रभूत अंश पढ़ने के लिए बाध्य किया जाता है उन प्रान्तीय सरकारों को डाक्टरी पाठ्यक्रम में आई हुई औषधों के प्रयोग करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिये। यह भी निश्चय हुआ कि उन सरकारों से यह अनुरोध किया जाय कि आयुर्वेदिक शिक्षण संस्थाओं में शुद्ध आयुर्वेद का ही पाठ्यक्रम प्रचलित किया जाय ताकि भविष्य में इस प्रकार के प्रश्न उत्पन्न ही न हों।

१७. वैद्य श्री यमुनालाल जी, अध्यक्ष, ब्राह्मी कैमिकल वर्क्स, उदयपुर राजस्थान की ओर से प्राप्त आयुर्वेद के उत्थानार्थ रचनात्मक कार्य-योजना पर विचार उपस्थित हुआ, निश्चय हुआ कि वर्तमान परिस्थिति तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार महासम्मेलन पहिले ही श्री यमुनालाल जी के विचारों के अनुसार कार्य करने में प्रयत्नशील है।

१८. केवल औषधियों में प्रयोगार्थ विदेशों से मंगवाई जाने वाली पारा, गन्धक, प्रवाल, मोती आदि वस्तुओं पर आयात कर न लगाने के विषय पर केन्द्रीय सरकार से प्रार्थना करने पर विचार उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि केन्द्रीय सरकार के वित्त एवं वाणिज्य मंत्रियों से तदर्थ प्रार्थना की जाय और यदि आवश्यकता हो तो दिल्ली के प्रमुख वैद्यों का एक शिष्टमण्डल भी वित्त एवं वाणिज्य मंत्रियों से भेन्ट करे।

मिश्रित विषय

१९. वैद्य श्री वैद्यनाथ उपाध्याय, सिघाड़ा, मुजफ्फरपुर के पत्र से यह जानकर कि वहां सन १९३८-३९ से चल रहे मलेरिया केन्द्रों को ऐलोपेथिक एण्टी मलेरिया केन्द्रों में परिवर्तित करने का बिहार सरकार ने आदेश दिया है, अधिवेशन नें खेद

प्रगट किया तथा निश्चय हुआ कि बिहार सरकार की इस आयुर्वेद विरोधी नीति के विरुद्ध बिहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन उपयुक्त पग उठाये तथा उसमें महासम्मेलन भी अपेक्षित सहयोग दें।

२०. राजस्थान सरकार की आयुर्वेद विभाग की नौकरियों में वैद्यों में जो विषम श्रेणी-भेद प्रचलित किया जाने वाला है उस पर उदयपुर कमिश्नरी वैद्यसभा का पत्र उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि इस विषय में कार्यालय पूर्ण सूचना प्राप्त करके अपेक्षित कार्यवाही करे।

२१. वैद्यराज श्री हरदयाल जी, प्रधान, बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्ज आफ मैडिसन, पंजाब, अमृतसर के ता० ८-४-५३ के पत्र पर विचार हुआ। निश्चय हुआ कि ड्रग एक्ट के दुरुपयोग द्वारा जिस प्रकार सरकार वैद्यों को पीड़ित कर रही है उस सम्पूर्ण विषय का समावेश श्रीमान् महासम्मेलनाध्यक्ष जी अपने उस स्मृतिपत्र में करें जिसे विभिन्न सरकारों के समक्ष उपस्थित करने का निश्चय हुआ है।

विद्यापीठीय विषय

२२. विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के गताधिवेश का कार्य-विवरण पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२३. श्री बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद विद्यालय, ऋषिकेश को नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के आधीन लेने का विषय उपस्थित हुआ। इस संबंध में अ.भा.आयुर्वेद महासम्मेलन के इन्दौर में सम्पन्न हुए ३८ वें अधिवेशन द्वारा तदर्थ निर्मित समिति की निम्नांकित रिपोर्ट श्री विद्यापीठ मंत्री द्वारा प्रस्तुत की गई :–

श्री बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद विद्यालय, ऋषिकेश

को

अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के अधीन लेनें के लिये ३८ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर द्वारा निर्मित उपसमिति का इतिवृत

३८ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने यह निश्चय किया था कि बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद विद्यालय, ऋषिकेश को विद्यापीठ अपना विद्यालय घोषित करे। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये प्रारम्भिक शर्तें निश्चित करने तथा तत्सम्बन्धी योजना-निर्माण का कार्य हमें सौंपा गया था। उक्त महासम्मेलन के शीघ्र पश्चात हमनें

कार्य प्रारम्भ किया तथा उपसमिति की प्रारम्भिक बैठक ता० १ दिसम्बर १९५२ को ऋषिकेश में हुई जिसमें श्री बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद समिति के सदस्यों के साथ मिल कर सिद्धांत रूप से यह निश्चित किया गया कि उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार उक्त विद्यालय को विद्यापीठ के आधीन करना उपयुक्त होगा। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :–

(क) सम्बन्ध स्थापना के मुख्य कारण

१. अपने स्थापना काल से ही यह विद्यालय विद्यापीठ से ही सम्बन्धित है तथा इसी की परीक्षाएं दिलाता आया है।

२. इस विद्यालय के पास आतुरालय, छात्रावास, धन्वन्तरि भवन आदि पर्याप्त साधन विद्यमान हैं। धन्वन्तरि भवन का शिलान्यास महासम्मेलन-विद्यापीठ के प्रख्यात सभापति महामहोपाध्याय कविराज श्री गणनाथ सेन एम० ए०, एल० एम० एस० ने अपने कर कमलों द्वारा किया था।

३. इस विद्यालय के साथ सुव्यवस्थित एवं भली प्रकार प्रचलित आदर्श आयुर्वेद निर्माणशाला विद्यमान है।

४. इस संस्था द्वारा ३० के लगभग धर्मार्थ आयुर्वैदिक औषधालय संचालित हैं।

५. श्री बाबा काली कमलीवाला पंचायत क्षेत्र का नाम भारत विख्यात है। इसका आनुमानिक वार्षिक व्यय ४,००,००० रुपये के लगभग होता है, इसकी सेवाओं को देख कर जनता इसको वस्तुतः दानपात्र मानती है और दान देती है।

६. उक्त क्षेत्र के प्रधान उद्देश्यों में आयुर्वेद विद्यालय, धर्मार्थ औषधालय तथा आतुरालय आदि चलाना प्रमुख रूप से लिखित है।

७. इसी उद्देश्य, अर्थात् आयुर्वेद विश्वविद्यालय आदि चलाना, की सिद्धि के लिये अपनी आत्मविज्ञान भवन की वृहत् योजना में क्षेत्र समिति ने इसको प्रमुख स्थान दिया है।

८. आत्मविज्ञान भवन योजना के अन्तर्गत २०६ एकड़ भूमि है जिसमें आवश्यकतानुसार आयुर्वेद विश्वविद्यालय के उत्तरोत्तर विकास के लिये बड़ी गुन्जायश है।

९. उक्त भूमि खण्ड में बनौषधि तथा जड़ी-बूटी का विस्तृत उद्यान लगाने के लिए स्वाभाविक पानी के स्रोत तथा कुओं आदि की पूरी सुविधा प्राप्त है और प्राकृतिक रूप से भी हिमालयोपत्यका होने से यह भूमि जड़ी-बूटी उत्पादन के अनुकूल है।

१०. इस भूमि के एकदम साथ ही श्रीगंगा जी का तट होने के कारण यह स्थान प्रशान्त

एवं पवित्र है तथा अन्वेषण-कार्य के लिये उत्तम है ।

११. प्रतिवर्ष बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री एवं यमनोत्री आदि उत्तराखण्ड के तीर्थ स्थानों को जाने वाले भारतवर्ष के सभी प्रान्तों से आए हुए लाखों यात्री इस आकर्षक तथा रम्य आत्मविज्ञान भवन को देख कर अपने आपको कृतकृत्य मानते हैं जिसके प्रमाणस्वरूप भारत के अनेक प्रमुख व्यक्तियों के प्रशंसापत्र विद्यमान हैं । इस स्थान पर आयुर्वेद विश्वविद्यालय होने से उक्त विश्वविद्यालय का प्रचार भी अधिकाधिक सम्भव होगा ।

१२. इसी आत्मविज्ञान भवन की योजना के अन्तर्गत चालू संस्कृत विद्यालय से आयुर्वेद पढ़नें वाले छात्रों को आवश्यक संस्कृत शिक्षा की सुविधा भी प्राप्त होगी ।

१३. आत्मविज्ञान भवन की योजना के अन्तर्गत स्थापित किये जा रहे विशाल पुस्तकालय से भी लाभ उठाया जा सकेगा ।

१४. यह स्थान हरिद्वार से ऋषिकेश जाने वाली मेन सड़क पर ही है तथा नीचे गंगा तट तक चला गया है और ऋषिकेश नगर से दो मील की दूरी पर है । इस प्रकार यातायात सम्बन्धी सभी साधन यहां सम्यक् प्रकार से प्राप्त हैं ।

१५. श्री बाबा काली कमली वाला क्षेत्र के आधीन तीन गौशालाएं हैं जिसमें ६०० गाय हैं । इन से औषध निर्माण में अपेक्षित पंचगव्य आदि से आवश्यक लाभ उठाया जा सकता है ।

१६. इस स्थान में प्रारंभिक कार्य संचालन के लिये बिल्डिग्ज बनी हुई हैं, केवल उन्हें आवश्यकतानुसार सुमार्जित करना होगा ।

१७. श्री बाबा कालीकमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति और श्री बाबा कालीकमली वाला क्षेत्र कमेटी दोनों श्री बाबा कालीकमली वाला क्षेत्र की संस्थाएं हैं, कार्य विभाजन से उनके नाम पृथक्-पृथक् हैं । ये दोनों संस्थाएं सर्वदा आयुर्वेद हित के लिये कार्य करती रही हैं और भविष्य में भी करती रहेंगी ।

१८. आयुर्वेद सेवा समिति के पास २,००,००० रुपया नकद है और दो लाख की अचल सम्पति पृथक् है । श्री बाबा कालीकमली वाला पंचायत क्षेत्र की भूमि और मकान जो आयुर्वेद विद्यालय के काम में आयेंगे, की लागत ढ़ाई तीन लाख की है । इस प्रकार आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना पर ७ लाख के लगभग सम्पति इसके उपयोग में आ सकेगी ।

उपर्युक्त विविध कारणों से यह समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का सम्बन्ध श्री बाबा कालीकमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति तथा श्री बाबा कालीकमली वाला पंचायत क्षेत्र के साथ जुड़ने से आयुर्वेद विश्वविद्यालय की अनायास ही स्थापना हो जाने से आयुर्वेदोन्नति का बहुत कुछ कार्य सुविधापूर्वक हो सकेगा।

(ख)-- प्रारम्भिक कार्य-योजना

१. इस विश्वविद्यालय योजना का संचालन १. श्री बाबा कालीकमली वाला पंचायत क्षेत्र २. श्री बाबा कालीकमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति तथा ३. अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ ये तीनों मिलकर करेंगे। यही तीनों संस्थाएं मिलकर भावी कार्यक्रम तथा नियमोपनियम का निर्माण करेंगी तथा आय-व्यय की व्यवस्था करेंगी।

२. आयुर्वेद पाठ्यक्रम, परीक्षा-व्यवस्था, अन्वेषण आदि केवल ज्ञान सम्बन्धी योजनाओं में एक मात्र विद्यापीठ का विशेषाधिकार माना जाएगा।

३. इस समय जो मासिक व्यय आयुर्वेद विद्यालय में बाबा कालीकमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति द्वारा किया जा रहा है उसको आवश्यकतानुसार आयुर्वेद सेवासमिति बढ़ाती जायगी।

४. वर्तमान कार्य को बढ़ाने के लिए तथा अत्यावश्यक प्रेक्टीकल शिक्षा के आयोजन के लिए विद्यापीठ दो तीन सुयोग्य अध्यापकों तथा विश्वविद्यालय कार्यालय के लिए दो क्लर्क तथा एक चपड़ासी नियुक्त करे जिसका लगभग ६०० रुपया मासिक व्यय विद्यापीठ वहन करे।

विशेष- इस व्यय के लिये किसी पृथक धनराशि की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं क्योंकि विद्यापीठ के लिये प्रचलित वर्ष के इन्दौर महासम्मेलन द्वारा स्वीकृत आनुमानिक व्यय में से ही इसे आयोजित किया जा सकेगा। हमारा तत्सम्बन्धी सुझाव उसी इतिवृत्त के अन्त में प्रस्तुत किया गया है।

५. इस विद्यालय के परिवर्धन तथा इसे समयोपयोगी बनाने एवं प्रेक्टीकल शिक्षा की विशेष व्यवस्था करने के लिए निम्नलिखित कार्य तुरन्त सम्पन्न किये जाएं :—

(क) स्थानों की सफाई सफेदी तथा रंग रोगन आदि करना।
(ख) आवश्यक फर्नीचर आदि लेना।
(ग) चार्ट माडल, यन्त्र-शस्त्र आदि प्रेक्टीकल की सामग्री लेना।
(घ) वनौषधि उद्यान लगाना।
(ङ) शवच्छेदनालय बनाना।

(च) अनुसन्धान कार्य के लिए आवश्यक सामग्री जुटाना, आदि आदि ।

ये कार्य सम्पन्न करने के पश्चात् ही विश्वविद्यालय की रूपरेखा मूर्तरूप धारण कर सकेगी। इस कार्य में २५,००० रुपये के लगभग व्यय होगा जिसका अर्ध भाग कम से कम १०,००० रुपये प्रारम्भ में विद्यापीठ अपने भाग के रूप में बाबा कालीकमली वाला पंचायत क्षेत्र को बैंकर मान कर उसके पास जमा कराए ताकि कार्य तुरन्त प्रारम्भ किया जा सके।

३. उपर्युक्त विचार विश्वविद्यालय योजना का श्रीगणेश मात्र है। त्रिवर्षीय योजना जिसे भी शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित किया जाय, नीचे प्रस्तुत करते हैं।

(ग) आयुर्वेद विश्वविद्यालय की त्रिवर्षीय योजना

१. शल्य-विभाग–प्राचीन शल्य-चिकित्सा का जीर्णोद्धार तथा उसे वैज्ञानिक विवेचना सम्मत बनाना ।

२. शालाक्य-विभाग-शालाक्य–अन्तर्गत नाक, कान, चक्षु, कण्ठ, दांत आदि अन्यान्य ऊर्ध्व जत्रुगत चिकित्सा की प्राचीन पद्धति के अनुसार व्यवस्था करना । प्राचीन ढंग की दन्त चिकित्सा पुनरुज्जीवित करके उसे लोकप्रिय बनाना ।

३. कौमारभृत्य-विभाग–इस विषय की सर्वांगपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था करना ।

४. स्त्री-चिकित्सा-विभाग–इसमें गर्भिणी से लेकर सूतिका पर्यन्त विशेष स्त्री रोगों की चिकित्सा तथा शिक्षा की व्यवस्था करना ।

५. मानसरोग चिकित्सा-विभाग–मानस रोगों की चिकित्सा एवं शिक्षा का सुव्यवस्थित प्रबन्ध करना ।

६. कल्प एवं रसायन चिकित्सा-विभाग–आयुर्वेद में ही एक मात्र सुव्यवस्थित और वर्तमान में अत्यन्त अपेक्षित कल्प और रसायन चिकित्सा का प्रयोग-सिद्ध प्रबन्ध करना ।

७. विष चिकित्सा-विभाग–विष चिकित्सा विज्ञान का सुव्यवस्थित प्रबन्ध करना ।

८. परिचारक-विभाग–परिचारक और परिचारिकाओं की शिक्षा और परीक्षा का प्रबन्ध करना ।

९. पंचकर्म-विभाग–चिकित्सा के मुख्य अंगभूत आदर्श पंचकर्म प्रक्रिया के योग्य एक विशेष पंचकर्म सामग्री सम्पन्न विभाग की व्यवस्था करना ।

१०. प्राकृतिक चिकित्सा-विभाग–प्राकृतिक चिकित्सा, जो कि आयुर्वेद का ही एक अंगभूत है, की भी व्यवस्था करना ।

११. अनुसन्धान-विभाग–उपर्युक्त सभी विभागों के लिए एक सर्वसाधन सम्पन्न गवेषणालय (रिसर्च इन्स्टीट्यूट) की व्यवस्था करना ।

१२. आतुरालय–उपर्युक्त अष्टांग चिकित्सा की व्यवस्था के लिए एक विशाल आतुरालय बनाना जिसमें सभी विभाग प्रथक्-प्रथक् हों तथा उनके विशेषज्ञ भी प्रथक्-प्रथक् हों।

१३. नव्य-विज्ञान–नव्य विज्ञान के अन्तर्गत उन साधनों की भी व्यवस्था करना जो आयुर्वेद के सिद्धांतों को पुष्ट करने में सहायता दें, जैसे एक्सरे आदि के प्लांट लगाना और उनके आदर्श शिक्षण की व्यवस्था करना।

१४. शवच्छेदनालय–शवच्छेदनालय बनाना।

१५. संग्रहालय–एक विशाल संग्रहालय (म्यूजियम) का प्रबन्ध करना।

१६. पुस्तकालय–एक वृहत पुस्तकालय बनाना जिसमें आयुर्वेद के अतिरिक्त विभिन्न विज्ञानों की भी पुस्तकें हों।

१७. अध्यापकावास–इन सब कार्यों के अंगभूत एक विशाल और सर्वांगपूर्ण अध्यापकावास बनाना।

१८. छात्रावास–पृथक्-पृथक् विभागों के छात्रों की आवश्यकतानुसार आदर्श छात्रावास बनाना।

१९. प्रकाशन-विभाग–उत्तरोत्तर बढ़ रहे कार्य की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम की पुस्तकें विद्वानों द्वारा लिखा कर उनका प्रकाशन करना तथा आवश्यकतानुसार मुद्रणालय भी लगाना।

२०. जड़ी-बूटी संग्रह–हिमालय से शुद्ध जड़ी-बूटी आदि के संग्रह तथा समुचित विक्रय की व्यवस्था करना।

२१. आयुर्वेद के सिद्धांतानुसार शीघ्र फलदायक विशुद्ध औषधों का नूतन आविष्कार करना।

२२. क्षय, राजयक्ष्मा, कैंसर, कुष्ठ आदि घातक और व्यापक रोगों की अवश्य फलप्रद आयुर्वेद सम्मत औषधों का आविष्कार करना।

२३. पारद के अठारह संस्कारों आदि रस-विद्या का जीर्णोद्धार करना।

२४. विभिन्न प्रान्तों में विद्यापीठ से सम्बद्ध या विद्यापीठ के निजी विद्यालयों के छात्रों के लिए प्रेक्टीकल शिक्षण की व्यवस्था करना।

२५. स्नातकोत्तर शिक्षण (पोस्ट ग्रेजुएट)–स्नातकोत्तर शिक्षण की व्यवस्था करना।

२६. ग्राम वैद्य शिक्षण––समय की आवश्यकतानुसार सरकार के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ग्राम वैद्यों की ऐसी शिक्षा एवं परीक्षा की तुरन्त व्यवस्था करना जिससे वे अधिकाधिक जन-सेवा कर सकें और आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाने में सहायक हो सकें।

२७. आयुर्वेद पढ़ने के अधिकारी होने के लिए मूल-विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था करना।

घ—विश्वविद्यालय का नाम

इस संस्था का नाम "श्री बाबा काली कमली वाला निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय" होगा ।

ङ—विश्वविद्यालय का शिलान्यास

इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास माननीय राष्ट्रपति श्री डा० राजन्द्रप्रसाद जी के कर-कमलों द्वारा कराया जाय ।

इस सम्बन्ध में १. वैद्यरत्न श्री पं. शिवशर्मा जी २. वैद्य श्री सत्यनारायण जी शास्त्री तथा ३. रायबहादुर श्री पं. श्रीदत्त जी श्री राष्ट्रपति जी से मिलकर किसी शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में उनके कर कमलों से शिलान्यास कराने का प्रबन्ध करें ।

च—आयुर्वेद विश्वविद्यालय प्रबन्ध समिति

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए निम्नलिखित उत्तरदायित्वपूर्ण और अनुभवी महानुभावों की एक स्थायी-समिति बनाई जाय जो इस कार्य-संचालन का पूर्ण भार वहन करे ।

१. वैद्यरत्न श्री पं. शिवशर्मा जी, बम्बई ।
२. वैद्यरत्न श्री कविराज प्रतापसिंह जी, इन्दौर ।
३. श्री पं. ठाकुरदत्त जी, अमृतधारा, देहरादून ।
४. श्री पं. हरिदत्त जी शास्त्री, जालन्धर ।
५. श्री पं. रामदयालु जी जोशी, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना ।
६. रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी, ऋषिकेश ।
७. श्री महंत इन्द्रेश चरण जी, सभापति, आयुर्वेद सेवा समिति, ऋषिकेश ।
८. श्री सेठ मदन गोपाल जी पोद्दार, सभापति श्री बाबा कालीकमली वाला क्षेत्र कमेटी ।
९. श्री सेठ दीपचन्द जी पोद्दार, कलकत्ता ।
१०. श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश ।
११. रायबहादुर श्री लाला उग्रसेन जी, देहरादून ।

यह समिति अपनी कार्य-पद्धति स्वयं निर्धारित करे ।

आयुर्वेद विद्यापीठ के आधीन विश्वविद्यालय बनाने के सम्बन्ध में २० वर्ष से निरन्तर

चेष्टा हो रही है। दिल्ली में भी ९ वर्ष से विद्यापीठ का कार्यालय होते हुए विद्यालय स्थापना के कार्य में कोई सफ़लता प्राप्त नहीं हुई। उधर प्रांतीय सरकारें विद्यापीठ के उत्तीर्ण छात्रों को मान्यता देने से उत्तरोत्तर हट रही हैं इसलिए अब शीघ्र ही विद्यालय की स्थापना करना परमावश्यक है।

इस उपसमिति ने कम से कम खर्च में तुरन्त उपयोगी विद्यालय चलाने के विषय पर पूर्ण ध्यान दिया है। इस समय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय का स्थायी मासिक व्यय, वेतन तथा किराया मकान १३०० रुपये के लगभग है। यदि विद्यापीठ का कार्यालय विश्वविद्यालय के साथ ऋषिकेश जोड़ दिया जाय तो उसका व्यय ७०० रुपए से अधिक न होगा और ६०० रुपए मासिक की बचत होगी जो उपर्युक्त प्रकार विश्वविद्यालय के कार्य में सहायता स्वरूप व्यय हो सकेगी। इसलिये हमारा निश्चित मत है कि विधापीठ कार्यालय ऋषिकेश को परिवर्तित कर दिया जाय। इससे बिना कोई अधिक व्यय उठाए विश्वविद्यालय का कार्य तुरन्त चालू हो सकेगा। समिति का कहना है कि यह कार्य सर्वसम्मति और सहयोग से सम्पन्न किया जाय।

सर्वसम्मति से स्वीकृत — हस्ताक्षर उपसमिति सदस्य
ह० शिवशर्मा — १. शिवशर्मा २. दयानिधि स्वामी ३, हरिदत्त शास्त्री
२६-४-५३ — ४. श्रीदत्त शर्मा ५. प्रतापसिंह

इस रिपोर्ट पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न सदस्यों नें अपने-अपने विचार प्रकट किए। विचार-विमर्ष के अनन्तर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि इस रिपोर्ट को ही प्रस्ताव रूप में स्वीकार किया जाय और इसके अनुसार शीघ्रातिशीघ्र कार्य प्रारम्भ किया जाय। तदुपरांत श्री जगदीश प्रसाद जी, देहली ने नोट कराया कि यद्यपि वे सम्पूर्ण प्रस्ताव से सर्वथा सहमत हैं परन्तु दिल्ली से विद्यापीठ कार्यालय के परिवर्तन के सम्बन्ध में यह उचित समझते हैं कि विद्यापीठ कार्यालय तुरन्त ऋषिकेश न ले जाया जाकर कुछ समय पश्चात् ले जाया जाय।

२४. तदुपरांत कुछ अन्य आयुर्वेद विद्यालयों को भी विद्यापीठ के आधीन लेने पर विचार उपस्थित हुआ। पर्याप्त बात-चीत के अनन्तर सिद्धांत रूप में इस विषय पर निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार हुआ :–

"निश्चय हुआ कि आयुर्वेद विद्यारीठ उन्हीं आयुर्वेद विद्यालयों को अपने आधीन लेने पर विचार करे जिनका उस प्रांत में ऐतिहासिक महत्व हो अथवा उनके पास कम से कम काम चलाऊ धन अथवा अन्य सम्पत्ति हो"

२५. उपर्युक्त प्रस्ताव की स्वीकृति के पश्चात १. श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली २. श्री एच० आर० आयुर्वैदिक कालेज, रामगढ़ (सीकर-जयपुर) तथा ३. श्री सना-

तनधर्म आयुर्वेद विद्यालय, भिवानी, (हिसार) को विद्यापीठ के आधीन लेने पर विचार हुआ और प्रत्येक के सम्बन्ध में क्रमशः निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार हुए

१. श्री बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय -- " निश्चय हुआ कि बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली, को विद्यापीठ अपने आधीन लेले । तदर्थ आवश्यक नियमोपनियम निश्चित करने के लिए निम्नलिखित महानुभावों की एक उपसमिति बनाई जाय:–

(१) वैद्य श्री ओंकार प्रसाद जी शर्मा, देहली ।
(२) वैद्य श्री शिवनाथ जी शर्मा, देहली ।
(३) वैद्य श्री जगदीश प्रसाद जी शर्मा, देहली ।
(४) वैद्य श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, ऋषिकेश ।

यह समिति श्री बनवारी लाल आयुर्वेद ट्रस्ट की ओर से ३ सदस्यों को लेकर सब व्यवस्था बनाए और विद्यापीठ कार्यकारिणी के आगामी अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट उपस्थित करे ।

२. श्री एच० आर० आयुर्वेदिक कालेज, रामगढ़ (सीकर)- "निश्चय हुआ कि श्री एच० आर० आयुर्वेदिक कालेज, रामगढ़ को विद्यापीठ के आधीन ले लिया जाय और उक्त विद्यालय के अधिकारियों से बात चीत करने एवं नियमोपनियम निर्माणार्थ निम्नलिखित महानुभावों की एक उपसमिति बना दी जाय जो अपना कार्य शीघ्र प्रारम्भ करे :–

(१) श्री पं मणिराम जी, रतनगढ़ ।
(२) श्री पं हनुमत्प्रसाद शास्त्री, रामगढ़ ।
(३) श्री पं श्रीदत्त जी, ऋषिकेश ।

३. श्री सनातनधर्म आयुर्वेद विद्यालय, भिवानी- निश्चय हुआ कि भूतपूर्व लाहौर के श्री सनातनधर्म प्रेमगिरी आयुर्वेदिक कालेज, जो कि इस समय श्री हरियाणा शेखावटी ब्रह्मचर्याश्रम, भिवानी में चल रहा है, को भी विद्यापीठ के आधीन ले लिया जाय । एतदर्थ नियमोपनियम आदि निश्चय करने के लिए निम्नलिखित सदस्यों की एक उपसमिति शीघ्र ही कार्य प्रारम्भ करे :–

(१) वैद्य श्री सत्यदेव जी, भिवानी, ।
(२) श्री डा० पुरुषोत्तम दत्त गिरधर, भिवानी ।
(३) श्री स्वामी कृपाराम जी, भिवानी ।
(४) वैद्य श्री हरिदत्त जी शास्त्री, जालन्धर ।

(५) रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी, ऋषिकेश।

२६. ३६ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, ब्यावर (अजमेर) के अवसर पर प्रस्तुत किए जाने वाले निबन्धों के लिए उक्त महासम्मेलन की स्वागत-समिति द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित विषय निश्चित हुए :–

(क) स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के आयुर्वेदीय आदेश तथा नियमों का व्यवहारिक उपयोग।

(ख) संक्रामक रोगों के समय वैद्यों का कर्तव्य।

(ग) जन साधारण में आयुर्वेद की उपयोगिता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है।

२७. आयुर्वेद का इतिहास श्री डा० डी० नारायणराव, गण्टूर द्वारा निःशुल्क लिखवाने पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि इस विचार को अभी स्थगित रखा जाय।

२८. पनवेल के आयुर्वेदभूषण वैद्य श्री पी० वी० धामनकर द्वारा लिखित आयुर्वेदीय औषध-कोष के मुद्रण पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि यह विषय निम्नलिखित महानुभावों द्वारा निर्मित एक उपसमिति को सौंपा जाय :–

(१) विद्यापीठाध्यक्ष वैद्य श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री।
(२) वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई।
(३) वैद्य श्री जी० वी० पौराणिक, पनवेल।

अपने में दो अन्य सदस्य सम्मिलित करने का समिति को अधिकार दिया गया।

२९. "आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि" उपाधि परीक्षा के अन्तर्गत वैद्य श्री भोलादत्त जी पाण्डेय तथा वैद्य श्री गण्डाराम जी शास्त्री की ओर से प्राप्त पुस्तकों पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि उक्त उपाधि परीक्षा के प्रचलित करने के विषय पर आगामी शिक्षा-सम्मेलन (विद्यापीठ सम्मेलन) पर अन्तिम विचार किया जाय तथा तदुपरान्त ही उक्त पुस्तकों के परीक्षण का भी निश्चय किया जाय।

३०. विद्यापीठ परीक्षाओं की समग्र केन्द्र-व्यवस्था पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि यह विषय गंभीर विचारार्थ एवं परामर्शार्थ निम्नलिखित उपसमिति को सौंप दिया जाय :–

(१) श्री शिवनाथ शर्मा, देहली।
(४) श्री जगदीश प्रसाद शर्मा, देहली।
(३) श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश।
(४) श्री विद्यापीठाध्यक्ष।
(५) श्री विद्यापीठमंत्री।

३१. निश्चय हुआ कि सन् १९५४ वर्षीय परीक्षाओं से प्रथम वार प्रवेश पाने वाले परीक्षार्थियों को, उनका पूरा रिकार्ड रखने के ध्येय से, स्थायी रजिस्टर्ड क्रमांक दिया जाय। रजिस्ट्रेशन का शुल्क २ रुपया रखा जाय तथा परीक्षार्थी अपने सर्वप्रथम परीक्षा-शुल्क के साथ ही वह शुल्क भेजें।

३२. निश्चय हुआ कि श्री पी० के० जी० मेनन, प्रिंसिपल, गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज, त्रिवेन्द्रम का गत १९५३ वर्षीय परीक्षाओं में वैद्याचार्य परीक्षा में सीधा प्रवेश स्वीकार किया जाय।

भविष्य के लिये किस सीमा तक ऐसे प्रवेश की अनुमति दी जाय इस पर पाठ्यक्रमोपसमिति परामर्श दें।

यह भी निश्चय हुआ कि पाठ्यक्रमोपसमिति में श्री डा० ए० लक्ष्मीपति जी को सदस्य रूप में सम्मिलित किया जाय।

३३. निश्चय हुआ कि भारत के देशी चिकित्सा बोर्डज् द्वारा रजिट्रेशन के लिए मान्य की जाने वाली आयुर्वेदीय शिक्षण-संस्थाओं एवं उपाधियों की एक प्रमाणित सूची विद्यापीठ कार्यालय द्वारा शीघ्र ही तैयार की जाय।

३४. निश्चय हुआ कि बम्बई सरकार को रजिट्रेशन के लिए मान्य किए जाने वाली शिक्षण-संस्थाओं की एक प्रमाणित सूची शीघ्र ही भेज दी जाय तथा उस सरकार से आग्रह किया जाय कि देश-विभाजन के पूर्व जो आयुर्वेद विद्यालय भारत के वर्तमान पाकिस्तान अंग में चल रहे थे, जिनमें श्री सनातन धर्म आयुर्वेदिक कालेज, लाहौर का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है, उनके स्नातकों को रजिस्ट्रेशन की पूर्ण एवं विशेष सुविधा प्रदान की जाय।

३५. निश्चय हुआ कि निम्नांकित नियमों के अनुसार सन् १९५४ से ग्राम-वैद्य परीक्षा प्रारम्भ की जाए :-

प्रस्ताव:

१. अस्मिन्नधिवेशने प्रजावैद्यपरीक्षार्थं निम्नलिखितः पाठ्यक्रमः प्रस्तुतः विचारपूर्वकं स्वीकृतश्च एतदर्थमतिरिक्तो व्ययोऽपि यो भवेत् स स्वीकार्यः।

२. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठम् परीक्षाव्यवस्थां करिष्यति इतरपरीक्षाभिः सार्धमेव।

३. एतदर्थं निम्नलिखितानि प्रश्नपत्राणि निरधारितानि।
(१) प्रथमपत्रे केवलायुर्वेदे सनिदानचिकित्सिते।
(२) द्वितीयपत्रे स्वस्थवृत्ते व्याधिप्रतिरोधे च।
(३) प्रसूतितंत्रकौमारभृत्ययोः।
(४) प्राथमिकचिकित्सा, सुलभा शास्त्रचिकित्सा।
मौखिकं प्रतिप्रश्नपत्रं च।

प्रजावैद्यपरीक्षापाठ्यक्रमः

४. (१) पंचलक्षणनिदानपूर्णज्ञानम् ।

संचयं च प्रकोपं च प्रसरस्थानसंश्रयम् ।
व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेत् भिषक् ।।

(२) शार्ङ्गधरानुसारिणी औषधकल्पना ज्ञातव्या ।

(३) निदानं लक्षणं चिकित्सा च ज्वरातिसारेत्यादिमाधवनिदानोक्तानां रोगाणां पाठ्यग्रन्थाः ।

शार्ङ्गधरसंहिता, माधवनिदानम्, भावप्रकाशः, वसवराजीयः इत्यादिग्रन्थाः द्रष्टव्याः विषयप्रधानेयं परीक्षा नतु ग्रन्थप्रधाना योगप्रयोगास्तु शार्ङ्गधर प्रोक्ताः प्रायो प्रयोज्याः पाठ्यक्रमः हिन्द्यां विशेषः आंगलभाषायां च मुद्राप्यः । प्रश्नपत्राणि हिन्दीभाषायामेव मुद्राप्याणि किन्तु प्राग् वर्षत्रयं यावत् केवलमांगलभाषायामपि केवलं तेष्वेव केन्द्रेषु प्रवेशेच्छुकानां छात्राणां कृतेऽपि मुद्राप्याणि स्युः । यत्र परीक्षार्थी हिन्दीलिप्यां तानि प्रश्नपत्राणि पठितुं न शक्नुयात् ।

केन्द्राणि

निम्नलिखितकेन्द्राणि भवेयुः ।

यथासाध्यविद्यापीठस्वीकृतकेन्द्रेष्वेव परीक्षा भवेयुः । प्रतिकेन्द्रं दशपरीक्षार्थिषु सत्सु केन्द्रव्यवस्थान्यत्रापि भवेत् ।

५. प्रतिवर्षं द्विवारं परीक्षाः भवेयुः । प्रथमा मार्चमासांतिमे सप्ताहे विद्यापीठ-परीक्षा-सार्धमेव प्रायः ।

द्वितीया च सितम्बरमासे परिशिष्टपरीक्षासार्धमेवप्रायः ।

६. शुल्कं प्रतिखण्डं रूप्यकद्वयं चतुर्षु खण्डेषु समाप्यम् । किन्तु यदि सर्वखण्डेषु एकवारमेव प्रविशेत्तर्हि षड्रूप्यकाणि देयानि ।

७. प्रश्नोत्तराणि लोकव्याप्तभाषालिपिषु भवेयुः ।

८. प्रतिप्रश्नपत्रं षट्प्रश्नाः भवेयुः । शतपूर्णांकाः समयस्तिस्त्रो होराः ।
आयुर्वेदप्रतिशतं चत्वारिंशत् लब्धांकाः उत्तीर्णताः सूचकाः ।
अपरेषु प्रश्नपत्रेषु प्रतिशतं त्रयस्त्रिंशत्अंकाः उत्तीर्णार्थिः लब्धव्याः भवेयुः । एकस्मिन् पत्रे अनुत्तीर्णः केवलं दश कृपागुणांकान् दत्वापि उत्तीर्णः कार्यः । किन्तु समग्रेषु लब्धांकेषु स परीक्षार्थी प्रतिशतं पंचविंशत् गुणांकान् लब्धः स्यात् ।

९. विद्यापीठ–स्वीकृताध्यापकसमीपे न्यूनतो पि षण्मासान् यावत् ज्ञानपूर्णतासूचकं

कर्माभ्यासशास्त्रज्ञानोभयविधशिक्षाप्राप्तिप्रमाणपत्रं प्रतिपत्रं परीक्षाप्रवेशायावश्यकं स्यात् ।

१०. प्रथमा परीक्षा १९५४ वर्षस्य मार्चमासान्तिमसप्ताहे प्रारब्धा भवेत् ।

३६. गुरु परम्परा प्रणाली द्वारा आयुर्वेद शिक्षण की व्यवस्था पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मार्च मास के अंक में प्रकाशित प्रश्नोत्तरावलि कें आधार पर उक्त प्रकार शिक्षण की पूर्ण योजना तैयार की जाय और तदनुसार विभिन्न सरकारों द्वारा इस कार्यव्यवस्था को स्वीकार कराने का प्रयत्न किया जाय । यह भी निश्चय हुआ कि अपनी राज्यों की यात्रा के समय जब श्री महासम्मेलनाध्यक्ष प्रमुख अधिकारियों को मिलें तो पठन-पाठन की योजना भी वह उनके समक्ष रखें ।

३७. आयुर्वेदीय संशोधन एवं अनुसंधान में डाक्टरों का सहयोग किस रूप में और कहां तक लिया जाय इस विषय पर निश्चय हुआ कि श्री प्रधान जी तत्सम्वन्धी नीति निर्धारित करके वैद्यसमाज का पथप्रदर्शन करें ।

३८. महासम्मेलन विद्यापीठ के सभी बैंक अकाउन्ट्स नई देहली से देहली परिवर्तित करने के विषय पर निश्चय हुआ कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ तथा तदन्तर्गत जो जो अकाउन्ट इस समय १. सैन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया २. यूनाइटिड कमर्शल बैंक तथा ३. पंजाब नेशनल बैंक की नई देहली शाखाओं में चल रहे हैं उन्हें वहां से बन्द करके तत्तत बैंक की चांदनी चौक, देहली की शाखाओं में पुनः खुलवा लिया जाय । यह भी निश्चय हुआ कि सभी अकाउन्ट्स को खुलवाने तथा चालू रखनें का अधिकार १. महासम्मेलन प्रधानमंत्री श्री वामनराव दीनानाथ, २. विद्यापीठ मंत्री श्री श्रीदत्त शर्मा ३. कोषाध्यक्ष श्री शिवनाथ शर्मा तथा ४. उपाध्यक्ष श्री ओंकार प्रसाद शर्मा में से किन्हीं दो महानुभावों को एक साथ रहेगा ।

३९. निश्चय हुआ कि कार्यालय के कार्य-संचालन, कर्मचारियों के अवकाशों तथा यात्रा आदि के सम्बन्ध में नियम-निर्माग पर सुझाव देने के लिए निम्नलिखित महानुभावों की एक उपसमिति नियुक्त की जाय :–

(१) श्री ठाकुर दत्त शर्मा, अमृतधारा, देहरादून ।

(२) श्री पं० शिवनाथ शर्मा, देहली ।

(३) श्री विद्यापीठ मंत्री ।

मिश्रित

४०. (क) निश्चय हुआ कि १. श्री विजय कुमार शर्मा एकाउन्टेन्ट २. श्री श्री कृष्ण

प्रभाकर पत्रिका सहायक तथा श्री अर्जुनदेव नागपाल लेखक–तीनों कर्मचारियों को अस्थायी रूप से हीं नियुक्त रखा जाय।

(ख) निश्चय हुआ कि प्रश्नपत्र प्रेषण सम्बन्धी अधिक कार्य के उपलक्ष्य में श्री रूद्रदत्त शास्त्री को २० रुपया पारितोषिक दिया जाय।

(ग) निश्चय हुआ कि कार्यालय के लिए एक छत का बड़ा पंखा ३०० रुपए के मूल्य तक खरीद लिया जाय।

(घ) निश्चय हुआ कि दोनों चपड़ासियों के लिए दो दो वर्दियां बनवाने के लिए १०० रुपया स्वीकार किया जाय।

श्री जगदीश प्रसाद जी शर्मा देहली के यह कहने पर कि कार्यालय पर अधिक व्यय हो रहा है श्री प्रधानमन्त्री जी ने आश्वासन दिया कि इसे कम करने का पूर्ण प्रयत्न किया जायगा।

श्री सभापति महोदय, समागत सदस्यों तथा स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित को धन्यवाद देते हुए मध्याह्नोत्तर १।। बजे सभा विसर्जित हुई।

श्रीदत्तशर्मा	वामनराव दीनानाथ
विद्यापीठ मन्त्री	प्रधानमन्त्री

परिशिष्ट

आडीटर की रिपोर्ट

जे० सी० माथुर एण्ड कम्पनी	ईगरटन रोड,
चार्टड अकाउन्टेंट्स	देहली, १० अप्रैल, १९५३

सेवा में

सदस्यगण,

आयुर्वेद महासम्मेल-विद्यापीठ,

मान्यमहानुभाव,

हमने अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के ता० ३१ अक्टूबर १९५२ को समाप्त होने वाले वर्ष के लेखे का निरीक्षण किया। उसके आय-व्यय तथा संतुलन पत्रों को प्रस्तुत करते समय हम निम्नलिखित विचार व्यक्त करते हैं :—

क— आयुर्वेद महासम्मेलन—

१. अखिल भारतीय औषध-निर्माता संघ के ७५० रुपए–यह औषध-निर्माताओं

से चन्दे के रूप में प्राप्त की हुई धनराशि है अतः हमारे विचार में इसे आय-व्यय लेखे में आय के रूप में दिखाया जाना चाहिये ।

२. २००२ रुपया तथा ८०० रुपया १५ आना ३ पाई की जमा धनराशि नाथ बैंक (दिवालिया) में पड़ी है। हमारे विचार में लिक्वीडेटर से इस धनराशि की प्राप्ति के विषय में पूछ-ताछ की जानी चाहिये ।

ख–आयुर्वेद विद्यापीठ

१. पुस्तक विभाग (गत वर्ष) से ३३१ रुपए ७ आना ६ पाई की आय-इसे आय-व्यय पत्र में दिखाया जाना चाहिये न कि सन्तुलन पत्र में ।

२. पुस्तक–विक्रय (पुस्तक विभाग) ३०४४ रुपए ४ आने ६ पाई –प्रकाशकों से पुस्तकें विक्रयार्थ मंगाई जाती हैं और उन पर २५ प्रतिशत कमीशन लिया जाता है। प्राप्त कमीशन की कोई व्यवस्था नही की गई है । अतः विद्यापीठ की आय में से वह धनराशि कम हो गई है जो पुस्तक विक्रय पर कमीशन के रूप में तथा पुस्तक विभाग से आय के रूप में प्राप्य है तथा जिन्हें सन्तुलन पत्र में दिखाया गया है ।

३. पुस्तक ऋणि–श्री शंकरदा जी पदे स्मारक कोष पर ८४९ रुपया २ आना तथा विश्वविद्यालय कोष पर २१८ रुपया ७ आना का व्यय पुस्तक ऋणि के रूप में दिखाया गया है। पूछ-ताछ करने पर हमें बताया गया है कि सम्बन्धित लेखों में से यह व्यय न होकर इसका वहन विद्यापीठ द्वारा किया जाता है। क्योंकि यह व्यय अधिकोष लेखे (फन्ड अकाउन्ट) में से नहीं किया जाता है अतः इन्हें आय-व्यय लेखें में से किया जाना चाहिये था। इनके संशोधन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त वह प्रस्ताव जिसके अनुसार यह व्यय विद्यापीठ से किये जाने का अधिकार दिया गया है भी हमें नहीं दिखाया गया ।

४. ट्रेज़री सेविंग सर्टिफिकेट्स में लगाए हुए १०.००० रुपये की धनराशि–हमने इन सर्टिफिकेट्स को देखा है और यह पाया कि यह सर्टिफिकेट्स विद्यापीठ के नाम में न होकर महासम्मेलन के नाम में हैं । इस विषय की जांच की जानी चाहिये ।

ह० जे. सी. माथुर एण्ड को,
चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट्स ।

सूचना

स्थायी-समिति के बंगलौर अधिवेशन के अवसर पर अखिल मायसोर आयुर्वेदिक कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन भी हुआ था तत्सम्बन्धी तथा स्थायी-समिति के उद्घाटन आदि भाषण इस अंक में स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं किए गए । उन्हें पाठक पत्रिका के जून मासीय अंक में देखें ।

–सम्पादक

महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी की ओर से सर्व-सम्बन्धित महानुभावों के लिये सूचना

केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् का द्वितीय अधिवेशन जो राजकुमारी अमृतकौर की अध्यक्षता में जून मास में होनें वाला था वह राजकुमारी जी तथा डा० सी० जी० पण्डित के देश से बाहर रहने के कारण अब जून मास में सम्पन्न नहीं होगा क्योंकि वे जून मास में मीटिंग करनें के समय तक भारत वापिस नहीं लौटेंगे। अतः राज्यों से अपना सम्पर्क स्थापित करने का कार्य प्रथम जून से पूर्व ही समाप्त करना अब आवश्यक नहीं रहा है। दक्षिणी राज्यों से तो मैं मिल ही चुका हूं, पूर्वी राज्यों से मिलने का कार्य भी मैं अपने आसाम के दौरे के अवसर पर, जहां कि मैं इसी मास की २३ तारीख को जा रहा हूं, समाप्त करने का प्रयत्न करूंगा। क्योंकि स्वास्थ्य-परिषद् की मीटिंग अब जून मास में नहीं हो रही है और क्योंकि मेरी दृष्टि के अधिक निर्बल हो जाने के कारण जून के प्रथम सप्ताह में आपरेशन कराना अब आवश्यक हो गया है, इसलिये जून मास में मैं पत्रों को नहीं देखूंगा और न ही अन्य कार्य करूंगा। उस समय मैं बम्बई में भी नहीं रहूंगा और किसी पर्वतीय स्थान पर विश्राम करूंगा। यदि विभिन्न स्थानों से प्राप्त पत्रों का जून मास में उत्तर न दिया जा सके तो पत्र-प्रेषकों को कृपया यह समझ लेना चाहिए कि उनके पत्रों पर जुलाई मास में, जब मैं कार्य पर लौटूंगा, ध्यान दिया जाएगा। राज्यों से सम्पर्क-स्थापना का जो कुछ कार्य अवशिष्ट रह जाएगा वह जुलाई अथवा अगस्त मास में समाप्त किया जाएगा। वैसे मैं आयुर्वेद महासम्मेलन के सदस्यों को यह सूचना देने की अब स्थिति में हूं कि स्वास्थ्य-परिषद् की आगामी मीटिंग होनें तक अनेक भारतीय राज्य गुरु-शिष्य परम्परा प्रणाली को स्वीकार कर चुके होंगे और इस कारण वे स्वभावतया ही मीटिंग के अवसर पर आयुर्वेद का पक्ष समर्थन करेंगे।

—शिवशर्मा

* * *

आसाम राज्य आयुर्वेद सम्मेलन का प्रथम वार्षिक अधिवेशन

सूचना मिली है कि आगामी १० जेठ बंगला ता० २४ मई रविवार को दिन के २॥ बजे गौहाटी आयुर्वेद कालेज में आसाम राज्य आयुर्वेद सम्मेलन का प्रथम-वार्षिक अधिवेशन होगा। आसाम के स्वास्थ्यमन्त्री श्रद्धेय श्रीयुत रूपनाथ ब्रह्म महाशय जी सम्मेलन का उद्घाटन करेंगे एवं श्री पं० शिवशर्मा जी वैद्यरत्न उक्त सम्मेलन का सभापतित्व सम्पादन करेंगे।

ता० २५-५-५३ को भी दिन के ४ बजे कुमार भास्कर नाट्य मन्दिर, उजान बाजार में उक्त सम्मेलन का एक अधिवेशन होगा जहां पर श्री शिवशर्मा जी भाषण देंगे।

A Note on Ayurvedic Research Proposed to be Conducted at the Universal Health Institute

(By Pandit Shiv Sharma, Bombay)

It is proposed that research be undertaken on the following items as they constitute altogether a new ground for inquiry hitherto left untouched by other workers in this field :—

(A) Drug Research :

(1) Study of tonic sedatives or sedative tonics :

In the allopathic medicine all tonics are stimulants ; all sedatives depressants. One cannot prescribe a tonic without stimulating the patient ; nor can one prescribe a sedative without causing subsequent depressant reaction. Of course the proving grounds for such drugs have to be a certain class of patients such as hyper-sensitive individuals ; and women with jumpy nerves, particularly during acute phases of menopausal disturbances. Ayurveda has a unique approach of toning the hyper-sensitive individuals particularly where stimulants and depressants are contra-indicated. There are a number of Ayurvedic drugs which can tone up a debilitated system without stimulating it. An investigation of these drugs should bring interesting and useful information to light.

(2) Study of catalytic stimulants :

All allopathic stimulants are absorbed by the system before elimination and are therefore liable to produce subsequent drug reactions. There is a set of Ayurvedic stimulants which is not absorbed by the system at all and passes out of the body totally unassimilated. Yet the therapeutic action of this group is compelling. This is another branch of research field untouched by the moderns.

(3) Study of Medhya drugs :

There is a group of Ayurvedic herbs, *e.g.*, Shankhapushpi, Jyotishmati, Brahmi, Vacha etc. which have no parallel in the modern medicine. They are supposed to impart intellectual efficiency and improve memory. They have often shown good results in cases of mental disorders. Clinical trials with these drugs should be conducted to study and confirm their actions.

(B) Drug-cum-Clinical Research :

(1) Composite drug action—Ayurvedic system consists chiefly of composite drug treatment. This approach is comparatively new to modern system. It is observed that in cases of malaria caused by plasmodium vivax neither quinine nor pamaquin is capable of curing the disease by itself; but a combined dose of quinine and pamaquin proves surprisingly and *inexplicably* effective. The composite drug therapy in Ayurveda is a time honoured, established and advanced concept. The study of composite drug action shall offer another new line of research which can promise good results.

(2) This concept can be extended to combination of drugs of two different systems for the benefit of the patient. At an allopathic conference held at Baroda less than a month ago Dr. R.A. Hakim of Ahmedabad while presenting results of his work on mental disorders before the conference showed that patients suffering from these affections showed an improvement in about 31% cases when treated solely with allopathic drugs, in over 50% cases when treated with Ayurvedic drugs and in over 80% when treated by a judicious combination of the allopathic and the Ayurvedic medicines. The Institute having all the different pathies at its disposal is ideally suited for conducting the study of composite drug action if a combination of the drugs of two different systems is required to be studied.

(3) Composite treatment :

In various infectious diseases the Ayurvedic approach is to by-pass the infection and concentrate on raising the specific resistance of the patient against his particular disease. The modern science concentrates on the destruction of the infection and tends to by-pass the constitution of the patient. Cases arise where the severity of the infection is more amenable to a powerful bactericidal or anti-biotic approach and constitutional treatment is fraught with delay in ameliorating the diseased conditions. There are other cases where the constitutional factors are so dominant that repeated courses of bactericidal and anti-biotic drugs fail to control the disease completely and start a progressive toxication of the patient. These are ideal cases for a combined treatment by both these approaches which can supplement each other very effectively. Thus in cases of pneumonia penicillin can combine with Makardhwaja and Shringarabhra far more effectively and beneficially than it would with sulpha drugs or chloremphenicol.

(C) Clinical Research :

Clinical research on Osteoarthritis, pleurisy, diabetes, pneumonia, neptritis, eczemas, asthamas and heart diseases shall be undertaken directly as the modern treatment of these diseases is far from satisfactory.

The three items of drug and clinical research described in section (B) above will form a part of clinical research also to a great extent.

(D) Higher Ayurvedic Research :

Circumstances permitting Ayurvedic research can be conducted on higher levels also such as—

(1) Study of mental states resulting from different diets and modes of living ; improvement of mental states through Satvik diet, practices and drugs. This study will require a large data collected over a long period of observation. The late Dr. Alexis Carrel, in his famous treatise "Man the Unknown", has laid a very great stress on the necessity of this particular type of research :

(2) Studies in control of involuntary movements :

Can the organism live longer if it is trained to give rest to such tissues of the body as are supposed to be outside the voluntary control of the individual. Can, for example, voluntary stoppage of heart-beat lead to greater rest and regeneration of the heart muscle ?

(E) Studies in mass disease and mass welfare :

Establishment of a mobile research unit in a lorry with a staff of 2 to 3 able physicians. Its functions to be :

(a) Village to village study of the prevalent diseases and collection of health statistics.

(b) Utilisation of the existing village Vaidyas for control of diseases in the villages.

(c) Training of the village Vaidyas, both theoretically and practically.

(d) Organising the village Vaidyas who should collect all such patients who are beyond their capacity to treat and assemble them on the appointed day and hour allotted for that village to be examined and prescribed for by physicians of the Mobile unit. They shall keep the records and ultimately learn to treat those cases by themselves.

Note : The above item shall be helpful in utilisation of the unused Ayurvedic element left in the villages, shall raise its efficiency by gradual degrees to the efficiency of the city physicians. This approach is calculated to be the cheapest and most efficacious in spreading harmless and efficient medical relief to the villages without requiring a very big organisation. Its contribution to research material in the form of statistics of health and disease and studies in rural dietetics and environment shall be considerable.

(e) **Ecology** : Study of diseases prevalent in rural areas in their environment through the mobile research unit.

(f) Utilising the mobile school for dissemination of health habits in the villages by giving them instructions on exercises, baths, postures, care of teeth, Ritucharya and Dinacharya, etc.

(F) Preparation of a list of simple foolproof efficient Ayurvedic household remedies. Arranging their supply and distribution.

(G) Institution of an Ayurvedic Research Association to encourage selected Vaidyas who have a flair for research. The Universal Health Institute can land its premises for the activities of this Association and the records of its activities can also be kept there.

(H) Training of selected Vaidyas at the Universal Health Institute in the art of Ayurvedic healing especially in the art of exposition and application of Ayurvedic concepts. There has been a deplorable fall in the standard of Ayurvedic learning amongst Vaidyas since the education of the profession was taken away from the hands of the Ayurvedic profession and placed in the hands of the allopaths. This deficiency can be considerably removed by giving the selected Vaidyas a chance to contact Ayurvedic work at a comparatively higher level. The instructions given to these Vaidyas can be embodied in literature which can be published and supplied to other Ayurvedic institutions.

(I) **Eliciting secret remedies :**

A large number of effective and secret remedies exist in the extra-academic field of Ayurveda. People possessing secret or proprietory remedies of value may be induced to submit their methods to the research body. Rewards for release of secret formulae and facilities for proving them at the Institute can be extended to those who wish to co-operate. The Government may be approached to enact legislation for punishment of those responsible for imposition and wastage of time and money of the department by making false pretences to cures.

(J) **Historical Research :**

A general study of the beginnings and development of Ayurveda. Study of the physical and meta-physical-factors which contributed to the creation of this system. Re-construction of 125 surgical instruments which were in use in ancient India for the purpose of education and exhibition. Accurate drawings of the various operations performed by the Susruta School of Surgeons etc.

(K) Studies into the neglected branches of Ayurvedic system *e.g.*, Dentistry, Opthalmology. There are a number of practitioners of these Branches still existing and still springing surprises on eminent modern specialists of these branches of medicine.

(L) **Studies in Philosophy of Ayurveda :**

It is a small item and shall be covered by a small publication covering the philosophy of Ayurveda.

(M) Publication of an Ayurvedic Research Bulletin.

(N) **Miscellaneous :** Studies in seasonal action of herbs, changes in therapeutic actions of drugs by various Sanskaras (combination processes), studies in aphrodisiacs, birth control, longevity and Ayurvedic psycho-analytical approach etc. may also be taken up in course of time.

(The Hindi version of this note will appear in the June issue of the Patrika.)

साहित्य-सत्कार

वनस्पति परिचय (संक्षिप्त सचित्र) ले० अन्तुभाई वैद्य आयुर्वेदाचार्य । मूल्य ६)रु० प्राप्ति स्थान--आयुर्वेद रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलम कुटीर, फ्रीअर रोड, बम्बई १.

जड़ी बूटियों पर यह एक नवीन पुस्तक है आरम्भ में वनस्पति-विज्ञान के आवश्यक सूत्र, वनस्पतियों की पहिचान की रीति सोदाहरण दी गई है आगे क्रमबद्ध औषधियों के साथ प्रत्येक औषधि का चित्र दिया है, यह इसकी विशेषता है। औषधियों के प्रसिद्ध २ भाषाओं के नाम भी हैं। रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव पृथक् २ वर्णित है। किस रोग में, किस योग में, कितनी मात्रा में, इसका भी संक्षिप्त खुलासा है। पुस्तक आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में प्रथम स्थान पाने योग्य है, वैद्य और वैद्यक के विद्यार्थी इस पर नजर डालें। बनौषधियों पर इस प्रकार की प्रथम पुस्तक हिन्दी में देखने में आई है, भाषा भी सरल है।

--वैद्य घनानन्द पन्तः

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, १/२ तो०, १/४ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक--पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक--श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र--कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र--देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

विक्रेता-- १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

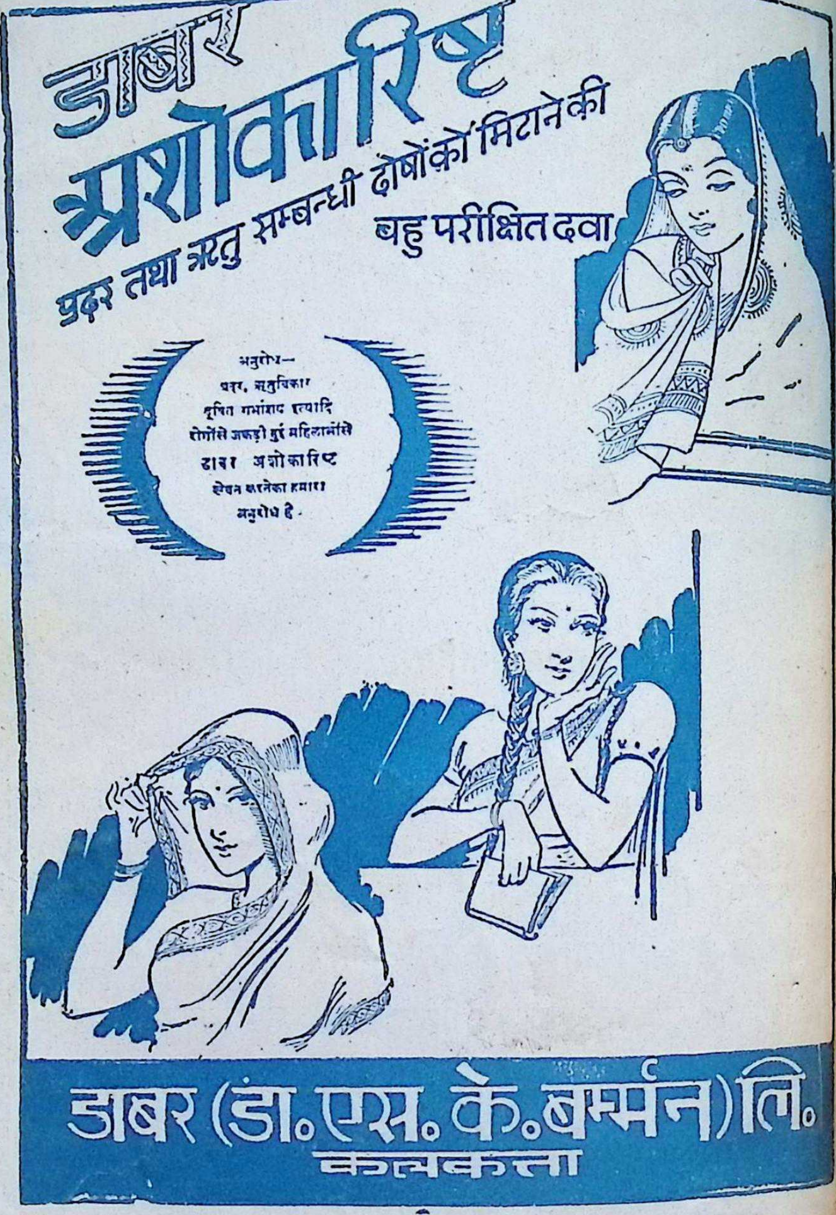

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रकः—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली।

अगस्त
१९५३

५

श्रावण
२०१०

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

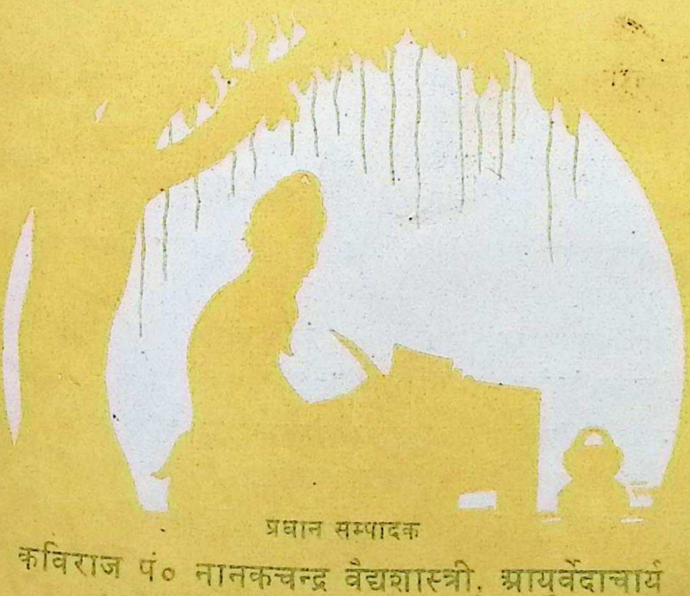

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस.

अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय

प्रगतिपथ पर एक और कदम

३८वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर, द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव तथा महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के बंगलौर में सम्पन्न हुए सम्मिलिताधिवेशन द्वारा आयुर्वेद विश्वविद्यालय निर्माण सम्बन्धी योजना को श्री बाबा काली कमलीवाला पंचायत क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी समिति ने अपने ता० १-८-५३ के अधिवेशन में स्वीकृत करके प्रस्ताव पास किया है जिसकी यथार्थ प्रतिलिपि वैद्यसमाज की सूचनार्थ निम्नोद्धत है :—

“अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, इंदौर, अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी, बंगलौर के प्रस्ताव व तत्सम्बन्धी पत्रों पर विचार विमर्श हो कर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि क्षेत्र कमेटी प्रस्ताव को स्वीकार करती है और निश्चय करती है कि रामनगर स्थित कालेपानी रम्भानदी के नाले के पश्चिम भाग स्थित जमीन पर एवं रेलवे लाइन के पूर्वी सड़क के दरम्यान में भूमि कूप मकानादि में बाबा काली कमलीवाला अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का शीघ्र से शीघ्र कार्यारम्भ कराया जावे।

(क) आयुर्वेद सेवा समिति द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय को उनके (सेवा समिति द्वारा) स्वीकृत प्रस्ताव नं० ६ ता० २२-१०-५० व १४-६-५१ के प्रस्तावानुसार शीघ्रातिशीघ्र रामनगर में ले जाकर विश्वविद्यालय में योजित कर कार्यारम्भ किया जावे।

(ख) उपरोक्त चारों संस्थायें, बाबा काली कमलीवाला पंचायत क्षेत्र, बाबा काली कमलीवाला आयुर्वेद सेवासमिति, अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के चार-चार सदस्यों को लेकर एक समिति बनाई जावे जो कि विश्वविद्यालय के नियम, उपनियम, संचालन आदि के नियम बनाकर समस्त कार्य संचालन करेगी और उसी कमेटी द्वारा एग्रीमेंट बनाकर नियमानुकूल जिस्ट्री रकराई जावेगी।

उक्त विश्वविद्यालय का नाम सर्वदा “बाबा कालीकमली वाला अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय” रहेगा। नाम में कोई परिवर्तन न होगा।

साथ में यह भी निश्चय हुआ कि उक्त प्रस्ताव की प्रतिलिपि तीनों संस्थाओं के सभापति महोदयों के पास भेजी जावे और इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहारादि का काम रायबहादुर पं० श्री दत्त जी, सहकारी मन्त्री क्षेत्र, पर छोड़ा गया।”

श्रीदत्त शर्म्मा
रायबहादुर, आयुर्वेद मार्त्तण्ड
विद्यापीठमन्त्री।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक--कविराज पं० नानकचंद्र वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक--पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय--महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ३९
अंक ८
दिल्ली, श्रावण २०१०, अगस्त १९५३
मूल्य ॥)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. सम्पादकीय		४२६
२. नि० भा० आयुर्वेद शास्त्र चर्चा परिषद		४२८
३. सन्निकर्ष	पं शुकदेव शर्मा	४३२
४. मधुमेह	श्री बी० दत्त मिश्र	४३७
५. चोब चीनी रसायन	श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती	४४१
६. वर्षा ऋतु में कैसे रहें	श्री ताराशंकर मिश्र	४४५
७. भारत एवं मध्यभारत सरकार से खुली अपील	श्री कन्हैयालाल अजमेरा	४४९
८. Role of Diamond on cancer	Dr. Antubhai Vaidya	४५२
९. Ayurvedic School of Medicine	Dr. A. Lakshmipati	४६०
१०. साहित्य-सत्कार		४७५
११. आयुर्वेद-लोक		४७७

सम्पादकीय—

राजस्थान में आयुर्वेद

वैद्य श्री भागीरथ जोशी सदस्य राजस्थान बोर्ड जयपुर तथा कार्यवाहक अध्यक्ष उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा, उदयपुर ने 'वे आश्वासन और यह रुचि' शीर्षक एक स्मृति-पत्र प्रकाशित किया है जिसमें उन्होंने राजस्थान के मंत्रियों, धारासभाइयों, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों इत्यादि का ध्यान उनके द्वारा आयुर्वेद के विकास और पुनर्निर्माण के लिये समय-समय पर वैद्यों तथा जनता को दिये गये आश्वासनों की ओर दिलाया है और यह सीधा प्रश्न उपस्थित किया है कि "कुर्सी पर बैठने के बाद किस मंत्री विशेष ने इस के लिए रुचि ली है ? '

स्मृतिपत्र में आगे जो कुछ कहा गया है उससे ज्ञात होता है कि राजस्थान में आयुर्वेद की स्थिति बड़ी दयनीय है । आयुर्वेद विभाग के लिए 'एक अध्यक्ष' के स्थान पर तीन अध्यक्षों की नियुक्ति, आयुर्वेद मण्डल एवं बोर्ड के लिए पृथक् धनराशि का न रखना, रजिस्ट्रेशन का अभी तक लागू न होना, नवीन आयुर्वेदीय औषधालयों का न खोला जाना, वर्तमान ३८१ राजकीय औषधालयों की दुरव्यवस्था इत्यादि विषय ऐसे हैं जिनकी ओर राज्य सरकार को अविलम्ब ध्यान देना चाहिये ।

आयुर्वेद की उपयोगिता के विषय में हम यहां कुछ कहना नहीं चाहते । सभी अधिकारी-गण उससे भली प्रकार परिचित हैं । आयुर्वेद की निधि को आज तक सुरक्षित रखने का श्रेय बहुत कुछ राजस्थान की पहली रियासतों को ही प्राप्त है, संयुक्त राजस्थान को उस परम्परा को कायम रखना चाहिये । हमें पूर्ण आशा और विश्वास है कि राजस्थान राज्य का वर्तमान अधिकारीवर्ग एवं वैद्य-समुदाय आयुर्वेद की राष्ट्रीय सम्पति को सुरक्षित रखने के साथ-साथ उसे स्मृद्ध और उन्नत बनानें की दिशा में तीव्र गति से आगे बढ़ेंगे ।

वैद्य समाज क्या करें

गत जुलाई मास के सम्पादकीय में मैंनें वैद्यसमाज के संगठन पर बल दिया था और कहा था कि समय-समय पर वैद्यसमाज पर होनें वाले आघात हमारे संगठित न होने का परिणाम मात्र हैं । इस सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों से मुझे पत्र मिले हैं जिनमें संगठन की रूपरेखा इत्यादि के विषय में प्रश्न किए गए हैं । अतएव इस दिशा में कार्य किस प्रकार किया जाना चाहिये वही संक्षेप में हम यहां लिखेंगे ।

महासम्मेलन वैद्यसमाज की केन्द्रीय प्रतिनिधि संस्था है। उसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्त, नगर, ग्राम, मण्डल, तहसील के वैद्यों को वैद्य सभाओं का निर्माण कर एक सूत्र में बांधना पहला कार्य है। इन वैद्य सभाओं का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि आयुर्वेद-विरोधी कार्यों का संगठित रूप से विरोध करें तथा सरकार को उनके विरोध में प्रस्ताव भेजें। अपने स्थान के स्वास्थ्य-अधिकारियों, प्रादेशिक मंत्रियों से शिष्टमण्डल के रूप में मिलकर आयुर्वेद के हितार्थ उन्हें स्मरण करायें कि आयुर्वेद चिकित्सा सारे भारत में चिरकाल से प्रचलित है और अल्प व्यय से अधिक लाभप्रद है अतः इसे अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिये। भारत में जब-जब संक्रामक रोगों का प्रकोप हुआ तब-तब आयुर्वेद द्वारा ही लाखों की संख्या में रोगियों को लाभ पहुंचाकर जीवन प्रदान किया गया था। वर्तमान में भी नगरपालिकाओं द्वारा जहां-जहां धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय चलाये जा रहे हैं सहस्त्रों की संख्या में जनता नित्य प्रति प्रत्यक्ष लाभ उठा रही है इत्यादि।

अपने-अपने प्रान्त के स्वास्थ्य मन्त्रियों को मिल कर उन्हें उक्त वृतान्त प्रभावशाली वैद्यों द्वारा समझाने का यत्न किया जाए तथा अन्य जो अपने परिचित मन्त्री, धारासभा तथा केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्य तथा अन्य अधिकारीवर्ग हों उनसे भी मिल कर आयुर्वेद के महत्व को समझाना चाहिये। जो-जो प्रस्ताव सभा में पास किये जाएं उनकी तीन प्रतियां होनी चाहिये। एक स्थानीय स्वास्थ्य मन्त्री को, दूसरी केन्द्रीय मन्त्री को, तीसरी महासम्मेलन कार्यालय को भेजनी चाहिये। इस प्रकार सामूहिक आन्दोलन सारे भारत में यदि आरम्भ हो जायेगा तो आशा है शीघ्र ही अवस्था साध्य हो जायेगी।

पत्रिका के लेखकों से

यह निर्विवाद है कि पत्रिका के माननीय लेखकों का हमें विशेष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ है किन्तु हम यह आवश्यक समझते हैं कि लेखकगण पहिले से अधिक पत्रिका को अपना सहयोग प्रदान करें। आयुर्वेद के ज्ञाता वैद्यवरों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने अनुभव और विचार आयुर्वेद जगत को प्रदान करें। उन्होंने किस नई वस्तु का अन्वेषण किया और किस रोगी पर किस औषध का प्रयोग कर सफलता को प्राप्त किया इत्यादि विषय ऐसे हैं जो वैद्य जगत को बड़े अध्ययन की सामग्री देते हैं।

पत्रिका के विद्वान लेखकों से हमारा एक और निवेदन भी है कि लेख लिखते समय आयुर्वेद के दृष्टिकोण को ही प्रमुख रखें। लेख यथासम्भव संक्षिप्त होना चाहिये। शैली सुन्दर तथा भाषा परिमार्जित हो। ग्रंथों से उद्धरण देते समय उसका पूरा संकेत अर्थात् ग्रंथ का नाम अध्याय और श्लोक संख्या का निर्देश अवश्य दे दें जिससे प्रूफ संशोधन में अशुद्धि की सम्भावना न रहे।

नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद्, हरिद्वार

परिषद् का द्वितीय अधिवेशन

"नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद्" का द्वितीयाधिवेशन औषधियों की पावन भूमि हरिद्वार के ऋषिकुल आ० कालेज के प्रांगणों में आयुर्वेद-जगत् के यशस्वी विद्वान् आयुर्वेद मार्तण्ड-वैद्य वाचसपति पूज्यपाद आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी की अध्यक्षता में २० मई, १९५३ से प्रारम्भ होकर २७ मई, १९५३ तक लगातार ८ दिन तक हुआ। परिषद् के इस अधिवेशन का उद्घाटन भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक राष्ट्र के कर्मवीर सेनानी श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन ने किया। आपने आयुर्वेद के प्रति अपनी महान् निष्ठा प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार के आयोजनों की सफलता की शुभ कामना की।

इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक समारोह में समस्त भारत के उच्चकोटि के आयुर्वेद विशेषज्ञों ने सम्मिलित होकर आयुर्वेद -शास्त्र के अतीव महत्वपूर्ण विषय द्रव्य के रस-गुण-वीर्य्य-विपाक-प्रभाव आदि के निर्णय के स्वरूप निश्चित करने का महान् कार्य तर्क-वितर्क-हेतु-बुद्धि-प्रत्यक्ष-अनुमान आप्तोपदेश-युक्ति आदि से परस्पर ज्ञान के आदान-प्रदान पूर्वक सामूहिक रूप से अनुसन्धानात्मक ढङ्ग से विवेचन किया है। जिससे किसी नूतन प्राप्त द्रव्य को हम अपने शास्त्रीय मूलभूत सिद्धांतों के अनुसार परीक्षण कर आयुर्वेद में स्थान दें सकें। इस प्रकार के कार्यों से हम आयुर्वेद के वैज्ञानिक विकास में निरन्तर आगे बढ़ सकते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र के प्रारम्भिक काल से ही उसका विकास इस प्रकार की सम्भाषा परिषदों के द्वारा ही हुआ है और अब आगे भी इसी ज्ञान के आदान-प्रदान की पद्धति का अनुसरण करते हुए ही अपने शास्त्र, समाज तथा अपने आप को हम समुन्नत कर सकते हैं। विज्ञान के विकास की यह पद्धति सर्वोत्तम और सर्वजन ग्राह्य है। "नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद्" इस प्राचीन परम्परा को अपना कर ही आयुर्वेद विज्ञान के विकास का कार्य कर रही है। परिषद् के सर्वसम्मत निर्णय हम पत्रिका के जून मासीय अंक में प्रकाशित कर चुके हैं। अब हम क्रमशः द्रव्य-रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव पर हुए विचार-विमर्ष का विस्तृत विवरण प्रकाशित करेंगे। विवरण बहुत लम्बा हैं अतः अविकल रूप से एक ही अंक में समाप्त करना सम्भव नहीं—इसके लिए आशा हैं पाठक हमें क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

द्रव्य पर विचार

परिषदाध्यक्ष श्री आचार्य जी का आदेश

परिषद् का प्रतिपाद्य विषय द्रव्य, गुण, रस, विपाक वीर्य-प्रभाव और कर्म है।

हमारे शास्त्रकारों ने इन छः पदार्थों के द्वारा द्रव्यों से गुण-कर्मों का निर्णय किया था। अतः सर्वप्रथम द्रव्य का विवेचन प्रारम्भ होना चाहिए क्योंकि, उक्त पाँच पदार्थ द्रव्य के अन्दर ही आश्रित हैं।

द्रव्य-गुण-विज्ञान की दृष्टि से--"द्रव्य"–पञ्च-महाभूत विकारों से उत्पन्न (आहार तथा औषध के उपयोग में आने वाले) स्थूल कार्य-द्रव्य हैं।

पदार्थविज्ञान की दृष्टि से—''द्रव्य'' उसे कहते हैं जिसमें गुण और कर्म समवाय सम्बन्ध से आश्रित हों और जो गुण कर्म तथा कार्य द्रव्य का समवायी कारण हो। चरक संहिता में द्रव्य का ऐसा ही लक्षण उपलब्ध होता है :--

"यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् तद् द्रव्यम्।" (च० सू० अ० १)

वैशेषिक सूत्र में भी इसी आशय का लक्षण मिलता है। अर्थात् जो गुण-कर्म का आशय हो वह द्रव्य है। वैशेषिक मतानुसार आयुर्वेद ने भी आत्मा, मन, काल, दिक् और पञ्चमहाभूत इन नौ को कारण द्रव्य माना है। इनमें प्रथम चार अभौतिक तथा शेष पांच भौतिक द्रव्य हैं। सृष्टि के आरम्भ में जिन परमाणुओं के संयोग से द्व्यणुकादि क्रम से महाभूतों की उत्पत्ति होती है उन्हें भूत और तन्मात्र कहा गया है।

सम्प्रति हमारा मुख्य उद्देश्य ऐसे द्रव्य-गुण-शास्त्र का निर्माण करना है; जिसमें द्रव्यों के पाञ्चभौतिक संघटन का वर्णन हो तथा कौन द्रव्य किस वर्ग का है, इसका भी स्पष्टीकरण हो। द्रव्यों के पार्थिवादि कारणों से द्रव्यगत गुण-कर्मों से होने वाले शरीर पर कार्यों का भी हमें स्पष्ट ज्ञान हो सकेगा।

मेरी इच्छा है कि इस विषय पर जो विद्वान् अपना विचार प्रकट करना चाहें वह प्रतिपाद्य विषय का ध्यान रखते हुए अपना विचार प्रकट करें। साथ ही आधुनिक विज्ञान के विद्वान् इस सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान में क्या कहा गया है—उसे परिषद् के सामने कृपया उपस्थित करें।

रसेन्द्रसार संग्रह
लेखक :—वैद्य घनानन्द पन्त, डी एस-सी (आयुर्वेद)
पाठ संशोधन, पाठपूर्तियुत विस्तृत संस्कृत टीका तथा शुद्ध हिन्दी भाषा-टीका विद्यापीठ के विशारद तथा इण्डियन मैडिसन बोर्ड यू० पी० के द्वितीय और चतुर्थ वर्ष के पाठ्यक्रमों में नियत है। मूल्य ११) रु० मात्र। प्रति संस्कृत निदान चिकित्सा मूल्य-१) रुपया।
मिलने का पता :—१६, बाजार लेन, नई दिल्ली।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास नें कहा—"यत्राश्रिताः कर्म गुणाः कारणं समवायि यत् तद् द्रव्यम् ।" चरक ने (च० सू० अ० १) में द्रव्य का यह लक्षण कहा है । लक्षण दोषत्रय रहित और सार्थ पद होना चाहिए । किन्तु यह लक्षण व्यापक द्रव्य (आकाशादि) में अव्याप्त है । यहां कुछ लोगों नें यह समाधान किया है, कि कर्म और गुण का आश्रय द्रव्य ही है । द्रव्य के अतिरिक्त कर्म और गुण का आश्रय नहीं है । 'गुणवद् द्रव्यम्' अर्थात् गुणों का आश्रय द्रव्य है, इतना ही लक्षण पर्याप्त है । उत्पन्न क्षण में द्रव्य में गुण-कर्म नहीं होते, इस न्याय के मतानुसार एक क्षण द्रव्य निर्गुण रहता है । यह सिद्धांत आयुर्वेद को स्वीकार नहीं । द्रव्यों की संख्या में आयुर्वेद और न्याय वैशेषिक में मतभेद नहीं है । नौ द्रव्य नित्य या कारण-द्रव्य हैं; न कि कार्य-द्रव्य । नौ द्रव्यों में पांच द्रव्यों को भूत कहते हैं । भूत, भौतिक, महाभूत, पञ्चभूत पञ्चमहाभूत ये सब एक चीज नहीं हैं । सुक्ष्मभूत (तन्मात्र), पञ्चमहाभूत (स्थूल भूत) परमाणु से द्व्यणुकादि क्रमेण संसारोत्पत्ति होती है । न्याय वैशेषिक के मत से कोई भी कार्य द्रव्य द्व्यणुकादि क्रम के बिना नहीं बन सकता । आयुर्वेद के मत से कार्य द्रव्यों की उत्पत्ति पञ्चमहाभूतों से होती है । न्याय वैशेषिक चार ही द्रव्यों से आरम्भ मानते हैं । आकाश को व्यापक मानेंगें तो आकाश में क्रिया नहीं है; ऐसा मानना पड़ेगा । यह मानने से शब्द में गति सिद्धि नहीं होगी, क्योंकि शब्द गुण है, उसमें गति हो नहीं सकती; गुण में क्रिया नहीं रहती । आधुनिक ईथर को भूताकाश मानलें तो कोई हर्ज नहीं है । परमाणु कारण द्रव्य सांख्य के मत से 'तन्मात्रा' है ।

आयुर्वेद—भूतपूर्व का उत्तरोत्तर में अनुप्रवेश हो कर पञ्चमहाभूत और पञ्चमहाभूत से बने गुडूची आदि द्रव्य पाञ्चभौतिक पञ्चमहाभूत विकार समुदाय सूक्ष्म तत्त्वों का जैसा विचार सांख्य और आयुर्वेद ने किया है वैसा न्याय वैशेषिक नें नहीं किया ।

विद्यापीठ स्थानिक संघ का निर्वाचन

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति के ता० २-१२-५२ के अधिवेशन के निश्चयानुसार विद्यापीठ के स्थानिक संघ के लिये मैंने विद्यापीठ के उपाध्यक्ष, वैद्य श्री घनानन्द जी पन्त, तथा सहायक मंत्री वैद्य श्री मोहनलाल जी शास्त्री के अतिरिक्त निम्नांकित ५ महानुभावों को चुना है :—

१. कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास । २. वैद्य श्री ओंकारप्रसाद शर्मा । ३. वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा । ४. वैद्य श्री स्वामी चेतनानन्द । ५. वैद्य श्री जगदीशप्रसाद शर्मा ।

श्रीदत्त शर्मा,
विद्यापीठ मन्त्री ।

श्री पं० मदनगोपाल जी वैद्य ने कहा--द्रव्य की परिभाषा में गुण-कर्माश्रय का अर्थ--गुण अथवा कर्म का आश्रय और उभय का आश्रय ऐसी परिभाषा मान लेनी चाहिए। पञ्चमहाभूतों से तीनों दोषों की उत्पत्ति नहीं बल्कि पांच दोषों की उत्पत्ति होनी चाहिए। इसका उत्तर यह हो सकता है, कि पञ्चमहाभूतों में तीन ही भूतों को कारण द्रव्य माना है; शेष दो को नहीं। जल-तेज और वायु ही स्वतन्त्रतया कारण हैं; पृथ्वी और आकाश स्वातन्त्र्येण कारण नहीं हैं। आकाश निष्क्रिय है क्योंकि पृथ्वी से कोई नया भूत पैदा नहीं होता। जैसे पृथ्वी जल से पैदा हुई है; इस प्रकार पृथ्वी से कोई नया तत्त्व पैदा नहीं हुआ है। इस लिये तीन सक्रिय तत्त्वों से तीन दोषों की उत्पत्ति हुई है यह उत्पत्ति सिद्ध है।

इसका स्पष्टीकरण श्रीयुत सभापति यादव जी ने इस प्रकार किया; कि कार्य द्रव्य अर्थात् पञ्चमहाभूत समुदाय से बने गुडूची आदि द्रव्य, घटादि द्रव्य भी कार्य द्रव्य कहलाते हैं। सभी कार्य-द्रव्य पाञ्चभौतिक अर्थात् पञ्चमहाभूत समुदाय से बने हुये हैं। 'सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे।'

आयुर्वेद के सिद्धांत से सभी कार्य-द्रव्य अर्थात् गुडूच्यादि द्रव्य पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश ये कारण द्रव्य पञ्चमहाभूत समुदाय कहलाते हैं और ये इसी पञ्चमहाभूत समुदाय से बने हुये हैं। उसमें पृथ्वी सभी पार्थिव द्रव्यों का आधार होकर कारण होती है। जल पृथ्वी के अवयवों का मिश्रण (परस्परसंश्लेष) करके कारण होता है। तेज--लाल, पीला आदि रूप का कारण होकर द्रव्यों की उत्पत्ति में कारण होता है। वायु स्पर्श के दृढ़ी करण में कारण हो कर उत्पत्ति में कारण होता है। आकाश कार्य द्रव्य के अवयवों में अवकाश देकर उसको पोला और मृदु बनाने में कारण होकर कार्य-द्रव्य की उत्पत्ति और कार्य-द्रव्य में विशेषता उत्पन्न करने का कारण होता है। इस प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांचों महाभूत मिलकर सब कार्य द्रव्यों को बनाते हैं, इसलिए सभी कार्य द्रव्य पाञ्चभौतिक हैं, यह आयुर्वेद का सिद्धांत है। वात, पित्त, कफ ये तीनों कार्य द्रव्य ही हैं, इसलिए यह तीनों ही पाञ्चभौतिक अर्थात् पञ्चमहाभूत समुदाय से बने हुए हैं।

आज का कार्यक्रम यहीं समाप्त होकर परिषद् २१ तारीख के लिए विसर्जित हुयी।

परिषद् का द्वितीय दिवस

ता० २१-५-५३ को आचार्य यादव जी ने विवेच्य विषय पर सिंहावलोकन करते हुए कहा--

सृष्टि-विज्ञान की दृष्टि से द्रव्य का--"यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् तद् द्रव्यम्।" ऐसा लक्षण मिलता है। (च० सू० अ० १)। अर्थात् जिसमें गुण

और कर्म समवाय सम्बन्ध से आश्रित हों और जो गुण-कर्म तथा कार्य-द्रव्य का समवायि कारण हो उसे द्रव्य कहते हैं। चरक संहिता में द्रव्य का ऐसा ही लक्षण मिलता है। वैशेषिक सूत्र में भी द्रव्य का इसी आशय का लक्षण मिलता है।

सृष्टि के आरम्भ में जिन परमाणुओं के संयोग से द्वि-अणुकादि क्रम से महाभूतों की उत्पत्ति होती है; उन्हें भूत और तन्मात्रा कहा गया है।

सम्प्रति हमारा मुख्य उद्देश्य ऐसे द्रव्य-गुण-शास्त्र का निर्माण करना है, जिसमें द्रव्यों के पाञ्च भौतिक संघटन का वर्णन हो तथा कौन द्रव्य किस वर्ग का है इसका भी स्पष्टीकरण हो। द्रव्यों के पार्थिवादि वर्गीकरण से द्रव्य गत गुण-कर्मों का ज्ञान हमें सरलता से हो सकेगा और द्रव्य गत गुण-कर्मों से होने वाले शरीर पर कार्यों का भी हमें स्पष्ट ज्ञान हो सकेगा। भूत, महाभूत और भौतिक इन शब्दों का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। परन्तु इन शब्दों का व्यवहार कहां ठीक हुआ और कहां सामान्य अर्थ के रूप में प्रयोग हुआ इत्यादि बातों का निर्णय होना चाहिए। ऐसा न होने से विद्यार्थी और वैद्य समाज भ्रम में रह सकता है। उदाहरणार्थ--वैशेषिक दर्शन में जो परमाणु कहे गये हैं और सांख्य में जिन्हें तन्मात्र कहा है, आयुर्वेद में इन्हें 'भूत' शब्द से प्रयोग किया गया है। पूर्व-पूर्व भूतों के अनुप्रवेश से आगे-आगे भूतों में गुण वृद्धि हुई है, इनको महाभूत और महाभूतों से उत्पन्न गुडूची आदि द्रव्यों को भौतिक कहना उचित है। शास्त्र में वर्णित वनस्पतियों के समान शास्त्र में अवर्णित वनस्पतियों की पहिचान रस-गुण-वीर्य आदि द्वारा वनस्पतियों से काम लेनें की शक्ति हम में जिससे पैदा हो वह कार्य हमें करना चाहिए। इसके लिए अध्यापन में निश्चित ग्रन्थों का उपयोग, निश्चितार्थ शब्दों का प्रयोग, निश्चित परिभाषाओं का प्रयोग और निश्चित अध्यापकों का उपयोग करना होगा।

अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में वर्णित गुण-धर्म के वर्णन से हमारा गुण-धर्म वर्णन मिलता है कि नहीं? यदि मिलता है तो कहाँ तक मिलता है और कहां तक नहीं मिलता? कौनसा वर्णन सत्य है और कौनसा असत्य है। इत्यादि बातें हमें निष्पक्ष भाव से निश्चित करनी होंगी।

श्री कुलकर्णी जी ने द्रव्य पर अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा--"प्राचीन ग्रन्थों मे जो द्रव्यों के सूत्र मिलते हैं उनसे आधुनिक ग्रन्थों का कोई मतभेद नहीं है। सारी सृष्टि जड़ सृष्टि कहलाती है। वह सृष्टि जिसमें भार हो और अवकाश ग्रहण करने की शक्ति हो। जड़ पदार्थों की तीन अवस्थायें होती हैं। यथा--घन, द्रव और वाष्प। जैसे सुवर्ण पहले घन अवस्था में होता है। अग्नि-ताप देने से वह द्रव-अवस्था में आ जाता है। और अधिक अग्नि-ताप देने से गैस अर्थात् वाष्प हो जाता है।

(शेष पृष्ठ ४६९ पर)

सन्निकर्ष

लेखक—पं० शुकदेव शर्म्मा, M. O. L., G. A. M. S.
साहित्याचार्य्य, आयुर्वेदाचार्य्य, सांख्य योगाचार्य्य
अध्यक्ष–राजकीय आयुर्वेद विद्यालय, रायपुर (म० प्र०)

इसका सामान्य अर्थ सम्बन्ध या नैकट्य (Nearness) है। आयुर्वेदज्ञों (चक्रपाणि) ने इसे समवाय तथा संयोग दोनों अर्थों में प्रयुक्त माना है, इनका अर्थ क्रमशः नित्य तथा अनित्य सम्बन्ध है। न्याय वैशेषिक में सन्निकर्ष के ६ भेद माने हैं। चक्रपाणि ने इनका भी ग्रहण किया है। वे ये हैं। (१) संयोग (२) संयुक्त समवाय (३) संयुक्त समवेत समवाय (४) समवाय (५) समवेत समवाय (६) विशेषण विशेष्य भाव। इनका विस्तार निम्नलिखित है।

१. द्रव्य का संयोग (चक्षु से घट का)

२. द्रव्य (शब्दातिरिक्त) गुण, कर्म तथा द्रव्य गत जाति संयुक्त समवाय से (जैसे चक्षु से संयुक्त घटादि, घटादि से समवेत, उसकी जाति, गुण या कर्म)।

३. शब्दातिरिक्त गुण कर्म गत जाति-संयुक्त समवेत-समवाय से चक्षु आदि से घट का संयोग, घट का उसके रूप या गुण या कर्म से समवाय, उस गुण या कर्म का अपनी जाति से पुनः समवाय।

४. शब्द का समवाय से–जैसे कर्ण शष्कुली से युक्त आकाश का शब्द से समवाय है।

५. कर्ण से समवेत समवाय सम्बन्ध–जैसे कर्ण आकाश का शब्द से समवाय सम्बन्ध है, शब्द का अपनी जाति से समवाय सम्बन्ध है।

अभाव संयोग या समवाय से पृथक् है अतः विशेषण-विशेष्य भाव में संयोग नहीं हो सकता। अतः अभाव–विशेषण विशेष्य भाव है। वह दो प्रकार का होता है। इन्द्रिय विशेष्यणक्त तथा इन्द्रिय सन्निकृष्ट विशेष्यणवत, श्रवणेन्द्रिय में शब्द का अभाव इन्द्रिय विशेषणता से ज्ञात होता है तथा दूसरे से नाना प्रकार के सन्निकर्ष का अभाव ज्ञात होता है।

ये ६ भेद नित्य वा अनित्य सम्बन्ध के पारस्परिक भेद हैं। इन्हें यों भी लिखा जा सकता है।

१. संयोग–अनित्य सम्बन्ध–जैसे काक का वृक्ष के साथ।

२. समवाय–नित्य सम्बन्ध–जैसे शर्करा का मधुरता के साथ।

३. संयुक्त समवाय–नित्य सम्बन्धयुक्त द्रव्यगुण का अन्य वस्तु से अनित्य सम्बन्ध जैसे मधुर शर्करा तथा जिह्वा का सम्बन्ध।

४. समवेत समवाय–नित्य सम्बद्ध पदार्थों का अन्य वस्तुओं से नित्य सम्बन्ध जैसे मधुर अन्न का मधुर विपाक से। अन्न का माधुर्य से नित्य सम्बन्ध है; उसका अन्न के विपाक से नित्य सम्बन्ध है।

५. संयुक्त समवेत समवाय–मधुर अन्न के मधुर विपाक का पक्वाशय से सम्बन्ध मधुर अन्न का अपने विपाक के साथ नित्य सम्बन्ध है। वह समवेत समवाय कहलाता है, उस विपाक का पक्वाशय के साथ जो सम्बन्ध है उसे संयुक्त समवेत समवाय कहते हैं।

६. विशेषण विशेष्य भाव–उक्त पांचों सम्बन्धों के अतिरिक्त सम्बन्ध को विशेषण-विशेष्य भाव कहते हैं। इसके अन्तर्गत अभाव या अन्य अवस्थायें भी आती हैं जिनका नित्य वा अनित्य कोई विशिष्ट सम्बन्ध नहीं होते हुए भी पारस्परिक नैकट्य का बोध हो।

जैसे पृथ्वी पर घड़ा नहीं है; मेरे पास कलम नहीं है। ऊपर के उदाहरण सन्निकर्ष के भेदों के हैं। नव्य न्याय-शास्त्र में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के भेद बतलाकर निम्न उदाहरण दिये गये हैं।

१. चक्षु से घट का। २. श्रोत्र सें शब्द का। ३. चक्षु से घट रूप का। ४. श्रोत्र से शब्दत्व का। ५. चक्षु से घट रूपत्व जाति का। ६. घट रहित पृथ्वी तल का।

कहना नहीं होगा कि उक्त उदाहरण विवाद की सम्भावनाओं से रहित नहीं है; और बहुत संभव है इसी कारण आयुर्वेद के मूल आचार्यों ने इन्हें निरुपयोगी समझकर इनकी विस्तृत चर्चा नहीं की।

अलौकिक प्रत्यक्ष में योगीजनों द्वारा 'दृष्ट' होने का वर्णन चरक में आया है कि 'मन को समाधि में स्थिर कर आत्मा छिपी हुई वस्तुओं को भी देख सकती है।[1].

गंगाधर कविराज ने नव्य नैयायिकों के सन्निकर्ष का प्रबल युक्तियों द्वारा खंडन किया है। उनका मत जो विस्तार पूर्वक देखना चाहते हैं वे उनकी जल्प कल्प तरु टीका (सू० अ० ८) पढ़ें, यहां उनके मत का सारांश प्रकट किया जाता है। अति सन्निकर्ष अति विप्रकर्ष आवरण इन्द्रिय दौर्बल्य, मनोइन व स्थान के राहित्य को सन्निकर्ष कहते हैं। यदि पूछा जावे कि यह 'इन्द्रिय इन्द्रियार्थ' सन्निकर्ष क्या है? तो कुछ लोग उत्तर देते हैं

---

[1] मनसश्च समाधानात् पश्यायात्मा तिरस्कृतम्। च० शा० १.

कि इन्द्रिय द्रव्य हैं, क्योंकि वे पांच भौतिक हैं, उनके विषय गुण हैं। इसलिये उनका असंयोग नामक पृथऽभाव से भिन्न अपृथऽभाव कारण समवाय कहलाता है, वही सन्निकर्ष है। संयोग को सन्निकर्ष नहीं कह सकते क्योंकि चरक ने पृथक्-पृथक् द्रव्यों के सहयोग को संयोग बतलाया है तथा यदि शब्द प्रत्यक्ष में समवाय सन्निकर्ष है तो रूपादि प्रत्यक्ष में भी समवाय मानने में क्या आपत्ति है। आधुनिक प्रमादी लोग (स्मरण रखना चाहिये कि गंगाधर नव्य नैयायिकों को 'आधुनिक प्रमादी' अविद्वान या प्रमादी कहते हैं तथा चक्रपाणि के विरोधी हैं और उनका 'कोई' के नाम से उल्लेख करते हैं।) सन्निकर्ष को सहकारी बतलाते हैं। तथा लौकिक सन्निकर्ष के ६ भेद तथा अलौकिक के दो भेद मानते हैं।

"किन्तु इनमें से कोई भेद साधारण नहीं है प्रथम तो सन्निकर्ष को लौकिक मानने में विप्रतिपत्तियां हैं। फिर उक्त ६ प्रकार के सन्निकर्षों से प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। यही हाल अलौकिक सन्निकर्ष का भी है। इसके तीन भेद बतलाये गये हैं। १. सामान्य लक्षण। २. ज्ञान लक्षण। ३. योगज। सामान्य लक्षण वह है जो एक घड़े को देखने से सब घड़ों का ज्ञान होता है। ज्ञान लक्षण उसे कहते हैं जब पूर्व दृष्ट दंडयुक्त पुरुष को आज दंड रहित भी देखें तो उसके दंड का ज्ञान होता है। योगज सन्निकर्ष दो प्रकार का होता है; युक्त तथा युञ्जान। सर्वदा सभी भावों का यथार्थ बोध कराने वाला 'युञ्जान' सन्निकर्ष कहलाता है। किन्तु पूर्वोक्त प्रकार से विचार करने पर मालूम होता है कि यह सारा विचार असंगत है। इन्द्रियों के इन्द्रियार्थ सानिध्य होने पर वह अर्थ-प्राप्ति सानिध्य से होती है। इसलिये उस अर्थ के ग्रहण में समवायादि करण व्यापार हैं; उन्हें सन्निकर्ष नहीं कह सकते तथा गौतम आदि प्राचीन आचार्यों के मत का यह विरोधी भी है अतः यह मत मान्य नहीं है। दूसरे इन्द्रियों से द्रव्य का संयोग यदि होता तो आग के देखने पर आंखें जल जातीं। अग्नि की उष्णतादि का संयोग यदि होता भी है तो वह इन्द्रियस्थ त्वचा से होता है। इन्द्रिय तो स्वयं अतीन्द्रिय हैं। दूसरे गौतमादि ने इन्द्रियों के अर्थ को कहीं भी द्रव्य नाम से अभिहित नहीं किया है।"

इस प्रसंग में उस मत का उल्लेख करना भी आवश्यक है जो आचार्य यादव जी ने अभी चोपरा कमीटी की रिपोर्ट में इन्द्रियों के विषय ग्रहण के विषय में लिखा है जिसमें आपका मत प्राचीन परम्परा के विरुद्ध अनुमित होता है।

यद्यपि नवीन मतानुसार इन्द्रियों के विषय ग्रहण की शैली कथञ्चित प्राचीन मताभास की तरह सिद्ध करने की चेष्टा उसमें की गई है। वहां आप लिखते हैं प्रत्येक इन्द्रिय से उसके उपादानांश बाहर निकलते रहते हैं। इसी को इन्द्रिय-वृत्ति कहते हैं। कहा नहीं जा सकता कि वह निष्कर्ष कहां से निकाला गया है। इसके अतिरिक्त अन्य बातें भी अपने मत प्रतिपादन में वहां जो कही गई हैं, उन्हें किस आधार पर प्राचीन मतानुकल

बतलाया गया है–कहना कठिन है। कविराज गंगाधर के मत के वह स्पष्टत: विरुद्ध है।

शास्त्र में इन्द्रियों के प्राप्य कारित्व कें विषय में शंकायें अवश्य उठाई गई हैं। पर उससे उनके उपादानांशों के बाहर आने की बात तो नितांत नवीन कल्पना है; और वह इन्द्रिय तथा इन्द्रियार्थों के द्रव्यत्व के आधार पर खड़ी की गई है। प्राचीन परम्परा के विरुद्ध तो वह है ही, नवीन विद्वान को भी अपनी इस कल्पना के आधार पर वहां 'गलत' सिद्ध किया गया है। इस नूतन कल्पना का उद्देश्य संभवत: 'इन्द्रियार्थ भी द्रव्य हैं।' यह सिद्ध करना है। चरक के जो वचन वहां उद्धृत किये गये हैं वे इस मत कें स्पष्ट परिचायक हैं। पंचेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रियार्थों को उन्होंने पृथक् क्यों कहा है, यह भी कहने का साहस मुझमें नहीं है।

कम से कम गंगाधर जो प्राचीन आयुर्वेद की दार्शनिक व्याख्या के अन्यतम प्रकाशक हैं, इस मत के विरुद्ध हैं। यह कहनें की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, इस तरह 'सन्निकर्ष' शब्द विद्वानों की प्रतिमा को कितनी दूर तक गगन विहरणार्थ प्रोत्साहित कर सकता है, यह समझना सरल है। जो हो गंगाधर आचार्य्य कहते हैं कि लौकिक सन्निकर्ष की नव्य न्यायोक्त व्याख्या जितनी अव्यवहारिक है, अलौकिक प्रत्यज्ञ की कल्पना भी वैसी ही भ्रांत है। अलौकिक सन्निकर्ष असम्भव है। एक तो गौतमादि महर्षियों के मत के वह विरुद्ध है। दूसरे एक घट के ज्ञान से घट मात्र का ज्ञान हो तो परोक्षस्थ तथा विनष्ट ज्ञान भी प्रत्यक्ष कहलायेंगे। कूपमात्र में स्नान करने से तीर्थ कूपों में स्नान करने का फल प्राप्त होगा। तलवार लिये पुरुष को बिना तलवार का देखने से उसकी तलवार का प्रत्यक्ष नहीं स्मरण होता है। योगज सन्निकर्ष भी अलौकिक नहीं होता; यदि योग शक्ति सम्पन्न मनुष्य हो तो वह आप्त है; उसका उपदेश आप्तोपदेश में परिगणित होगा। उसके द्वारा भावों का सन्निकर्ष प्रत्यक्ष नहीं, वह तो मानस ज्ञान मात्र है। केवल मानस ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कहा जा सकता है।

लेखक के 'अप्रकाशित' आयुर्वेदीय–वाद नामक ग्रंथ से।

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम,
सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है।

मधुमेह

ले०—राजवैद्य डा० बी. दत्त मिश्र, एल. एम. ए-एच. एम. डी. एस., केकड़ी (अजमेर)

मनुष्यों को धातु क्षीणता-प्रमेह आदि रोग अधिक समय तक सताने पर वे मधुमेह में परिणत हो जाते हैं--"यथा--सर्व एव प्रमेहास्तु कालेन प्रति कारिण: मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि"। अधिक परिमाण में बार-बार स्वच्छ जल के समान मूत्रश्राव होना और उसमें शक्कर का मिश्रण हो--जो शक्कर रक्त में देह रक्षार्थ उत्पन्न होती है वो शक्कर इस रोग में मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलती है--इस कारण से देह का पोषण और संवर्धन नहीं होता और शरीर शनै-शनै दुर्बल हो जाता है इस अवस्था को ही चिकित्सा-शास्त्री मधुमेह कहते हैं-यह दो प्रकार का है—यथा "मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा" मधुमेह में मधु के समान मूत्र होता है और वह दो प्रकार का है। एक शक्कर-युक्त और दूसरा शक्कर-रहित। प्रथम प्रकार के मधुमेह को जिसमें मूत्र में शक्कर जाती है डायबिटीज मेलिटस् कहते हैं (Diabetes Mellitus) और जिस मधुमेह में मूत्र बार-बार होता है किन्तु मूत्र में शक्कर नहीं होती है उसे डायबिटीज इन्सिपिडस (Diabetes Insipidus) कहते हैं। यहां सर्व प्रथम डायबिटीज मेलिटस के निदान लक्षणों को व्यक्त करते हैं।

Diabetes Mellitus डायबिटीज मेलिटस रोग के प्रधान चार लक्षण हैं (१) शरीर का शुष्क और अति दुर्बल होजाना (२) अधिक प्यास (३) राक्षसी भूक लगना जिसमें कभी तृप्ति ही न होवे और (४) अधिक परिमाण और संख्या में शक्कर मिले पेशाब का होना-यह इस रोग के प्रधान लक्षण हैं-रोग की सामान्य अवस्था में २४ घण्टों में मूत्र का परिमाण ८।१० पौंड तक होता है और उसका आपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) १०२० से १०४० तक होती है किन्तु इस रोग की कठिन अवस्था में एक रात और दिन में मूत्र का परिमाण ५०।६० पौंड तक होता है और उसका आपेक्षिक गुरुत्व १०५० से १०६० तक होता है-शक्कर प्रति औंस मूत्र में ४।५ ग्रेन से ४०।५० ग्रेन तक होती है-स्वस्थ मानव के मूत्र में आपेक्षिक गुरुत्व १०१५ से १०२४ तक होती है। मूत्र में शक्कर से अतिरिक्त एल्बुमैन अन्नरस क्षार आदि भी पाये जाते हैं, कभी कभी मूत्र का वेग तेजी से आता है और मूत्र-नली में क्षत भी हो जाते हैं--इस रोग में डायबिटीज कोमा "मधुमेहज मूर्च्छा" लक्षण अत्यन्त घातक है यह सहसा उत्पन्न हो सकता है किन्तु इसके होनें के पूर्व चार प्रधान लक्षण होते हैं। और रोग में सहसा शांति

देखने में आती है और यह चारों लक्षण भी एक एक करके उत्पन्न हो जाते हैं उसके बाद ही मूर्च्छावस्था को Coma Diabetes कहते हैं। यह अवस्था घातक अवस्था है। चारों लक्षण (१) पेशाब की संख्या और परिमाण दोनों ही का सहसा घट जाना (२) मूत्र में शक्कर का आना सर्वथा सहसा बन्द हो जाता है (३) भयंकर कोष्ट-बद्धता का हो जाना (४) क्षुधा का सर्वथा अभाव। यह चारों लक्षण खतरे की घंटी हैं–समझें की रोग का भावी परिणाम खतरनाक है। स्वस्थ मानव के मूत्र में भी शक्कर पाई जाती है किन्तु अन्य कोई भी उपसर्ग मधुमेह के नहीं होते हैं–शक्कर का रक्त में विलीन होजाना स्वाभाविक नियम है इससे स्वास्थ्य और Vital Heat का संरक्षण होता है। जितनी मात्रा में शक्कर विलीन हो सकती है उतनी विलीन हो जाती है और शेष भाग मूत्र द्वारा देह से बाहर निकल जाता है यह एक प्राकृतिक नियम है। शक्कर मिले हुए पेशाव के मधुमेह के भी दो भेद हैं (१) सहजोत्पन्न (२) कष्ट साध्य, कठिन प्रकार का।

(१) सहजोत्पन्न मधुमेह (Diabetes of Mellitus) में रोगी अधिक दुर्बल नहीं होता है और न अधिक प्यास और भूख ही लगती है, न चेहरे का ही परिवर्तन होता है और न अधिक मूत्र ही लगता है—केवल मूत्र परीक्षण में शक्कर और अन्य पदार्थ पाये जाते हैं, युरिया युरिक एसिड आदि–यह इस रोग के सामान्य प्रकोप के लक्षण हैं यदि इसमें पथ्य आदि पर पूरा पूरा ध्यान रखा जावे और शक्कर का सर्वथा त्याग कर दिया जावे तो इस रोग से सहज ही मुक्ति हो सकती है। यह रोग ४० वर्ष के पश्चात् ही होता है।

(२) कष्ट साध्य मधुमेह—इस अवस्था में यदि रोगी शक्कर नहीं खाता है तो भी मूत्र में शक्कर जाती है जो यकृत के द्वारा सदा बनती है और यकृत में इस रोग के कारण ग्लाइकोजन के रूप में बदलनें की शक्ति नहीं होने से यह शक्कर मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलती है–इस अवस्था में रोगी निर्बल, रक्तहीन, अधिक भूख और प्यास से पीड़ित रहता है, पाचन शक्ति की गड़बड़ी रहती है रोग के उपसर्ग जल्दी

मलेरिया की शर्तिया दवा

कुनीन की तरह तत्काल ज्वर को भगा देती है और विशेषता यह है कि कुनीन जैसे दोष इसमें नहीं हैं। विशेष विवरण के लिये लिखिये।

बी० डी० सुगन्ध एन्ड को०
पोस्ट बक्स नं० १२२७, देहली।

जल्दी बढ़ जाते हैं इस प्रकार की व्याधि का ४० वर्ष पूर्व ही प्रकोप होता है इस व्याधि के आक्रमण में स्नायुमण्डल "Nervous System" पर बड़ा आघात होता है जिससे मस्तिष्क के स्तैहिक स्नायु उत्तेजित हो कर और भी शारीरिक क्षति करते हैं। इस रोग में पूर्ण पथ्य और उत्तम औषध और शास्त्रज्ञ और अनुभवी चिकित्सक और रोग की प्रारम्भिक बेला ही हो तो अवश्य ही रोगी अधिक समय तक जीवित रह सकता है। किन्तु जब इस रोग में मूर्च्छा "Coma Diabetes" उत्पन्न हो जाता है तब उस अवस्था को प्राणघातक समझना चाहिए जिसका सम्यक् विवेचन डायबिटीज मेलिटस के अन्तर्गत किया गया है उसके चार प्रधान लक्षण बताये हैं उन पर ध्यान रखना जरूरी है।

अब इसका दूसरा भेद है जिसे डायबिटीज इन्सिपिडस "Diabetes Insipidus" कहते हैं। इसके उत्पन्न होने के निम्न प्रधान कारण हैं। उदररोग या उदर ग्रंथि या उदर वेष्टक पेशी का प्रदाह आंत्र प्रदाह आदि रोगों के भोगने के पश्चात्-मस्तिष्क संबन्धी रोगों के कारण या किसी नये रोग के भोग काल के पश्चात् सततज्वर-मधुरा Typhoide fever और स्नायुमण्डल पर सहसा आघात लगने से अधिक मानसिक चिंता शोक भय तथा अधिक मादक द्रव्यों के सेवन करने से मस्तिष्क को आघात पहुंचने पर इस रोग का आक्रमण होता है। इसमें मूत्र द्वारा शक्कर नहीं जाती है केवल मूत्र बिना शक्कर के अधिक परिमाण में होता है। मूत्र का गुरुत्व Specific gravity स्वाभाविक अवस्था की अपेक्षा कम होती है और सामान्यतः स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को यह रोग अधिक होता है। मूत्र बिना शक्कर के बार-बार तथा अधिक प्रमाण में होता है और मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व $\frac{१००१}{१००१}$ से $\frac{१००५}{१००५}$ होता है और मूत्र साफ और निर्मल जल कें समान होता है-इस अवस्था में मूत्र में कोई रंग नहीं होता है और युरिया की मात्रा अधिक होती है और कभी-कभी तृष्णा का भी ह्रास देखा जाता है मुख सदा सूखा रहता है शरीर का ताप Vital Heat बहुत घट जाता है और क्षुधा सामान्य सी रहती है और भोजन करने पर रोगी कुछ सुख अनुभव करता है। इस रोग की चिकित्सा में काफी समय लगता है किन्तु यदि इस रोग में आभ्यंतरिक यंत्रों की कोई गड़बड़ी न हो तो सहज ही में मृत्यु नहीं हो सकती है। अब शक्कर किस प्रकार बनती है और मूत्र द्वारा कैसे शरीर से बाहर निकलती है उसकी यहां संक्षेप से शारीरिक प्रक्रिया का विवेचन करके पुनः लेख को समाप्त करूंगा।

हम सदा चावल गेहूं का आटा–सूजी-मैदा फल आदि खाते हैं और आलू टमाटर गोभी गाजर आदि शाक भी खाते हैं। यह सब खाद्य आंतों में पचकर सार भूत रस रसवाही श्रोतों द्वारा शरीर में घूमकर पुनः यकृत् में जाता है तब यकृत् उस रस "ग्लाईकोजेन" शक्कर को पूर्ववर्ती अवस्था में बदल कर यकृत कोषों के भीतर

ही रखता है । पुनः वह शर्करा यकृदीय शिरा 'Portal Vain'' में प्रविष्ट करके सम्यक शक्कर में परिणत हो जाती है । वहां से अधोगा महाशिरा के द्वारा हृत्पिण्ड में और हृत्पिण्ड से फुप्फुसों में और फुप्फुसों द्वारा रक्त के साथ हृत्पिण्ड में फिर शरीर के सब स्थानों में आवश्यकतानुसार जाती है । अधिक दिनों तक धातुक्षीणता प्रमेह आदि तथा अन्य इस रोग को उत्पन्न करने वाले कारणों से यकृत की ग्लाईकोजन में रस को बदलने की क्रिया शिथिल हो जाती है तब शक्कर वृक्कों द्वारा मूत्र में मिलकर बाहर निकलती है । इसके अतिरिक्त शक्कर अधिक मात्रा में संचय हो जाने पर भी अनावश्यक अंश मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है किन्तु वह प्राकृतिक कारण है और जो रोग रूप में निकलती है और उस रोग (Diabetes) के सब उपसर्ग विद्यमान हों उस अवस्था में शक्कर का निकलना हानिकारक है और इस अवस्था को ही Diabetes डायबिटीज या मधुमेह कहते हैं ।

* * *

क्षय की एक प्रभावशाली औषध

कुमुदेश्वर रस

निर्माण–शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, चांदी भस्म, सुहागा, स्वर्ण माक्षिक भस्म सब समान भाग लेकर कांजी की भावना देकर लवण यंत्र में पकावें ।

यह राजयक्ष्मा की बहुत गुणकारी औषध है । राजयक्ष्मा की प्रथम और द्वितीयावस्था में अचूक कार्य करती है । इसके सेवन से क्षय के कीटाणु नष्ट होते हैं और कास और ज्वर की शांति होकर रोगी रोग-मुक्त हो जाता है ।

फुप्फुस के रोग में यह अच्छा लाभ करती है ।

चिकित्सक इस योग का प्रयोग करके चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं ।

मूल्य–१ तोले का रुपये ४०-०-०

ऊंझा फार्मेसी लि० ऊंझा (गुजरात)

किसी भी आयुर्वेदिक औषध के लिये ऊंझा याद रक्खें ।

वर्षा ऋतु में कैसे रहें

(ले०—ताराशंकर मिश्र वैद्य ,दारानगर, बनारस)

यह आषाढ़ सावन का सुहावना महीना, रिमझिम-रिमझिम बरसती हुई पानी की बूंदें, भरे हुए जलाशय, चारों ओर फैली हुई हरियाली और ठंडी-ठंडी हवायें प्राणियों को सुख से सराबोर कर देती हैं। एक ओर उमड़े हुए काले-काले बादलों को निहार कर धरती के लाल आनन्दविभोर हो जाते हैं तो दूसरी ओर उनकी देवियां अगणित त्योहारों की तैय्यारी में फूली नहीं समातीं। उनके कोमल कंठों से निकली हुई कजली आकाश को स्वर देती है तो झूले के झकोरे वायु को झकझोर कर जगाते रहते हैं। कुल मिलाकर यह ऋतु हंसी खुशी और आगे वर्ष भर के लिये उसकी तैय्यारी के दिन हैं।

लेकिन इसमें रहने के सही ढंग को न जानने के कारण लोग बहुत दुख भी झेलते हैं। ऐसे लोगों के लिये हंसी खुशी के ये दिन दुख के दिनों के समान पहाड़ जैसे हो जाते हैं। इसीलिये हम कहेंगे कि आप इधर थोड़ा सा ध्यान दें और इसकी ऋतुचर्या जानकर काम में लायें।

यह आप जानते ही हैं कि गर्मी के दिनों में लोग ठंडी चीजों का व्यवहार अधिक करते हैं। बस इसी से शरीर में वायु बनता है जो बाहर की गर्मी के कारण कुपित नहीं हो पाती। लेकिन शरीर में संचित होती रहती है। वर्षा के दिनों में चारों ओर से ठंडक पाकर वही वायु कुपित होकर सभी लोगों के शरीर में मीठी-मीठी दर्द पैदा कर देती है। लकवा गठिया आदि वात के पुराने रोग विशेष बढ़कर कष्ट देते हैं। वायु के इसी प्रकोप को बचाने के लिये प्रकृति चिकनी गरम चीजों की मांग करती है। इसीलिये इस ऋतु में ऐसी चीजें खाने के लिये सभी का जी विशेष ललचता रहता है। यह लालच बुरी नहीं, इसे पूरा करना चाहिये। बढ़िया घी में बनी हुई कचोढ़ी, पूड़ी और मालपूवा आदि गरम गरम खाना चाहिये शुद्ध सरसों के तेल में बनी हुई बरी पकौड़ी और सेव आदि खाइये। खट्टी तीती मसालेदार चीजों की ओर भी मन दौड़ता है। मन की इस दौड़ से घबड़ाने की जरूरत नहीं। इसलिये कि यह भी इस ऋतु में अग्नि को ठीक रखने एवं शरीर को निरोग रखने के लिये प्रकृति की मांग है। अतः इन्हें भी अवश्य खाइये पर याद रखिये ये चीजें अधिक खाने के लिये नहीं बनी हैं। थोड़ा सा खाकर जी बहलाकर बन्द कर दीजिये। सड़ी गली बासी चीजें तनिक भी न खाइये। जो कुछ खाइये वह ताजा और गरम-गरम हो। अग्नि को दीप्त करने और वायु को शांत रखने के लिये लहसुन, प्याज आदी का व्यवहार प्रतिदिन कुछ न कुछ अवश्य करते रहें। चना मटर आदि रूखी कसैली चीजें मत खाइये। इनसे वायु बढ़ता है। सावन साग न भादो दही के अनुसार साग और दही

बिल्कुल न खायें। कभी-कभी पानी में नींबू का रस डाल कर अथवा नींबू का शर्बत अवश्य पीयें।

इस ऋतु में तेल की मालिश खूब करनी चाहिये। मालिश के बाद स्नानकर शरीर को सूखे कपड़े से पोंछ कर अच्छी तरह सुखा लें। फिर श्वेत स्वच्छ और महीन कपड़े पहनें। यह स्मरण रक्खें कि आजकल नदी या तालाब में कदापि स्नान मत कीजिये और न उसका जल ही पीजिये। यदि लाचारी हो तो इस जल को अच्छी तरह नितार कर और उबाल कर व्यवहार करें। स्नान के बाद जूही, बेला, चमेली और रजनी गन्धा आदि के फ़ूल धारण करें। इनके इत्र का भी व्यवहार करें। बिना छाता के बाहर मत निकलिये। नहीं तो भीग जाने पर बड़ी तकलीफ होगी। कमजोर लोगों और दमा के रोगियों को तो जरा सा भींगने पर भी कष्ट बढ़ जाता है। नंगे पांव भी बाहर जाना अच्छा नहीं। कीचड़ और पानी से पैर भीगने के डर के साथ ही सांप बिच्छू आदि जानवरों का विशेष डर रहता है। आजकल रबड़ का जूता सुविधा-जनक है। चमड़े का भी काम में ला सकते हैं। यदि इसका तल्ला रबड़ का हो तो अधिक अच्छा है। थोड़ा टहलना हो तो भी खडाऊं, खटनही और चट्टी आदि लकड़ी के उपानह व्यवहार में लाइये। कृपा कर चप्पल का व्यवहार बन्द कर दीजिये। नहीं

विश्वख्याति
टैब्लेटस रस भस्म
आसव अवलेह चूर्ण
घृत तैल आदि
वैज्ञानिक विधि से निर्मित
विवरण के लिये लिखें
अेपोलो फार्मा. वर्क्स लिमिटेड
बरोडा २

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें। (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें। (३) महासम्मेलन और वैद्य-समाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (६) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट और शुद्ध भाषा में हों। (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें।

तो आपके कपड़े आपकी बेवकूफी पर हसेंगे ।

दिन में मत सोइये नहीं तो अग्नि मन्द पड़ जायगी और खट्टे डकार आने लगेंगे । खट्टे डकार में नींबू का शर्बत या सोडावाटर अच्छा काम करता है । रात में खुली छत पर अथवा बरंडे में भरपूर नींद सोइये । मच्छरदानी लगा लें तो बहुत अच्छा । नहीं तो मच्छरों से बचने का कोई और उपाय कीजिये । जमीन पर कभी मत सोइये, न बैठिये । चारपाई या कोई ऊंचा आसन होना चाहिये । रात में बाहर टहलना पड़े या कहीं दूर जाना पड़े तो साथ में ऐसी लाठी या छड़ी लेकर चलिये जिससे कुछ आवाज निकलती हो इसे सुनकर सांप आदि जानवर दूर भाग जाते हैं ।

आजकल दाद खुजली का प्रकोप बहुत लोगों में देखा जाता है । पुरानी दाद भी उभड़ जाती है । इसका विशेष कारण गीली और नमकीन वायु है । इस पर भी यदि शरीर को बिल्कुल सूखा न रक्खा जाय या जरा सा गीला कपड़ा पहन लिया जाय तो बहुत बड़ी आफत है । जरा सी गलती से आफत मत लीजिये । यदि दाद खुजली हो ही जाय तो उसे फिनाइल के घोल या साबुन और गरम पानी से प्रति दिन धोकर साफ कपड़े से पोंछ कर सुखा लें । चौकिया सुहागा का लावा मिला हुआ सरसों का तेल लगायें । केवल फिनाइल लगाने से भी दाद खुजली में लाभ होता है ।

खुजली वाली छोटी छोटी फुन्सियों के रूप में हाथ और पांव में अपरस उकवत बड़ा कष्ट देता है । इस पर पानी न पड़े तो अच्छा है । यदि पड़ ही जाय तो पोंछ कर सुखा लेना चाहिए । इसकी सफाई केवल फिनाइल से करिए । बाद में भेड़ का घी लगाते रहें तो निश्चित लाभ होता है ।

गीले पांव रहनें से उसकी अंगुलियों के हिस्से सड़ कर कष्ट देते हैं । इससे बचने के लिए पांव को अधिक देर तक पानी में रहनें से बचाइये । पांव भीगने पर उसे अच्छी तरह पोंछ कर सुखा दीजिये । विशेषकर अंगुलियों के बीच के हिस्से को अवश्य सुखाइये । यदि आपकी असावधानी से यह सड़ ही जांय तो इन्हें प्रति दिन साफ कपड़े से पोंछ कर सुखा कर सरसों का तेल लगाइये । थोड़ी सी सावधानी से आपका दुख दूर हो जायगा ।

छोटी छोटी फुन्सियां निकल कर अधिक कष्ट देती हैं । उन पर संगजराहत पत्थर या सेलखड़ी पानी में घिस कर लगाते रहें । विशेषकर सर की फुन्सियों में तो बड़ा लाभ करता है । पर इससे बाल झड़ जाते हैं । जो बाद में अपने आप उग आते हैं । पकनें लायक छोटी फुन्सियों में विरोजा या जंगाल की पट्टी बड़ा लाभ करती है । देह में पसीना मरनें और ठीक ढंग से स्नान न करने से अम्भौरी बहुत निकल कर सारे शरीर में चुनचुनाहट पैदा कर देती है । लोग इसमें चिकनी मिट्टी रगड़ते हैं पर लाभ नहीं होता ।

इसमें भी उपरोक्त संगजराहत का चूर्ण मलनें से बड़ा लाभ होता है। इसी का चिकना पाउडर बना कर व्यापारी लाखों रुपया कमाते हैं। पर यह दो चार पैसे में पंसारियों के यहां मिलता है। मुंह की छोटी छोटी फुन्सियों पर काली मिर्च और हल्दी का चूर्ण मिला कर सरसों का तेल लगाइये।

आजकल मियादी या मोतीझरा ज्वर भी बहुत होता है। इसमें लवंग और और बायविडंग को जल में पका कर अष्टमांश शेष रख कर प्रति दिन चार बार पिलाने से बड़ा लाभ होता है।

मलेरिया में क्विनाइन बहुत काम करती है। पर उसके साथ दूध देना आवश्यक है। उसका अधिक सेवन भी हानि करता है। ज्वर आने के एक घंटा पहले फ़िटकरी कां चूर्ण १ माशा के लगभग बराबर गुड़ के साथ खिला देने से बड़ा लाभ होता है। यह मात्रा ५ वर्ष से लेकर १०० वर्ष तक के लोगों के लिए है। दो तीन बारी में दे देनें से मलेरिया नष्ट हो जाता है।

यदि दमा उभड़ जाये तो इसमें केंवल गर्म पानी पिलाइये। ठंडा पानी पीने को एक दम न दीजिए। निश्चित लाभ होगा। बाद में धीरे धीरे कम ठंडा पानी पिलाइए। यदि ताल मिश्री और मुलहठी मिल जाय तो चूसने से बड़ा लाभ होता है। आदी और लहसुन का व्यवहार भी लाभकर है।

इस प्रकार कुल मिला कर साधारणतः यही बीमारियां वर्षाऋतु में होती हैं। ऊपर बताए हुए उपाय सभी जगह किये जा सकते हैं। न जानने पर पड़ोसियों या पास के पन्सारी अथवा बैद्य से जाने जा सकते हैं। इनका उपयोग कर लाभ उठायें।

अन्त में हम प्रार्थना करेंगे कि इस ऋतु में थोड़ी सावधानी बरतें तथा स्वयं सुखी रहकर पास पड़ौस वालों को भी सुखी रखकर अपना पूरा वर्ष मंगलमय बनायें।

विशुद्ध वैज्ञानिक रीति से बने हुए

तत्काल फलदर्शी-आयुर्वैदिक इंजैक्शन आधे मूल्य की वी० पी० से-एक हजार वैद्यों के लिये प्राप्त होंगे। इंजैक्शन आदि शिक्षाओं के लिये भी प्रवेश चालू है, वेतन से काम करने वाले ५ वैद्य भी चाहियें। नियम सूचीपत्र मंगाकर देखें।

पता-सिद्धि फार्मेसी, ललितपुर (झांसी) उ० प्र०

भारत एवं मध्यभारत सरकार से खुली अपील

कन्हैया लाल अजमेरा, मंत्री, नागरिक कष्ट निवारक संघ, तथा संयोजक-आयुर्वेदिक स्वास्थ्य सेवा-समिति, इन्दौर।

स्वतन्त्र भारत में विदेशियों की शिक्षा का कुचक्र।
साइन्स के नाम पर करोड़ों रुपयों का अपव्यय।
भारत के नागरिकों की निरपराध हत्या।

भारत में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली द्वारा गांवों, कस्बों और नगरों की ९९ प्रतिशत जनता लाभ उठाती है। परन्तु दुःख है कि भारत स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् भी भारत में विदेशियों की गुलामी की शिक्षा का कुचक्र चालू है, और वह है...ऐलोपैथी चिकित्सा की शिक्षा....जो करीब ९,१० वर्षों में हजारों रुपये खर्च करके एम.डी.एफ. आर.सी.एस. आदि की डिग्रियां प्राप्त होती हैं और फिर इंग्लैंड रिटर्न होने के पश्चात् भी ९, १० वर्ष प्रेक्टिस की जाती है। जिसके द्वारा भारत के नागरिकों की खुले आम लूट और निरपराध हत्याएं हो रही हैं। जिसका प्रमाण स्वयं योग्य विद्वान डाक्टरों की सम्मतियां हैं जैसा कि:--

१. **डा. राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति भारत:** मैं मानता हूं कि आयुर्वेद में ऐसी औषधियां मौजूद हैं जिनकी तुलना दुनियां में सारी पद्धतियों की औषधियां नहीं कर सकतीं। आयुर्वेद को आज भी ग्राम की अधिकांश जनता का विश्वास प्राप्त है।

२. **डा. सर विलियम आस्लर:** हम उन औषधियों का उपचार करते हैं जिनका हमें कुछ पता नहीं होता और मनुष्य के शरीर का तो हमें बहुत कम ज्ञान है.

३. **डा. मैसन गुड:** हमारी औषधियों के उपचार से संसार में जितनी मृत्यु होती हैं उतनी जंग, अकाल और बिमारी से भी नहीं होतीं।

४. **डा. वोस टोक:** हमारी दवाइयों की हर एक खुराक बीमार की प्राण शक्ति को कम करती है।

५. **डा. मैगेनडी:** हमारी दवाइयों को साइंटिफिक कहा जाता है परन्तु मैं तो इनको हमबग कहूंगा। यह साइंस नहीं है।

६. **डा. सर रिचर्ड डगलस पाबेल:** हम अपनी दवाइयों की बहुत बड़ाई करते हैं पर आज तक मामूली जुकाम को ठीक नहीं कर सकते।

७. **डा. बारकर:** स्कार्लेट बुखार में जो दवाइयां हम देते हैं उनके कारण जितनी मृत्यु होती हैं उतनी स्कार्लेट के बुखार से भी नहीं होतीं।

८. **डा. बैज मिनरश:** हमनें अपनी दवाइयों से संसार में रोगों की वृद्धि की है।

९. डा. बरोडी : हमारी हर रोज के काम में आने वाली जहरीली दवाइयां गिनती में १०७ हैं और इस जहर के खिलानें-पिलानें का नाम साइंटिफिक मैडिसिन है और कानून इस जहर को फैलानें की इजाजत देता है।

१०. डा. जेम्स : रोगों का हमारा उपचार न तो साइंस है और न आर्ट यह तो एक बहुत बड़ा व्यापार है।

११. डा. प्रोफेसर ग्रेगरी : हमारे ९९ प्रतिशत चिकित्सा विवरण झूठे हैं तथा चिकित्सा सम्बन्धि सिद्धान्त अधिकतर निरे मूर्खतापूर्ण हैं।

१२. डा. मेकेन्ज़ी : जो डाक्टर दवाइयां देता है वह उसके असर को नहीं जानता।

१३. डा. ऐलीजान्स : मैं धर्म से कह सकता हूं कि मैंने कभी कोई केन्सर का आप्रेशन ठीक होता नहीं देखा. यह साइन्स के नाम पर कसाईपन है।

१४. डा. जार्ज क्लार्क एम. डी. फिलेडेलफिया : यदि आधुनिक औषधियों को हटाकर चरक के सिद्धान्त को अपनाया गया तो कबरें खोदने वालों के लिये काम घट जायेगा और संसार में जीर्ण रोगी कम रह जायेंगे।

१५. डा. एल. मेलर : कई डाक्टरों नें अपने साधारण प्रतिशत जुकाम की सलफोनामाइड्ज और पेनिसिलीन से चिकित्सा की इसके फल स्वरूप उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार बहुत से योग्य अनुभवी डाक्टरों की सम्मतियां हैं फिर भी विदेशी औषधियों की कम्पनियां कुछ डाक्टरों को अपने कमीशन एजेन्ट बना कर भारत में विदेशी संदिग्ध औषधियां बी. सी. जी. आदि जैसी के लिए प्रचार करती हैं और उसमें करोड़ों रुपयों का खर्च करती हैं।

उन कमीशन एजेन्ट साइंस वालों का बी. सी. जी. के टीके का प्रचार यह है कि पच्चीस वर्ष के अनुभव से यह सिद्ध किया है कि :—

१. बी. सी. जी. का टीका तपेदिक का इलाज नहीं किन्तु उसे रोकने के लिये है।

२. और अब तक संसार में दो करोड़ टीके लगाये जा चुके हैं।

३. भारत सरीखे गरीब देश जहां अच्छे हवादार मकान तथा पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और तपेदिक के इलाज का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं है वहां बी. सी. जी. का टीका अमूल्य देन है।

४. भारत सरकार एवं प्रान्त की सरकार की ओर से यह टीका मुफ्त लगाया जाता है।

यह भारत के भोले नागरिकों को कैसा भूल-भुलैया में डालनें वाला प्रचार है और

इसका परिणाम क्या है ? जबकि बी. सी. जी. का टीका तपेदिक का इलाज नहीं वह तो केवल उसे रोकने के लिये है तो जिसके द्वारा यह रोग उत्पन्न ही न हो वह इलाज भारत में हवादार मकान, शुद्ध दूध, घृत, तेल इत्यादि वस्तुओं के मिलने का प्रबन्ध क्यों नहीं किया जाता ?

सरकार ऐसी व्यर्थ सेवा करने में करोड़ों रुपया पानी की तरह क्यों बहाती है और आखिर यह खर्च कहां से आता है समझ में नहीं आता। मध्य भारत में भी इसका प्रचार जोरों से हो रहा है और बिना पालकों की सम्मति के साइन्स के एजेन्ट बन्दर वालों की भांति तमाशा दिखा करके बच्चों को इकट्ठा करते हैं और अनाधिकार से टीका लगाते हैं। यह कहां तक उचित है। मैं भारत सरकार एवं मध्य भारत सरकार के डायरेक्टर साहब स्वास्थ्य विभाग से इस खुली अपील द्वारा पूछना चाहता हूं कि वह सही माने में उसका उत्तर साधारण जनता के समक्ष देवें।

हमारे आयुर्वैदिक इंजेक्शनों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है

भारतवर्ष में सबसे प्राचीन वा पूर्ण वैज्ञानिक प्रणाली युक्त
झण्डा आयुर्वैदिक इंजैक्शन्स

आयुर्वैदिक औषधियों के सुरासार (टिञ्चर्स)

आयुर्वैदिक इंजेक्शन्स निर्माण क्षेत्र में यह प्रथम उच्चकोटि की प्रयोगशाला है जिसने विशिष्ठ चुने योगिकों द्वारा इंजैक्शन्स निर्माण कर आयुर्वेद जगत में एक स्टैण्डर्ड प्रस्तुत किया है और फैली निराशा को दूर किया है। दुःसाध्य रोगों की सरल और सस्ती चिकित्सा है।

हर जगह एजैण्टों की आवश्यकता है। पूर्ण जानकारी के लिये वैज्ञानिक निर्देश पत्रिका (सूचीपत्र) मुफ्त मंगाइयें।

हमारे विशेषज्ञों ने इन इंजैक्शनों की उच्चकोटि की आयुर्वैदिक वैज्ञानिकता और विशुद्धता केन्द्रीय और प्रान्तीय ड्रग्स अधिकारियों के समक्ष सिद्ध की है। अतः इन पर ड्रग्स एक्ट लागू नहीं होता है। हर एक चिकित्सक इनको स्वतंत्रता के साथ रख सकते हैं और व्यवहार में ला सकते हैं।

निर्माता—
आचार्य बाबूराम मिश्रः रिसर्च इन्स्टीट्यूट
(झण्डा आयुर्वैदिक फार्मस्युटिकल वर्क्स)
हापुड़ (उत्तर-प्रदेश)

ROLE OF DIAMOND ON CANCER

By

Ayurvedacharya Dr. Antubhai Vaidya, D. Sc. (Ayur)

Director, Ayurveda Research Institute,

BOMBAY

(Continued from July issue page 408)

An extract prepared from the seeds was tried by us in a number of cases. The drug undoubtedly has diuretic properties, but showed no advantage over many of the diuretics in the British Pharmacopoeia. The diuretic properties no doubt are due to the large quantities of the nitrates present as well as the essential oil which occurs in the seeds. The claims put forward regarding its efficacy in other conditions above stated cannot be substantiated (Chopra and Ghosh).

Sushruta prescribes the root in combination with other drugs in the treatment of scorpion sting; but it is not an antidote to scorpion venom (Caius and Mhaskar).

The following substances are found in the fruit:— an alkaloid in traces (0.001 per cent); fixed oil 3.5 per cent consisting mainly of unsaturated acids; essential oil in very small quantities; resins; fair amounts of nitrates (Chopra and Ghosh).

The plant is the cause of *geeldikkop* (*dikgeel*) in small stock, a condition characterised by oedema of the head, fever and jaundice (Watt and Breyer-Brandwijk).

Crataeva religiosa, Hocak ; Hindi—Barun.

"Stomachic, laxative, diuretic, Bark (is useful) in calculus affection and in snake bite"—Col. Chopra.

"The bark is hot, bitter at first, and then sweet sharp taste;

easy to digest ; stomachic, laxative, antilithic, vesicant, anthelmintic, detergent, bechic, expectorant ; removes "vata", good in strangury, diseases of the chest and the blood, tuberculous glands ; causes biliousness ;—The flowers are astringent and cholagogue. The fruit is sweet and oily. ; laxative ; removes "vata," "Pitta," and "Kapha" (Ayurveda).

The bark promotes appetite, decreases the secretion of the bile and phlegm, and removes disorders of the urinary organs (Yunani).

The plant in combination with other drugs is recommended for the treatment of snake bite (Sushruta) and scorpion sting (Charaka). In Ceylon the bruished roots, leaves and seeds are applied to the wounds (Roberts).

The bark is demulcent, antipyretic, sedative, alterative, and tonic ; and the fresh leaves and root-bark are rubefacient.

The bark is useful in some cases of urinary complaints and fever, and in some mild forms of skin diseases in which sarasaparilla is generally resorted to. It also relieves vomiting and other symptoms of gastric irritation. The fresh leaves and root-bark, particularly the former, are very efficacious in all the affections in which mustard poultice is indicated.

Bruised well with a little vinegar, lime juice or hot water and applied to the skin in the form of a poultice or paste, the fresh leaves act as a rubefacient and vesicant.

In Ceylon the leaves are used for gouty swellings. In Bombay they are a remedy for swelling of the feet, and a burning sensation in the soles of the feet. In the Konkan the juice is given in rhemuatism. In caries of the bones of the nose, the leaf is smoked and the smoke exhaled through the nose.

A couple of buds pounded with salt are taken before meals to promote the appetite. In indigestion they must be given after meals.

Bauhinia Variegata, Linn., Hindi—Kachnar.

"Alterative, tonic, astringent, (useful) in Scorpila, ulcers, dysentry and antidote snake poison, gum."—Col. Chopra.

"There are two varieties, red and white. The bark of both is alterative, tonic, astringent. 1. Red-flowered variety :—The bark is acrid, cooling, laxative, appetising, astringent to bowels in some doses ; cures biliousness, "Kapha" and "vata" ulcers, tuberculous glands, leprosy. The flowers are acrid dry, sweet, cooling, astringent, galactagogue; cure diseases of the blood, bronchitis, consumption, vaginal discharges, biliousness, headache, "tridosha". The juice of the root is given internally in snake-bite. 2. White-flowered variety :— The bark is acrid, sweet ; appetising, cooling, astringent to the bowels ; cures biliousness, "kapha," leucoderma, anal troubles, tuberculous glands, cough, asthma, diseases of the blood, ulcers, vaginal discharges ; anthelmintic ; used in strangury, thirst, burning sensation (Ayurveda).

The bark is astringent to the bowels, tonic to the liver, cures biliousness, leucoderma, leprosy, dysmenorrhoes, menorrhagia impurities of the blood, tuberculous glands, asthma, wounds and ulcers ; used as a gargle in stomatitis. The buds are acrid indigestible ; used in piles, cough, eye diseases, liver complaints ; astringent to the bowels, styptic in haematuria and menorrhagia (Yunani).

In the Konkan, the juice of the fresh bark with the juice of the flowers of *strobilanthes citrata,* 10 tolas of each, is given as an expectorant, and the bark is used with ginger as an internal remedy for scrofula.

The root in decoction is given in dyspepsia and flatulency ; the flowers with sugar as a gentle laxative; and the bark, flowers, root triturated in rice water as a cataplasm to promote suppuration. The dried buds are used in piles and dysentery. They are considered cool and astringent, and are useful in diarrhoea and worms.

The root is prescribed in combination with other drugs for the treatment of snake-bite (Charaka, Sushruta).

Asphalt (Silajit)

"It is said to be efficacious against Phthisis, chronic bronchitis and asthma, digestive troubles, renal and bladder calculi, dropsy, nervous diseases, leprosy, diabetes, fracture of bones, etc. It is also used as an antiseptic in parasitic diseases of the skin and as an antiphlogistic."—Col. Chopra.

Hyoscyamus Niger Linn.—Hindi-Khurasandayawoyone.

"Laxative, carminative, sedative, Hypnotic, used in asthma." Col.—Chopra.

"The seeds have a sharp pungent taste ; tasty, heating ; stomachic ; astringent to the bowels ; toxic ; cause "vata"; cure "kapha" (Ayurveda).

The leaves are expectorant ; used as a gargle for toothache, bleeding of the gums ; a useful application for pain in the liver, gouty swellings, inflammation of the breasts and the testes. The seeds are bitter ; aphrodisiac, hypnotic, haemostatic, depilatory, astringent to the bowels ; useful in nasal troubles, watering of the eyes, ophthalmia, earache, fevers, headache, pain in the joints, the smoke is useful in scabies, caries of the teeth, bronchitis ; hypnotic (Yunani).

The leaves are anodyne, narcotic, mydriatic. They are prinpally employed in irritable conditions, and nervous affections.

They are also used in asthma, whooping cough, etc., as a sedative and as a substitute for Opium, where this is inadmissible as in children's complaints.

Cuscuta Reflexa, Roxb, Hindi-Amarvel.

"Carminative"—Col. Chopra.

"The plant is acrid, bitter ; astringent to the bowels, aphrodisiac, alterative, tonic ; useful in diseases of the eye and of the heart, in biliousness, and "kapha" (Ayurveda).

The herb has a bitter sharp taste ; expectorant, carminative tonic, anthelmintic, purgative ; disphoretic, diuretic ; purifies the blood and cleaneses the body ; lessens inflammation ; useful in jaundice, pains in the muscles and the joints, heat of the brain, headache, paralysis, diseases of the spleen, vomiting, lumbago. The seeds have a bitter bad taste ; sedative, emmenagogue, diuretic ; useful in diseases of the liver and the spleen quartan fever, chronic fevers, griping, hic-cough ; purify the blood and cleanse the bowels ; the infusion is given in opthalmia, the decoction in biliousness as a purgative (Yunani).

The seeds are regarded as carminative, and for this purpose are boiled and placed over the stomach. They are also applied as an anodyne. A cold infusion is given as a depurative. They constitute part of the *Kasus* are purgative medicine sold in the Punjab.

The native doctors of Sind and the Punjab regard the seeds of this plant as alterative, used along with Sarsaparilla to purify the blood.

The plant is purgative. It is used externally against it and internally in protracted fevers, retention of wind, and indication of the liver.

The stems are specially useful in bilious disorder.

In Lakhimpur, an infusion of the plant is said to make an excellent wash for sores. The natives say that it cleanses and brings about rapid healing (Carter).

Beorhavia Diffusa Linn.,—Hindi—Punarnava

"Laxative, diaphortic, used in oedema, anaemia, and heart diseases, antidote to snake-venom."—Col Chopra.

1. *Red variety* :—Bitter ; cooling. astringent to the bowels, useful in biliousness, blood impurities, leucorrhaea, Anaemia, inflammation ; causes "vata". 2. *Dark variety* :—Bitter, pungent ; heating alterative ; useful . in heart diseases, anaemia, inflammations, asthma,

"vata", and "kapha". The leaves are useful in dyspepsia, tumours, enlargement of the spleen, abdominal pains (Ayurveda).

The leaves have a sharp taste; appetiser, alexiteric; used in ophthalmia and for eye wounds; useful in pain of the joints. The seeds are tonic, expectorant, carminative; useful in muscular pain, lumbago, scabies, scorpion-sting; purify the blood; hasten delivery (Yunani).

The root is well-known for its diuretic properties. It is also a very good expectorant. Taken in large doses it acts as an emetic.

It is used in jaundice, ascites, anasarca, scanty urine, and internal inflammations. Mixed with dried ginger it is given in urticaria.

In the Punjab, the drug is considered useful for the eyes. In Bombay, it is used for dropsical swellings. In Goa, the herb is esteemed as a diuretic in gonorrhoea.

In the West Indies, the herb is a popular remedy for gonorrhoea, snake-bite (Charaka, Sushruta, vagbhata) and scorpion-sting (Sushruta). The root ground in rich water is given internally for snake-bite (Rasaratnakara, Yogaratnakara). Alone or in combination with the root of either *Gossypium herbaceum* or *Glycyrrhiza glabra* it is administered internally and externally for scorpion-sting (Yogaratnakara, Nighantaratnakar, Brihannighantaratnakara). No part of the plant is an antidote to either snake-venom (Mhaskar and Caius) or scorpion-venom (Caius and Mhaskar).

Vaidyas consider the root of this plant to possess laxative, diuretic and stomachic properties. The powdered root either alone or combined with oxide or iron was given in several cases of anasarca, the result of Bright's diseases or anaemia; the drug acted as a diuretic in every case and the patients derived much benefit from its use. This drug is considered to be a sovereign remedy for dropsy.

To verify what has been stated in my various reports, this drug was administered in the form of a liquid extract in cases of chronic Bright's disease with general dropsy. It was found to be a good diuretic, the dropsy diminishing gradually with the increase in the flow of urine (Koman).

1. The active principle is a body of alkaloidal nature which we have called *Punarnavine*. There are also large quantities of potassium nitrate and other potassium salts present in this plant. 2. Intravenous injections of the alkaloid in cats produce a distinct and persistent rise of blood pressure and a marked diuresis. 3. The diuresis is mainly due to the action of the alkaloid on the renal epithelium, although the rise in blood-pressure may contribute towards it. 4. Clinically 1 to 4 drachms of the liquid extract from either the dry or the fresh plant produce diuresis in cases of oedema and ascites, especially due to early liver, peritoneal and kidney conditions. When the liquid extract is used the presence of a large amount of potassium salts no doubt reinforces the action of the alkaloid. 5. The drug appears to exert a much more powerful effect on certain types of cases of ascites, *i. e.*, those due to early cirrhosis of the lever and chronic peritonitis (Hale White) than some of the other diuretics known (Chopra, Ghosh, and De : Ind. Med. Gazette, May 1923)."

(b) Drugs used For Local Application

The paste of the drugs is applied in any type of Cancer affection.

(i) The powder of pure semecarpus anacaro Dium is mixed in lime water so as to form the paste like compound.

Prophylactic Treatment

The patient should not be exposed to cold. The perfect rest in the bed is absolutely necessary even in the early stages of invasion of this disease. Exercise of any kind should also be entirely avoided.

The food of the patient must contain non-acidic materials.

The abovementioned treatment is proved successful in the 90% of cases of cancer of Breast and cervix.

In the end it may be concluded that the Diamond subjected to the special Bio-chemical process does act selectively on the malignant cells of probably any origin, the mode of action is presumed to be the selective affinity of the activated diamond towards the tumour cells; may be it might be preventing the further growth along with the visible retrogression in the existing growth, but most important observation is that it has no *prejudicial action on the normal Cells*, and is not found harmful to the other vital organs.

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें

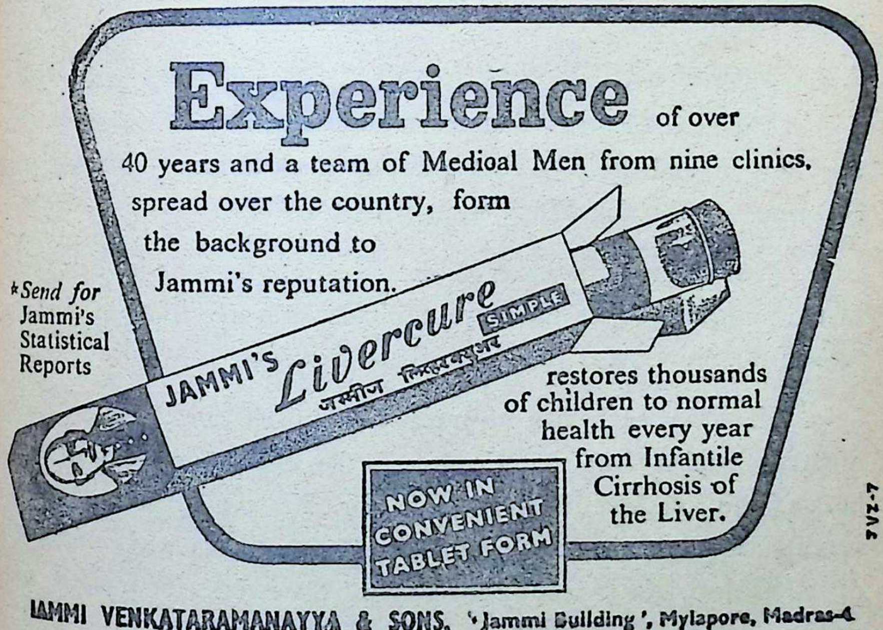

Experience of over 40 years and a team of Medioal Men from nine clinics, spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

**Send for* Jammi's Statistical Reports

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

IAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, 'Jammi Building', Mylapore, Madras-4

AYURVEDIC SCHOOL OF MEDICINE

THEORY AND PRACTICE

By:—Dr. A. Lakshmipathi, B.A., M.B. and C.M., Bangalore.

(*Continued from April issue page 400*)

II

The following amplifications and applications of theories accepted by Ayurveda explain a large number of apparently disconnected facts. The theories are easily understood by Ayurvedists and the applications work well in actual practice.

1.—*Evolution*

The evolution of the universe is a spiritual progression of inert matter into living matter and of living beings to higher and higher levels by the expansion of consciousness, leading ultimately to the All-Consciousness or Brahman-Evolution is not purposeless ; it is expansion of consciousness ; and the perfection aimed at is of mind and not of matter.

2.—*Identity of the Constituent elements of the Universe and of Man*

The basic elements that constitute both the universe and man are Matter and Spirit—*Panchabhutas* and *Purusha—Purusha Loka Samyata.* (Charaka, *Shareera*, 4.22.)

Just as there are incalculably many minute cells in the structure of the human body, so there are incalculably many units in the structure of the universe. (*Ibid.*, 5. 4.)

He who sees the universe in himself and himself in the universe attains true knowledge of the Self, for he realizes that he and no one else is responsible for his own pleasure and pain. Having acquired this knowledge, he performs all his actions in a spirit of selflessness, not expecting any fruit of his actions for himself, and in consequence he attains *Moksha.*

3.—*Physics*

The universe consists of atoms which contribute to the five states of matter (not three), which correspond to the five senses of man. The states are *Prithvi* (solid), *Ap* (liquid), *Tejas* (radiant heat and light), *Vayu* (the gaseous state) and *Akasa* (the spatial state). This is the *Panchabhuta* theory.

These five states of matter are relative. The most rarefied, the *Akasa* state, which is responsible for the production of sound, is evolved from *Avyakta*—the unmanifested Primordial Matter. The other states are successively evolved from the more rarefied element to the more and more condensed state, until the most condensed state of matter, namely, the solid, is reached. The idea of the complete unification of energy and matter which modern science has been attempting to establish and the synthesis of the various phenomena of sound, electricity, light, heat, taste and smell were conceived by Ayurveda at a very early date.

It is the senses of man that are responsible for the analysis of the different kinds of waves of several lengths, so as to make them cognizable as the different states of matter. In fact, it is the mind of man, acting through the senses, that classifies these phenomena and presents them to the *Atma* (the soul) for recognition. If you remove the senses, there is no world, and there are no states of matter for man to recognize. Having proceeded from the same *Avyakta* (Primordial Matter), the states of matter are theoretically convertible from one to another. The Yogi who has attained *Samadhi* (Self-realization) sees them by *Pratyaksha Avirodha* (direct vision) and also can covert one state into another by breaking down the atomic structure.

4.—*Chemistry*

There are six *Rasas* (tastes) corresponding to the six Indian seasons, each season developing a particular *Rasa* to its best. The *Rasas* are *Madhura* (sweet), *Amla* (acid), *Lavana* (salt), *Tikta* (bitter), *Ushana* (pungent), and *Kashaya* (astringent).

Substances having different *Rasas* have different pharmacological properties. All substances may be classified according to their *Rasa* constitution. Generally speaking, substances having a *Madhura Rasa* (sweet taste) contribute most to the promotion of nutrition, the *Kashaya* (astringent) *Rasa* is the least nutritious and the intermediate *Rasas* have less and less nutritious properties in the order mentioned.

5.—*Anatomy and Heredity*

According to the Sankhya philosophy, which is accepted by Ayurveda, the human body is the result of the integration of three constituents, namely,

(*a*) *The Sthula Shareera*, the gross material body, consisting of the gross state of matter.

(*b*) *The Linga Shareera* or *Sukshma Shareera*—the subtle body.

(*c*) *Karana Shareera*, the *Jeevatma*—the Ultimate Reality.

The *Sukshma Shareera* has 18 constituents : *Mahat* (Intelligence), *Ahankara* (sense of self), *Manas* (mind), five organs of sense, five organs of action and five *Tanmatras* (pre-atomic stages of the five states of matter).

The *Sukhshama Shareera* carries the *Jeevatma* (individual soul) from one body to another. This explains the inherited tendencies in the temperaments of individuals and the extraordinary inherited skill in particular arts possessed by certain individuals. (*Manojavo Dehanupaiti Dehat.*) (Charaka, *Shareera*, 2.31).

The traits are called *Vasanas*, or fragrances, which go with the mind from one body to another.

6.—*Physiology*

The normal health of a living being is based upon the equilibrium of three ingoing nutrients, seven permanent tissues and three outgoing types of debris. These are called the *Dehadhatus* (the 13 *Dhatus*). The three nutrients charged with specific properties, called the *Tridhatus*, or when vitiated, the *Tridoshas*, are, as we have seen, *Pitta*, *Vata* and *Kapha*. The *Sapta* (seven) *Dhatus* are *Rasa* (chyle or lymph), *Rakta* (blood), *Mamsa* (muscle), *Medas* (fat), *Asthi* (bone), *Majja* (bone marrow, including brain matter) and *Shukra* (sperm or germ plasm) and the three *Malas* or types of debris are faeces, urine and perspiration.

The finer and higher tissues, *Rakta*, *Mamsa*, etc., up to *Majja* and *Shukra* are formed out of the tissues which are lower in the scale, and grosser. *Shukra* is the final essence of the tissue metabolism. The *prasada* (healthy) state of these constituents leads to the equilibrium which means health, and vitiation of any of them leads to ill health.

7.—*Mental Science—The Theory of "Trigunas"*

Man is the integration of the physical body and the mental body, which is the psychosomatic concept.—The mental body has three constituents : *Satwa*—enlightening—*Prakasha* ; *Rajas*—exciting—*Rosha* ; and *Tamas*—depressing—*Moha* (infatuation or bewilderment). The predominance of *Satwa* leads to harmony, of *Rajas* to emotion and of *Tamas* to depression. The latter two are sometimes the causes of both mental and bodily diseasas. The Yogi who has succeeded in transcending the *Trigunas* remains steady in mind and is unaffected by any emotion. He has realized *Atma* (the Self) by direct vision. He is said to be perfectly healthy (*swasthah*), which means literally, "placed in the Self." To him, pleasure and pain, gold and stone, are the same. In this state of *Samadhi* he can perform supernormal acts such as seeing through solid and opaque walls, breaking down the atomic structure of the elements and converting one element into another, seeing at a distance, telepathy, etc. (Charaka, *Shareera*, 1. 20).

8.—*Pathology—The "Tridosha" Theory*

The equilibrium of the *Tridhatus* is health and lack of balance between them is disease. Histologically, a disease may be defined as the morbid interaction between the vitiated nutrients (*Doshas*) and the tissues (*Dhatus*), *i. e.*, *Dosha-dhatu Sammurchanam.*

There are six *Kriyakalas* or stage in each disease, suitable for treatment. The interaction between vitiated nutrients and tissues is divided into six stages, (1) *Sanchaya* (accumulation of the *Doshas*), (2) *Prakopa* (their excitation), (3) *Prasara* (their expansion), (4) *Sthana Samshraya* (change of place or localization), (5) *Vyakti* (manifestation of the full-fledged disease) and (6) *Bheda* (destruction of the tissues). If the disease is diagnosed and checked in an earlier stage by treatment suitable to that stage, the disease itself may be prevented from developing beyond the stage of premonitory symptoms.

9.—*Physical aud Mental Diseases*

Man being an integrated whole, no disease should be classified as purely mental or purely physical. The fact that physical life depends largely upon the psychic life, and that the *Ragadi Rogas* (undesirable emotions) are considered as diseases capable of causing other bodily and mental diseases, explains the emphasis of Ayurveda on the necessity for careful study of the personality as a whole in making a diagnosis.

10.—*Therapeutics*

Therapeutic methods are classified generally into two classes: *Brimhana* (promoting nutrition or strength) and *Langhana* (reducing nutrition by adopting fasting or eliminative measures).

The theory of *Panchakarmas* and *Sneha Sweda* explains the five procedures of eliminative treatment, namely, *Nasya* (a nasal purge), *Vamana* (vomiting), *Virechana* (purging), *Vasti* (enemata), and *Rakta Moksha* (bloodletting), *Sneha* (lubrication) and *Sweda* (sweating), as operations preliminary to these eliminative measures, are also characteristic of Ayurveda as purifiers of the body.

II.—*Hygiene : Training the Personality—Preventive of All Disease.*

The genius of Ayurveda is more to train by strict discipline the mind and senses of man than to perfect the machinery external to himself. The theory is that such training of the personality to perform selflessly the duties assigned to each man by nature, according to his qualities and capacities (*Guna* and *Karma Vibhagasah*), and to perform those duties with detachment and for the good of humanity, is conducive to the greatest happiness of body and of mind.

Differentiation into groups according to capacity is the rule of nature. The work of each is determined by his qualities (*Trigunas*). The salvation of every man lies in performing *Swadharma*, *i.e.*, doing his duty to the best of his particular abilities. The happiness that comes in the satisfaction at having done one's duty selflessly includes freedom from diseases, not only of the body but also of the mind, such as the fears of disease, of old age and of death.

The Sanskrit word "*Sukha*" (happiness) is derived from *Su* (good) and *Kha* (the *Indriyas* or senses), *Sukha* meaning equability of the senses. Permanent happiness is obtained by the control of the senses. The most important thing in this is detachment. (Charaka *Shareera*, 7.22) Self-discipline (*Jitendriyatwa*) is the master-key for the prevention of many diseases of mind and body.

Charaka summarizes the ways and means of keeping *Arogya* (good health) as follows :—

> One who is accustomed to suitable diet and habits, who always acts after proper reflection, who does not entangle himself in the objects of the senses, who is charitable, who behaves equally towards all living creatures, who is devoted to truth, who is forgiving, who serves with humility all who are wise and who is contented with what he possesses (*Aptopasevee*) is never attacked by any diseases. (Charaka, *Shareera*, 3. 49. 27).

In other words, one who has a happy combination of his thought, speech and action, who has his mind under control, who has his intellect clear and who possesses knowledge of the soul and is devoted to austerities and *Yoga*, never suffers from any disease.

12.—*Rasayana and Vajeekarana—Rejuvenation and Aphrodisiacs*

Ayurveda pays special attention to improving the natural processes of resistance not only to disease but also to old age and to preserving youthfulness and sexual vigour. The underlying theory is that, if the waste products of tissue metabolism are removed from the body and if it is made quite free from these waste products, youthfulness may be preserved. Physical purity and mental purity are both required. Just as there are special foods and drugs for promoting nutrition of the physical body, so there are special foods and drugs for promoting the nutrition of the mental body.

The methods of *Rasayana* consist in removing the bodily waste products by the special processes of elimination described above in Section 10—"Therapeutics," and by sweating, massage and diet; and the mental waste by *Jitendriyatwa* (conquest of the senses or *Yoga*.)

13.—*Overeating—The Root Cause of Wars*

Charaka propounds the theory that slight overeating, *i.e.* the eating of a little more than is needed, by those who possess more than they require, is the root cause of wars. The following is his line of reasoning :—

In the *Satya Yuga, i.e.* at a period when all was righteousness, when there was no competition for food, everyone ate just what he wanted and everyone was happy. But, as time passed some people ate a little too much, simply because it was available. The result was that their bodies became heavier (*Shareera Gouravam*). On account of the body becoming heavier, they became tired after performing their usual work (*Shrama*). On account of weariness, they became lazy (*Alasyam*). On account of laziness, they developed a desire to accumulate food and articles for future use, *i.e.*, hoarding (*Sancahaya*). On account of the desire to accumulate, there arose possessiveness (*Mamata*). On account of possessiveness there arose greed (*Lobha*).

In the second stage, on account of greed the desire arose to accumulate more by deceiving others (*Abhidroha*). On account of this desire to deceive others, there arose falsehood (*Asatya*) and falsehood gave rise to many passions, such as lust (*Kama*), anger (*Krodha*), vanity (*Mana*) hatred (*Dwesha*), haughtiness (*Parushya*), injury (*Abhighata*), fear (*Bhaya*) excitement (*Tapa*), grief (*Shoka*) and mental perturbation (*Chittodwega*), etc.

The leaders who are thus perturbed in mind led their followers into *Adharma* (unrighteous conduct). On account of *Lobha*, *Krodha* and *Moha*, they insult weaker people and have recourse to violence with deadly weapons, ending in wars between countries, clans and races. They thus either destroy others or are destroyed by others in the struggle. In this manner, *Adharma* (unrighteous conduct) which starts with greed in slight overeating leads to wars between nations. (Charaka, *Vimana*, 3. 26)

This carries its own lesson.

The theories just enumerated may be explained to some extent in the light of modern scientific methods. It is in the scientific attitude, more than in the scientific results, that the true value of modern science is to be found. If there is any portion of Ayurveda which cannot be identified with some section of the Western system, it should not be considered fit only to be neglected. In fact, it is in the spirit of science that the true value of Ayurveda resides. It should also be noted that modern science itself has its own well-known limitations, particularly when it tries to explain the phenomena of living matter. Even the most delicate experiments and observations of modern science are too crude and too superficial to deal with matters relating to life, which is the subject-matter of Ayurveda. The problems with which science deals at present are intrinsically inferior in human interest (*Prajahitam*). Further, the modern scientific method is not the only valid method of acquiring knowledge of reality.

Eminent scientists have accepted that a true and scientific theory merely means a successful working-hypothesis. It is highly probable that all scientific theories are wrong. Truth, in science, is a pragmatic affair. What a scientific man means by truth is, in the last resort, convenience. A good scientific theory accounts for known facts and enables us to predict new ones, which are then verified by observation. (*The Limitations of Science*. By J. W. N. SULLIVAN. 1933)

Ultimate values such as *Dharma* (duty or virtue), *Purushartha* (purpose in life) and *Sukha* (human happiness), with which Ayurveda deals, cannot be measured by any instruments known at present to modern science. Nor is it possible for every person to study and practise *Yoga* (concentration on the inner self), unless he has the necessary preliminary qualifications (*Adhikara*), for such study. He must also secure a proper teacher (*Guru*). These theories of Ayurveda have been accepted, not as a matter of faith, but because, as already said, they are proved by the four methods of investigation (*Pramanas*) and because they are of great utility in actual practice. Ayurveda is an unqualifiedly practical science and so cannot be contrary to direct experience (*Pratyaksha Avirodha*). Wherever it is not possible for an ordinary man to verify certain facts by direct perception, he must naturally be satisfied with the statements of *Apta* (those known to be the best authorities on the subject).

The chief claim and advantage of science is its utility. In spite of the fact that some of the theories of Ayurveda are not so far accepted by modern science, the successful practice of Ayurveda has continued through the centuries, and more than 80 per cent of the people of India seek its help even today. The people almost always resort to some well-known indigenous drugs available in the locality before they seek the advice of a physician. Clinical experience is after all the best test of the efficacy of the treatment. This proves, not only that the system of Ayurveda is alive in the minds of the people, but also that it is resorted to the moment there is any need. Ayurveda may therefore be said to be deeply rooted in the soil of India, and to have contributed largely to her cultural heritage.

◆

पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठावें ।

(पृष्ठ ४३२ का शेष)

आधुनिक तत्त्वों की संख्या ९२ पहले की निश्चित थी अब २-३ और बढ़ गये हैं। इस मत में अब कुछ परिवर्तन भी हो गया है। खोज से ऐसा मालूम हुआ है, कि इन तत्त्वों में एक ही चीज है। 'एटम' शब्द का प्रयोग ऐसे अर्थ में नहीं होता; जिसका अर्थ टुकड़े न होने वाला हो। आज एटम को ऐसा ही माना जाता है कि वह निरवयव नहीं है।

प्रोटोन और ऐलेक्ट्रोन ये विद्युत्कण हैं। एलेक्ट्रोन शक्ति रूप है वह द्रव्य अर्थात् मटर नहीं है किन्तु मैटर का कारण अवश्य है। ऐलेक्ट्रोन हर समय प्रोटोन का चक्कर लगाता रहता है, जितने नम्बर का प्रोटोन होता है उसके चारों ओर उतनीं ही संख्या के एलेक्ट्रोन चक्कर लगाते रहते हैं।

एलेक्ट्रोन विद्युत्कण है या विद्युत्पुञ्ज ? यह प्रश्न उठता है। वह विद्युत्कण है। प्रत्येक एटम पांच भौतिक हैं। प्रोट्रोन को पृथ्वी तत्त्व का वाचक समझते हैं। एलेक्ट्रोन को भी पृथ्वी तत्त्व का कण मान सकते हैं। क्योंकि उसमें भी भार है। प्रोट्रोन एलेक्ट्रोन से ९२ गुणाभारी है। ये दोनों सतत गतिमान हैं। प्रोटोन में गति बहुत कम है किन्तु एलेक्ट्रोन में बड़ी तीव्र गति है। गति होने से उसमें वायु तत्त्व समाविष्ट है यह सिद्ध होता है। सन्धान होने से उसमें अप्तत्त्व समझा जाता है, क्योंकि सन्धान–संश्लेष–अप् तत्त्व ही कर सकता है। तेज तो वह स्वयम् है आकाश तत्त्व का ज्ञान उसमें अवकाश के कारण होता है। इससे 'सर्वं द्रव्यं पाञ्च भौतिकम्' यह सिद्ध होता है।

'यत् सत् तत् क्षणिकम्' अर्थात् जो भी कुछ है वह सब क्षणिक है–एक क्षण से अधिक काल तक रहने वाला नहीं है, यह सिद्धांत आज भी सत्य माना जाता है।

कविराज उपेन्द्रनाथ जी ने प्रश्न किया:–क्या तेज और आकाश भी 'मैटर' में गिने जाते हैं ? आपकी परिभाषा के अनुसार मैटर में भार और स्थानावरोध अवश्य होना चाहिये किन्तु तेज और आकाश में न भार होता है न स्थानावरोध।

श्री कुलकर्णी जी ने कहा–एटम् में पांचोंभूतों का समावेश है, इतनी ही स्थापना मैंने की है।

श्री डिग्वेकर जी ने कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि 'सब चीजें भार वाली और स्थानावरोधी हैं' ऐसा माना जानें लगा है। इस सिद्धांत के अनुसार तेज और आकाश भी मैंटर होने के कारण भार वाले तथा स्थानावरोधी माने जाते हैं। यह सम्भव है आगे जाकर यह सिद्धांत बदल जाय। परन्तु हमारे सिद्धांत अपरिवर्तनीय हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार मैटर पाञ्चभौतिक होता है यह सिद्धांत व्यापक है।

मैटर शब्द हमारे यहाँ के द्रव्य शब्द के अर्थ का प्रतिपादक है यह गलत प्रचार है। उदाहरणार्थ इन्द्रियों द्वारा जिसका प्रत्यक्ष हो उसे 'मैटर' कहते हैं, यह परिभाषा द्रव्य में लागू नहीं होती; क्योंकि आकाश-आत्मा और मन आदि द्रव्य ऐसे हैं जिनका इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इसलिये द्रव्य को अंग्रेजी में 'द्रव्य' ही लिखा और बोला जाना चाहिये मैटर नहीं। यदि भाषान्तर न करके उन्हीं शब्दों से व्यवहार हो तो सन्देह न हो। 'यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् तद् द्रव्यम्।'' (च. सू. अ. १) द्रव्य का यह लक्षण ठीक है। यह तीनों सर्वत्र ही चाहियें। यदि आकाश में क्रिया नहीं है, तो उसे इसका अपवाद समझना चाहिये। पांच भौतिक द्रव्य उक्त परिभाषा से द्रव्य कहलाने योग्य हैं कि नहीं यह विचार करना है। पाञ्च भौतिक द्रव्य में प्रधान द्रव्य का भाग कितना है और सहयोगी द्रव्यों के भाग कितने-कितने हैं यह अंशांशि भाग कल्पना अनावश्यक है, उससे प्रकृत में लाभ कुछ भी नहीं है। वह द्रव्य पांच भौतिक है इतना समझना ही पर्याप्त है।

पांच भौतिक ही सृष्टि क्यों षाड्भौतिक क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि पांच ही ज्ञानेन्द्रिय हैं छठी इन्द्रिय है ही नहीं; इस कारण षष्ट भूत भी नहीं। यदि हो भी तो हमारे पास ज्ञान का साधन न होने से उसका न होना ही सिद्ध होता है।

तेज और आकाश मैटर हैं या नहीं? इसका उत्तर देते हुए डा० प्रसादी लाल झा ने कहा—मॉडर्न साइन्स के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों से जिसका प्रत्यक्ष होता है वही मैटर है। मैटर में चार चीजें होती हैं। दिशा और काल का भी फोटान्स के द्वारा ज्ञानेन्द्रिय से ज्ञान होता है। फोटान्स को विद्युत् हीन कण कहते हैं। यह हमारे मन के साथ सम्बद्ध कैसे होता है इसका उत्तर नहीं मिलता, यह कमी है। मांस और इनर्जी अलग-अलग नहीं होते। मैटर उसे कहते हैं जिसका विश्लेषण करने से अन्त में शक्तिरूप रह जाय। मैटर और इनर्जी अलग-अलग नहीं किये जा सकते, उसे "माइण्ड स्टर" कहते हैं। यह बड़ा प्रमाण है। ईथर के विषय में आकाश को ईथर से रिक्त मानना असम्भव है। क्योंकि ईथर से अतिरिक्त आकाश विचार गम्य नहीं अतः आकाश को ईथर से मिलित मानना ही युक्त है। एम् स्टाइन का कहना है, कि पहले वायु पैदा हुआ वह लाल-लाल दिखने लगा, ठंडा होकर वह द्रव दिखाई देता है फिर काला पड़ जाता है। इससे आकाश वायु-तेज जल और पृथ्वी की क्रमिक उत्पत्ति और पूर्व-पूर्व उत्तोरोत्तर के कारणत्व की सिद्धि होती है।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ जी ने प्रश्न किया—"मैटर" घन, द्रव (तरल) और वाष्प (गैस) भिन्न-भिन्न नाम और रूपों में परिणत हो सकता है तथा जो इन्द्रिय ग्राह्य है वह मैटर है इन दोनों में क्या सामंजस्य है? यदि इन्द्रिय ग्राह्य वस्तु मैटर हैं; तो क्या सूर्य किरणें भी मैटर हैं? क्योंकि उनका भी इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होता है यदि सूर्य किरणों को

प्रत्यक्ष होने से, मैटर कहें तो क्या उनका घन-तरल और वाष्प (गैस) इन तीन अवस्थाओं में परिणाम होता है ? इसके उत्तर में डा० श्री प्रसादी लाल झा ने कहा–इस पर आधुनिक विज्ञान ने कोई विचार नहीं किया क्योंकि उनके सामने यह विवाद उपस्थित नहीं हुआ होगा ।

आज का मध्याह्न पूर्व का कार्य यहीं समाप्त हुआ और मध्याह्नोत्तर ४ बजे के लिये परिषद् विसर्जित हुई ।

२१-५-५३ को मध्याह्नोत्तर कार्यक्रम प्रारम्भ होने पर आचार्य श्री यादव जी ने कहा–

अमुक द्रव्य, 'मधुर' है, आयुर्वेद में इसका इतना संकुचित अर्थ नहीं है कि वह वस्तु रसना पर डालने से मीठी है । किन्तु मधुर शब्द अपने साथ कई अर्थों को लेकर आता है । जैसे–मधुर है अर्थात् वह भारी है, शरीर को सात्म्य (माफिक) होने पर वह रस-रुधिर-मांस-मेदा-अस्थि-मज्जा-ओज और शुक्र (वीर्य) की वृद्धि करने वाला है, आयु बढ़ाने में उपयोगी है, छहों इन्द्रियों का प्रसादक (प्रसन्न करने वाला) है, बल दायक है और वर्ण (रंग) को साफ करता है । पित्त, विष और वायु का नाश करता है । प्यास और दाह (जलन) को शांत करता है । त्वचा, केश, कण्ठ और बल के लिये हितकारक है अर्थात् त्वचा के रूखेपन को दूर करता है–उसमें झुर्री नहीं पड़ने देता, बाल काले रखता है उन्हें गिरने नहीं देता, कण्ठ में खुश्की नहीं आने देता, बल बढ़ाता है । स्निग्ध-शीत और भारी है इत्यादि अर्थों का बोधक है, क्योंकि उक्त सभी बातें अपवाद स्थलों को छोड़कर मधुर रस के साथ रहती हैं ।

अम्ल और कषाय आदि शब्दों का भी ऐसा ही अर्थ है । जिन द्रव्यों में रसों के साथ वीर्य आदि की अनुकूलता के कारण उनके सब अथवा अधिक धर्म निर्बाध रहते हैं, निघण्टु में वहां केवल रस शब्द से उन धर्मों का निर्देश समझना चाहिये; जहां रस और वीर्य आदि भिन्न-भिन्न कार्य करने वाले होते हैं, वहां निघण्टु में तत्तद्द्रव्यों के साथ उनके रस से विपरीत धर्मों का शब्द से पृथक् वर्णन किया है । इस प्रकार अनन्त द्रव्यों का वर्गीकरण उनके रस-गुणादि के द्वारा करके द्रव्य ज्ञान को सुगम कर दिया है । यह वर्गीकरण ऋषियों ने मनुष्यों के शरीर पर प्रयोग करके किया था, ऐसा मेरा मत है । भूतों के अनुसार वर्गीकरण करने से हमें चिकित्सा में कुछ सौकर्य होगा कि नहीं इस बात पर भी विचार करना चाहिये । ग्रन्थकारों ने पांच महाभूतों के हिसाब से द्रव्यों के पांच भेद तो बनाये परन्तु इस वर्गीकरण को प्रगति नहीं मिली, वह वहीं तक सीमित रहा । गुडूची का जैसे रस-गुण आदि का निघण्टु में वर्णन है वैसे तत्तद् महाभूत नाम से उसका वर्णन नहीं है । इस पर भी विचार करना है कि महाभूतों के नाम से वर्गीकरण से कुछ लाभ होगा कि नहीं ?

श्री मङ्गल दास जी स्वामी जयपुर ने कहा–वर्गीकरण प्रक्रिया में अंशांश कल्पना

आधुनिक प्रणाली में तो है; किन्तु हमारे यहां नहीं है अतः वह हमारे विचारणीय विषयों में नहीं होना चाहिये ।

श्री गणेशदत्त जी सारस्वत, प्रिन्सिपल आ० कॉ० ऋषिकुल हरिद्वार ने कहा–अंशांश कल्पना दो प्रकार से हो सकती है, घटक द्रव्यों के ज्ञान के द्वारा, गुण और कर्मों की परिस्थिति के द्वारा। दोषों की अंशांश कल्पना गुणों के आधार पर ही करते हैं, द्रव्यों के परिणाम के आधार पर नहीं। अर्थात् दोषों के परिमाण के आधार पर नहीं।

'Standard' आदर्श आयुर्वैदिक औषधियों के लिए

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड अमृतसर को सदा स्मरण रक्खें

उत्तरीय भारत की केवल यही एक फार्मेसी है जिसमें ठीक विधिवत आयुर्वैदिक रस, रसायन, भस्में आसव, अरिष्ट, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, और घृत तैलादि समस्त औषधियां पूरे परिश्रम मेहनत और ईमानदारी से तय्यार की जाती हैं।

सूचिका भरण
प्रताप आयुर्वैदिक इन्जैक्शन

सरकार द्वारा स्वीकृत लाइसैंस प्राप्त प्रताप लैबोरेटरी ही है जिसके इन्जैक्शन भारत सरकार की सैन्ट्रल रीसर्च इन्स्टीटयूट लखनऊ में टैस्ट होकर प्रमाणित सिद्ध हो चुके हैं। यह इन्जैक्शन भयंकर, जटिल और संक्रामक रोगों के लिए शत प्रति शत लाभप्रद और रामबाण माने गए हैं। यश, मान और कीर्ति प्राप्त प्रत्येक सफल चिकित्सक इन को व्यवहार करता है। आप भी अनुभव करें।

हर प्रकार की आयुर्वैदिक औषधियां और इन्जैक्शनों का सूचीपत्र मंगाने का पता

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड
अमृतसर

ब्रांचें ① आर्य्य समाज रोड करोलबाग देहली ② चौडी सडक लुधियाना

प्रयोग शालाओं में प्रत्यक्ष के आधार पर की गई अंशांश कल्पना से अनुमान के आधार पर की हुई अंशांश कल्पना कमजोर नहीं बल्की प्रत्यक्ष के समान ही दृढ़–पक्की अतएव अकाट्य है।

अंशांश कल्पना से ही हम पांच भौतिक द्रव्य की प्रत्येक अवस्था का प्रत्यक्ष साधनों के द्वारा जो आज हमें हमारी अपनी प्रणाली के अनुसार उपलब्ध नहीं हैं, समय आयेगा तो उपलब्ध होंगे, कर सकते हैं। योग बल से तन्मात्राओं का प्रत्यक्ष भी हम कर सकते हैं किन्तु वह योग बल आज हम में नहीं है। मन्त्र आदि के आधार से किये जाने वाले साधन भी आज हमारे लिये उपलब्ध नहीं हैं।

क०. श्री उपेन्द्रनाथ दास जी ने कहा–गुणों के आधार से हम द्रव्यों को भी पांच भौतिक द्रव्यों में जान सकते हैं और उनके परिमाण को भी जान सकते हैं। गेहूँ से चन्दन में पार्थिवांश अधिक है क्योंकि वह कठोर है; गेहूँ उतना कठोर नहीं है तथापि गेहूँ खाये जाने पर पार्थिवांश हमारे शरीर में जितना दे सकेगा उतना चन्दन खाने पर नहीं दे सकेगा।

'मैट' की परिभाषा के अनुसार हम पृथ्वी-जल और तेज को 'मैटर' मान सकते हैं किन्तु वायु और आकाश को नहीं क्योंकि ये दोनों स्थान को नहीं छोड़ते, तेज भी स्थान को नहीं छोड़ता। तेज का स्वरूप ताप और आलोक शब्द से कहा जा सकता है। वह्नि का ताप गति शील है। तेज में गति है वह सूर्य से पृथ्वी तक आता है। ताप और आलोक तेज के गुण हैं। यह गतिशील नहीं हो सकते यदि उन्हें द्रव्य न मान कर गुण ही मानें तो सूर्य से पृथ्वी तक आ हीं नहीं सकते। ईथर द्वारा भी ताप और आलोक नहीं आ सकते, तो मानना पड़ेगा कि ताप और आलोक ईथर से भारी हैं।

लोहे का गोला तपा कर खूब लाल करलें और उसे नीचे फेकें तो गिरता नहीं, ठंडा होने पर गिरता है। पत्थर से चूना बनता है, अग्नि के प्रवेश करने से वह हलका और सफ़ेद हो जाता है। एसिड भी तेजाब-तेज और आब—जल का सम्मिश्रण है। अग्नि में वजन है कि नहीं? पृथ्वी के मध्याकर्षण से वजन पैदा होता है। आवह, प्रवह, संवह आदि वायु भी इसमें प्रमाण है। ग्रह के आकर्षण की सीमा से बाहर निकल जाने पर वह वस्तु उस ग्रह में गिरेगी, जिसके आकर्षण में होगी। प्रोटोन से इलेक्ट्रोन ७२ गुण हलका होता है। एटम का गुरुत्व जैसे आज-कल माना नहीं जाता, प्रोटोन और इलेक्ट्रोन का ही गुरुत्व माना जाता है, इसी प्रकार प्राचीनों ने वायु और आकाश के गुरुत्व को छोड़ दिया होगा। सुवर्ण का द्रवत्व भी आज वाष्प के रूप में बदल जाता है। पहले इतना अग्नि ताप नहीं था ऐसा मालूम होता है। ५२ इलेक्ट्रोत तक वायवीय यदि मान लें तो प्राचीनों से कुछ समन्वय हो जाता है।

शब्द का समवायी कारण आकाश है, आकाश द्वारा ही शब्द फैलता है। वायु द्वारा शब्द फैलता है, यह प्राचीन मानते थे। वायु रहित स्थान से शब्द बाहर नहीं आता, वायु युक्त स्थान से ही शब्द बाहर आता है, इसी उदाहरण से वायु को शब्द का वाहक मानते थे। दर्शन शास्त्र का आकाश आधुनिक विज्ञान के ईथर से भिन्न हैं, क्योंकि ईथर शून्य है और आकाश भावद्रव्य है। वह शब्द का समवायी कारण है। आकाश आज तक आधुनिक वैज्ञानिकों के ज्ञान में नहीं आया है। शून्य का अन्तर्भाव दिक् पदार्थ या काल में हो सकता है। उसमें व्यवहार भेद ही कारण है। पृथ्वी में गन्ध है, इसमें यही प्रमाण है कि उसमें जल, तेज, वायु, आकाश इन चारों में से किसी का विशेष गुण नहीं है और वह विशेष गुण पारिशेष्यात पृथ्वी का ही विशेष गुण है यह सिद्ध होता है। पत्थर में गन्ध उपलब्ध नहीं होता और इत्र आदि द्रव्यों में उत्कट गन्ध उपलब्ध होता है, इसका कारण उद्वायु द्रव्य के अभाव से उसमें गन्ध का अनुभव नहीं होता। उद्वायु द्रव्य का गन्ध उपलब्ध होता है। मूर्त वायु मध्यम परिमाण वाला होता है।

वैद्य मणिराम जी शर्मा आचार्य रतनगढ़ ने कहा–वर्गीकरण में जो अंशांश कल्पना आज तक मिलती है वह केवल शाब्दिक है जिसे डाक्टर नहीं मानते। ऐसा कोई मापक यन्त्र बनना चाहिये जिसे ताप माप की तरह दोषों के अंशांश का पता लगाया जाय। दोषों में भी एक-एक दोष की अंशांश कल्पना का मापक यन्त्र आज तक कोई नहीं बना है।

श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने कहा-सुश्रुत में वर्गीकरण विद्यमान है; किन्तु चिकित्सा गुण-धर्म के रूप में विलीन हो जाता है। जैसे—ज्वर में स्वेद लाने वाली सन्तापहारी और वेदनाहर औषधों का प्रयोग करते हैं। अतिसार में मलग्राही द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। पाञ्चभौतिक द्रव्यों का वर्गीकरण यथासम्भव साधनों के द्वारा करना चाहिये।

हकीम दलजित सिंह ने कहा--द्रव्य को यूनानी में माद्दा कहते हैं, इसका बहुवचन मवाद होता है। माद्दा के तीन अर्थ होते हैं--१--मूल द्रव्य का कारण द्रव्य। २--दोष अर्थात् विकृत दोष। ३--अखलात-अखलात उपादान कारण असबब माद्दिया समवायी कारण।

यूनानी मतसे पृथ्वी का गुण--सर्द--गरम
जल का गुण--सर्द--तर
वायु का गुण--गर्म--तर
तेज का गुण--गर्म--खुश्क हैं।

यूनानी मत से भूत चार हैं। आकाश को वह भूत नहीं मानते। उनके मत से भूतों के गुण-धर्म भी चार ही हैं। गर्म-सर्द-तर और खुश्क। (क्रमशः)

साहित्य-सत्कार

काश्यप संहिता (वृद्धजीवकीय तन्त्रं वा)

'विद्योतिनि' हिन्दी व्याख्याकार-आयुर्वेदालंकार श्री सत्यपाल भिषगाचार्य । प्रकाशक–जयकृष्णदास हरिदास, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, पो० बाक्स नं० ८, बनारस। पृष्ठ सं० ३६४, मूल्य १६) रु० सजिल्द ।

इस प्राचीन कुमार तंत्र प्रधान संहिता का महर्षि मारीच कश्यप नें वृद्ध जीवक को उपदेश दिया था तथा वृद्ध जीवक ने इस की रचना की थी । प्रकाशक महोदय ने इस ग्रंथ का प्रकाशन कर आयुर्वेद-जगत की एक महान क्षति की पूर्ति कर दी है । नेपाल राज्य के गुरुवर पं० हेमराज जी नें ग्रंथ का उपोद्घात जो १२० पृष्ठों में समाप्त हुआ है, लिख कर संहिता को स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित कर दिया है ।

उपोद्घात में विद्वान् लेखक ने आयुर्वेद का सोपक्रम विवरण, आयुर्वेद की प्राचीनता तथा प्रकाश काल, प्राचीन महर्षि कश्यप आत्रेय आदि का काल तथा कश्यप आत्रेय, भेड, सुश्रुत आदि ग्रंथों का तुलनात्मक विमर्श, देशान्तरगत अर्थात् ग्रीकादि देशों में आयुर्वेद का प्रचार, तथा उनसे सम्बन्ध आदि का वर्णन तथा प्राचीनाचार्यों के गौरवान्वित अनुसंधान का स्पष्टरूपेण दिग्दर्शन कराया है । चरकादि संहिताओं के समान ही विद्वान् इस संहिता को भी श्रद्धा भाव से देखते हैं । वैद्य महानुभावों को इसका परायण कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए । भारतीयायुर्वेद विद्यालयों में छात्रों के पठनार्थ इस संहिता को भी रखा जाय तो विशिष्ठ योग्यान्वित विद्वान् उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा मेरा विचार है ।

सिद्धभेषज संग्रह :—ले०––श्री युगलकिशोर गुप्त । प्रकाशक––जयकृष्ण दास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, पो० बाक्स ८, बनारस–१ । सम्पादक–आयुर्वेदाचार्य साहित्यरत्न श्री गंगासहाय पाण्डेय, हिन्दु विश्वविद्यालय, काशी । मूल्य राज संस्करण ९) । उत्तम संस्करण, ८) । तथा सुलभ संस्करण ७) । पृष्ठ संख्या–७३१ ।

इस पुस्तक में लेखक ने आयुर्वेद शास्त्रों में वर्णित हर प्रकार की औषधि का वर्णन किया है । इस एक ही ग्रंथ को अपने पास रख कर वैद्य वा छात्र चिकित्सा करने में सफल हो सकते हैं । आकार प्रकार में वृहत्काय यह ग्रंथ सर्वांगपूर्ण है । क्रमशः प्रकरणों द्वारा क्वाथ, चूर्ण, कल्क, गुटिका, अवलेह, पाक, रसादियों का अकारादि क्रम से वर्णन किया गया है । रोगानुसार पृथक्-पृथक् प्रयोगों का वर्णन तथा अनुपान सहित गुणों का वर्णन भी वड़ी सुन्दरतापूर्वक किया गया है । शैली सुगम तथा रोचक है। अन्त में आयुर्वेद सम्बन्धि मान परिभाषा का वर्णन भी दे दिया गया है ।

लेखक और प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं जिनके परिश्रम से यह ग्रंथ

आज हमारे सामने है । वैद्यों तथा छात्रों को अवश्य इससे लाभ उठाना चाहिये ।

कुल्लियात [पूर्वार्ध]--लेखक--वैद्यराज हकीम ठा० दलजीत सिंह तथा श्री राम सुशील शास्त्री मुन्शी । प्रकाशक—सुभाष पुस्तक मन्दिर, काशी । प्राप्ति स्थान—श्री चुनार आयुर्वेदीय औषधालय तथा आयुर्वेदानुसंधान-शाला कार्यालय, रायपुरी, चुनार । पृष्ठ सं० ७६ । मूल्य १।) रु० ।

विद्वान् लेखक ने अनेंक यूनानी ग्रंथों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित कर हिन्दी जाननें वाले वैद्य, हकीमों का विशेष उपकार किया है । 'कुल्लियात' नामक ग्रंथ में भी आपनें अरबी तथा यूनानी भाषा के तिब्बी शब्दों की हिन्दी में रचना कर पढ़नें वालों के लिए सुगमता कर दी हैं । इस ग्रंथ में लेखक ने यूनानी वैद्यक के मूलभूत आधारों का वर्णन किया है । ग्रंथ वास्तव में पठनीय है ।

शरीर क्रिया विज्ञान--यह ग्रंथ वैद्य रणजीत राय देसाई आयुर्वेदालंकार आयुर्वेदाचार्य द्वारा लिखा हुआ मैंनें ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जिसमें आयुर्वेद के आधार पर अर्वाचीन पद्धति का बड़ी योग्यतापूर्वक समावेश किया गया है । विद्वान् लेखक ने इस ग्रंथ का संकलन कर आधुनिक छात्रों के लिए अध्ययनार्थ विषय को बड़ी सौकर्यता के साथ दर्शाया है । अर्थात् आयुर्वेद के ग्रंथों में वर्णित भावों को जो अन्यान्य स्थानों व अध्यायों में विस्तृत रूप से सूत्ररूप में थे उन को प्रकरणबद्ध करके प्रत्येक विषय पर संग्रहात्मक स्वतन्त्र ग्रंथ निर्माण कर विशेष लाभप्रद बना दिया है । आधुनिक पाठ्यक्रम में पाश्चात्य-चिकित्सा सम्बन्धि "एनाटोमी-फिजियोलॉजी" का सभी विद्यालयों में समावेश हो चुका है अतः ऐसे ग्रंथ का प्रकाशन अत्यन्तोपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी मेरी धारणा है ।

यह ग्रंथ प्रायः ६०० पृष्ठों में मुद्रित है और इसका मूल्य केवल ११) रु० है ।

भारतवर्ष और सनातन धर्म–यह पुस्तक श्रीमान् पं० विश्वनाथ शास्त्री एम० ए० काव्यतीर्थ, विद्यावागीश, प्रोफेसर हिन्दु विश्वविद्यालय काशी, द्वारा संकलित की गई हैं । लेखक नें पुस्तक लिखते हुए धर्मप्राण भारतीय जनता को सम्बोधन करते हुए उनके नित्य के आहार, विहारादि का जिससे मनुष्य, आयु, तेज तथा बल प्राप्त कर सके, बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया है । इतना ही नहीं वरन् मनुष्य अपने चतुर्वर्ग को किस रीति से प्राप्त कर सकता है उसका भी दिग्दर्शन करा दिया गया है । अन्त में आपनें योग के अष्टांगों का बड़ी योग्यता के साथ सप्रमाण वर्णन किया है । सारांश यह है कि आयुर्वेद में जिन्हें रोग कहा है वह मनुष्य के किए हुए दुष्कृत्यों का ही फल है अतः इनसे (रोगों) मुक्त व्यक्ति तभी हो सकता है जब वह अपने धर्म पर चलता हुआ सुकृत कर्म करता रहे । यह पुस्तक बिना मूल्य वितरण की जा रही है जो सज्जन चाहें मंगवा लें ।

पता-प्रकाशक :--श्री संकटा प्रकाशन मण्डल, गोला गली, काशी ।

नानकचन्द्र शास्त्री

प्र० सम्पादक महासम्मेलन पत्रिका, देहली ।

आयुर्वेद लोक

आसाम राज्य द्वारा प्रथम आयुर्वेद सम्मेलन के अवसर पर पारित प्रस्तावों का सारांश

१. राज्य द्वारा आयुर्वेदिक आतुरालयों तथा औषधालयों की स्थापना--यद्यपि राज्य की ८० प्रतिशत जनता आयुर्वेदिक चिकित्सा पर आश्रित है तो भी अन्य राज्यों की भांति इस राज्य में आयुर्वेदिक आतुरालय एवं औषधालय खोल कर जनता को आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिये सुविधायें प्रदान नहीं की गई हैं। अतः यह अधिवेशन राज्य सरकार से यह अनुरोध करता है कि राज्य के विभिन्न भागों में यथाशक्य अधिक से अधिक आयुर्वेदिक औषधालय खोलें।

२. राजकीय आयुर्वेदिक कालेज गोहाटी--

(क) ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में स्थिर आतुरालयों तथा औषधालयों में राजकीय आयुर्वेदिक कालेज के स्नातकों को नियुक्त किया जाय जिससे आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना के ध्येय की पूर्ति हो सके। इन स्नातकों नें कालेज में आयुर्वेदिक तथा ऐलोपैथिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त की होती है।

(ख) कालेज के स्नातकों की स्थिति असिस्टेंट सर्जन के समान हो।

(ग) कालेज से सम्बद्ध एक आतुरालय की स्थापना की जाए जिसमें कम से कम १०० शैयायें हों।

(घ) पंचकर्म आयुर्वेदिक चिकित्सा का एक अविभिन्न अंग है अतः आयुर्वेदिक कालेज में उसमें अनुसन्धाम का अविलम्ब प्रबन्ध किया जाए। इस कालेज के द्वारा ही राज्य के विभिन्न भागों में प्राप्य प्राचीन मूल्यवान ग्रंथों तथा पांडुलिपियों के संग्रह की व्यवस्था की जाय अन्यथा इन मूल्यवान सम्पत्तियों का सर्वदा के लिए लोप हो जाने का भय है।

३. गोहाटी के केन्द्रीय स्थान पर आसाम राज्य आयुर्वेद सम्मेलन के लिए भूमि प्रदान की जाये। साथ ही १००० रुपये वार्षिक की आवर्त्तक धन राशि कार्यालय संचालनार्थ तथा उक्त भूमि पर एक स्थायी भवन निर्माण के लिए यथेष्ट अनावर्त्तक धनराशि सहायता के रूप में दी जावे।

४. आयुर्वेद राष्ट्रीय सम्पत्ति होनें के साथ-साथ गृह उद्योग भी है। उसकी रक्षा तथा प्रसार करना राष्ट्रीय सरकार का कर्त्तव्य है। अतः सरकार से प्रार्थना है उस पर बिक्री कर न लगाया जावे।

५. आयुर्वैदिक कालेज गोहाटी में विशुद्ध आयुर्वैदिक कर्माभ्यास की व्यवस्था की जाये।

६. सम्मेलन आसाम संस्कृत बोर्ड अधिकारियों का आयुर्वेद की पुरातन पद्धति के अनुसार शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने के लिए धन्यवाद देता है तथा प्रार्थना करता है कि अन्य आयुर्वैदिक शिक्षण संस्थाओं को भी वह सहायता प्रदान करे।

७. यह अधिवेशन सम्मेलन-मन्त्री को अधिकार देता है कि वह सम्मेलन का रजिस्ट्रेशन करावे और इसके मन्तव्यों को समुचित स्थानों को भेज दें।

स्मरण रहे आसाम राज्य आयुर्वेद सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में ता० २४ मई १९५३ को हुआ था जिसका संक्षिप्त वृत्तान्त जुलाई मासीय पत्रिका में प्रकाशित किया जा चुका है।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ

परीक्षाफल

जिन आयुर्वेद परीक्षार्थियों का परीक्षाफल जुलाई मास की महासम्मेलन पत्रिका में विचाराधीन घोषित किया गया था उन में से आयुर्वेद विशारद परीक्षार्थियों का परीक्षाफल निम्नांकित है।

क्रमांक, ३१४ सोमनाथ मिश्र, प्रथम खण्ड अनुत्तीर्ण:

" ३२९ कृष्णनन्दन मिश्र, " " "

परीक्षाफल संशोधन

पृष्ठ	क्रमांक	अशुद्ध	शुद्ध
३६४	१८६	१८६	१८९
३६५	१८६	काम०	काय०
३६६	१२६	१२६	२२६
"	३३२	पन्नारामसिंह	यशरामसिंह
३६७	१८७	शांतिस्वरूप जैन	शान्तिकुमार जैन
४१८	२१६	रुक्मणी	रुक्ष्मणी
४१९	४८९	फन् पापा	यन् पापा
"	५४३	रामचन्द्र मुगौड़	५४६ रामचन्द्र मुगौड़
४२३	२७१	जयशंकर द्विवेदी	जटाशंकर द्विवेदी
"	५०७	संगनबराव	संगनबसव

परिशिष्ट परीक्षा सम्बन्धी सूचना पंक्ति ८ में "आवेदन पत्र साधारणतया १५ अगस्त १९५३ तक.........स्वीकृत किये जा सकेंगे" को इस प्रकार पढ़ें "आवेदन पत्र साधारणतया २५ अगस्त १९५३ तक तथा विलम्ब शुल्क से १० सितम्बर १९५३ तक ही स्वीकृत किये जा सकेंगे।"

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण मौक्तिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लियें पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७६६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले और स्थाई गुणकर

मार्तन्ड आयुर्वेदिक-इंजेक्शन्स्

उच्च शिक्षित विदेशी वैज्ञानिकों की देख-रेख में, आधुनिक वैज्ञानिक मशीनों से पूर्ण सर्वसाधन सम्पन्न लैबोरेट्री में वैज्ञानिक तरीके पर बने, इन क्षार रहित आयुर्वैदिक इंजेक्शनों के चमत्कार ने वैद्यों में पुनः एक आशा की लहर ला दी है। हमारे इंजेक्शनों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगायें।

आविष्कर्ता एवं निर्माता:-**मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत (S.S. Rly) यू. पी.**

(रिसर्च इंस्टींच्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स)

आपका सन्तोष ही हमारा ध्येय

भारत-काशमीर भण्डार की

निम्नलिखित तथा सब प्रकार की कच्ची उत्कृष्ठ एवं विशुद्ध औषधियां स्वल्प मूल्य पर प्राप्त कर लाभ उठावें।

असली कस्तूरी ४०), केशर ६), अम्बर २०), १०), गोरोचन २४) प्रति तोला, शिलाजीत ३०), हींग २०) प्रति सेर तथा गुलकन्द ५०), मुरब्बा आवंला ४०) से १००), मु० सेब ७०), मु० बेल ४५), मु० गाजर ४५), मु० हरड़ ३०), से १००), प्रति मन, बरक चांदी २) से ५) प्रति गड्डी १२० वर्क, बरक सोना १०) से ५०) प्रति गड्डी बंसलोचन ३०), चूरा २०), स्वर्ण वंग ८०) प्रति सेर।

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त
भारत-काशमीर भंडार
कटड़ा चढ़त सिंह, अमृतसर। शाखा-रामगंज, जयपुर

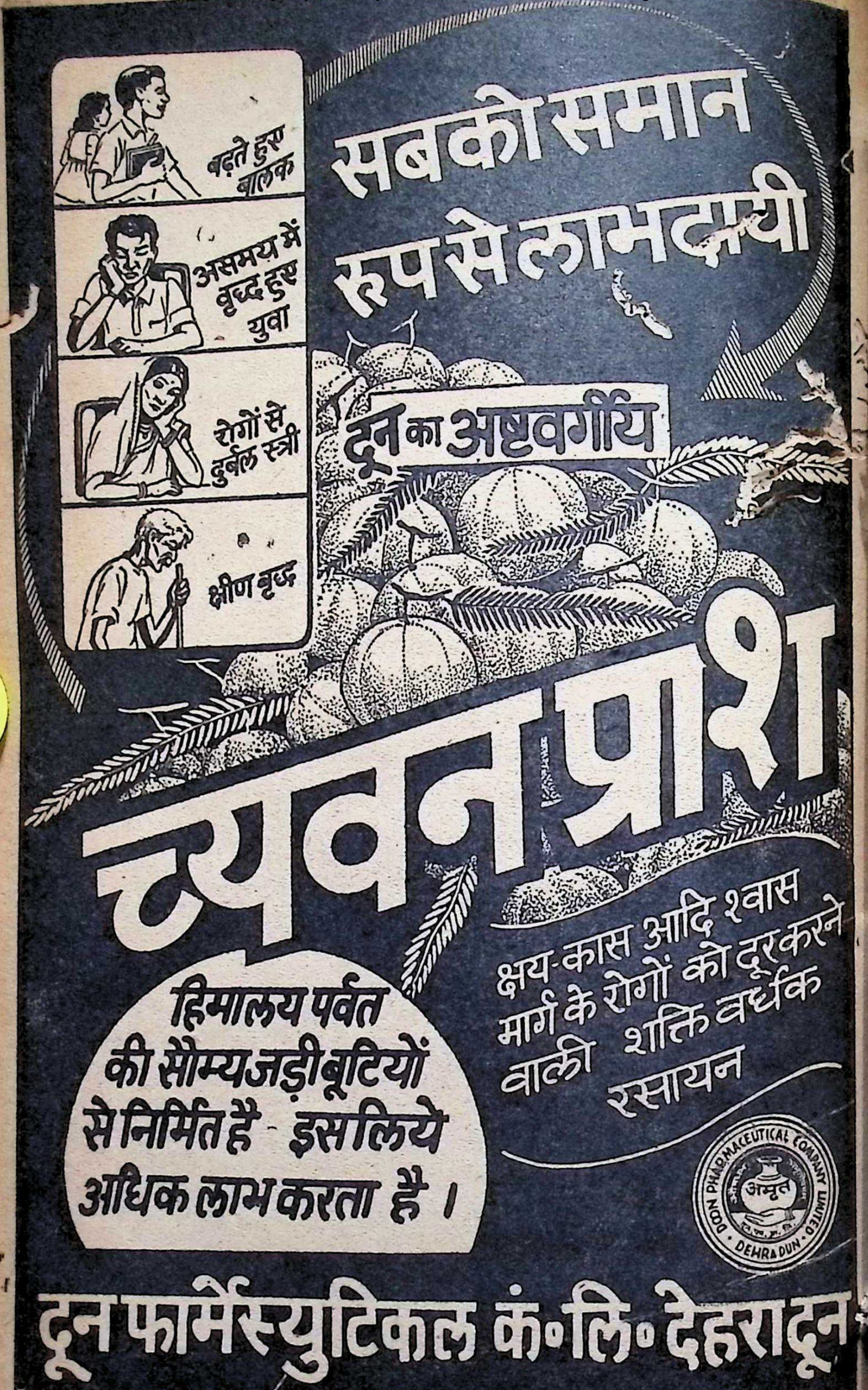

बढ़ते हुए बालक

असमय में वृद्ध हुए युवा

रोगों से दुर्बल स्त्री

क्षीण वृद्ध

सबको समान रुप से लाभदायी

दून का अष्टवर्गीय

च्यवनप्राश

हिमालय पर्वत की सौम्य जड़ी बूटियों से निर्मित है इसलिये अधिक लाभ करता है।

क्षय-कास आदि श्वास मार्ग के रोगों को दूर करने वाली शक्ति वर्धक रसायन

DOON PHARMACEUTICAL COMPANY LIMITED DEHRADUN

अमृत

दून फार्मैस्युटिकल कं० लि० देहरादून

सब प्रकार की विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधियों के लिए व एजेन्सी के लिए पत्र-व्यवहार करें

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे
रिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी
थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, ½ तो०, ¼ तो० सीलबन्द
ी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती
। इस कार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५
र और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में
शेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के
रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन
र मिलता है।

निवेदक—पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र—कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र—देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

विक्रेता— १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

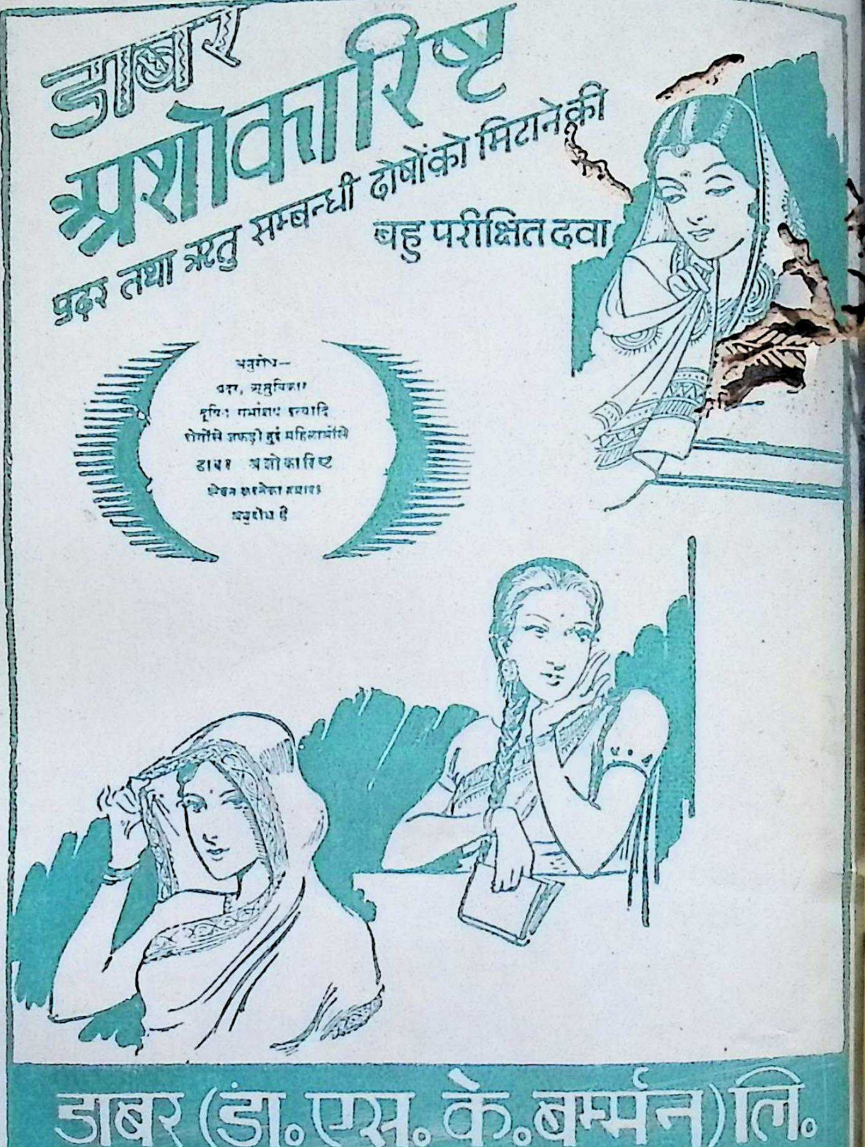
डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा
अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रक:——कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली ।

सितम्बर
१९५३

भाद्रपद
२०१०

ॐ
आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

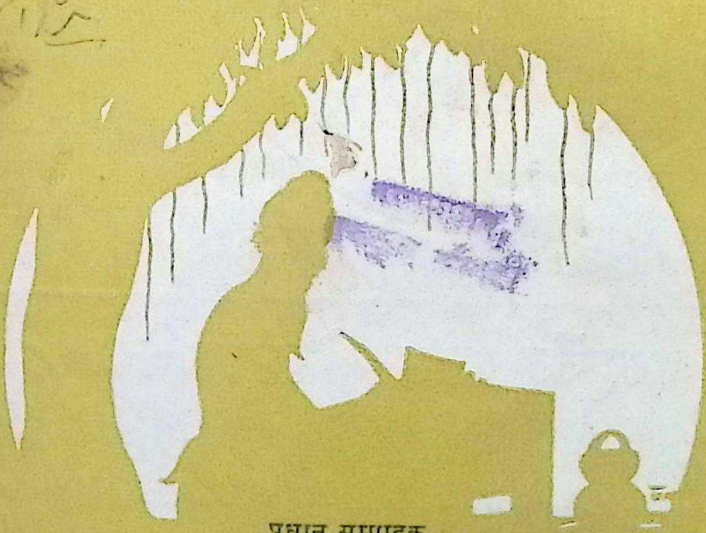

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस.

महासम्मेलन की सदस्यसंख्या में वृद्धि करने की परमावश्यकता

१. "आयुर्वेद को भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान कराना" तथा "अष्टांग आयुर्वेद के पुनरुज्जीवनार्थ सर्वांगपूर्ण एवं सर्वसाधन सम्पन्न आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करना" अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ये दो मुख्य उद्देश्य हैं। परन्तु इनकी सिद्धि अनवरत प्रयत्न एवं सामूहिक सहयोग से ही संभव है। अभी तक लगभग २००० दो सहस्र सदस्यों के सहयोग से आयुर्वेद महासम्मेलन का कार्य चलता आया है परन्तु परिवर्तित परिस्थिति [illegible] इतने से कार्य न चल सकेगा। भारतवर्ष एक महाद्वीप के समान विशाल देश है, इसके कोनें कोने में वैद्यबन्धु विराजमान हैं. उनकी संख्या ३ लाख से ऊपर कही जाती है, प्रायः सभी वैद्यबन्धु सुसम्पन्न, सौभाग्यवान, अपने व्यवसाय में सफल तथा कुशल एवं प्रसन्नावस्था में है, आयुर्वेद से उनका जीवनोपार्जन भलीभांति हो रहा है, फिर कोई कारण नहीं दीखता कि आयुर्वेद को उन्नति के शिखर तक पहुंचाने [illegible] लिये, जिसमें देश, जाति एवं राष्ट्र का ही हित निहित नहीं, अपितु उनकी [illegible] सिद्धि एवं सम्मान वृद्धि भी सन्निहित है, वे अधिकाधिक सहयोग न दें तथा अपनी आय का एक बहुत थोड़ा भाग भी इस महान् यज्ञ में भेंट न करें। मेरा दृढ़ मत है कि अब महासम्मेलन के कार्य को सुचारू रूप से चलाये रखने के लिए इसके न्यूनातिन्यून १०,००० दस सहस्र सदस्य होने चाहियें। अतएव महासम्मेलन के वर्तमान सदस्यों से साधारणतया एवं सम्बद्ध संस्थाओं से विशेषतया विनम्र प्रार्थना है कि वे अधिकाधिक नये सदस्य बनाने का भार ग्रहण करें। आशा है कि सदस्यगण एवं सम्बद्ध संस्थायें अपना पुनीत कर्तव्य समझ कर सदस्यतावृद्धि के इस आन्दोलन में इस कार्यालय को अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली वामनराव दीनानाथ वैद्य, प्रधानमंत्री

२. **लेखकों से अनुरोध** :—पत्रिका के लिये आयुर्वेद के विविध अंगों पर तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक, महासम्मेलन और वैद्यसमाज को पुष्ट करने वाले तथा वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्ति-युक्त सप्रमाण लेख भेज कर पत्रिका की शोभा बढ़ावें।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का

सुगम, सुलभ और प्रभावपूर्ण साधन है।

त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक विज्ञापनों पर विशेष सुविधा

विशेष जानकारी के लिये आज ही लिखिये !

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक--कविराज पं० नानकचंद्र वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक--पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ३९
अंक ९
दिल्ली, भाद्रपद २०१०, सितम्बर १९५३
मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. सम्पादकीय		४८२
२. आयुर्वेदीय खोज पर एक नोट	पं० शिवशर्मा जी	४८३
३. फक्क रोग	प्रो० राधाकृष्णनाथ	४८९
४. निम्ब पल्लव	श्री मोतीलाल केमलनयन	४९७
५. अष्टादश क्षय	श्री वैद्यनाथ भेड़ा	५०१
६. अथ बालग्रह बालतंत्रम्	पं० नानकचन्द्र शास्त्री	५०५
७. अमृता और विषम ज्वर	क० भीमदत्त	५१३
८. उत्तराखण्ड में आयुर्वेद	श्री स्वामी चेतनानन्द	५१७
९. नि० भा० आयुर्वेद शास्त्रचर्चा-परिषद्		५२१

सम्पादकीय

यह सर्व विदित तथ्य है कि आयुर्वेदीय पद्धति द्वारा चिकित्सा करने वाले नवीन वैद्य औषधियों का स्वयं निर्माण करने में आलस्य करते हैं। वे प्रायः औषधि का व्यवस्था पत्र लिखकर रोगी को औषधालय से औषधि लाने का आदेश दे देते हैं। किन्तु प्रायः यह देखने में आया है कि औषधालयों में जो प्रयोग बनाये जाते हैं उनसे रोगी को यथेष्ट लाभ नहीं होता।

इस का यह कारण नहीं कि आयुर्वेदीय औषधियां सद्यफ़लप्रद नहीं हैं। विधिविहित औषधियां यदि प्रस्तुत की जायें तो उनसे लाभ अवश्य होता है। तब विक्रियार्थ-निर्माण की औषधियों से लाभ न होने का क्या कारण हैं? इसका एक मात्र कारण यह है कि निर्माणकर्त्ता औषधियों में पड़ने वाले मूल्यवान द्रव्यों के स्थान पर अभाव द्रव्य डाल कर औषधियां तैयार करते हैं; ऐसी औषधि कैसे लाभदायक होगी? यह एक महान् त्रुटि है जिसे आयुर्वेद जगत को जनता के हितार्थ एवं स्वयं अपने और आयुर्वेद के सम्मान की रक्षा के लिये अविलम्ब दूर करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

इससे पूर्व भी मैं ने आयुर्वेद जगत, नगर-पालिकाओं एवं शासक वर्ग का ध्यान इस ओर दिलाया था और प्रार्थना की थी कि इस नकली औषधियों के विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाकर इस जघन्य कार्य को रोका जाए किन्तु यह बड़े दुःख का विषय है कि इस दिशा में अभी तक किसी ओर से भी कोई पग नहीं उठाया गया है।

"च्यवनप्राशावलेह को ही लीजिये-चारों ओर, अनेक पत्र-पत्रिकाओं में विक्रयार्थ बड़े-बड़े विज्ञापन देखने को मिलते हैं। आयुर्वेद च्यवनप्राश के चामत्कारिक गुणों से भरा पड़ा है। किन्तु आश्चर्य होता है वृद्ध को भी यौवन प्रदान करने वाली यह औषध, आज प्रभाव हीन कैसे बन गई है। वह अपने गुणों का शतांश भाग भी आज गुणकारी नहीं है। वास्तव में दोष च्यवनप्राशावलेह का नहीं उसके निर्माण करने वाले व्यवसायिकों का है जो धन कमाने की दृष्टि से सस्ते गुणविहीन अभाव द्रव्यों का उपयोग कर औषधि प्रस्तुत करते हैं। और इससे कलंकित होता है आयुर्वेद, एवं व्यवस्था देने वाला चिकित्सक जिन पर से दिन प्रतिदिन जनता की श्रद्धा घटती चली जा रही है।

किन्तु समय आज भी है, समय रहते ही यदि हम इन दोषों को दूर करलें तो जनता के हृदय पर फिर आयुर्वेद की छाप बैठ सकती है, सरकार को झुकाया जा सकता है और विरोधियों को ललकारा जा सकता है। अतः यह सामयिक चेतावनी देते हुए हम वैद्य समुदाय, औषध विक्रेताओं और निर्माण शालाओं से यह विनम्र और सानुरोध प्रार्थना करेंगे कि वे इस घृणित व्यापार को तुरन्त बन्द करने कराने का प्रयत्न करें और आयुर्वेद को एवं स्वयं को भी अपकीर्ति के गढ़े में गिरने से बचायें। वैद्यों को चाहिये कि वे औषध निर्माताओं से कहें कि वे विश्वस्त औषधियां ही बनायें अन्यथा उनके पास औषध-व्यवस्था-पत्र न भेजे जायेंगे। आप उनसे औषधियां मंगा कर अपने हाथ से रोगियों को देकर स्वयं परीक्षा करें जिससे आपको उन के दोषों का पता लग सके।

—तारकचन्द्र शास्त्री

आयुर्वेदीय खोज पर पं० शिवशर्मा का नोट

(यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टिट्यूट-आयुर्वेद विभाग)

आयुर्वेदीय संशोधन क्षेत्र में कुछ स्थल ऐसे भी हैं जिनको पूर्व कार्यकर्त्ताओं ने स्पर्श भी नहीं किया । ऐसे स्थल खोज के लिए सर्वथा नवीन विषय होंगे । यही उचित समझा गया है कि प्रायः इन्हीं विषयों पर खोज का कार्य आरम्भ किया जाए (तथा आवश्यकतानुसार अन्य विषयों पर भी) ।

(क) द्रव्य (औषध) शोध

(१) बल्य शामक (Tonic Sedatives) अथवा शामक बल्य (Sedative Tonics) औषध ।

ऐलोपैथी में प्रत्येक शक्ति-वर्द्धक औषध उत्तेजक है, प्रत्येक शामक औषध मनोदौर्बल्य उत्पन्न करने वाली है । न रोगी को बिना उत्तेजित किये कोई शक्ति-वर्द्धक औषध ही दी जा सकती है, न ही बिना दौर्बल्यकर प्रतिक्रिया उत्पन्न किए किसी शामक औषध का ही प्रयोग हो सकता है । इस में सन्देह नहीं कि ऐसी औषधों की प्रतिक्रियाएं सिद्ध करने के लिए आशु प्रतिक्रिया दर्शक असहिष्णु रोगियों की एक विशिष्ट श्रेणी की आवश्यकता होगी, उदाहरणार्थ नाड़ीदौर्बल्य पीड़ित स्त्रियें, उन में भी वह जिनके रजोनिवृत्तिकाल के लक्षण दारुण रूप धारण कर चुके हों । जिन आशु प्रतिक्रिया दर्शक असहिष्णु व्यक्तियों के लिए उत्तेजक और नाड़ीदौर्बल्यकर औषधों का निषेध है उनको शक्ति प्रदान करने के लिए आयुर्वेद में एक विभिन्न पद्धति विद्यमान है । आयुर्वेद में कई ऐसी औषधें हैं जो बिना उत्तेजना उत्पन्न किए भी शरीर में शक्ति का संचार करती हैं । इन औषधों के प्रयोग की परीक्षा उपयोगी और मनोरम नवीन तथ्यों को प्रकाश में ला सकती है ।

(२) प्रभावकारी द्रव्य—ऐलोपैथी के उत्तेजक औषध (Stimulants) पहले शरीर में लीन होते हैं और फिर मल मूत्रादि द्वारा बाहर निकलते हैं अतएव उनका शरीर में द्रव्य प्रतिक्रिया (Drug reaction) उत्पन्न कर देना स्वाभाविक है । आयुर्वेद में एक द्रव्य (औषध) समूह (रससिंदूर-चन्द्रोदय आदि) ऐसा है, जो शरीर में लीन होता ही नहीं और अपने मौलिक रूप में ही मलद्वार से शरीर

से बाहर निकल जाता है। तथाऽपि उपशय की दृष्टि से इस औषध समूह की क्रिया सर्वथा सिद्ध है। शोधक्षेत्र का यह एक दूसरा स्थल है जिसको आधुनिकों ने छूकर भी नहीं देखा।

(३) मेध्य औषध वर्ग—आयुर्वेदिक औषधियों का एक ऐसा वर्ग है, जैसे कि शंखपुष्पी, ज्योतिष्मति, ब्राह्मी, वचा इत्यादि जिसके समानधर्म औषधसमूह का आधुनिक चिकित्सा में सर्वथा अभाव है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनके सेवन से मेधा, बुद्धि और स्मृति की वृद्धि होती है। मानसिक विकारों में यह द्रव्य प्रायः अच्छा गुण दिखाते हैं। इनकी क्रियाएं अध्ययन करने के लिए और उन्हें प्रमाणित करने के लिए चिकित्सा क्षेत्र में इन औषधों के प्रयोग आरम्भ करने चाहिएं।

[ख] औषध तथा चिकित्सा में मिश्र शोध।

(१) मिश्रित औषध क्रिया। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में मिश्रित द्रव्य का प्रयोग प्रधान है। आधुनिक चिकित्सा में यह प्रणाली अभी नवीन है। यह देखा गया है कि मैलेरिया ज्वर समूह में प्लाज्मोडियम वाइवैक्स (Plasmodium Vivex) नामक मच्छर कीटाणु द्वारा हुआ ज्वर न तो क्वीनाइन से उतरता है न पामाक्विन (Pamaquin) से। परन्तु जब क्विनाइन और पामाक्विन को मिश्रित करके दिया जाता है तो वह ज्वर उतर जाता है। दो ऐसी औषधों के मिश्रण से उस व्याधि का दूर होना जिस पर अकेले दिए जाने पर इनमें से कोई एक भी लाभकारी नहीं, पाश्चात्यों को चकित करता है और वह इस लाभ की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं कर सकते। आयुर्वेद में मिश्रौषधचिकित्सा एक प्राचीन, प्रामाणित और उन्नत प्रणाली है। मिश्रित औषधों का क्रियाऽध्ययन भी खोज के लिए एक नवीन मार्ग है जिस से अच्छी फलप्राप्ति की आशा है।

(२) औषधमिश्रण का यह सिद्धान्त और भी परिवर्द्धित किया जा सकता है। रोगी के कल्याण को मुख्य रख कर दो विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों के द्रव्यों के मिश्रित प्रयोग के चिकित्सा फल का अध्ययन भी एक नवीन वैज्ञानिक परीक्षण सिद्ध होगा। इसी वर्ष में बड़ोदा में हुए एक ऐलोपैथिक कान्फ्रेंस में बड़ौदा के एक डाक्टर आर० ए० हकीम ने उन्मादादि मानसिक व्याधियों पर अपने प्रयोगों का फल घोषित करते हुए बताया कि केवल ऐलोपैथिक चिकित्सा में ३०%, केवल आयुर्वेदिक चिकित्सा में ५०% और आयुर्वेदिक और ऐलोपैथिक

चिकित्सा को मिला कर देने से ८०% रोगियों को लाभ हुवा। यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टिट्यूट में सम्पूर्ण चिकित्सा प्रणालियां विद्यमान होने के कारण रोगों पर विभिन्न पद्धतियों की औषधों के मिश्रणों के प्रभाव का अध्ययन विशेष सौकर्य्य से हो सकेगा।

(३) मिश्रित चिकित्सा--कई औपसर्गिक रोगों में आयुर्वेद कीटाणुओं की पूर्ण उपेक्षा करके रोगी की तद्रोग प्रतिबंधिकी शक्ति को उन्नत करने का ही प्रयत्न करता है, ऐलोपैथी रोग प्रतिबन्धिको शक्ति की उपेक्षा कर कीटाणुओं को नष्ट करने में ही प्रवृत्त होती है। किसी किसी व्याधि में औपसर्गिक आक्रमण इतना तीव्र होता है कि उसमें प्रबल कीटाणु नाशक अथवा जीवनाशक औषध का तात्कालिक प्रयोग ही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है और दोषानुसार प्रकृति-स्थापक चिकित्सा में रोग निराकरण में विलम्ब की संभावना होने के कारण पहला प्रकार ही अधिक उपादेय समझा जा सकता है। इसके विपरीत ऐसी अनेक व्याधियां हैं जिनमें शारीरिक प्राकृत भाव दीर्घकाल तक विषमावस्था में रह कर व्याधिप्राबल्य में इतना महत्व-प्राप्त कर लेते हैं कि जीवनाशक (antibiotics) और कीटाणुमारक (bactericides) औषधों को पुन: पुन: प्रयुक्त किए जाने पर भी व्याधि का अनुबंध बना ही रहता है और उलटा रोगी के शरीर धातुओं पर अवाँच्छित विषप्रभाव होना आरम्भ हो जाता है। यह दोनों प्रकार के रोगी इन दो विभिन्न प्रणालियों के सिद्धान्तों का सामंजस्य करके मिश्रचिकित्सा के प्रयोग के लिए आदर्श पात्र हैं। उदाहरणार्थ श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया) में पैनिसिलिन और सल्फ़ोनामाइड अथवा क्लोरोमाईसिटिन और सल्फ़ोनामाइड द्वारा संयुक्त उपचार की अपेक्षा मकर-ध्वज और शृंगाराभ्र के साथ पैनिसिलिन का उपयोग रोगी के शरीर, शक्ति और भावी स्वास्थ्य के लिए कहीं अधिक हितकर सिद्ध होगा।

(ग) चिकित्सा सम्बन्धी शोध–अस्थिगत संधिवात (Osteo-arthritis अस्थिसंधि प्रदाह) फुफ्फुसावरणप्रदाह (Pleurisy), मधुमेह (Diabetes), श्वसनक (Pneumonia), वृक्करोग (Nephritis), त्वग्रोग (Eczemas–विचर्चिका किटिम आदि) श्वासरोग (asthmas) तथा हृद्रोग (Heart diseases) इन व्याधियों पर उपयोगी चिकित्सा निश्चित करने के लिए विशेष प्रयत्न किया जायेगा क्योंकि पाश्चात्य पद्धति में इनकी चिकित्सा का परिणाम प्राय: बहुत असन्तोषजनक रहता है।

इसके अतिरिक्त द्रव्य और चिकित्सा सम्बन्धी संयुक्त शोध, जिसका निर्देश ऊपर (ख) धारा में किया है, भी इस औपचारिक शोध का एक आवश्यक अंग रहेगी।

(घ) उच्चतर आयुर्वैदिक शोध–परिस्थिति अनुकूल होने पर आयुर्वेदिक शोध को अधिक उच्चस्तर पर ले जाया जायेगा । इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं––

(१) विभिन्न आहार विहार का मनोवृत्ति पर विशिष्ट प्रभाव, सात्विक औषधान्न विहार द्वारा मानसिक वृत्तियों को उच्चस्तर पर लाना, इत्यादि ? इसके लिए दीघकाल तक प्रभूत संख्याक तत्वों का निरीक्षण, अध्ययन, और कलन करना आवश्यक होगा । स्वर्गीय डाक्टर एलेक्सिस कैरल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अज्ञात मानव" (Man The Unknown) में इस प्रकार की शोध को विशेष महत्व दिया है ।

(२) अनैच्छिक कर्मनिरोध ।

मानव शरीर की कुछ पेशियां अपने संकोच विकास के कार्य में स्वयं प्रवृत्त रहती हैं और मनुष्य की इच्छा से स्वतन्त्र हैं । क्या शरीर के अनैच्छिक कर्म में निरंतर रत रहने वाले अंशों को (योगाभ्यास आदि द्वारा) इच्छानुसार विश्राम देकर मनुष्य अधिक दीर्घजीवी बन सकता है ? उदाहरणार्थ यदि मनुष्य हृदय की गति को अपनी इच्छानुसार बन्द करने की शक्ति प्राप्त कर ले तो क्या वह हृदय की श्रांत पेशियों को निश्चल बनाकर और विश्राम देकर पुनः सशक्त बनने के लिए इस शक्ति को सफलता से प्रयोग में ला सकता है ? (इन प्रश्नों के उत्तर उन व्यक्तियों को संस्था में रखकर जो इच्छानुसार नाड़ी की गति बन्द कर लेते हैं और उनके हृदयों की उसी परिस्थिति और अवस्था के अन्य व्यक्तियों के हृदयों की तुलनात्मक परीक्षा और अध्ययन द्वारा मिल सकते हैं) ।

(ङ) सामूहिक स्वास्थ्य और सामूहिक व्याधियां–एक बड़ी मोटर बस में शोध की एक जंगम (चलती फिरती) इकाई, जिसमें दो या तीन विद्वान वैद्य होंगे, की स्थापना की जाएगी । इसके निम्नलिखित कर्त्तव्य होंगे:––

(१) प्रचलित रोगों का ग्राम-ग्राम में अध्ययन और स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़ों का एकत्रीकरण ।

(२) ग्राम में होने वाली व्याधियों की रोकथाम के लिए ग्रामवैद्य का उपयोग ।

(३) ग्रामवैद्य का आयुर्वेद सिद्धान्तों और उपक्रम में शिक्षण और प्रशिक्षण ।

(४) ग्राम वैद्यों का संगठन । ग्राम वैद्यों को ऐसे सब रोगी जिनका उपचार उनकी बुद्धि से बाहर है, उस दिन और उस समय एक स्थल पर एकत्रित करने होंगे जिस दिन और जिस समय इन्स्टिट्यूट की भ्रमणशील वैद्य समूह की बस की

उस ग्राम में आने की बारी होगी । संस्था के वैद्य उन रोगियों की व्याधि परीक्षा ग्राम वैद्यों की उपस्थिति में करके उन्हें चिकित्सा निर्देश करेंगे और उनका इस कार्य का रिकार्ड रजिस्ट्रों में निर्भ्रांत रूप से रखना सिखाएंगे । यह कार्य्य तत्तद् ग्राम में तब तक चलेगा जब तक उस ग्राम के वैद्य यह सब कार्य्य स्वतन्त्र रूप से करने में समर्थ न होंगे ।

(नोट) उपर्युक्त कार्य्य से यह लाभ होगा कि ग्रामों में जो अप्रयुक्त आयुर्वेदिक तत्त्व बिखरे पड़े हैं उनका सदुपयोग हो जाएगा और शनैः शनैः ग्राम वैद्य का ज्ञान और कौशल नगर वैद्य की योग्यता के स्तर पर आ जाएगा । ग्राम स्वास्थ्य सुधार और व्याधि परिहार के लिए निर्विष और उत्तम चिकित्सा के प्रसार का यह सबसे सस्ता मार्ग होगा और बड़ी संस्था या बड़े व्यय की आवश्यकता नहीं होगी । इसके अतिरिक्त ग्रामों में स्वास्थ्य और रोग के आंकड़ों की सूचना और ग्राम्य आहार विहार परिस्थिति के ज्ञान की प्राप्ति के रूप में इस कार्य्य से शोध के लिए भी प्रभूत सामग्री उपलब्ध हो सकेगी ।

(५) विशिष्ट व्याधियों का उनके आक्रमणस्थल के स्थानिक वातावरण और परिस्थिति में ही जंगम औषधालय द्वारा अध्ययन और सूचनोपार्जन ।

(६) इसी औषधालय द्वारा ग्रामीणों में और व्यायाम, स्नान, आसन, दन्तधावन ऋतुचर्य्या, दिनचर्य्या इत्यादि स्वास्थ्यप्रद भावों का प्रचार करना ।

(च) अल्पज्ञों द्वारा प्रयुक्त किए जाने पर भी हानि न करके लाभ ही करने वाली सादी आयुर्वेदिक घरेलू औषधों की एक सूची तैयार करना । उन औषधों को इकट्ठा करना और बांटना ।

(छ) एक आयुर्वेदिक संशोधन मण्डल (Ayurvedic Research Association) की स्थापना करना जो उन वैद्यों को प्रोत्साहन दे जिनकी प्रवृत्ति संशोधन की ओर हो । इस मण्डल का कार्य्य संचालन यूनिवसर्ल हैल्थ इन्स्टिट्यूट में किया जा सकता है और कार्य्यवाही का रिकार्ड भी यहीं रखा जा सकता है ।

(ज) चुने हुए वैद्यों को आयुर्वेदिक चिकित्सा कला, विशेषतया आयुर्वेदिक सिद्धांतों के प्रतिपादन और उनके प्रयोग रूप में उपयोग करने में दक्ष बनाना । जबसे आयुर्वेदिक शिक्षा वैद्यों के हाथों से छीन कर डाक्टरों के अधिकार में दे दी गई है तब से आयुर्वेदिक विद्वत्ता का घोर पतन होता जा रहा है । कुछ चुने हुए वैद्यों को वास्तव में उच्च स्तर के आयुर्वेदिक वातावरण और कार्य्यक्षेत्र में पुनर्शिक्षा देकर विद्वत्ता के

इस ह्रास का पर्याप्त निराकरण किया जा सकता है । इन वैद्यों को दी गई शिक्षा साहित्य के रूप में प्रकाशित कर अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओं में भी प्रसारित हो सकेगी ।

(झ) **गुप्तयोग प्रकाशन**–आयुर्वेदीय शिक्षा दीक्षा के क्षेत्र से बाहर बहुत से परमोपयोगी गुप्त योग विद्यमान हैं । यह प्रयत्न किया जाएगा कि जिन व्यक्तियों के पास ऐसे योग हैं वह उन्हें संस्था के संशोधक वर्ग को दे दें । जो इस कार्य्य में सहयोग दें उनको अपने योगों की उपयोगिता प्रमाणित करने के लिए संस्था में सुविधायें दी जाएं और तदनन्तर उन्हें प्रकट करने पर उनको उचित पारितोषिक और सम्मान दिया जाए । सरकार से ऐसी धारा भी बनवाई जाए जिससे इन सुविधाओं का लाभ उठाकर संस्था के समय, शक्ति और धन का दुरुपयोग करने वाले वंचकों का प्रतिकार भी हो सके ।

(ञ) **ऐतिहासिक शोध**–आयुर्वेद के आरम्भ और उन्नति का ऐतिहासिक अध्ययन । उन भौतिक और आध्यात्मिक भावों का अध्ययन जिन्होंने आयुर्वेदशास्त्र के सिद्धांत निर्माण में भाग लिया । अध्ययन और प्रदर्शन के लिए आयुर्वेद के १२५ शल्य यंत्र शस्त्रों का पुनर्निर्माण । सुश्रुत सम्प्रदाय के शल्य वैद्यों द्वारा की गई शल्य क्रियाओं का चित्रों द्वारा स्पष्टीकरण ।

(ट) **आयुर्वेद की शाखाओं का पुनरुद्धार**—दन्तरोगविज्ञान, नेत्ररोग विज्ञान इत्यादि । इन शाखाओं के कई वैद्य विद्वान आज भी उच्च कोटि का व्यवसाय कर रहे हैं और अपने कला कौशल से उन शाखाओं के पाश्चात्य विशेषज्ञों को चकित कर रहे हैं ।

(ठ) **आयुर्वेदीय दार्शनिक दृष्टिकोण (Philosophy of Ayurveda)**—यह कार्य्य बड़ा नहीं और एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा सकता है ।

(ड) आयुर्वेदिक शोध पत्रिका का प्रकाशन ।

(ढ) **मिश्रित**–औषधियों के भिन्न ऋतुओं में गुणभेद, संस्कार भेद से औषध में गुणभेद, शुक्र संजनन, सन्तति नियन्त्रण, रसायन विज्ञान, सत्वावजय, इत्यादि विषियों पर यथा समय शोध कार्य्य करना ।

फक्क रोग (Rickets)

लेखक:--प्रो० राधाकृष्ण नाथ, अध्यक्ष--कायचिकित्सा विभाग,
अ० शि० आयुर्वेद महाविद्यालय, बेगूसराय (बिहार)

बाल: संवत्सरा (पन्न:) पादाभ्यां यो न गच्छति ।
स फक्क इति विज्ञेयस्तस्य वक्ष्यामि भेषजम् ।।
(का० सं०)

काश्यप के अतिरिक्त और संहिताओं में इस रोग का वर्णन नहीं मिलता । यह रोग कफ प्रधान है और माता का कफ विशिष्ट दुग्ध संतति में फक्कोत्पादक होता है । जीवति (घ) की न्यूनता हेतु जब आहार गत खटिक और भास्वर का शरीर में शोषण एवं प्रतिधारण नहीं होता तब फक्कावस्था आती है । धान्यरुक् सान्द्रव प्राकृत त्वचा की अधस्तर में होता है और सूर्य प्रकाश या नील लोहित किरणों के प्रभाव से जीवति घ में परिणत होता है । स्नेह मीन यकृत्तैल, महापृथु मीन तैल, अण्डपीत एवं प्रविकरणित धान्य रुक्सान्द्रव, किंचित्मात्रा में दुग्ध में भी पाया जाता है । इसके अतिरिक्त पित्त सान्द्रव के साथ यह पदार्थ अनेक जान्तव, तथा औद्भिद तन्तुओं में पाया जाता है, जो न्यून मात्रा में नील लोहित किरणों के प्रभाव से जीवति घ में परिवर्तित हो जाता है ।

फक्क से सभी जाति के शिशु प्रभावित होते हैं । विशेषत: मन्द कटिबन्ध में बसने वाली जातियों की त्वचा में प्राकृत रंगायण के कारण नील लोहित किरणों के प्रवेश में बाधा उपस्थित होने से और शीत प्रधान देशों में बसने वाली जातियों के शिशुओं में सूर्य प्रकाश न्यून मिलने से अधिक पाया जाता है ।

आयुर्वेद में तीन प्रकार के फक्क का निर्देश है:
क्षीरज, गर्भज और व्याधिजन्य ।

क्षीरज:-धात्री श्लैष्मिकदुग्धा तु फक्कदुग्धेतिसंज्ञिता ।
तत्क्षीरपो बहुव्याधि: कार्श्यात फक्कत्वमाप्नुयात् ।।

जब स्तन्यदात्री जीवति घ से हीन आहार विहार करती है या अतीसारादि व्याधियों के कारण उसके पित्त में कमी हो जाती है जिससे जीवति घ का शोषण नहीं होता, तब

माता का दूध श्लेष्म विशिष्ठ होकर क्षीरज फक्क का कारण होता है।

गर्भिणीमातृकः क्षिप्रं स्तन्यस्य विनिवर्तनात्।
क्षीयते म्रियते वाऽपि स फक्को गर्भपीड़ितः॥

गर्भज : जिस शिशु की माता गर्भिणी हो जाती है तो शीघ्र ही माता का दूध बन्द हो जाने से वह शिशु क्षीण हो जाता है या मर जाता है इसे गर्भ पीड़ित फक्क कहते हैं।

जो शिशु कृत्रिम दुग्ध पर जीवन निर्वाह करते हैं यद्यपि शुष्क और सघनीकृत दुग्ध में फक्क हर शक्ति न्यून मात्रा में होती है और यदि उन्हें पर्याप्त सूर्य प्रकाश नहीं मिलते या कृत्रिम दुग्ध में जीवति घ नहीं मिलाया जाता है तो फक्क ग्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार के भी शिशु जिन्हें ६ मास तक शुद्ध स्तन्य मिला हो, किन्तु स्तन त्याग के अनन्तर प्राणिज आहार से वंचित कर अन्नाहार ही दिए जांय तो दूसरे वर्ष में फक्क से पीड़ित हो जाते हैं। प्रांगोदीयाधिक्य स्नेह हीन आहार भी फक्क विकार का कारण है।

यह स्मरण रहना चाहिए कि अन्तर्गर्भाशयिक जीवन के अन्तिम दो मासों नें गर्भ-शरीर खटिक लवण का संचय करता है। अतः अप्रगल्भ शिशुओं में खटिक की राशि उचित मात्रा में संचय नहीं लेने पाती और अंशतः अप्रगल्भ शिशुओं की तीव्रता से वृद्धि के कारण फक्क हो जाता है।

आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद जी ने कौमार भृत्य में जो अर्थ लिखा है वह व्याकरण की दृष्टि से भी शुद्ध नहीं जंचता।

व्याधि सम्यवः—अनेक रोग ऐसे हैं जिनका वर्णन स्थान-स्थान पर किया जायगा, जो फक्क उत्पन्न करने में सहायक हैं।

यह रोग विकासोन्मुख अवस्था का है, जिन ऋतुओं में पर्याप्त सूर्य प्रकाश नहीं मिलते उनमें आहार गत जीवति घ की न्यूनता हेतु फक्क उत्पन्न हो जाता है। दरिद्रता और अस्वास्थ्यकर निवास भी इस रोग की उत्पत्ति में प्रमुख कारण है। यह विकार सहज नहीं होता तथा चार मास से पूर्व एवं तीन वर्ष से अधिक की अवस्था में इसका निश्चित लक्षण कदाचित् ही मिलता है।

विकृत शारीर—फक्क की सक्रियावस्था में रक्तगत खटिक या भास्वर की राशिन्यून हो जाती है। अधिकसंख्य रोगियों में रक्तगत खटिक प्राकृत सीमा में रहता है, किन्तु भास्वर की मात्रा न्यून हो जाती है। कदाचित दोनों की राशि अनुपाततः न्यून हो जाती है। खटिक न्यूनता जन्य फक्क में अपतानिका (Tetany) स्वरयन्त्र कार्कश्य और आक्षेप आदि वात प्रधान उपद्रव होते हैं। बढ़ती हुई अस्थियों में भास्वीयेद (Phosphatare) की उपस्थिति में खटिक भास्वीय (Calcium Phosphate) के संचय से अस्थिनिर्माण कार्य

सम्पन्न होता है। फक्कीय बच्चों में भास्वीयेद प्राकृत अवस्था में मिलता है, इसलिए यह समझा जाता है कि रक्त से जिस प्रक्रिया द्वारा बढ़ती हुई अस्थियों को खटिक भास्वीय मिलता है उस प्रक्रिया में विकृति होती है। सिद्धांतत: खटिक भास्वीय नहीं मिलने के अनेक कारण हो सकते हैं १. आहार में उचित मात्रा में खटिक और भास्वर न हो। २. अन्त्र द्वारा शोषण में विकृति हो। ३. जिस प्रक्रिया द्वारा रक्त से अस्थि तन्तुओं के निर्माणार्थ आवश्यक खटिक और भास्वर लिया जाता है उसमें बाधा हो। अशोषित खटिक मल द्वारा निकलता है और ऐसा विचार है कि खटिक का अंत्र द्वारा शोषण होता है किन्तु अस्थियां अपने विकास के लिये उसे ग्रहण नहीं करतीं तो पुन: अन्त्र में उत्सृष्ट होता है और भास्वर का मूत्र द्वारा अधिक उत्सर्ग होता है।

निजैरागन्तुभिश्चैव ……रो ज्वरादिभ: ।
अनाथ: क्लिश्यते बाल: क्षीणमांसबलद्युति: ॥
संशुष्कस्फिचबाहूरुर्महोदरशिरोमुख: ।
पीताक्षो हृषितांगश्च दृश्यमानास्थिपंजर: ॥
प्रम्लानाधरकायश्च नित्यमूत्रपुरीषकृत् ।
निश्चैष्टाधरकायो वा पाणिजानुगमोऽपि वा ॥
दौर्वल्यान्मन्दचेष्टश्च मन्दत्वात् परिभूतक: ।
मक्षिकाक्रिमिकीटानां गम्यश्चासन्नमृत्युरुक् ॥
विशीर्णहृष्टरोमा च स्तब्धरोमा महानख: ।
दुर्गन्धी मलिन: क्रोधी फक्क: श्वसिति ताम्यति ॥
अतिविण्मूत्रदूषिकाशिघांणकमलोद्भव: ।
इत्येतै: कारणैर्विद्याद् व्याधिजां फक्कतां शिशो: ॥

(का० फ० चि०)

प्राय: आधुनिकों में भी इससे मिलते हुए लक्षणों का (Rickets) में वर्णन किया है। लक्षण:--

लक्षणों की अभिव्यक्ति क्रमश: होती है, पूर्वावस्था में शिशु उद्विग्न तथा क्षुब्ध होता है और वाल सुलभचपलता न्यून हो जाती है। शीत और बसन्त की रात्रि में भी पुर: कपाल में स्वेद निर्गम होता है। नियमत: शिशु स्थूल और पूर्व में अधिक स्वस्थ दीख पड़ता है। किन्तु स्नायु ढीली और पेशियां दुर्बल हो जाती हैं। इस रोग में अस्थि गत परिवर्तन विशेष महत्व रखता है। फक्कीय करोटि में अस्थि भवन कार्य विलम्बित तथा अनियमित होता है। पुर: एवं पार्श्वकपाल के अस्थि भवन केन्द्र के चतुर्दिक् उभार देखा जाता है (पूर्व में इस चिह्न को सहज फिरंग का माना जाता था)। साधारणत: ब्रह्मरन्ध्र

१८ मास के भीतर बन्द हो जाता है किन्तु इस अवस्था में विलम्ब से बन्द होता है। सावधानी से स्पर्श करने पर पश्चात् कपालास्थि पर मृदुता मिलती है और करोटि चौकोर हो जाती है। बहुधा दन्तोद्गम विलम्ब से होता है, प्रथम दन्त भी दूसरे वर्ष तक नहीं देखा जाता। अन्तर्गर्भाशयिक जीवन में जो शिशु खटिक संचय कर लेते हैं उनके दुग्ध दन्त समय पर निकल भी आते हैं, किन्तु आकृति विहीन और समय से पूर्व अपक्षय वाले होते हैं। जीवति घ हीन अधिक धान्याहार कृमिदन्त की उत्पत्ति में सहायक होता है। फक्क अपना कुप्रभाव द्वितीय दन्तोंगम पर भी डालता है। सबसे साधारण और पूर्वावस्था में मिलने वाला चिह्न फक्कीय माला (Rickety rosary) है जो पर्शुकाओं और उनकी तरुणास्थियों के सन्धि स्थल, विशेषतः चतुर्थ पंचम षष्ठ में मिलते हैं। कोमल पर्शुकायें पीछे की ओर दब जाती हैं और उरः फलक ऊपर हो जाता है, फलतः कपोतवक्ष देखा जाता है। मेरुदण्ड को बांधने वाली स्नायु तथा प्रधानतः पेशियों की शिथिलता हेतु एवं अंशतः कशेरुकाओं की कोमलता के कारण पृष्ठवंश टेढ़ा हो जाता है त्रिकास्थि आगे की ओर उभर जाती है जो बालिकाओं में प्रसव के समय कष्ट-प्रसव का कारण होती है। रोग बढ़ने पर लम्बी अस्थियों का शिखर प्रान्त बढ़ जाता है यह मणिबंध और गुल्फ में अधिक स्पष्ट होता है सन्देह स्थल पर क्ष रश्मि परीक्षा करा लें। भार पड़ने के कारण लम्बी अस्थियां टेढ़ी हो जाती है। रक्त कण की अपेक्षा शोणवर्तुलि अधिक न्यून होती है, फलतः रक्ताल्पता होती है, बहुधा अल्प मात्रा में श्वेताणु वृद्धि मिलती है। पेशी तान में कमी एवं स्नायु शिथिलता के कारण चलने तथा बैठने में विलम्ब होता है।

उदर प्राचीर की पेशियों की तान tone में कमी एवं अंशतः फक्कोपसृष्ट बच्चों

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान
विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७९६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

में प्रांगोदीय आहार की अधिक प्रवृत्ति होने के कारण उदर में दूषित वायु उत्पन्न होने से उदर आध्मापित रहता है प्लीहा और यकृत् स्पर्श लभ्य होते हैं ।

उपद्रव–अतीसार और श्वसन मार्ग का संक्रमण बहुत साधारण बात है। शालूक (Adenoid) की वृद्धि हेतु जब वक्ष में वायु प्रवेश में बाधा होती है तब वक्ष प्राचीर में विकृति होती है। क्लोमनली प्रदाह का आक्रमण बार-बार होता है। वक्ष प्राचीर की दोषपूर्ण गति के साथ-साथ फक्कीय बालक में रोग क्षमता की न्यूनता हेतु बहुधा उत्फुल्लिका का अकस्मात् आक्रमण हो जाता है जो भयंकर भी है । मंडान्न (Starch) प्रधान आहार में अधिक प्रवृत्ति के कारण अतीसार साधारण उपद्रव ही नहीं अपितु अंत्रकी पेशियों की दुर्बलता और चिरकालीन आध्मान का कारण रह कर कभी-कभी मृत्यु का भी कारण होता है ।

सापेक्ष निदान–पूर्वावस्था में मिलने वाले लक्षण समूह अन्य रोगों में भी मिलते हैं अतः ये ही निदानात्मक नहीं हैं । अस्थियों का स्पर्शासहत्व बाल प्रशीताद (Infantile Scurvy) का परिचायक है, फक्क में स्पर्श से शूल नहीं होता किन्तु प्रशीताद में होता है, यदि शिशु छः मास से पूर्व का है तो स्पर्शासहत्व फिरंगज अस्थिशीर्ष प्रदाह का निर्देश करता है । अस्थिवक्रता भी निर्णयात्मक चिह्न नहीं, यह चिह्न स्वस्थ शिशु में भी अंशतः पैर की बाह्य धारा में वसा के संचय एवं प्राकृत के कारण मिलती है एवं अस्थि वक्रता फक्क का पुरोवर्ती लक्षण भी नहीं होता । प्राकृत वक्रता शिशु जब चलने लगता है मिट जाती है और प्रायः सम्पूर्ण पैर में होती हैं और फक्क में वक्रता जंघास्थि अस्थि के नीचे के प्रान्त में ही होती है ।

फलाफल : अनुपद्रव फक्क से कदाचित् ही मृत्यु होती है । अतीसार और उत्फुल्लिका (Brancho Pneumonia) मृत्युकारक है । रोग क्षमता न्यून होने से संसर्गज रोगों, विशेषतः रोमान्तिका, कुकुर कास, प्रतिश्यायज्वर (Influenza) आदि उपद्रव स्वरूप हुए तो चिन्ताजनक अवस्था हो जाती है । गंभीर रोगियों में अस्थि विकृति फक्कावस्था के बाद भी बहुत दिनों तक रह जाती है । पर्शुकास्थि वक्रता और अस्थि शिर की वृद्धि साधारणतः मिट जाती है किन्तु ३।४ वर्षों तक चिकित्सा न हुई तो पृष्ठवंश, वक्ष गुहा और श्रोणि में विकृति के साथ-साथ वृद्धि भी रुक जाती है ।

रोग रोधक चिकित्सा : स्तन्य सेवी शिशु की अपेक्षा कृत्रिम दुग्ध सेवी शिशु इससे अधिक प्रभावित होते हैं अतः नियमतः ९ मास तक शिशु को स्तन्य सेवन कराया जाय पुनः गोदुग्ध या अजा दुग्ध के साथ क्रमशः अन्नाहार दें । बच्चों को हरितशाक, माखन, अंडा, दाड़िम द्राक्षा, नारंगी आदि आहार में अवश्य दिए जांय । सूर्य प्रकाश न्यून मिलने पर द्वितीय वर्ष के अन्त तक आहार जीवति घ से पूर्ण कर दिए जाएं । आयुर्वेद औषध

सिद्ध घृत आदि का सेवन इस कमी की पूर्ति के लिए ही है। जहां तक संभव हो बच्चे को स्वच्छ वायु और सूर्य प्रकाश में रखें। स्तन्यदात्री के लिए जीवति घ खटिक और भास्वर से पूर्णाहार, सूर्य प्रकाश, शुद्ध वायु एवं लघु व्यायाम आवश्यक है। मातृ दुग्ध कफ से दूषित हो तो उसकी चिकित्सा करें और स्तन्यदात्री को शीतस्थान, शीतल जल और अभिस्यन्दि पदार्थों सें बचावें।

रोगनिवार्णार्थ : काश्यप ने कल्पाणक, पटपल घृत या अमृत घृत से स्नेहन करा त्रिवृत् से कोष्ठ शुद्धि कर पुनः ब्राह्मी घृत का विधान किया है। कफाधिक्य में दुग्ध के साथ गोमूत्र का एवं सर्वावस्था में राजतैल का विधान किया है। यथा

राजतैलम् : एरण्डांशुमतीबिल्व....................॥
.........शास्ते कार्या दशपलाः पृथक्।
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं समावपेत्।
अपां पचेच्चतुर्द्रोणे कषायं पादशेषितम्॥
तैलप्रस्थं दधिप्रस्थं कषायं च पुनः पचेत्।
तत् सिद्धं गोपयेद्यत्नात् सर्वथा संप्रयोजयेत्॥ का०

इसके अतिरिक्त वातोपद्रव रहे तो :

बस्तयः स्नेहपानानि स्वेदाश्चोद्वर्तनानि च।
... ...।
वातरोगेषु बालानां संसृष्टेषु विशेषतः॥
... ...जन्तोः सुखाश्च शय्यासनबस्तियौगाः॥ (का०)

आभ्यन्तर और बाह्य प्रयोगों द्वारा जीवति घ का पर्याप्त प्रयोग ही चिकित्सा का मूल सूत्र है और दोनों में से किसी एक विधि का अवलम्बन कर रुग्ण को स्वस्थ किया जा सकता है किन्तु शीघ्र आरोग्यता के लिए दोनों विधियों का आश्रय लेना चाहिए। मुख द्वारा जीवति घ को किस रूप में दिया जाय यह एक प्रश्न है। शु० संकेन्द्रित जीवति घ को या प्राकृतिक अवस्था में जैसे रहता है वैसे दिया जाय। यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवति घ लघु मात्रा से भीं अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करता है वहां मात्राधिक्यता से वृक्क और धमनियों में धूर्णिपन (calcification) का कारण भी होता है। इसके अतिरिक्त जीवति घ का प्रभव स्नेह होने से आहार मूल्यन (Food Value) भी है, इस कारण प्राकृतिक रूप का अधिक लाभकर होता है। किन्तु फक्क ग्रस्त बच्चे क्वचित प्राकृतिक जीवति घ की उचित मात्रा सहन नहीं करते और उन में अतीसार और दौर्बल्य का कारण होता है या स्वादु नहीं होने से बिलकुल नहीं सेवन करते और तब संकेन्द्रित का ही आश्रय लेना पड़ता है। भारत में कृत्रिम प्रकाश चिकित्सा की उतनी आवश्यकता नहीं, हां, वर्षा ऋतु में पारद वाष्पदीप (Mercury Vapour Lamp) या प्रांगार चाप दीप

(Carbon arc Lamp) के उपयोग से लाभ हो सकता है । साधारणतः दीप को रोगी से प्रायः ३ फुट की दूरी पर रखा जाता है । किरणों का उपयोग प्रतिदिन या दूसरे दिन सावधानी से करें और १ मिनट से लेकर क्रमशः चौथाई घंटा तक दिया जा सकता है । दूसरी औषधियों में खटिक और भास्वर का व्यवहार यदि शिशु को उचित मात्रा में दुग्ध नहीं मिले तो करना चाहिए और ६ वें मास के बाद यदि आहार में माखन, अंडपीत, हरित शाक न मिलता हो तो व्यवहार करना चाहिए । रक्ताल्पता की अवस्था में लोह का प्रयोग करे । यदि अपतानिका उपद्रव में हो तो शीघ्रता से लसी खटिक (Serum Calcium) की वृद्धि हेतु उपरोक्त चिकित्साओं के अतिरिक्त खटिक मधुमीय (Calcium Gluconate) १०% का अन्तर्पेश्य विधि से १० सी सी दें । अत्यायिक अवस्था में शिरामार्ग से दिया जाना चाहिये । खटिक और भास्वर उचित मात्रा में मिले और उसका शरीर में उपयोग हो एतदर्थ गोरोचन मुक्ता, प्रवाल, यशदभस्म लोह भस्म मिश्रित औषधों का उपयोग करना चाहिए ।

फक्कग्रस्त बच्चे का उदर नियमित रहे इस पर ध्यान रखना चाहिए यदि अतीसार हो जाय तो सर्वप्रथम उसको शान्त करें अन्यथा लाभ नहीं होता । अवस्था विशेष से गोरोचनवटी बिडंगार्क, शंख योग से बना सुधाशर्करा एवं उदर नियमित रहने पर वृ० छागलाद्य घृत, मुक्ता, पंचामृत, अरविन्दासव, लौहासव आदि औषध विशेष लाभकर है । बच्चे को नियमित सूर्य प्रकाश में बलातैल या लाक्षादि तैल का अभ्यङ्ग कराना चाहिये । आहार में अवस्थानुसार अजादुग्ध, मोसमी, नारंगी आदि फलरस, मूली पालक टमाटर आदि हरित शाक और उदर नियमित रहने पर वाग्भटोक्त प्रीणन मोदक या अतीसार अवस्था में दीपन, संग्राही मोदक दें । यथा :

प्रियालमज्जमधुकमधुलाजसितोपलैः ।
अपस्तन्यस्य संयोज्यः प्रीणनो मोदकः शिशोः ।।
दीपनो बालबिल्वैलाशर्करालाजशक्तुभिः ।
संग्राही धातुकीपुष्पशर्करालाजतर्पणैः ।।

अ० उ० १

इसके अतिरिक्त सूर्य प्रकाश, स्वच्छ वायु में नियमतः बैठाना या खेलाना चाहिए किन्तु सक्रिय फक्क में परिश्रम से बचा कर जब चिकित्सा से लाभ दीख पड़े तो नियमित बैठाना या चलाना चाहिए । इसके लिए काश्यपने--

त्रिचक्रं फक्करथकं प्राज्ञः शिल्पिकनिर्मितम् ।
विदध्यात्तेन शनकैर्गृहीतो गतिमभ्यसेत् ।।

का निर्देश किया है ।

क्षय की एक प्रभावशाली औषध

कुमुदेश्वर रस

निर्माण–शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, चांदी भस्म, सुहागा, स्वर्ण माक्षिक भस्म सब समान भाग लेकर कांजी की भावना देकर लवण यंत्र में पकावें।

यह राजयक्ष्मा की बहुत गुणकारी औषध है। राजयक्ष्मा की प्रथम और द्वितीयावस्था में अचूक कार्य करती है। इसके सेवन से क्षय के कीटाणु नष्ट होते हैं और कास और ज्वर की शांति होकर रोगी रोग-मुक्त हो जाता है।

फुफ्फुस के रोग में यह अच्छा लाभ करती है।

चिकित्सक इस योग का प्रयोग करके चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

मूल्य–१ तोले का रुपये ४०-०-०

ऊंझा फार्मेसी लि० ऊंझा (गुजरात)

किसी भी आयुर्वेदिक औषध के लिये ऊंझा याद रक्खें।

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले और स्थाई गुणकर

मार्तन्ड आयुर्वेदिक-इंजेक्शन्स्

उच्च शिक्षित विदेशी वैज्ञानिकों की देख-रेख में, आधुनिक वैज्ञानिक मशीनों से पूर्ण सर्वसाधन सम्पन्न लैबोरेट्री में वैज्ञानिक तरीके पर बने, इन क्षार रहित आयुर्वेदिक इंजेक्शनों के चमत्कार ने वैद्यों में पुनः एक आशा की लहर ला दी है। हमारे इंजेक्शनों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगायें।

आविष्कर्ता एवं निर्माता:–**मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत (S.S. Rly) यू.पी.**

(रिसर्च इंस्टींच्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स)

निम्ब पल्लव

लेखक:—मोतीलाल कमलनयन पाराशर, आयु-रत्न,

भारत में स्वतः निम्ब (नीम) वृक्ष की पत्तियां कृमि नाशक, शीतल, कटु, रक्त तथा वीर्यशोधक एवं शान्ति-दायक मानी जाती हैं। स्वास्थ्य के लिए नीम को सर्वप्रथम सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है। जिस गृह वा पुरे में नीम होता है, उस घर व मुहल्ले के अधिकांश व्यक्ति प्रायः स्वस्थ रहते पाये जाते हैं। नीम के पत्ते लगभग प्रत्येक ऋतु में सरलता से प्राप्त हो सकते हैं। गुणों की दृष्टि से भी अद्वितीय एवं प्रभाव भी रामबाण के समान होता है। हानि नाम मात्र को भी नहीं होती। नीम के इन्हीं गुणों ने लेखक को चन्द पंक्तियां "निम्ब पल्लव" शीर्षक लेख लिखने के हेतु उत्साहित किया है, अतः स्वार्थ नहीं परमार्थ की भावना से यहां वही योग अंकित किए गये हैं, जो प्रतिशत गुण करते हैं। नैत्र रोग नाशक गुण इसमें विशेष रूप से पाये जाते हैं। प्राय व्रण पर हमारे कृषक बन्धु इसके पत्तों की लुगदी बना कर व्रण-मुख पर चिपका देते हैं। प्रतिदिन लुगदी ताजा पत्तों की चिपकाते हैं। इससे व्रण बिना फैले, बिना कष्ट दिये, कुछ गिनती के दिनों में ही रूझ लेकर छोड़ेगी, और व्रण पूर जायगा, बाद को खोपरेल का तैल वा शुद्ध घृत का ताजा फाया बांधने से पूरा आराम हो जायगा। इससे असाध्य से असाध्य दुष्ट व्रण भी प्रायः मिट जाता है।

(२) नाहरू पर नीम के पत्तों को आग में भोभल्ये बना कर स्नायु मुख पर बांधनें से नाहरू मर जाता है। यह क्रिया प्रायः प्रतिदिन ऊष्णोदक (निम्ब-पत्र उबले) से नाहरू के व्रण को धोनें के पश्चात् ही, निरन्तर कम से कम एक सप्ताह पर्यन्त तो अवश्य ही करना चाहिये। श्री हरि की कृपा से नाहरू समूल नष्ट हो जायगा और रोगी स्वस्थ हो जायगा। योग परीक्षित है।

(३) इसी प्रकार शतधौत गोघृत में एक भाग निम्ब पल्लव रस संयुक्त करके घृत पाक की विधि से घृत निर्माण कर वह मरहम लगानें से भी नाड़ी व्रण तथा व्रण पर चमत्कारिक लाभ होता है।

(४) पत्तों को जला कर उस राख को खोपरेल-तेल अथवा घृत में मिश्रित कर लेपन करने से भी व्रण पूर जाता है।

(५) पत्तों को उबाल कर उस जल से व्रण धोये जांय तो व्रण-वृद्धि भय नहीं

रहता। इसी जल से खारिश (खुजली) वाला स्नान करे तो दो चार दिवस में खुजली साफ हो जाती है। परन्तु ध्यान रखने योग्य बात यह है कि प्रयोग काल से पूर्व रोगी को कोष्ट शुद्ध्यर्थ कोई हलका सा जुलाब अवश्यमेव दे दिया जाना अनिवार्य है। ऐसा करने से निस्सन्देह लाभ होता है।

(६) नीम के पत्ते काली मिर्च तथा नीला थोथा इनको सूक्ष्म पीस लुगदी तैयार करलें। शुद्ध खोपरेल या सरसों के तैल को कढ़ाई में डाल कर बीच में उक्त लुगदी रख कर कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ा दें। कुचले नग ५ भी डाल दें। अब नीचे आग दे कर सब को जला लें। ठंडा होने पर इस तैल को नासूर, व्रण और खुजली आदि पर लगावें। काली फुल्ली रोग जो कि बड़ी अँगुली या अँगूठे के पोरे पर हो जाती है, और जिसमें इतनी जलन होती है कि रोगी मरण में ही शान्ति अनुभव करता है। इस रोग में लापरवाही करने से अँगुली वा अँगूठा चला जाता है। उक्त योग इस रोग की पेटेंण्ट औषध है। हमारे यहाँ एक महात्मा पधारे थे, हमारे एक बन्धु जो इस रोग से रो रहे थे, उक्त तैल के लगाने तथा बत्ती बना कर रखनें से रोग-मुक्त हो गये थे, अतः मैंने गुरु जी से सीख कर पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया है। औषध कम से कम एक सप्ताह पर्यन्त प्रयोजित करना आवश्यक है। (७) उक्त तैल को माथे में लगाने से जूएँ लीखें आदि पड़ना बन्द हो जाती हैं केश भी नर्म रहते हैं। (८) सर्प-बिच्छू-गोयूरा के विष में तथा नाहरू लू व धूत आदि रोगों में भी नीम के पत्तों का झाड़ा-फूंकी के लिए प्रयोग होता है। (९) नीम के पत्तों को जला कर थोड़ा नमक मिला कर दन्त-मंजन करने से दांत उज़्जवल एवं मजबूत हो जाते हैं। कुलना भी बन्द हो जाता है। (१०) रक्त शुद्ध्यर्थ निम्ब पल्लव को काली मिर्च में घोट कर प्रातः निराहार पीने की रीति हमारे यहां बहुत प्राचीन है। बहुत से पुरातन वृद्ध चैत्र मास में उदर शुद्धि के पश्चात् निम्ब-पल्लव का कल्प प्रारम्भ करते हैं। इससे वस्तुतः रक्त शुद्धि, धातु शुद्धि, बलवृद्धि, बंधेज शक्ति वृद्धि होकर नवजीवन प्राप्त हो जाता है। लाल गुलाबी चमकता हुआ चेहरा हो जाता है। शरीर मस्त हो जाता है। यह कल्प प्रायः १ मास पर्यन्त चालु रहता है। तैल, खटाई तथा स्त्री से बचना पड़ता है। वह गर्मी में शान्तिदायक एक मात्र पेय है। खुजली, फोड़ा, फुन्सी पीलिया कुष्टादि व्याधियाँ भी समूल नष्ट हो जाती हैं और नवजीवन प्राप्त होता है।

(११) कुछ नीमों से ग्रीष्म ऋतु में मद चूता है। मटके व शीशे भर-भर के लोग इसे संग्रहीत कर रखते हैं। भयंकर उदरशूल के लिए हथेली भर उस मद को पिला देनें से शूल शान्त हो जाती है, वह प्रमेह नाशक भी है।

(१२) नीम के पत्तों की सूक्ष्म लुगदी बना कर, रूई की बनी हुई बत्तियों पर चारों ओर इस लेप का गाढ़ा गाढ़ा लेप कर दें। बत्तियों को छाया में शुष्क करके सरसों के

तैल या शुद्ध ताजा गो घृत में थोड़ा देशी कपूर मिला बत्ती जला, ऊपर कोई मिट्टी का स्वच्छ कोरा ठीकरा औंधा इस ढंग से रखना चाहिए कि जिससे दीपक की लौ सीधी उस ठीकरे पर ही पड़े। परमेश्वरेच्छा से जो काजल हाथ लगेगा वह ममीरे सुरमे का भी बाप हाथ लगेगा। स्वयं अनेक माताएं अपने नन्हे नन्हे शिशुओं की नेत्र रक्षणार्थ इसका प्रतिदिन प्रयोग करती हैं। आई हुई आंखों को भी तुरन्त लाभ हो कर परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। यह परम शान्तिदाता काजल हमारे यहाँ अनेक माताएं प्रतिवर्ष निर्माण कर एक सफ़ल गृह-वैद्य की गरज पूरी करती हैं। वस्तुतः माता ही शिशु की एकमात्र सफल चिकित्सिका हो सकती है। हमें हर्ष व अति गौरव होना चाहिए कि एक जमाना था घर घर में आयुर्वेद का बोलबाला था, उसी समय से आयुर्वेद की गुण-गरिमा एवं चमत्कारिता का ऐसा जादुई विकास हुआ कि सदियों की गुलामी के बाद भी, विदेशियों के लाखों दबावों पर भी आयुर्वेद-साहित्य एवं समाज को नष्ट भ्रष्ट कर देने के यत्नों के बाद भी हमारी वह आदि विद्या घर घर में आज भी जीवित है। आज का भूला कल रसते लग जाय तो वह भूला नहीं कहा जाता। ठीक इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि हमारी सरकार तो क्या, परन्तु हमारे चिकित्सक बन्धु एक दिल से निःस्वार्थ भाव से जन जीवन के कल्याणार्थ अपने हृदय के द्रव्य योग घर घर में प्रचारित एवं प्रसारित करदें, तो वह दिन दूर नहीं जब भारत के बच्चे बच्चे के मुख पर आयुर्वेद अपना अधिकार पा जायगा और तब सरकार स्वतः उस आयुर्वेद को गुलामी के बन्धन से हटा कर राष्ट्रीय चिकित्सा पर पदासीन कर देगी।

मैं विषय छोड़ कर दूसरे रस्ते चला गया, इसके लिए पाठकों से क्षमा-याचना करके २४ योग और भी लिख कर विदा लूंगा, परन्तु इस प्रसंग में मैं इतना निवेदन कर देना भी आवश्यक समझूंगा कि आज दुर्भाग्य से मातायें आयुर्वेद ज्ञान विहीन हैं, वे स्वास्थ्य व शिशु रक्षा के नियमों से अनभिज्ञ हैं, और यही कारण है कि बचपन से ही माता की लापरवाही से बालकों की नाक व आंखें इतनी कमजोर हो जाती हैं कि आज २०, २० वर्ष के नवयुवक भी चश्मा लगा कर घाणी के बैल बने फिर रहे हैं। फिर भला चालीस वर्ष से ऊपर के लिये क्या कहा जा सकता है। ऐसे घाणी के बैल बनें बन्धुओं से मैं कर बद्ध निवेदन करूंगा कि वे एक बार इस उक्त काजल को सविधि निर्माण कर कम से कम १५ दिवस प्रयोग कर देखें कि उन्हें कितना लाभ होता है। प्रयोग काल में चश्मा न लगायें, सायं प्रातः कम से कम १-१ मील शुद्ध वायु में घूमें। भोजन-सुधार व शरीर शुद्धि की ओर विशेष ध्यान दें तो उन्हें वह लाभ होगा जो शायद १००० रुपये खर्च करने पर भी नहीं हो सकेगा। नेत्रों की लाली, दिनांध, रात्रि-अन्ध, फूली, जाला आदि तथा कमदृष्टि आदि समस्त रोगों में इससे अवश्य ही लाभ होता है। जिन बन्धुओं एवं माताओं को घर के शिशुओं की नेत्र रक्षा का ख्याल है उन्हें तो अवश्य ही इसका प्रयोगारम्भ करना चाहिए।

(१३) उष्णता से शिरोवेदना होती हो तो प्रायः २१ पत्ती नीम की व ५ काली मिर्च पीस कर पी लें, वेदना तीसरे दिवस मिट जायगी--तैल, खटाई, अध्यसन, वेगावरोध, पज्ञापराध तथा वायु-कारी पदार्थों से बचें। दिमागी कार्यों को बिल्कुल त्याग दें। शीतोदक में स्नान करें। सायं प्रातः १ मील पर्यटन शुद्ध वायु में करें फिर देखें कि आपकी शिरोवेदना कहाँ जाती है। यदि तीन दिन में नहीं तो ७ दिवस में पूरा लाभ अवश्य होगा।

(१४) काली मिर्च २१, नीम की पत्ती २१ इनकी नस्य बना कर प्रातः छींकें लेने से शिर-शूल शान्त होता है।

(१५) नीम के पत्ते, गूगल, लौहबान, गन्धक आँवला सार तथा तुलसी के पत्ते इनका धुआं बना कर बन्द गृह में देने से खटमल व मच्छर मर जाते हैं। वायु मण्डल शुद्ध हो जाता है।

(१६) नीम का मरहम सूंघने से शिरःशल शान्त होता है। शिरो कृमि मर जाते हैं तथा नैत्र दृष्टि भी बढ़ती है। नासूर भी मिट जाता है नासिका का।

(१७) व्यायाम करने वाले बन्धु यदि निम्ब-वृक्ष के तले व्यायाम करें, तो व्यायाम के साथ साथ शुद्ध वायु भी मिलेगी और साथ ही परम शान्ति भी प्राप्त होगी।

(१८) मैंने बहुत से भोपों को देखा है कि वे बिल्कुल अन्धों को जो शौचादि से निवृत्ति पाने हेतु बाहर निकलने को भी समर्थ नहीं होते, और जिन्हें केवल धूप के और कुछ भी नहीं दीखता था, उक्त नीम के काजल का निरन्तर प्रयोग करवा के उन्हें सूझते बना देते हैं। नाम मात्र को उन्होंनें अपने धूप की राखोड़ी (विभूति) उसमें डालने हेतु कहा, और इससे चमत्कारिक लाभ हुआ। आठवें दिन चौकी होती है, ५।७ चौकी पर रोगी देवरा धोंकने जाता है-इतने ५×७=३५ दिवस व्यतीत हो जाते हैं। आत्म विश्वास पूर्वक प्रयोग करने से मैं यह कह सकता हूँ कि यह उन भोपों व देवों के प्रताप से आंखें नहीं खुलतीं हैं, बल्कि हमारे इसी अमृत-वृक्ष 'नीम" के पत्तों का प्रभाव होता है। अतः मैं तो नीम को सर्व नेत्ररोग नाशक एक मात्र सस्ती सुन्दर एवं उत्तम प्रकृति देवी की देन मानता हूँ। आशा है सहृदय पाठक मुझसे सहमत होंगे। लेख बढ़ने के भय से मैं नीम के अन्यांगों का वर्णन नहीं कर सका हूँ, शेषांगों के अद्भुत चमत्कारिक योग पाठकों की सेवा में आगामी किसी अंक द्वारा प्रेषित करूंगा।

नं० ७ के तैल को माताएँ जिन व्यक्तियों के सिर में व्रण, खुजली, गंज आदि हो जाते हैं, प्रयोजित कर सकती हैं। इससे काफी लाभ होता है।

अष्टादश क्षय

लेखक :—श्री वैद्यनाथ भेड़ा आयुर्वेदाचार्य, बम्बई

(जुलाई अंक से आगे)

मलानामोजसस्तथा क्षयाः । (चरकः)

पुरीष, मूत्र, स्वेद ये तीन अन्न के मल होते हैं । इनमें से मूत्र और मल को पृथक् करने का कार्य उदर विभाग में ही होता है । मुख द्वारा सेवन किए हुए अन्न का पाचन तथा अनुकूल भाग (सात्म्य भाग) का शोषण क्षुद्रांत्र के अन्त भाग तक प्रायः हो जाता है और स्थूलांत्र में केवल मल और जल ये दो भाग ही आ जाते हैं । इस में मल भाग को पुरीष कहते हैं । स्थूलांत्र के प्रारम्भ से गुदा तक मल उचित मात्रा में पहुंचनें पर ८० प्रतिशत जलीय भाग का शोषण हो जाता है । किट्टमन्नस्य विण्मूत्रम् (चरक) अर्थात् किट्टांश का स्थूल भाग पुरीष होता है और सूक्ष्मभाग मूत्र होता है ।

पुरीष का कार्य—पुरीष देह का धारण तथा वायु और अग्नि का भी धारण करता है । प्राणियों का बल शुक्र के आधीन तथा जीवन मल के आधीन होता है ।

पुरीषमुपस्तम्भं वाय्वग्निधारणं च करोति ।
शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं च जीवितम् ।।

देह धारक गुण होने से उचित मात्रा में पुरीष का रहना आवश्यक है ।

पुरीष क्षय लक्षण—पुरीष क्षय होने पर अन्त्र, हृदय और पार्श्व में पीड़ा सशब्द वायु का उदर में ऊपर नीचे और तिर्यग् गमन तथा आध्मान होता है ।

पुरीषे वायुरंत्राणि सशब्दो वेष्ठयन्तिव ।
कुक्षौभ्रमति यात्यूर्ध्वं हृत्पार्श्वे पीडयन् भृशम् ।

अतीसारावस्था, विरेचन का अतियोग, उपवास आदि से पुरीष का क्षय हो जाने से वायु का प्रकोप हो जाता है ।

मूत्र–शरीर में मूत्र अनवरत बनता रहता है जो मूत्र स्रोतसों द्वारा बस्ति में आकर इकट्ठा होता है । काफी इकट्ठा होने पर मनुष्य को मूत्र त्याग करने की आवश्यकता या इच्छा होती है ।

मूत्र की उत्पत्ति-आयुर्वेदानुसार मूत्र की उत्पत्ति खाद्यपेय द्रव्यों के किट्ट भाग

से आमपक्वाशय में मलधरा कला, पाचक पित्त और समान वायु की सहायता से होती है, वहां से असंख्य मूत्र वह स्रोतों से वस्ति में पहुंचता है ।

तत्राहार प्रसादाख्यो रसः किट्टंच मलाख्यमभिनिवर्तते, किट्टात् स्वेदमूत्रपुरीषाः पुष्यन्ति । (चरक)

मूत्र क्या वस्तु है–पुरीष जिस प्रकार आहार का साक्षात् मल है–मूत्र वैसा नहीं है । किन्तु सर्व शरीर में अनुधावन करता हुआ रक्त जब वृक्कों में प्राप्त होता है, तब वहां पर आंत्र नामक हजारों स्रोत उसके अन्दर स्थित मल अंश और उचित से अधिक जलका निर्हरण कर लेते हैं । इस निर्हृत द्रव्य को ही मूत्र कहते हैं ।

मूत्रं नाम–वृक्कयोः सहस्रशोऽवस्थितेषु-अतिसूक्ष्मेषु (आंत्राख्येषु) प्रणाली मुखेषु नियतं परिस्रवति, ततश्च वृक्क निर्गताभ्यां "मूत्रवह" संज्ञाभ्यां स्रोतोभ्यां प्रक्षरति मूत्राशये वस्त्यपर पर्याये । (प्रत्य० शा० उपो०)

अन्नक्लेदनिर्वाहणेन मूत्रम् । (अष्टांग संग्रह)

मूत्र के कार्य–मूत्रवस्ति का पूरण करता है, शरीर के त्याज्य जलीय भाग को बाहर निकाल देता है ।

वस्ति क्लेद कृन्मूत्रम् । (सुश्रुत)

मूत्र क्षय के लक्षण–मूत्र के क्षय होने पर वस्ति स्थान में पीड़ा तथा मूत्र की कमी हो जाती है–मूत्रकृच्छ्र, मूत्र के रंग में परिवर्तन, अति तृष्णा, तथा मुख में खुश्की यह लक्षण होते हैं ।

मूत्रक्षये मूत्रकृच्छ्रं मूत्रवैवर्ण्यमेव च ।
पिपासा बाध्यते चास्य मुखं च परिशुष्यति । (चरक)

सप्त मल क्षय–मलायनानि चान्यानि शून्यानि च लघूनिच ।
विशुष्काणि च लक्ष्यन्ते यथास्वं मलसंक्षये ।

नासिका, कर्ण, नेत्र, मुख, रोमकूप (स्वेद) मलों के क्षय के लक्षण सामान्यतः यह है–

रसादि सात धातुओं के मल यथा क्रम इस तरह होते हैं–

१. जिह्वा का जल (जिह्वास्थित लाला ग्रन्थियों का स्राव) नेत्रों का जल (आनन्द अथवा शोकावस्था से प्राप्त अश्रुजल) तथा कपोलों का जल यह रस धातु के मल हैं ।

२. रञ्जक पित्त रक्तधातु का मल है ।

३. कानों का मल (मैल) यह मांस धातु का मल है ।

४. जिह्वा का मल, कक्षा का मल, तथा अण्डकोषादि में होने वाला मल (एवं स्वेद) यह मेद धातु का मल है।

५. नख यह अस्थि धातु के मल हैं।

६. नेत्र मूल, मुख की चिक्कणता एवं यौवन पिड़काएँ मज्जा धातु के मल होते हैं।

किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्यतु कफोऽसृजः।
पित्तं मांसस्यतुमलं, खेषु स्वेदस्तु मेदसः।
नखमस्थ्नस्तु लोमाद्याः, मज्जः स्नेहोऽक्षि विट्त्वचः।
प्रसादः किट्ट धातूनां पाकादेवं विवर्धंते।

स्वेद क्षय से रोम कूम बन्द हो जाते हैं, त्वचा में शुष्कता हो जाती है, स्पर्श ज्ञान यथोचित नहीं होता है।

स्वेदक्षये स्तब्धरोमकूपता, त्वक्शोषः स्पर्श वैगुण्यम्। इति।

त्वचा में १ स्वेद ग्रन्थियां २ तैल ग्रंथियां इस भेद से दो तरह की ग्रंथियें होती हैं। इन ग्रन्थियों से एक सचिक्वण पदार्थ निकलता रहता है, जिससे चमड़ी में चिकनापन मृदुता एवं चमकपन रहता है। स्वेद की क्षीणता में रोम कूपों के बन्द हो जाने से ऊपर निर्दिष्ट लक्षण हो जाते हैं। स्वेद ग्रन्थियों की नलियों का बालों की जड़ों से सम्बन्ध होने से रोम च्युति भी हो जाती है।—जैसा वाग्भट्ट कहते हैं।

स्वेदो रोमच्युतिः स्तब्धरोमता स्फुटनं त्वचः।

ओज—आयुर्वेद सिद्धांत से मानव देह में ओज एक अत्यन्त महत्व का पदार्थ माना गया है। इसकी उत्पत्ति आहार रस से ही होती है तथा ओज रसादि धातुओं का सार भूत है। यह शीतवीर्य, किंचित् लाल तथा पीतवर्ण स्निग्ध पिच्छिल एवं तरल पदार्थ है। यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर प्रसरणशील है। इसका प्रधान स्थान हृदय है। यह शरीर की वृद्धि करता है, शरीर में कार्य करने की शक्ति प्रदान करता है, शरीर को रोगक्षम बनाता हुआ, शरीर का धारण करता है।

ओज के विषय में प्राचीन आचार्यों में बहुत मत मतान्तर मिलते हैं। आधुनिक विद्वानों में भी मत भिन्नताएँ हैं चक्रपाणि पर और अपर भेद से दो प्रकार के ओज मानते है। पर ओज ही हृदय में रहता है, अष्टविन्द्वात्मक है। इनके नाश होने पर मृत्यु हो जाती है। अपर ओज धमनियों में रहता है। उसका परिमाण अर्द्धांजलि है। इसकी न्यूनता होती रहती है। मधुमेह में इस ओज ही का मूत्र द्वारा निर्गम होता रहता है।

चरक में इसका बहुत विस्तृत वर्णन है—

येनौजसावर्तयन्ति प्रीणिताः सर्वजन्तवः ।
यदृते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते ।
हृदि तिष्ठति यच्छुभ्रं रक्तमीषत् सपीतकम् ।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति । (चरक)

ओज क्षय के लक्षण—चरक में ओज क्षय के लक्षण—ओज से क्षीण पुरुष हमेशा दूसरों के सामने दबा रहता है, शरीर और मन के बल से शून्य रहता है, उसकी इन्द्रियां सदा व्यथित रहती हैं, वर्ण रूक्ष तथा शरीर कृश रहता है, यह निस्तेज और सर्वदा चिंता ग्रसित रहता है ।

विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायतिव्यथितेन्द्रियः ।
दुश्छायो दुर्मना रूक्षः क्षामश्चेवौजसः क्षये ।

सुश्रुत मत से—ओज के क्षय होनें पर इससे होने वाले सभी कार्यों में क्षति हो जाती है । तथा शरीर का नाश भी हो जाता है । बिगड़े हुए ओज के विस्रंस, व्यापत् और क्षय ऐसे तीन अवस्थाऐं सुश्रुत ने बतलाई है ।

त्रयोदोषा बलस्योक्ता व्यापद् विस्रंसन क्षयाः । इत्यादि ।

इस तरह अष्टादश क्षय चरकोक्त प्रतिपादित होते हैं ।

आयुर्वेद में रस रक्तादि धातु तथा मल मूत्रादिकों का प्रमाण निर्देश किये हैं—

जैसे—रस ९ अञ्जलि प्रमाण । रक्त ८ अञ्जलि प्रमाण । पुरीष ७ अञ्जलि प्रमाण । कफ ६ अञ्जलि प्रमाण । पित्त ५ अञ्जलि प्रमाण । मूत्र ४ अञ्जलि प्रमाण । वसा (मेद सहित) ३ अञ्जलि प्रमाण । मेद २ अञ्जलि प्रमाण । मज्जा १ अञ्जलि प्रमाण । मस्तिष्क ½ अञ्जलि प्रमाण । वीर्य ½ अञ्जलि प्रमाण । ओज (ओजोधातु नामक कफ) ½ अञ्जलि प्रमाण ।

यह वर्णन चरक शारीर स्थान में आया है । अञ्जलि का परिमाण परिभाषा में आधाशराव के बराबर होता है जो लगभग ३२ तोला के बराबर होता है । इसको आप अच्छी तरह मिलाइयेगा । नवीन विचारों के साथ बहुत फर्क नहीं आता है ।

* * *

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम,
सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है ।

अथ बालग्रह बालतन्त्रम्

लें०—पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

अग्निरुवाच—१. बालतंत्रं प्रवक्ष्यामि बालादि ग्रहमर्दनम् ।
अथजात दिने बालं गृही ग्रह्णाति पापिनी ।।
गात्रोद्वेगोनिराहारो नाना ग्रीवा प्रवर्तनम् ।
तच्चेष्टमिदं तत्स्यान्मातॄणां च बलं हरेत् ।।
मत्स्यमांससुरा भक्ष्य गन्ध स्रग् धूप दीपकैः ।
लिम्पेच्च धातकी लोध्र मञ्जिष्ठा ताल चन्दनैः ।।
माहिषाक्षेण धूपश्च..........

अर्थात् बालकों के ग्रहादि पीड़ा नष्ट करने के लिये बालतन्त्र को लिखते हैं। जन्म दिन में बालक को पापिनी नामक गृही का आवेश होता है जिससे शिशु के गात्र में उद्वेग, भूख का नाश तथा ग्रीवा का पुनः पुनः घुमाना आदि लक्षण होते हैं। मत्स्य, मांस, सुरा, चन्दन, पुष्पमाल, धूप तथा दीप आदि बलि द्रव्य एकत्रित कर बलि दें, तथा धवपुष्प लोध्र, मजीठ, हरताल तथा श्वेत चन्दन इन को पीस कर शिशु के शरीर पर मालिश करें और भैंसिया गुग्गुलु की धूप दें।

२. द्विरात्रे भीषणी ग्रही । तच्चेष्ठा कास निश्वासौ गात्र
संकोचनं मुहुः ।।
अजामूत्रै लिम्पेत्कृष्णा सेव्यापामार्ग चन्दनैः ।
गोश्रृंग दन्त कैशैश्च धूपयेत्पूर्ववद्बलिः ।।

दूसरी रात में भीषणी नामक ग्रही बालक को ग्रहण कर लेती है—वह कास, श्वास तथा गात्र-संकोच से पीड़ित होता है। बकरी के मूत्र में पिप्पली, खस, अपामार्ग तथा श्वेत चन्दन पीस कर देह पर लेप करें। गोश्रृंग, गोदन्त, गोकेश इन्हें यथा-लाभ लेकर इससे धूपन करें। तथा बलि पूर्ववत् दें।

३. गृही त्रिरात्रे घण्टाली तच्चेष्टा क्रन्दनं मुहुः
जृम्भणं स्वनितं मासो गात्रोद्वेगमरोचनम् ।।
केसराञ्जन गोहस्तिदन्तं साजपयोः लिपेत्
नखराजी विल्व दलैर्धूपयेच्च बलिं हरेत् ।।

तीसरी रात्रि में घण्टाली नामक गृही का आवेश होता है उससे रोना, जम्भाई,

शब्द करना, डरना तथा गात्रों का इधर उधर पुनः पुनः फैंकना आदि भाव होते हैं। केसर, अञ्जन, गो तथा हाथीदान्त, बकरी के दूध में पीस कर लेप करें तथा, नखी, राई, बिल्व पत्रों से धूप दें और बलि पूर्ववत् दें।

४. गृही चतुर्थी काकोली गात्रोद्वेगमरोचनम्।
फेनोद्गारौ दिशो दृष्टिः कुल्माषैः सासवैर्बलिः ॥
गजदन्ता हि निर्मोक वाजिमूत्र प्रलेपनम् ॥
सराजिनिम्बपत्रेण धूर्तकेशेन धूपयेत्।

चतुर्थ रात्रि में काकोली नामक गृही का आक्रमण होता है जिसके लक्षण गात्रोद्वेग अरुचि, फेन का निकलना, उद्गार होना, नेंत्र-भ्रमण आदि होते हैं। कुल्माष तथा मद्य से बलि देना, गजदन्त, सर्पकेंचुली इनको पीस घोड़े के मूत्र के साथ लेप करना चाहिये।

५. हंसाधिका पञ्चमी स्याज्जृम्भाश्वासोर्ध्वं धारिणी।
मुष्टि बन्धश्च तच्चेष्ठा बलि मत्स्यादि ना हरेत् ॥
मेषशृंग बला लोध्र शिला तालैर्शिशुं लिपेत् ॥

हंसाधिका पंचमी गृही है जिससे जम्भाई, उर्ध्वश्वास, मुट्ठियों का बांधना होता है। इसमें मत्स्यादि से बलि देना तथा मेढ़े का सींग, बला, लोध्र, मनसिल, हरताल आदि से लेप करें।

६. फटकारी गृही षष्ठी, भयमोह प्ररोदनम्।
निराहारोऽङ्ग विक्षेपो हरेन्मत्स्यादिना बलिम् ॥
राजी गुग्गुलु कुष्टेभ दन्ताद्यै धूपलेपनैः ॥

छठी गृही का नाम फटकारी है जिससे भय, मोह, निराहार, अंगों का फैंकना आदि लक्षण होते हैं। मत्स्यादि से बलि दें तथा राई गुग्गुलु, कूठ, दन्तादि से धूप तथा लेप करें।

७. सप्तमें मुक्त केश्यार्त्तः पूतिगन्धोविज्जृम्भनम्।
सादः प्ररोदनं कासो धूपो व्याघ्र नखैर्लिपेत् ॥
वचा गोमय गोमूत्रैः........।

सातवीं रात्रि में मुक्त केशी से पीड़ित बालक के लक्षण, दुर्गन्धी युक्त जम्भाई होना, गात्रों में पीड़ा, रोना, कास, आदि होते हैं। व्याघ्र नख से धूप तथा वच, गोमूत्र तथा गोबर से लेप करें।

८. श्रीदण्डी चाष्टमी गृही। दिशो निरीक्षणं
जिह्वा चालनं कास रोदनम्।

वलि:पूर्वैवमत्स्याद्यै र्धूप लेपे च हिंगुल: ।
वचा सिद्धार्थ लशुनै:......।

अष्ठम श्रीदण्डी गृही जिसमें शिशु दिशाओं की ओर देखे, जिह्वा चलाये, कास तथा रोदन करे। मत्स्यादि से पूर्ववत बलि दें। हिंगुल, वच, सरसों, लसुन आदि का लेप करें।

९. उर्ध्व ग्राही महागृही। उद्वेजनोर्ध्व नि:श्वास:
स्वमुष्टि द्वखादनम्। रक्त चन्दन कुष्ठाद्यै
र्धूपयेल्लेपयेच्छिशुं। कपिरोमनखैर्धूपो।

नवमी महागृही जिसमें उद्वेग, उर्ध्व श्वास होता है तथा अपनी दोनों मुठ्ठियों को बालक खाता है। रक्त चन्दन कूठ से लेप करें तथा बन्दर के रोम तथा नख से धूप दें। बलि पूर्ववत् दें।

१०. दशमी रोदनी गृही। तच्चेष्टा रोदनं
शश्वत्सूगन्धो नील वर्णता। धूपो
निम्बेन भूतोग्र राजि सर्ज रसैर्लिपेत्।

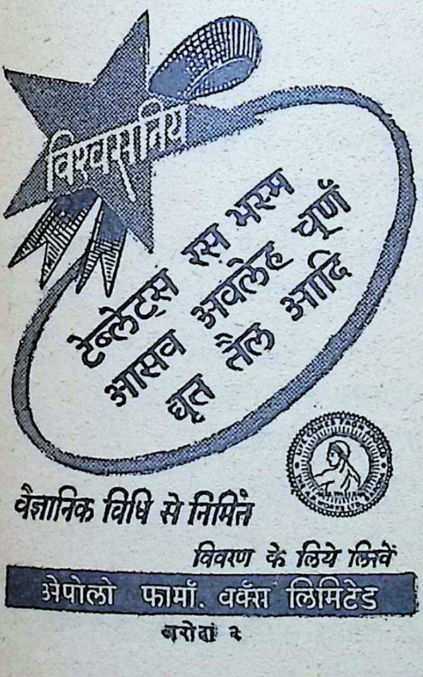
विश्वख्याति
टैब्लेट्स रस भस्म
आसव अवलेह चूर्ण
घृत तैल आदि
वैज्ञानिक विधि से निर्मित
विवरण के लिये लिखें
अेपोलो फार्मा. वर्क्स लिमिटेड
बरोडा २

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें। (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें। (३) महासम्मेलन और वैद्य-समाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (६) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट और शुद्ध भाषा में हों। (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें।

बलिंवहिर्हरेल्लाज कुल्माष कवकोदनम् ।
यावत्त्रयोदशाहं स्यादेवं धूपादिका क्रिया ।।

दसवीं गृही रोदनी नाम की है जिससे शिशु निरन्तर रोता है । उसमें से सुगन्धी आती है तथा वह नील-वर्ण हो जाता है । उसको निम्न मांसी, राई, राल, उनसे लेप करें तथा मकान से बाहर चौराहे में लाजा, कुल्माष, तथा पक्व चावलों की बलि दें । इस प्रकार १३ दिन तक धूपादि का कर्म करते रहें ।

११. गृह्णाति मासिकं बालं पूतना संकुली गृही ।
काकवद्रोदनं श्वासो मूत्र गन्धोऽक्षिमीलनम् ।।
गोमूत्रस्नपनं तस्य गोदन्तेन च धूपनम् ।
पीतवस्त्रं ददेद्रक्तस्रगन्धौ तैल दीपकः ।।
त्रिविधं पायसं मद्यं तिलं मासं चतुर्विधम् ।
करञ्जाधो यमदिशि सप्ताहं तैर्बलि हरेत् ।।

एक मास के बालक को पूतना संकुली ग्रही का आवेश होता है । जिससे काक् की तरह बालक रुदन करता है । इसमें बालक को गोमूत्र से स्नान कराकर गोदन्त से धूप देना, पीत वस्त्र पहिनाकर रक्त पुष्पों की माला पहिनायें तथा रक्त चन्दन का लेप दें । तीन प्रकार के पायस, मद्य, तिल तथा चार प्रकार के मांस की बलि करञ्जवृक्ष के नीचे दक्षिण दिशा की ओर सात दिन तक दें ।

१२. द्विमासिकं च मुकुटा वपुः शीतञ्च शीतलम् ।
छर्दिस्यान्मुख शोषादि पुष्पगन्धांशुकानि च ।।
अपूप मोदनं दीपः कृष्णं नीरादि धूपकम् ।

दो मास के बालक को मुकुटा का आवेश होता है । जिससे शिशु को शीतता तथा छर्दि हो जाती है, मुख सूखता है तथा वस्त्रों से गन्ध आनें लगती है । यहां पूड़े लड्डू से बलि देना तथा दीप और धूप देना चाहिये ।

१३. तृतीये गोमुखी निद्रा सविण्मूत्र प्ररोदनम् ।
यवःप्रियंगु पललं कुल्माषं शाक मोदनम् ।।
क्षीरं पूर्वे ददेन्मध्येऽहनि धूपश्च सर्पिषा ।
पञ्चभंगेन तत्स्नानं......।

तृतीय मास में गोमुखी जानना जिससे बालक निद्रा मलमूत्र सहित रोदन करें । इसमें जों, मालकंगनी, मांस, कुल्माष, शाक तथा चावल आदि से बलि प्रातःकाल दें, मध्याह्न में सर्पियुक्त धूप दें तथा पंचपल्लव से स्नान करावें ।

१४. चतुर्थे पिंगलार्त्तिहृत् । तनुःशीता
पूतिगन्धः शोषः स म्रियते ध्रुवम् । स्पष्ठम्

१५. पंचमी ललना गात्र सादः स्यान्मुख शोणितम् ।
अपानः पीतवर्णश्च मत्स्याद्यैर्दक्षिणे बलिः ॥

१६. षणमासे पंकजा चेष्टा रोदनं विकृता स्वरः ।
मत्स्यमांस सुराभक्त पुष्प गन्धादिभिर्बलिः ॥

छठे मास में पंकजा नामक ग्रहीं की चेष्ठा से शिशु रोता है तथा उसका स्वर विकृत हो जाता है । मत्स्य, मांस, सुरा, चावल, पुष्प गन्धादि से बलि दें ।

१७. सप्तमेतुनिराहारा पूति गन्धादि दन्त रुक् ।
पिष्ठमांस सुरा मांसैर्बलिः—। स्पष्टम् ।

१८. स्याद्यमुनाष्ठमे । विस्फोट शोषणाद्यं
स्यातच्चिकित्सा न कारयेत्--स्पष्ठम् ।

१९. नवमे कुम्भकर्ण्यार्त्तोज्वरी छर्दति बालकम् ।
रोदनं मांस कुल्माष मद्याद्यै वैश्वरे बलिः ॥

२०. दशमेतापसी चेष्टा निराहारोऽक्षिमीलनम् ॥
घण्टा पताका पिष्टाक्ता सुरा मांस बलिःसमे ॥

२१. राक्षस्येकादशी पीड़ानेत्रादौ न चिकित्सितम् ।

२२. चंचला द्वादशे श्वासः त्रासादिकविचेष्ठितम् ।
बलिःपूर्वेऽथमध्याह्ने कुल्माषाद्यै तिलादिभिः ॥

२३. यातना तु द्वितीयेऽब्दे यातनं रोदनादिकम् ।
तिलमांस मद्यमांसैर्बलि स्नानादि पूर्ववत् ॥

२४. तृतीये रोदनी कम्पो रोदनं रक्तमूत्रकम् ।
गुडोदनं तिलापूपः प्रतिमा तिल पिष्ठजा ॥
तिल स्नानं पञ्चपत्रैर्धूपो राजफलस्त्वचां ।

अर्थात् तृतीय वर्ष में रोदनी से शिशु को कम्प, रोदन तथा रक्त मूत्र आने लगता है । गुड़, चावल, तथा तिल के पूड़ों की बलि देना तथा तिल की पीठी से मूर्ति बनाकर पूजन करना, तिल, पंचपल्लवों से स्नान बालक को कराना तथा अमलतास की त्वचा से धूप देना चाहिये ।

२५. चतुर्थे चटका शोफोज्वरः सर्वांग सादनम् ।
मत्स्यमांसतिलाद्यैश्च बलिः स्नानं च धूपनम् ॥

अर्थात् चतुर्थ वर्ष में चटका के आवेश से शोष, ज्वर, सर्वांग में पीड़ा हो जाती है। इसमें मत्स्यादि की बलि देना चाहिये। स्नान तथा धूप पूर्ववत् करना चाहिये।

२६. पञ्चला पञ्चमेऽब्देतु ज्वरस्त्रासोऽङ्गसादनम्।
मांसोदनाद्यैश्चबलिर्मेषश्रृंगेण धूपनम् ।
पलाशोदुम्बरा श्वत्थबट विल्वदलाम्बुधृक् ।।

अर्थात् पञ्चम वर्ष में शिशु को पञ्चला का आवेश होता है इसमें मांस, चावलादि कीं बलि देना तथा मेढ़े के सींग से धूप दें और पलाशादि से स्नान करवायें।

२७. षष्ठेऽबदे धावनी शोषोवैरस्यं गात्रसादनम् ।
सप्ताहोभिर्बलिः पूर्वैर्धूपः स्नानञ्भृंगकैः ।।

छठे वर्ष में धावनी से पीड़ित शिशु को, शोष, विरसता, गात्रों में पीड़ा होती है. उसे सात दिन तक माँसादि की बलि देना तथा मेढ़े के सींग का धूप और भंगरे के जल से स्नान करायें।

२८. सप्तमे यमुनाच्छर्दिरवचोहासरोदनम् ।
मांसपायसमद्याद्यैर्बलिः स्नानश्चधूपनम् ।।

२९. अष्टमेवा जातवेदा निराहारं प्ररोदनम् ।
कृशरापूपदध्याद्यैर्बलिः स्नानञ्चधूपनम् ।।

३०. कालाब्देनवमे वाह्वोरास्फोटोर्गजनं भयम् ।
बलिः स्यात्कृशरापूप सक्तुकुल्माषपायसैः ।।

३१. दशमेऽब्देकलहंसी दाहोऽङ्गकृशताज्वरः ।
पौलिकापूपदध्यन्नैः पञ्चरात्रं बलिं हरेत् ।।
निम्बधूपः कुष्टलेपो······· ···· ···· ···· ।

अर्थात् दशम वर्ष में कलहंसी से पीड़ित बालक को शरीर में दाह एवं कृशता तथा ज्वर हो जाता है उसमें पूरी, पूड़े, दधि आदि अन्न की बलि देना

रसेन्द्रसार संग्रह : लेखक—वैद्य घनानन्द पन्त, डी एस-सी (आयुर्वेद)

पाठ संशोधन, पाठपूर्तियुत विस्तृत संस्कृत टीका तथा शुद्ध हिन्दी भाषा। विद्यापीठ के विशारद तथा इण्डियन मैडिसन बोर्ड यू० पी० के द्वितीय और चतुर्थ वर्ष के पाठ्यक्रमों में टीका नियत है। मूल्य ११) प्रति संस्कृत निदान चिकित्सा मूल्य–१)

मिलने का पता :—१६, बाजार लेन, नई दिल्ली।

पांच रात्रि तक तथा निम्बत्वचा का धूप और कूठ का लेप कराना युक्त है।

३२. तथैका दशकेग्रही देवदूतीं निष्ठुर वाग्वलिर्लेपादि पूर्ववत्।

अर्थात् दशमवर्ष में देवदूती से पीड़ित शिशु की वाणी कठोर हो जाती है उसमें बलि तथा लेप पूर्ववत करना चाहिये।

३३. बलिका द्वादशे श्वासो बलिर्लेपादिपूर्ववत्।

द्वादश वर्ष में बलिका जाने इसमें श्वास होता है बलिलेपादि पूर्ववत् कराना चाहिये।

३४. त्रयोदशे वायवी च मुख वाह्याङ्ग सादनम्।
रक्तान्नगन्धमाल्याद्यैर्बलिः पञ्चदलैः स्नपेत्॥
राजीनिम्बदलैर्धूपो ………………… ।

अर्थात् वायवी के आवेश में मुख तथा अंगों में पींड़ा होय, यहां मसूर, रक्तत्तण्डुल, रोली, रक्तपुष्पमालादि की बलि देना, पञ्च दलों से स्नान करना तथा राई, नीम के पत्तों का धूप देना हित है।

३५. यक्षिणी च चतुर्दशे–चेष्टाशूलं ज्वरोदाहो माँसमक्षादिकैर्बलि
स्नानादि पूर्ववत् शान्त्यै……।

१४ वर्ष में यक्षिणी जिससे शूलादि लक्षण हों तथा मांस चावल की बलि देना शेष पूर्ववत् स्नानादि कराना।

३६. मुण्डकार्ति स्त्रिपञ्चके।
तच्चेष्टा सृक् स्रवः शश्वतृ कुर्यान्मातृ चिकित्सनम्॥

३७. वानरी षोडशी भूमौ पतेन्निद्रा सदा ज्वरः।
पायसाद्यैस्त्रिरात्रञ्च बलिः स्नानादि पूर्ववत्॥

३८. गन्धवती सप्तदशे गात्रोद्वेगः प्ररोदनम्।
कुल्माषाद्यैर्बलिः स्नानं धूपलेपादि पूर्ववत्॥

३९. दिनेशी पुतनानाम वर्षेशाः सुकुमारिकाः।

बालग्रहेषुमन्त्रः—ॐ नमः सर्वमातृभ्यो बालपीडा संयोगं भुञ्ज २ चुट २ स्फोट्य २ स्फुर २ गृह्ण २ आकट्य २ कट्य २ एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति। हर २ निर्दोषे कुरु २ बालिकां बालं स्त्रियं पुरुषं वा सर्वग्रहाणामुपक्रमात्। चामुण्डेनमो देव्यैः ह्लूं ह्लूं ह्लीं अपसर २ दुष्ट ग्रहान् ह्लूं तद्यथा गच्छन्तु गृह्यकाः अन्यत्र पन्थानं रुद्रोज्ञापयति। सर्वबाल ग्रहेषु स्थान्मन्त्रोऽयं सार्वकामिकः।

अथवलिदानेंमन्त्रः—ॐ नमोः भगवति चामुण्डे मुञ्च २ बालं बालिकां वा वलिं गृह्ण २ जय २ वस २ सर्वत्र बलिदानेऽयं रक्षाकृत्पठ्यतेमनुः। रक्षाविधानं यथा—ब्रह्माविष्णुः शिवः स्कन्दो गौरी लक्ष्मी गणादयः।

रक्षन्तु ज्वरदाहार्त्तं मुंचन्तु च कुमारकम्।
इति आग्नेय पुराणान्तरगत बालग्रह बालतन्त्रम्॥

'Standard' आदर्श आयुर्वैदिक औषधियों के लिए

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड अमृतसर को सदा स्मरण रक्खें

उत्तरीय भारत की केवल यही एक फार्मेसी है जिसमें ठीक विधिवत आयुर्वैदिक रस, रसायन, भस्में आसव, अरिष्ट, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, और घृत तैलादि समस्त औषधियां पूरे परिश्रम मेहनत और ईमानदारी से तय्यार की जाती हैं।

सूचिका भरण
प्रताप आयुर्वैदिक इन्जैक्शन

सरकार द्वारा स्वीकृत लाइसैंस प्राप्त प्रताप लैबोरेटरी ही है जिसके इन्जैक्शन भारत सरकार की सैन्ट्रल रीसर्च इन्स्टीटयूट लखनऊ में टैस्ट होकर प्रमाणित सिद्ध हो चुके हैं। यह इन्जैक्शन भयंकर, जटिल और संक्रामक रोगों के लिए शत प्रति शत लाभप्रद और रामबाण माने गए हैं। यश, मान और कीर्ति प्राप्त प्रत्येक सफल चिकित्सक इन को व्यवहार करता है। आप भी अनुभव करें।

हर प्रकार की आयुर्वैदिक औषधियां और इन्जैक्शनों का सूचीपत्र मंगाने का पता

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड
अमृतसर

ब्रांचें ① आर्य्य समाज रोड करोलबाग देहली ② चौड़ी सड़क लुधियाना

अमृता और विषम ज्वर

लेखक :—कविराज भीमदत्त वैद्य वाचस्पति, माजरा t

(जुलाई अंक से आगे)

पत्रिका के जुलाई अंक में हमने अमृता के साधारण गुणों का वर्णन किया था अब इसकी विशिष्टता पर कुछ अनुभूत और शास्त्रोक्त गुणों के वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे।

आयुर्वेद के मत से अमृता के गुण व पर्याय:--गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी। छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च। जीवंती तंत्रिका सोमा सोमवल्ली च कुण्डली। चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी। चन्द्रहासा वयस्था च मण्डली देवनिर्मिता। गुड़ूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी। संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्निदीपिनी। दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम्। कामलाकुष्ठवातास्न-ज्वरकृमिवमीन्हरेत्।

गिलोय, चरपरी, कड़वी, पाक में स्वादिष्ट, रसायन, ग्राही, कसैली, किंचितोष्ण, वलदायक, अग्निदीपक, वात, पित, कफ, तीनों दोषों को तथा आम, तृष्णा, दाह, प्रमेह, कास, पाण्डू, कामला कुष्ठ, रक्त ज्वर, कृमि, वमन, श्वास, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृदयरोग तथा वातनाशक है।

अमृता का शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव--यह शरीर के समस्त यंत्रों पर अपना शोषक व शामक प्रभाव डालती है, यथा--

पाचक संस्थान पर:--अमृता पाचक संस्थान के सब अंगों के कार्य को बढ़ाती है। प्रथम: मुख की विरसता को अपने कटु रस के प्रभाव से आम को पका कर मुख का स्वाद अनुकूल हो जाता है, अन्न प्रणाली में अवशिष्ट (लिप्त) अन्नज अंश व स्नेहांश को अपने लेखन गुण से क्षरण करके अन्न प्रणाली को शुद्ध करती है। आमाशय के आमदोश का पाचन, तथा प्रवृद्ध आमाशयिक रस को शान्त करके तज्जन्य रोग, अम्ल पित्त, वमन, आमाशयशूल, अग्निमांद्य, अरुचि. आमाशयिक व्रण, आमाशयिक शोथ, परिणाम शूल, अतिसार, संग्रहणी को नाश करती है।

क्लोमज रस विकार व तज्जन्य रोगों को नष्ट करती है।

यकृत प्लीहा:--यकृत के कार्य में यह अपने पाचक व तिक्त रस गुण से संग्राहक है। यह गर विष शामक परमौषध है। जब किसी विष का सामना करने के लिए यकृत अपने

अन्दर से प्रतिविष बनाता है तो अमृता का प्रयोग परम सहायक सिद्ध होता है। स्वत: भी विष नाशक शक्ति रखती है। पिताश्मरी तथा पित्त प्रणाली के अवरोध को अपने लेखन गुण से पित्त का भली प्रकार स्रवण करती है पित्ताशय शूल (colic pain) में जब किसी द्रव्य का अमाशय में ठहरना कठिन हो जाता है तब उसके स्वरस "नृसार" मिला कर न्यूनतम मात्रा में देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। "अमृता स्वरस ३ माशा नृसार २ रत्ती" ऐसी मात्रा प्रति घंटे देने से पिताशयशूल नष्ट होती है। ज्वरोत्तर यकृत् वृद्धि व प्लीहा वृद्धि में लाभप्रद है।

प्रयोग :--(१) "अमृतारिष्ट" १ औंस दोनों समय भोजनोत्तर।

(२) अमृतासत्व ४ रत्ती, कासीस भस्म २ रत्ती, शर्दुङ्खा क्षार २ रत्ती इस प्रकार की तीन मात्रा दिन में जल से दें। (३) अमृतासत्व ४ रत्ती, लौह भस्म २ रत्ती इस प्रकार की दिन में तीन मात्रा मक्खन से दें। (४) अमृता स्वरस २ औंस नृसार ४ रत्ती इसकी ३ मात्रा दिन में दें। केवल अमृता स्वरस (क्वाथ) १ औंस, दिन में चार मात्रा देने से यकृत व प्लीहा वृद्धि में श्रेयस्कर है।

अतिसार :--(१) अमृतासत्व ४ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, दिन में तीन मात्रा अर्क सौंफ से दें। (२) अमृता स्वरस १ औंस, शंख भस्म ४ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती दिन में चार मात्रा दें। (३) अमृतासत्व ४ रत्ती, नृसार २ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती अर्क सौंफ से दिन में तीन मात्रा दें

अमृता रस १ औंस दिन में चार मात्रा देने से आम व पक्वातिसार नष्ट होता है।

आमाशयिक शूल :--(१) अमृता सत्व ४ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती ऐसी तीन मात्रा दिन में साधारण जल से दें। (२) अमृता सत्व ४ रत्ती, लौह भस्म २ रत्ती मधु से दिन में दो मात्रा दें।

अमृता रस १ औंस से शंख भस्म ४ रत्ती दिन में तीन मात्रा देने से परम लाभ होता है।

परिणाम शूल :--(१) अमृतारस १ औंस, नारीकेल लवण ४ रत्ती दिन में दो मात्रा दें। (२) अमृता सत्व ४ रत्ती, अपामार्ग क्षार २ रत्ती। दिन में दो मात्रा देने से परम लाभ होता है।

अमृता का मूत्र संस्थान पर प्रभाव :--अमृता मूत्रल गुण रखती है अत: वृक्क शूल, वृक्काश्मरी, मूत्र प्रणाली की अश्मरी तथा मूत्राशय के साधारण अवरोध को दूर करती है। अमृता के अन्दर ऐसी शक्ति मौजूद है कि जब यूरिया यूरिक एसिड आदि वृक्कों में रुक कर शिरोभ्रम व श्वासादि लक्षण उत्पन्न होते हैं तब इसके प्रयोग से वे सब अनावश्यक पदार्थ शरीर से बाहिर निकाल कर विष मुक्त कर देती है।

प्रयोग :--(१) अमृता सत्व ४ रत्ती, संग यच्छद २ रत्ती अर्क गोक्षुर से अथवा क्वाथ से दिन में दो मात्रा दें। अमृता स्वरस २ औंस दिन में तीन बार देनें से लाभ होता है। (२) अमृता स्वरस १ औंस, यव क्षार ४ रत्ती इसकी दिन में तीन मात्रा देनें से लाभ होता है।

वात संस्थान (मस्तिष्क) पर :--जब शरीरस्थ दोषों के कारण वात संस्थान प्रकुपित होता है तो रोगी प्रलाप करता है, मस्तिष्क किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है अथवा उत्तर देते हुए अपना पक्ष भूल जाता है, अशान्त चित्त रहता है। पित्तज उन्माद होगया हो तो अमृता का प्रयोग श्रेयस्कर है।

प्रयोग :--"अमृतारिष्ट" पूर्ववत् (१) अमृता सत्व ४ रत्ती, रस सिन्दूर २ रत्ती मधु से दो मात्रा। (२) "अमृता सत्व" ४ रत्ती मधु से तीन मात्रा दिन में।

रक्त पित्त :—विशेषकर यह पित शामक तो है ही अतः रक्त पित में पित की प्रधानता होने के कारण विशेषकर रामवाण है।

प्रयोग :--उर्ध्वज रक्त पित में जब वेग से नकसीर आ रही हो तो इसका प्रयोग श्रेयस्कर है, पत्तों का स्वरस २ तोला मधु में मिला कर दिन में प्रति घंटे देते रहें। जब तक कि रक्त बन्द न हो। अमृता सत्व ४ रत्ती मधु से तीन बार दें। अमृता स्वरस का साधारण प्रयोग करने भी लाभ होता है।

क्षयज कास :--अमृता ज्वरघ्न और कासान्तक दोनों गुण रखती है, अतः क्षय रोग में विशेष लाभप्रद है। क्षय रोग में प्रधानतया तीन गुण वाले द्रव्य लाभप्रद होते हैं प्रथम ज्वरघ्न, द्वितीय कासघ्न और तीसरे पौष्टिक। अमृता में यह तीनों गुण उपस्थित हैं अतः क्षयजकास व क्षतज कास में गुणकारी है। जब क्षयज कास में रक्त आ रहा हो तो इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है।

प्रयोग :--अमृता सत्व ४ रत्ती केवल मधु से दें।

(१) अमृता सत्व ४ रत्ति, अभ्रक भस्म २ रत्ति, प्रवाल भस्म २ रत्ति दिन में तीन मात्रा मधु से।

(२) अमृता स्वरस १ औंस, लोकनाथ रस २ रत्ति दिन में दो बार दें।

(३) अमृता सत्व ४ रत्ति, लौहभस्म २ रत्ति, शुक्ति भस्म २ रत्ति, सितोपलादिचूर्ण १ मा० मधु से दिन में दो या तीन मात्रा दें।

केवल अमृतास्वरस का प्रयोग क्षयज ज्वर व कास को बहुत शीघ्र नाश करता है।

रक्तशोधक गुण:--मह रक्त शोधक परमौषध है जब ग्रीष्म ऋतु में बच्चों

के फोड़े फुन्सियां निकलती हैं तो स्वरस के साधारण प्रयोग से लाभ होता है।

रासायनिक गुण:--वीर्य पोष्टिक तत्व अमृता में प्रभूत मात्रा में पाये जाते हैं, अत: धातु क्षीणता धातु स्राव व वीर्य विकारों को नष्ट करता है।

प्रयोग:--साधारण पूर्ववत्।

अमृता के विषय में ज्ञातव्य बातें--

(१) यह पहले कहा जा चुका है कि यह एक लता जाति की औषध है, अत: किसी न किसी वृक्ष व दीवाल व घर की छत्त व झाड़ी की शरण लिए बिना यह पुष्ट नही होती अत: जिसका वह आश्रय लिए हो उसके गुण उसमें कुछ न कुछ अवश्य आते हैं। जब भी इसे प्रयोग किया जावे यह सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि किस वनस्पति पर यह आश्रित थी। ज्वरघ्न नीम पर चढ़ी श्रेयस्कर मानी जाती है तथा अन्य प्रयोगों में भी नीम चढ़ी के ही लेख अधिक मिलते हैं। अनुभव सिद्ध यह है कि जिस रोग विशेष के लिए यह प्रयुक्त करनी है इसे तद्रोगान्तक वृक्ष पर रखा जावे जिससे वे गुण उसमें आजावें। जो गिलोय थोहर पर होगी वह अन्य की अपेक्षा अधिक रेचक होगी।

(२) गिलोय का प्रयोग सर्वदा ताजी का ही करना चाहिए। कम से कम एक इंच छोटी और तीन वर्ष की पुरानी अमृता का प्रयोग करना चाहिए।

(३) सत्व निकालने का समय सबसे उत्तम अक्तूबर, नवम्बर, अप्रैल, मई है। सत्व निकालने की विधि वही साधारण जो सर्वसधारण जनता भी जानती है।

(४) जितनी पुरानी गिलोय होगी उतना ही अधिक सत्व निकलेगा।

(५) अवरोधक चिकित्सार्थ--

अमृता सत्व २ तोला, संखिया १$\frac{१}{२}$ माशा, काले धतूरे के स्वरस में तीन भावना देकर चणक प्रमाण गोली बनाकर Paludrine की वजाय इसको ज्वर के अवरोधक रूप में प्रयोग करना चाहिए।

* * *

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें

उत्तराखंड में आयुर्वेद

ले०–स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी, संयुक्तमंत्री, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली।

मैं गत मई में हरिद्वार में सम्पन्न हुई आयुर्वेद शास्त्र चर्चा परिषद् में भाग लेने के लिए हरिद्वार गया था। परिषद् की समाप्ति पर ३० मई को श्री बाबा काली कमली वाला क्षेत्र की ओर से तथा रायबहादुर श्री श्रीदत्तजी के प्रबन्ध से मुझे गंगोत्री जाने का सुअवसर मिला। यात्रा का उद्देश्य मुख्यत: वहां की आयुर्वेदीय स्थिति तथा यात्रियों की चिकित्सा संबंधी कठिनाइयों का अध्ययन करना था। मुझे यह कहते हुए बड़ा दु:ख होता है कि हम जहां-जहां भी गए वहां-वहां आयुर्वेद का नितान्त अभाव पाया। हर स्थान पर जनता मुझ से बहु संख्या में मिलती रही और अपनी कठिनाइयों को उन्होंने मुझे बताया। स्वयं मैंने भी प्रत्येक औषधालय का निरीक्षण किया और उन्हें बड़ी दयनीय अवस्था में पाया। राज्य की ओर से जितने भी औषधालय खुले हुए हैं वह प्राय: वैद्यों द्वारा ही संचालित हैं किन्तु ऐसा होते हुए भी उनमें विदेशी औषधियों का ही प्रयोग किया जाता है। कहीं भी ऐसा व्यवस्थित प्रबन्ध देखने में नहीं आया जहां पर आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति से जनता लाभान्वित होती हो। वैद्यों ने मुझे बताया कि सरकार की ओर से उन्हें विदेशी औषधियां प्रयुक्त करने पर बाध्य किया जाता है और वैद्य होते हुए भी वे वैद्यकीय औषधों का प्रयोग नहीं कर पाते। विदेशी टीके लगाने भर के लिए उन्हें वहां रखा गया है और इस प्रकार आयुर्वेद सम्बन्धी उनका ज्ञान भी भूलता जा रहा है इत्यादि।

राज्य की ओर से जो भी यात्री वहां जाता है उसे टीका लगाने का नियम प्रचलित हैं अत: प्रत्येक यात्री को विवशतया टीका लगवाना पड़ता है किन्तु ऐसा करते समय उसके दुखदायी परिणामों को ध्यान में नहीं रखा जाता और उनके निवारणार्थ कोई व्यवस्था नहीं की गई है। अत: आगे चल कर यात्रियों की जो दुर्दशा होती है उसे देख कर मैं आश्चर्य से चकित हो गया। टीकों के पश्चात् ज्वरादि उपद्रवों से पीड़ित अनेक यात्री मुझे देखने को मिले जिनकी चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थी और जिन्हें स्वयं मैंने औषधि आदि दीं। जनता के स्वास्थ्य की इस अन्यायपूर्ण अवहेलना ने मुझे क्षोभ से भर दिया और मैंने निश्चय किया कि यह सब त्रुटियां नोट कर राज्य के आयुर्वेदीय डिप्टी डायरेक्टर श्री कुलकर्णी जी के पास अवश्य भेजी जानी चाहिये।

वापसी पर संयोगवश जिस बस में मैं यात्रा कर रहा था उसी में जिले के हैल्थ

आफिसर डा० एस० एस० माथुरजी भी यात्रा कर रहे थे। उस क्षेत्र के हैल्थ इन्स्पैक्टर भी उनके साथ थे। अकस्मात् उनसे परिचय हो गया और मैंने सम्पूर्ण परिस्थिति उनके सामने रखी। टेहरी पहुंचने पर डाक्टर महोदय के अनुरोध पर मैं उनके स्थान पर गया और मैंने क्रमरूपेण सभी त्रुटियों और अव्यवस्थाओं को उनके समक्ष रखा। डा० माथुर साहब आयुर्वेद के लिए अच्छी श्रद्धा रखते हैं जिस मनोयोग और उत्सुकता से उन्होंने मुझे सुना उसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने मुझे बतायाँ कि केवल दो वर्ष से ही उस क्षेत्र में कार्यारम्भ हुआ है और आज तक किसी भी सज्जन ने यात्रियों के कष्टों और उनको होने वाली असुविधाओं की ओर उनका ध्यान नहीं दिलाया। उन्होंने मुझे यह विश्वास भी दिलाया कि ज़ो त्रुटियां मैंने उन्हें बताई हैं उनके परिहार का पूर्ण यत्न वे करेंगे। उधर जाने वाले यात्रियों तथा वहां की निवासी जनता में आयुर्वैदिक औषधियों की ही मांग अधिक होती है किन्तु क्योंकि स्वास्थ्य विभाग आयुर्वेदीय औषधियां उन्हें उपलब्ध नहीं कराता अतः विवशतया विदेशी औषधियों का ही प्रयोग करना पड़ता है। उन्होंने मुझे श्री कुलकर्णी जी को भी इस विषय में लिखने को कहा ताकि देशी औषधें प्राप्त की जा सकें और जनता के स्वास्थ्य की रक्षा कर सकें।

मैंने श्री माथुर साहब का ध्यान आयुर्वेदीय सिद्धान्तों की ओर भी आकर्षित कराया जिनके समुचित ज्ञान के अभाव में यात्रियों को असह्य दुख उठाने पड़ते हैं और जो नैसर्गिक एवं अल्प व्यय साध्य हैं। डाक्टर साहब ने यह सब सस्नेह स्वीकार किया और कहा कि मैं समय-समय पर उन्हें इस विषय में सूचित करता रहूं।

मैंने डाक्टर साहब के सामने निम्न सुझाव रखे और इनको कार्यरूप में परिणत करने की प्रार्थना की:—

१. इंजैक्शन लगाने बन्द कर दिए जाएं क्योंकि उनकी कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु यदि सरकार इसे आवश्यक ही समझे तो उत्तरकाशी से नीचे-नीचे ही ऐसा करले। उत्तरकाशी के पश्चात् यात्रियों को तंग न किया जाय क्योंकि इंजैक्शनों के परिणामस्वरूप होने वाले ज्वरादि की चिकित्सा का कोई प्रबन्ध उस क्षेत्र में नहीं है और कष्ट अधिक होता है।

२. प्रवास में बड़ी-बड़ी चढ़ाइयों पर जब प्यास अधिक लगती है तो यात्री चलते हुए झरनों का जल पी लेते हैं जिससे घिसा हुआ पत्थर पेट में जा कर अन्तड़ियों और वृक्कों को फाड़ देता है। अतः ३–४ मील पर किसी न किसी उपजल के समीप एक साधारण वेतनभोगी जल पिलाने वाला रख देने से समस्त रोगों से छुटकारा मिल सकता है।

३. सायं और प्रातः यात्री लोग जब-जब चट्टियों पर पहुंचें तो वहां चिकित्सक का उपस्थित होना अनिवार्य कर दिया जाए ताकि रोगियों का वहां पहुंचते ही उपचार हो

सके। प्रायः देखने में आया है कि रखे हुए चिकित्सक इसके बिलकुल विपरीत वर्ताव करते हैं।

४. जहां-जहां पर वैद्यों के नाम से डाक्टर कहला कर वैद्य रखे गये हैं वहां देखा गया है कि २–४ चीजें ऐलोपैथिक दे दी जाती हैं जिनसे रोगियों का सन्तोषजनक उपचार नहीं हो पाता और वैद्य लोग अपने आयुर्वेद के ज्ञान को भी भूलते जा रहे हैं। अतः उन्हें आयुर्वेदिक औषधियां उपयुक्त मात्रा में दे दी जावें ताकि वे जनता की उचित सेवा कर सकें।

५. कई स्थानों पर राजकीय औषधालयों और वैद्यों के स्थान बड़े गन्दे हैं, औषधियां अपर्याप्त एवं व्यवस्था असन्तोषजनक है। ऐसी अवस्था में यात्रियों को विवशतया विदेशी चिकित्सकों की याद हो आती है। इस अभाव को दूर किया जाए जिससे आयुर्वेद के प्रति फैलने वाली अपूर्णता की भावना दूर हो सके।

६. प्रत्येक चट्टी पर भंगी आदि का सुप्रबन्ध होना भी आवश्यक है। कभी-कभी अधिक जनता के कारण स्थानीय जलवायु के दूषित होने की सम्भावना हो जाती है।

७. चिकित्सक महोदयों की सरकारी तौर पर आदेश दिया जाए कि वह कृपा कर यात्रियों के साथ सहृदयतापूर्ण व्यवहार करें। उपेक्षापूर्ण व्यवहार से यात्रियों को कष्ट होने की सम्भावना होती है।

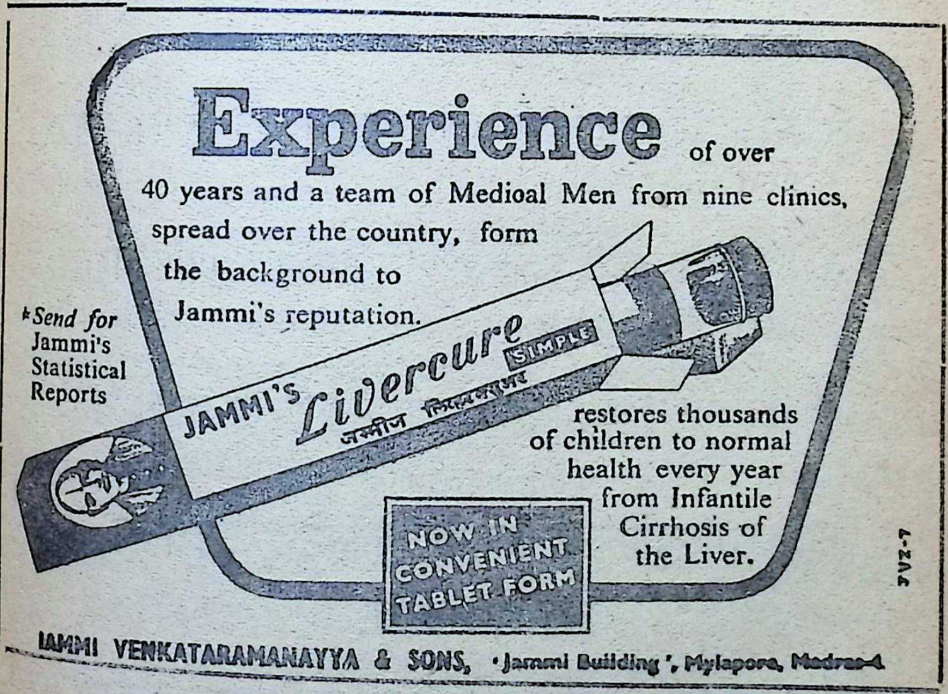

Experience of over 40 years and a team of Medioal Men from nine clinics, spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

*Send for Jammi's Statistical Reports

JAMMI'S Livercure SIMPLE
जम्मीज लिवरक्युअर

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JVZ-7

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, 'Jammi Building', Mylapore, Madras-4

चिकित्सकों के प्रति

सौम्य बनौषधियों के लिए हिमालय आदि काल से प्रसिद्ध है

तथा

हिमालय पर्वतीय बनौषधियों के लिए दून फार्मेसी सबसे अधिक विश्वस्त है.

★ यह भारत के प्रसिद्ध अनुभवी वैद्यों द्वारा आयोजित तथा संचालित है.

★ आयुर्वेद उन्नति मुख्य तथा लाभ गौण रखकर चलाना इस का ध्येय है.

★ भारत के प्रतिष्ठित व यशस्वी चिकित्सकों द्वारा प्रंशसित तथा प्रोत्साहित है.

★ सरकार द्वारा प्रमाणित तथा अनुसन्धान के लिए सहायता प्राप्त है.

★ आयुर्वेद सम्बन्धी प्रत्येक औषधि शास्त्रोक्त विधि द्वारा ही निर्मित की जाती है.

नोट: सूचीपत्र, व्यापारिक नियम तथा अन्य जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें.

संचालक

दून फार्मेस्युटिकल कम्पनी लिमिटेड, देहरादून,
हिमालय पर्वत.

नि· भा· आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद्, हरिद्वार

(गताङ्क पृष्ठ ४७४ से आगे)

परिषद् का तृतीय दिवस

गुण पर विचार

कविराज उपेन्द्रनाथ जी ने कहा—गुण के लक्षण के विषय में प्राचीन और अर्वाचीन दो शैली हैं। प्राचीन लक्षण में अव्याप्ति और अतिव्याप्ति पर जितना ध्यान था उतना आधुनिक का नहीं है। उनके लक्षणों का ध्यान, स्वरूप परिचय पर विशेष रहता है। 'समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः।' यह लक्षण अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और सम्भव इन तीनों दोषों से रहित हैं। वैशेषिक दर्शन के गुणों से आयुर्वेद के गुण कुछ भिन्न हैं, क्योंकि आयुर्वेद में गुण भी गुण का समवायी कारण होता है। आरम्भवाद उत्पत्ति सामान्य का बोधक नहीं होता। द्विअणुकादि क्रमेण उत्पत्ति ही आरम्भवाद है। वीज से अंकुरोत्पत्ति का आरम्भ नहीं होता है। असमवायी कारण के नाश से कार्य का नाश होता है और समवायी कारण के नाश से भी कार्य का नाश होता है, तब भी समवायी कारण का नाश कार्य के नाश का हेतु नहीं। असमवायी कारण का नाश ही कार्य के नाश का हेतु है।

दार्शनिक आरम्भ के बाद के अनुसार चार ही द्रव्य आरम्भक होते हैं। आकाश आरम्भक नहीं होता क्योंकि उसके परमाणु नहीं होते। आयुर्वेद में पाञ्चभौतिक द्रव्य पञ्चभूताख्य होते हैं। आयुर्वेद में आकाश को भी आरम्भक माना है।

श्रीयुत् हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य ने कहा—व्याकरण शास्त्र से, गुण शब्द के प्रकृति-प्रत्यय विभाग से भी लक्षण निकल आता है। गुण धातु से 'क' प्रत्यय करने पर गुण शब्द बनता है। 'गुणयतीति गुणः—गुणयति—घटयतीति गुणः' इससे गुण द्रव्य का घटक है यह बात निकलती है। इस पर विचार होना चाहिये।

श्रीयुत् मणिराम जी शर्मा आचार्य रतनगढ़ ने कहा—'गुणयति स्वातन्त्र्यं नार्हति गुणत्वं—अप्रधानत्वम्—अर्हतीति गुणः।' ऐसी व्युत्पत्ति से अप्रधान होने के कारण उसका नाम गुण समञ्जस होता है।

वैद्य श्री हरिदत्त शास्त्री ने कहा—आयुर्वेद में सारा व्यवहार द्रव्यों से ही होता है, गुण से कुछ भी व्यवहार नहीं होता। फिर गुणों को पृथक् मानने की क्या आवश्यकता है। 'गुण गुणिनोरभेदः' इस सिद्धांत से भी हमको गुण पृथक् नहीं मानना चाहिये। शास्त्र

को कठिन बनाने में लाभ नहीं सरल बनानें में लाभ है।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास ने कहा—गुण शब्द अप्रधान अर्थ में प्रयुक्त माना जायगा तो कर्म को भी गुण कहना होगा, वह द्रव्य की अपेक्षा अप्रधान ही है। यहां इस व्युत्पत्ति से काम नहीं चल सकता था इसलिये पृथक् लक्षण करना पड़ा। गुण शब्द से द्रव्योपसर्जनीभूत गुण लिया जाता है। कारण-गुण कार्य-गुण के आरम्भक होते हैं। शुक्ल तन्तु से शुक्ल पट उत्पन्न होता है। रक्त तन्तु से रक्त पट उत्पन्न होता है। कच्चे आम्र में कषाय रस से अम्ल रस और अम्ल रस के पकने पर मधुर रस उत्पन्न होता है। इसमें कारण विजातीय तेजः संयोग से होनेवाला पाक है। पाक होते समय पहला अवयव संघटन टूट कर नया अवयव संघटन पैदा होता है। जपाकुसुम में जो लाल रंग पैदा होता है वह अनयव द्रव्य में पाक होते-होते गुणों का पाक होने से होता है। समवायी कारण का नाश वकरके भी कार्य का नाश किया जा सकता है। जैसे सूत्र का नाश बिना किये भी वस्त्र का नाश किया जा सकता है। किन्तु असमवायी कारण का बिना नाश किये कार्य का नाश नहीं किया जा सकता।

असमवायी कारण दो प्रकार से माना जाता है। कार्यैकार्थ समापत्ति से और कारणैकार्थ समापत्ति से। चित्र-विचित्र घट में रूपोत्पत्ति का कारण घट को नहीं कपाल के रूप को ही मान सकते हैं। 'दीर्घोऽयं संयोगः' 'ह्रस्वोऽयं संयोगः' कहने से संयोग में दीर्घत्व और ह्रस्वत्व प्रतीत होता है। इससे गुणों में 'गुण' नहीं होते, यह दार्शनिक सिद्धांत शिथिल होता है।

गङ्गाधर ने परुष का अर्थ खिरनी किया है, इसका कारण परुष का न देखना ही था। परुष बंगाल में होता ही नहीं। इसी प्रकार समवायी और असमवायी कारण में भी उनकी वही दशा हुई है। दोष-दूष्य के विशिष्ट मिलन को नष्ट किये बिना भी रोग का नाश हो सकता हैं। 'तत्रासन्नो द्वितीयः असमवायी कारणमित्यर्थः।'

'गुण समष्टि द्रव्यम्' यह लक्षण सम्भव नहीं। समष्टि उन्हीं की हो सकती है जिनमें क्रिया है। गुणों में क्रिया नहीं है इसलिये गुणों की समष्टि हो ही नहीं सकती। 'गुण गुणीनोरभेदः' जिन्होंने कहा है उनकी शङ्का का उत्तर उन्हीं के शब्दों से हो जाता है। 'गुण-गुणिनोः' कहने से ही पार्थक्य प्रतीत होता है।

हन्तिवायुं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्य शैत्यतः।
कटुतिक्त कषायत्वात् कफं हन्ति हरीतकी॥

द्रव्य शक्ति से, और वीर्य शक्ति से भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं। इसलिये गुणों को द्रव्य से पृथक् मानना ही आवश्यक है।

श्री प्रमुदत्त जी शास्त्री सीकर ने कहा—'विश्व-लक्षणाः गुणाः' इस का तात्पर्य यह नहीं कि गुणों का कोई एक लक्षण है ही नहीं अपितु इसका अर्थ ऐसा है कि गुणों का

प्रातिस्विक अपना-अपना लक्षण है। इसका यही अभिप्राय है कि 'समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः।' यह लक्षण तो गुणों का सामान्म लक्षण है ही।

श्री पं० शिवदत्त जी शुक्ल ने कहा—रस वैशेषिक सूत्र के गुण लक्षण—'विश्व लक्षणा गुणाः' की ओर ध्यान देना चाहिये। आधुनिक लोगों ने जैसे—डा० घाणेकर जी ने गुणों को फार्म.. लिखा है। पाठक जी ने 'फिजिकल प्रोपर्टीज़' शब्द से लिखा है। घाणेकर जी ने इस मत का खण्डन किया है और इसको 'फिजिकल स्टेट' शब्द से लिखा है।

श्री पं० विश्वनाथ जी द्विवेदी ने कहा—फिजिकल प्रोपर्टीज इनका सम्बन्ध गुरु-लघु आदि गुणों से है। फिजिकल एक्शन का सम्बन्ध क्रियाओं से है जो औषधों के प्रयोग के अनन्तर होती हैं। आजकल के लोग जिन्हें प्रोपर्टीज और एक्शन कहते हैं वह आयुर्वेद में गुण शब्द से कहे गये हैं। आयुर्वेद के गुण आधुनिक परिभाषा में किसी एक में नहीं आ सकता। रस आदि सीधे-स्वयं जहां कार्य करते हैं अर्थात् रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव सीधे-स्वयं अपना-अपना कार्य करते हैं, वहां इनका कार्य-कारण भाव का अनुगम हो सकता है, इसलिये वहां तक की शक्ति को चिन्त्य मानते हैं; किन्तु जहां यह सब मिलकर कार्य करते हैं वहां कौन कार्य किसने किया यह निर्धारण करना सम्भव नहीं होता, इसलिये ऐसे स्थान पर अचिन्त्य शक्ति या प्रभाव शब्द कहा जाता है। अथवा जहां द्रव्य अपनी अवयव शक्ति से पृथक् कोई कार्य करता है, वहाँ अचिन्त्य शक्ति या प्रभाव माना जाता है। जैसे—जामुन की गुठली मधुमेहान्तक होने पर भी उसका विश्लेषण करने से मधुमेहान्तक तत्त्व उसमें नहीं पाये जाते, तब जामुन की गुठली में मधुमेह को नष्ट करने की जो शक्ति है वह कार्य-कारण भाव निर्धारण के नियमों से बाहर की है; इसलिये वह अचिन्त्य शक्ति या प्रभाव ही कहा जाता है। गुड़मार बूटी में भी यही बात है, उसके विश्लेषण से उसमें मधुमेह को नष्ट करने के तत्त्व उपलब्ध नहीं होते किन्तु जब उसका मधुमेह में प्रयोग करते हैं तब मधुमेह नष्ट होते प्रत्यक्ष देखते हैं—रोगी को लाभ होता है तो गुड़ मार का वह प्रभाव मानना पड़ता है। इसको भी गुण लक्षण में समाविष्ट करते हैं। किसी वस्तु को खाने से हमारे शरीर पर जो रीएक्शन होता है उसको भी गुण ही कहते हैं।

श्री डिग्वेकरजी ने कहा—जैसे अंग्रेजी में द्रव्य शब्द का ठीक पर्याय नहीं है और द्रव्य का बोध कराने के लिये हमें द्रव्य शब्द का ही प्रयोग करना चाहिये, वैसे ही गुण का बोध कराने के लिए अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है उसके लिए गुण शब्द का ही प्रयोग करना चाहिये। गुरु लघु को पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि से देखने पर एक द्रव्य से दूसरा द्रव्य गुरु है यह कह सकते हैं किन्तु शरीर पर प्रयोग करके जब उसके गुरुत्व आदि धर्मों को देखेंगे तो वहां अंग्रेजी में उसके लिए कोई शब्द नहीं है। फिजिकल एक्शन आदि शब्द

यद्यपि गुण के ही वाचक हैं परन्तु ऐसा मालूम होता है कि वे शब्द क्रिया के बोधक हैं।

श्री यादव जी ने कहा—गुण शब्द के लिये आधुनिक चिकित्सा (अंग्रेजी चिकित्सा) में उसका पर्याय है कि नहीं? डिग्वेकर जी का स्पष्ट मत है कि द्रव्य शब्द के लिये जैसे कोई शब्द अंग्रेजी भाषा में नहीं हैं, वैसे ही गुण शब्द के लिये भी अंग्रेजी भाषा में कोई शब्द नहीं है। मुझे यह मत ठीक मालूम होता है। यदि आप सबों को भी यह बात स्वीकृत हो तो इसके लिये एक प्रस्ताव कर लिया जाय। गुरु-लघु आदि शारीरिक या भौतिक गुण हैं, इच्छा, द्वेष आदि आत्म गुण हैं, सत्व, रजस्, तमस् आदि मन के गुण हैं, उनके लिये भी अंग्रेजी भाषा में कोई शब्द नहीं हैं। जैसे द्रव्य-लक्षण बनाकर सर्व सम्मति से स्वीकृत किया था, वैसे ही गुण-लक्षण भी बनाकर सर्व सम्मति से उसे स्वीकृति करना चाहिये।

मैं प्रोपर्टी और ऐक्शन में भेद समझता हूं। आयुर्वैदिक रूप, रस, गन्ध—फिजिकल प्रोपर्टीज कहा सकते हैं एक्शन नहीं। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में आत्मा कोई चीज नहीं है इसलिये आत्मा के गुण भी नहीं हैं। मनके गुणों के लिये प्रोपर्टीज शब्द का प्रयोग ही ठीक रहेगा।

श्री पं० मदनगोपाल वैद्य ने कहा—चरक में गुणों की संख्या २० मानी गई है। चरक और सुश्रुत में कुछ मतभेद है। गुणों में कुछ तो रस हैं, मधुर और अम्ल-कटु, इन को निकाल देने से और गुरु-लघु ये दोनों शब्द साधारणतया वजन के बोधक हैं। पाचन क्रिया से भी गुरु-लघु का सम्बन्ध है। तोल में आधुनिकों नें एक तालिका बना रक्खी है। भार का गुरुत्व और लघुत्व तोल से निकाला जाता है। जल को इसमें माध्यम मान कर गुरुत्व-लघुत्व माना जाता है।

इस पर श्री पं० विश्वनाथ द्विवेदी ने कहा—पूर्ववक्ता से मैं सर्वथा विरुद्ध हूँ।

"सार्था गुर्वादयो बुद्धिःप्रयत्नान्ताः परादयः। गुणाः प्रोक्ताः।"

श्री मदनगोपाल जी इनमें से १६ को विवेच्य बताते हैं, किन्तु मैं बीस गुणों को ही विवेच्य मानता हूं। इससे कम नहीं और अधिक भी नहीं।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी ने कहा—चरक में जिन ४२ गुणों का वर्णन किया है, हमें उन सब पर विचार करना है। दर्शन शास्त्र में गुणों की संख्या कम है। किन्तु आयुर्वेद में गुणों की संख्या बहुत अधिक है, इसमें प्रस्थान भेद ही कारण है। आयुर्वेद का उष्ण गुण दर्शन शास्त्र के उष्ण गुण से भिन्न हैं। गुरुत्व-लघुत्व में भी यही बात है। आयुर्वेद म केवल भार से गुरुत्व-लघुत्व का निर्णय नहीं होता है। पाक की दृष्टि से गुरुत्व-लघुत्व का निश्चय होता है। गुरुपाकी गुरु और लघुपाकी लघु यह आयुर्वेद का सिद्धांत है। शास्त्र में जितनें गुण माने हैं उन सबको ही विवेच्य मानना चाहिये। किसी को कम महत्व देकर और किसी को विशेष महत्व देकर विचार करनें का प्रस्ताव

मेरी समझ में ठीक नहीं ।

भार के लिये रक्त को माध्यम मानना यद्यपि आधुनिक दृष्टि से ठीक है; किन्तु आयुर्वेद में रस धातु को ही सारे शरीर का पोषक माना है, इसलिये रस धातु को छोड़कर रक्त को माध्यम मानना ठीक नहीं है । रक्त को शरीर का मूल अवश्य माना है । किन्तु रस को रक्त का पोषक माना है; रक्त को रस का पोषक नहीं माना । इसलिये रस को ही माध्यम मानकर चलना चाहिये ।

श्री पं० सोमदेव शर्मा ने कहा—२० गुण और व्यवायी तथा विकासी मिलाकर २२ गुणों पर विचार होना चाहिये, यह मेरा मत है ।

कु० श्री उपेन्द्रनाथ जी ने कहा—व्यवायी–विकासी द्रव्य के भेद हैं, गुण के नहीं । यथा—

"पूर्वं व्याप्याखिलं कायं पश्चात् पाकं च गच्छति
व्यवायि तद्यथा भङ्गाफेनं चाहि समुद्भवम् ।"

यह द्रव्यों का लक्षण है, गुणों का नहीं ।

श्री यादव जी ने कहा—आयुर्वेद के गुण कर्मानुमेय हैं । वैशेषिक के गुणों के समान इन्द्रिय ग्राह्य नहीं हैं । शीत, उष्ण आदि शब्दों का अर्थ द्रव्योपसर्जनीभूत गुण है, उसमें द्रव्य भी सम्मिलित है; किन्तु गुण प्रधान और द्रव्य अप्रधान है । गुरु, लघु, शीत, उष्ण ये गुण आयुर्वेद में कर्मानुमेय हैं--प्रत्यक्ष प्रमाण गम्य नहीं हैं ।

श्री पं० गणेश दत्त जी सारस्वत ने कहा—गुणों की संख्या घटाने और बढ़ाने में शास्त्रीय प्रमाण देकर कहा जाय तो देर नहीं लगेगी । पहले गुणों की संख्या में जो वैषम्य है उस पर विचार करना चाहिये । टीकाकारों ने गुणों की संख्या के वैषम्य को हटाने के लिये तथा सब ग्रन्थों में समन्वय करने के लिये अन्तर्भाव प्रणाली का अवलम्बन किया है । उसी प्रणाली का अवलम्बन हमें भी करना चाहिये ।

श्री पं० शिवदत्त जी शुक्ल ने कहा--व्यवायी और विकासी को द्रव्यों में गिनाया है किन्तु चक्रपाणि ने--'एते व्यवायि विकासिरवदयो गुणाः' लिखा है । विष को व्यवायी कहा है, किन्तु विष एक द्रव्य है ।

श्री पं० प्रभुदत्त जी ने कहा—जैसे द्रव्य अनन्त हैं वैसे ही गुण भी अनन्त हैं । उनकी पहचान के लिये शास्त्र कारों ने यह वर्गीकरण किया है और संख्या नियत कर दी है । द्रव्य गत गुणों की संख्या चरक ने २५ कही है । सत्त्व-रजस्-तमस् ३, इन्द्रियार्थ ५, गुरु-लघु आदि द्वन्द्वी-प्रतिद्वन्द्वी २० । नागार्जुन ने ५ युग्म लिखकर ५ उनके विपर्यायी कहे, इस प्रकार १० गुण माने हैं । वह अन्य गुणों का निषेध करता है यह बात नहीं है, किन्तु "एते कर्मण्या गुणा, आविष्कृत तमा एते" इत्यादि हेतु देकर गुणों की प्रधानता

और अप्रधानता मानी है। अष्टविध वीर्य पक्ष में विशिष्टता को साथ में लेकर गुण ही वीर्य में गिनाये हैं। जिनमें विशेषता नहीं, उन्हें सामान्य गुणों में गिनाया है।

श्री पं० हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री ने कहा--चरकोक्त गुणों में से कोई भी हटाने योग्य नहीं है। व्यवायी-विकासी द्रव्य है यह पक्ष ठीक नहीं है; क्योंकि यह किसी जाति के नाम नहीं और व्यक्ति के भी नाम नहीं। गुरु-मन्द हिम आदि गुण गिना कर 'व्यवायी च विकासी चापरे गुणाः' यह कहा है। यह वचन व्यवायी और विकासी के गुण होने प्रमाण भी है। गुणों के लिये जो यह कहा गया है:--

'क्रियाभिस्त्वनुमीयन्ते नाना द्रव्याश्रया गुणाः।'

इससे यह माना गया है कि क्रियाओं से गुणों का अनुमान किया जाता है। यह बात गुण-लक्षण से विपरीत पड़ेगी, क्योंकि गुण-लक्षण में 'निष्क्रिया गुणः' कहा है। 'सामान्यं वृद्धि कारणम्' जो कहा है वह द्रव्य और गुणों की वृद्धि के लिये कहा है। 'संस्काराभ्यासौ' संस्कार और अभ्यास ये दो क्रिया हैं।

परिषद् का चतुर्थ दिवस

ता० २३-५-५३ के मध्याह्न पूर्व का कार्य

पूर्व दिन का शेष कार्यक्रम उपस्थित हुआ।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी ने कहा—व्यवायी और विकासी को गुण नहीं माना जा सकता। शार्ङ्गधर ने उनकी जो परिभाषायें बनायी हैं, उनके आधार पर तो उन्हें गुण नहीं कह सकते, क्योंकि वह परिभाषा द्रव्य में ही लागू होती है।

"पूर्वं व्याप्याखिलं कायं पश्चात् पाकं च गच्छति
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहि समुद्भवम्।"
"सन्धि बन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकाशि तत्।
विश्लिष्योजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुक कोद्रवाः।"

इन परिभाषाओं में उदाहरण--भङ्ग और अहिफेन क्रमुक और कोद्रव द्रव्य गुण नहीं। इससे सिद्ध होता है कि व्यवायी और विकासी द्रव्य ही गुण नहीं।

मलेरिया की शर्तिया दवा

कुनीन की तरह तत्काल ज्वर को भगा देती है और विशेषता यह है कि कुनीन जैसे दोष इसमें नहीं हैं। विशेष विवरण के लिये लिखिये।

बी० डी० सुगन्ध एन्ड को०
पोस्ट बक्स नं० १२२७, देहली।

श्री पं० गणेशदत्त जी सारस्वत ने कहा--इन परिभाषाओं को तथा अन्य परिभाषाओं को देख कर तो चरकोक्त सभी गुणों को द्रव्य ही मानना पड़ेगा। वैशेषिक के गुण लक्षण के अनुसार आप चाहे जितने गुण ले आवें, उन सब का अन्तर्भाव ४० या ४१ इन छांटे हुये गुणों में ही हो जायेगा। इस कारण चरकोक्त गुणों को मान कर शेष सब गुणों का इन्हीं में अन्तर्भाव मान लें।

श्री हनुमत्प्रसाद जी ने कहा—गुण वाचक शब्दों से 'मतुप्' लगा कर द्रव्य वाचक बनायें जाते हैं किन्तु; वार्तिक कारने गुण वाचक शब्दों के आगे आये हुए 'मतुप्' प्रत्यय का 'लुक्' करके द्रव्य वाचक मान लिया। जैसे–शुक्ल शब्द, शुक्ल रंग का और शुक्ल रंग वाले द्रव्य—दोनों का वाचक होता है। इसमें नियम कोषकारों नें यह किया कि जब वह गुणों के लिए प्रयुक्त हो तो पुल्लिङ्ग में ही उनका प्रयोग हो और जब उक्त गुण वाले द्रव्य के लिए उनका प्रयोग हो तो जो लिङ्ग गुणों का हो वही उनका भी--'गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणि लिङ्गास्तु तद्वति।'

श्री पं० मणिराम जी शर्मा आचार्य ने कहा--

गुरु-मन्द-हिम-स्निग्ध-श्लक्ष्ण-सान्द्र-मृदु-स्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्मा विशदा विंशतिः स विपर्ययाः।"

यही बीस गुण आयुर्वेद में माने हैं। इनका इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष भी होता है और शरीर पर हुई क्रियाओं से इनका अनुमान भी होता है। विकासी और व्यवायी इन दो का प्रत्यक्ष नहीं होता केवल अनुमान होता है। सर और तीक्ष्ण इन गुणों में उनका अन्तर्भाव मान लेना चाहिए।

श्री पं० शिवदत्त जी शुक्ल ने कहा—व्यवायी और विकासी को सुश्रुत नें पृथक् गुण माना है तो इनका किसी अन्य गुण में अन्तर्भाव क्यों माना जाय। अन्तर्भाव की बात उन्हीं गुणों के लिए सोचनी चाहिए जिनका किसी प्राचीन संहिताकार ने नाम नहीं लिया हो। जिनका किसी प्रामाणिक आचार्य ने नाम ले कर पृथक् गिनाये हैं उनके किसी में अन्तर्भाव की क्या कथा?

वैद्य श्री रामदयाल जी जयपुर ने कहा--चरक और सुश्रुत ने विकासी और व्यवायी को पृथक् गुण माना है, तो उनको गुणों में मानने से परहेज क्यों किया जाय?

प्रो० पं० श्री शिवदत्त जी शुक्ल हिं० यू० बनारस ने भी उपरोक्त शब्दों को पुनः दोहराया।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी ने कहा—कलुष और स्वच्छ का अन्तर्भाव किसमें मानेंगे?

श्री शिवदत्त जी शुक्ल ने कहा—कलुष और स्वच्छ का अन्तर्भाव रूप में ही

करेंगे। उनको रूप का एक विशेष प्रकार मानेंगे।

श्री पं० प्रमुदत्त जी आचार्य प्रिं० आयु० का० सीकर—चरक, अष्टांग संग्रह अष्टाङ्ग हृदय आदि ने एक ही प्रकार के गुण माने हैं। केवल सुश्रुत ने चरक से कुछ भिन्न गुण गिनाये हैं और भाव मिश्र ने भाव प्रकाश में उनका समर्थन किया है। किन्तु; भाव प्रकाश पाठ से सुश्रुत के पाठ का मेल नहीं खाता। सुश्रुत का पाठ इस स्थल में कुछ शिथिल प्रतीत होता है। सुश्रुतोक्त अन्तिम दश गुणों का ही मतभेद है।

२२-५-५३ का व्यवायी-विकासी का विवाद आज २३-५-५३ के मध्याह्न-पूर्व तक भी असमाप्त ही रहा।

गुण-लक्षण पर मतभेद

कविराज उपेन्द्रनाथ दास—चक्रपाणि के आधार पर समवायी का अर्थ समवाय का आधार और समवाय का आधेय यह दोनों अभिप्रेत हैं।

श्री विश्वनाथजी द्विवेदी--जो द्रव्याश्रित हो, निश्चेष्ट होकर क्रिया का कारण हो उसे गुण कहते हैं। समवायी शब्द से आधार-आधेय दोनों आ जाते हैं।

द्विवेदी जी नें कहा--जो नित्य द्रव्याश्रित हो--निश्चेष्ट हो और कार्य का कारण हो, उसे गुण कहते हैं।

श्री शिवदत्त जी शुक्ल--जो समवायी (नित्य सम्बन्ध से द्रव्याश्रित) हो, निश्चेष्ट-कर्म रहित और कर्म रूप क्रिया से भिन्न हो तथा कार्य का कारण हो उसे गुण कहते हैं।

श्रीराम शिरोमणि जी द्विवेदी ने कहा--जो द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहे, क्रिया रहित एवं क्रिया से भिन्न हो और गुणान्तर की उत्पत्ति में कारण हो, उसे गुण कहते हैं।

श्री पं० हनुमत्प्रसाद जी का गुण--लक्षण--

'द्रव्याश्रिता निष्क्रिया ये निर्गुणा कारणानि च।
न सामान्य विशेषा ये ते धर्मा वै गुणा मता।'

श्री पं० मुकुन्दीलाल जी—जो द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहता हो, निश्चेष्ट अर्थात् क्रिया रहित तथा स्वयं क्रिया रूप कर्म से भिन्न हो तथा कारण हो उसे गुण कहते हैं।

डा० प्रसादीलाल झा कानपुर—'समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः।'

श्री पं० घनानन्द पन्त दिल्ली—द्रव्याश्रित निश्चेष्ट कारण गुण है।

श्री रामदयालु शर्मा—जो द्रव्य में आश्रित (द्रव्याश्रयी) हो, गुण रहित हो और कर्म रहित हो या कर्म से भिन्न हो और जो स्व-समान गुणान्तर की उत्पत्ति में समवायि

कारण हो उसे गुण कहते हैं।

श्री डिग्वेकर जी—जो समवाय सम्बन्ध से द्रव्य में आश्रित हो, जो चेष्टा रूप कर्म से भिन्न हो, जो गुण रहित हो तथा अकारण द्रव्य से भिन्न हो उसे गुण कहते हैं।

श्री प्रभुदत्त जी वैद्य सीकर—जो द्रव्य में अपृथग् भाव सम्बन्ध से आश्रित हो, क्रिया एवं वि[illegible] गुणों से पृथक् हो किन्तु स्व-समान गुण की उत्पत्ति में कारण हो, उसे गुण कहते हैं।

श्री गोडबोले जी, झांसी—जो वस्तु का धर्म हो किन्तु कर्म न हो, [illegible] गुण है।

यह गुण-लक्षण-विवाद जब बहुत देर तक विचार करने पर भी समाप्त होने पर न आया, तब श्री गणेशदत्त जी सारस्वत (प्रिन्सिपल ऋषिकुल आयुर्वैदिक कालेज) ने यह सम्मति दी कि एक कमेटी नियोजित करके इसका निर्णय कर लेना चाहिए। यदि इस कमेटी में भी मतभेद दूर न हो, तो स्पष्ट घोषित करना चाहिये कि इसमें मतभेद है।

वैद्य रामरक्ष जी पाठक इस समिति के संयोजक हों और उसमें जो निश्चय हो सबको मान लेना चाहिए। न निर्णय हो तो इस विषय को अनिर्णीत घोषित करने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

कविराज उपेन्द्रनाथ दास—समवायी तु निश्चेष्टः यही काफी है। 'कारणम् कहना तो गुणत्व जाति की सिद्धि के लिये आवश्यक है। यावद् घट का कारण कौन है इसका उत्तर दण्डत्वावच्छिन्न ही है, दूसरा नहीं।

इसके अनन्तर श्री रामरक्ष जी पाठक ने वैद्य महानुभावों से प्रार्थना की कि कृपा करके अपना-अपना गुण लक्षण लिख कर दे दें। सबने गुण लक्षण लिख कर उपस्थित किए।

श्री डिग्वेकर जी ने कहा—'कारणम्' यह पद विशेष उद्देश्य से दिया है। इसका अभिप्राय है कि जो कारण नहीं हैं, जैसे—सामान्य-विशेष-समवाय और अभाव इन अकारण पदार्थों से भिन्न हो। 'निश्चेष्टः' से कर्म की व्यावृत्ति की है। 'द्रव्याश्रिताः' से द्रव्य की निवृत्ति की है। यह अर्थ सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

श्री यादव जी ने कहा—आयुर्वेद में गुण यह पारिभाषिक संज्ञा दी गई है, जैसे—संस्कार यह शब्द दूसरों के यहां वेग, भावना और स्थिति-स्थापक इन तीनों का बोध कराता है किन्तु वैद्यक में संस्कार शब्द एक गुण का दूसरी जगह आधान करना एसा अर्थ करते हैं। गुण यद्यपि बहुत हैं तथापि 'सार्था गुर्वादयो बुद्धिः प्रयत्नान्ताः परादयः। गुणाः प्रोक्ताः।' (च. सू. अ. १)

अर्थ शब्द से श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियों के पाँचों विषयशब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का ग्रहण होता है। 'गुर्वादयः' से चरक के यज्जः पुरुषीय अध्याय में कहे हुये गुरु-लघु, शीत-

उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, मन्द-तीक्ष्ण, स्थिर-सर, मृदु-कठिन, विशद-पिच्छिल, श्लक्ष्ण-खर, स्थूल-सूक्ष्म, सान्द्र-द्रव, ये बीस गुण लिये गये हैं। 'बुद्धिः प्रयत्नान्ताः' से बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और प्रयत्न ये छः गुण लिये गये हैं। 'परादयः' पद से परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यास ये दस गुण लिये गये हैं। सब मिला कर ४१ गुण होते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में इन्हीं का गुण शब्द से ग्रहण होता है। आधुनिक सिद्धान्त को जानने के लिए श्री कुलकर्णी जी, डा. प्रसादी लाल जी, डिग्वेकर जी, सारस्वत जी, मुकुन्दी लाल जी, द्विवेदी जी। इनकी एक समिति बना ली जाय। आवश्यकता समझी जाय तो और किसी को भी सम्मिलित कर लिया जाय। इस कमेटी को कल दो पहर तक अपनी रिपोर्ट दे देनी चाहिए। यह समिति आधुनिक गुणों की, उनके वाचक हिन्दी शब्दों की और जो निर्भ्रान्त हों, ऐसे शब्दों की सूची देगी। इस समिति के संयोजक—श्रीयुत विश्वनाथ जी द्विवेदी होंगे।

उष्ण और शीत आदि गुणों पर विचार करते समय हमको इस ओर नहीं जाना चाहिए कि उष्ण ही एक गुण है, शीत तो उससे विपरीत है। उष्ण स्पर्श और शीत स्पर्श का हमारे ऋषियों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग होता है। वे दोनों ही स्वतन्त्र हैं। शीत स्पर्श पृथ्वी, जल और वायु का है और उष्ण स्पर्श तेज का। गुण की परिभाषा में तो इतनी ही करता हूँ जो पराश्रित हो उन्हें गुण कहते हैं।

शीत और उष्ण का बोध शरीर पर होने वाली क्रियाओं से होता है। परिभाषा के अनुसार ही मनुष्य-शरीरों पर हमें परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षण करने के अनन्तर ही वे ठीक हैं अथवा ठीक नहीं हैं यह निर्णय करना चाहिए। ज्वर है, ऐसे स्थल में भी हमें शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार मिलाना चाहिए। एक-आध स्थान में नहीं अनेक स्थानों में परीक्षण किया जाय। आधुनिक परीक्षण प्रणाली से भी हमें सहारा लेना अच्छा है, उनसे जहां तक सहायता मिले हमें लेनी चाहिए। —क्रमशः

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा मे ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है।
मूल्य आधा पौंड ६) रु०
सफेद कोढ़—की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रु०।

दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन मान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन
मु० पो०-मंगरूलपीर, जि० आकोला (बरार) म० प्र०

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, ½ तो०, ¼ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक--पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक--श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र--कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र--देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

बिक्रेता-- १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

डाबर अशोकारिष्ट

प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है.

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रकः—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली ।

नवम्बर
१९५३

2-12-53

कार्तिक
२०१०

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

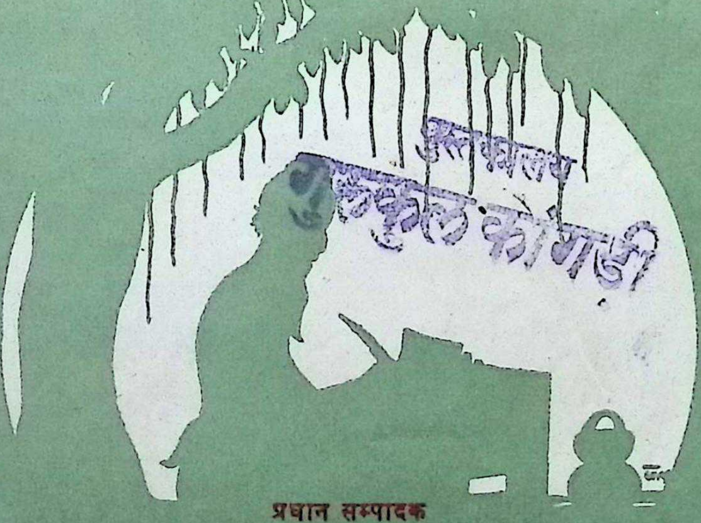

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

प्रधान सम्पादक
कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस.

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. १९५४ वर्षीय विद्यापीठ-परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें		५८७
२. सम्पादकीय		५८९
३. महासम्मेलन स्थायी समिति एव विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के सम्मिलिताधिवेशन का कार्य-विवरण		५९२
४. भेषज-कल्पना	श्री वा० बा० नटराजशास्त्री	५९५
५. आयुर्वेद एवं रिसर्च	श्री प्रभाकर मिश्र	५९८
६. महर्षि चरक	श्री धीरेन्द्र मोहन भट्ट	६०२
७. महर्षि अग्निवेश का समय	श्री पं० घनानन्द पन्त	६१३
८. धातु-शास्त्र	श्री सरयूकान्त झा	६१४
९. मियादी बुखार से बचने के उपाय	वैद्य श्री गोपाल	६१६
१०. नि० भा० आयुर्वेद शास्त्रचर्चा परिषद् हरिद्वार		६१९
११. ३९ वें आयुर्वेद महासम्मेलन तथा शिक्षा सम्मेलन के सभापतियों का निर्वाचन		६३३
१२. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ परिशिष्ट परीक्षाफल		६३९
१३. शुद्ध आयुर्वेद-पाठ्यक्रम समिति, बम्बई		६४१
१४. उत्तर-प्रदेशीय कार्यसंवाहक आयुर्वेद सम्मेलन सम्बन्धी सूचना		६४३

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका
आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम, सुलभ और प्रभावपूर्ण साधन है।
त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक विज्ञापनों पर विशेष सुविधा
विशेष जानकारी के लिये आज ही लिखिये !

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ

(महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली)

सन् १९५४ वर्षीय परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें

१. परीक्षायें २९ मार्च, १९५४ से प्रारम्भ होंगी।

२. (क) परीक्षा शुल्क (प्रतिखंड)—आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्याचार्य १५) रु०, आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य विशारद १०) रु०, आयुर्वेद भिषक् ७) रु०।

(ख) सन् १९५४ से "प्रजावैद्य" परीक्षा भी प्रारम्भ की जा रही है। इस परीक्षा के चार प्रश्नपत्र (खण्ड) होंगे तथा प्रत्येक प्रश्नपत्र (खण्ड) का परीक्षा शुल्क २) रु० होगा। किन्तु यदि कोई परीक्षार्थी एक ही वार चारों प्रश्नपत्रों (खण्डों) की परीक्षा देना चाहे तो सम्पूर्ण चारों खण्डों का शुल्क ६) रु० होगा। उक्त परीक्षा के पाठ्यक्रम आदि से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचना आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मई १९५३ के अङ्क के पृष्ठ ३०२, ३०३ तथा ३०४ पर मुद्रित है।

(ग) इस वर्ष (१९५४) से प्रत्येक परीक्षार्थी को २) रु० रजिस्ट्रेशन शुल्क परीक्षा शुल्क के अतिरिक्त देना होगा, एवं प्रकार प्रत्येक परीक्षार्थी को कार्यालय की ओर से एक स्थायी रजिस्टर्ड क्रमांक दिया जायगा तथा परीक्षार्थी का शिक्षण सम्बन्धी पूर्ण विवरण (रिकार्ड) विद्यापीठ कार्यालय में सदैव के लिये रखा जायगा।

३. परीक्षा सम्बन्धी आवेदनपत्र प्राप्त करने के लिये परीक्षा शुल्क अग्रिम कार्यालय में भेजना होगा। शुल्क भेजते समय इसका विवरण तथा प्रेषक का पूरा पता (Address) मनिआर्डर कूपन पर स्पष्टतया लिखा होना चाहिये ताकि उसी अनुपात से आवेदन पत्र भेजे जा सकें। इससे अतिरिक्त प्रति आवेदन पत्र का मूल्य =) आना होगा।

४. कार्यालय शुल्क प्राप्ति रसीद संख्या (Receipt Number) मनीआर्डर की वापसी रसीद पर लिखी होगी। यही संख्या कार्यालय से भेजे जाने वाले आवेदनपत्र पर भी लिखित होगी, उक्त रसीद का सुरक्षित रखा जाना तथा पत्र-व्यवहार में इसका उल्लेख आवश्यक है।

५. शुल्क प्राप्ति की अन्तिम तिथि १५ दिसम्बर १९५३ है, इसके पश्चात् ता० ३१ दिसम्बर १९५३ तक १) रु० तथा १५ जनवरी १९५४ तक २) रु० विलम्ब शुल्क सहित

ही शुल्क स्वीकार किया जा सकेगा ।

६. आवेदन पत्र की कार्यालय में प्राप्ति की अन्तिम तिथि ३१ दिसम्बर १९५३ होगी, तत्पश्चात् ता० २५ जनवरी १९५४ तक १) रु० दण्ड शुल्क सहित ही आवेदनपत्र स्वीकार हो सकेगा ।

७. विद्यापीठ सम्बद्ध-संस्थाओं तथा स्वीकृत अध्यापक महानुभावों को चाहिए कि वे (क) क्रमशः अपना सम्बद्धता शुल्क १५) रु० अथवा मान्य सदस्यता शुल्क ५) रु० ३१ दिसम्बर १९५३ तक अवश्य भेज दें तथा (ख) परीक्षार्थियों के आवेदन-पत्रों को प्रत्येक अंश में भली प्रकार देख-भाल कर उन पर हस्ताक्षर करें, क्योंकि आवेदन-पत्रों के भरने में की गई असावधानता और उससे होने वाली हानि के उत्तरदायी सर्वथा वे ही होंगे ।

८. इस वर्ष निम्न प्रकार से केन्द्र स्थापित किये गये हैं :—

(क) नवलगढ़ केन्द्र को बन्द करके उसके स्थान पर पिलानी में केन्द्र कर दिया गया है ।

(ख) बरनाला (पेप्सु) का केन्द्र स्थायी कर दिया गया है ।

(ग) जयपुर, राजूला (सौराष्ट्र), उज्जैन (म. भा.) तथा मंगलौर (दक्षिण कनाड़ा) में नवीन केन्द्र स्थापित किये गये हैं ।

(घ) महेमदाबाद (जि० खेड़ा) में एक वर्ष के लिये अस्थायी केन्द्र स्थापित किया गया है ।

श्रीदत्त शर्मा
(आयुर्वेदमार्त्तण्ड,रायबहादुर)
विद्यापीठ मन्त्री ।

पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठावें ।

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक--कविराज पं० नानकचंद्र, वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
सम्पादक--पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय--महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ३९
अंक ११
दिल्ली, कार्तिक २०१०, नवम्बर १९५३
वार्षिक ५)
एक प्रति ।।)

सम्पादकीय

महासम्मेलन तथा पत्रिका का नया वर्ष और आपका कर्त्तव्य

यह पत्रिका का ११ वां अङ्क पाठकों के हाथ में है। दिसम्बर के अङ्क के साथ पत्रिका का वर्ष समाप्त हो जायेगा और महासम्मेलन-विद्यापीठ की सम्बद्ध संस्थाओं एवं मान्य सदस्यों का इस वर्ष का शुल्क भी।

१ जनवरी १९५४ से पत्रिका का नया वर्ष प्रारम्भ होगा, अतः सभी मान्य सदस्यों, महासम्मेलन की सम्बद्ध संस्थाओं एवं विद्यापीठ से सम्बद्ध विद्यालयोंको अपना-अपना शुल्क दिसम्बर १९५३ के अन्त तक अवश्य ही भेज देना चाहिये जिससे वर्षारम्भ से ही उन्हें पत्रिका के अङ्क मिलते रहें। विलम्ब से शुल्क भेजने पर सम्भव है बहुत सी संस्थाओं एवं सदस्यों को पत्रिका के प्रारम्भिक अङ्कों से वंचित रहना पड़े। पत्रिका महासम्मेलन का मुख पत्र है और वह प्रत्येक संस्था एवं सदस्यों को निशुल्क भेजी जाती है सभी का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं तो नवीन वर्ष के लिये महासम्मेलन के सदस्य वनें ही साथ ही अपने परिचित अथवा प्रभाव क्षेत्र में आने वाले वैद्यों को भी महासम्मेलन का सदस्य बनायें। इससे आपकी तथा आयुर्वेद की सेवा में रत आपके एकमात्र संगठन (आयुर्वेद महासम्मेलन) को बल प्राप्त होगा और आयुर्वेद विरोधियों के आयुर्वेद ध्वंसक कार्यों का दृढ़ता से प्रतिकार किया जा सकेगा।

महासम्मेलन के दो मुख्य उद्देश्य तथा उनकी प्राप्ति की दिशा में प्रगति

[१] विश्वविद्यालय की स्थापना—

आयुर्वेद को 'राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति' के पद पर आसीन कराना तथा उसकी

समुचित शिक्षा के हेतु एक 'नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय' की स्थापना करना महासम्मेलन के ये दो मुख्य उद्देश्य हैं। हमारा विश्वविद्यालय की स्थापना का स्वप्न अब शीघ्र ही मूर्तरूप धारण करेगा, इस दिशा में हुई प्रगति की सूचना हम समय-समय पर सदस्यों को देते रहे हैं। ऋषिकेश में श्री बाबा कालीकमली वाला क्षेत्र के सहयोग से भूमि आदि का प्रबन्ध हो चुका है और कार्यारम्भ भी हो गया है, किन्तु सरकारी क्षेत्रों तथा ऐलोपैथी के प्रेमियों द्वारा आयुर्वेद का जैसा कटु विरोध आज हो रहा है उसके निराकरण के लिये संगठन शक्ति की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक प्रत्येक वैद्य बन्धु अपने कर्त्तव्य का दृढ़ता से पालन नहीं करेगा। और इस समय आपका एकमात्र कर्त्तव्य अपनी प्रिय संस्था की तन-मन-धन से सहायता करना है।

[२] आयुर्वेद-राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में—

आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति स्वीकार कराने तथा सरकार द्वारा उसे मान्यता प्राप्त कराने की दिशा में भी महासम्मेलन ने यथेष्ट प्रगति की है। इसी विषय को लेकर महासम्मेलनाध्यक्ष की राज्यों की यात्रा तथा वहां के मुख्य एवं स्वास्थ्य-मंत्रियों से भेंट का वृतान्त सदस्य पत्रिका में पढ़ ही चुके हैं। हाल ही में बम्बई राज्य द्वारा शुद्ध आयुर्वैदिक पाठ्यक्रम एवं गुरु-शिष्य परम्परा को स्वीकार किये जाने का शुभ समाचार भी सदस्य महानुभावों ने पत्रिका में देखा होगा। अन्य राज्यों में भी शुद्धायुर्वेद स्वीकृत कराने के महासम्मेलन के प्रयत्न जारी हैं और यदि भारत के वैद्य-समाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त रहेगा तो इस ध्येय-सिद्धि में भी सफलता के समय को और भी निकट लाया जा सकेगा।

हमारा यह विश्वास है कि यदि वैद्य-समाज एक ही स्वर से दृढ़ता के साथ सरकार के समक्ष अपनी मांग उपस्थित करे तो उसकी उपेक्षा करने का उसे साहस नहीं होगा क्योंकि आप प्रभूत शक्ति सम्पन्न हैं, आवश्यकता केवल उस शक्ति को पहिचाननें की तथा उसे संगठित करने की है। महासम्मेलन आपकी शक्ति है, आपका संगठन है, आपका स्वर है।

आपके संगठन का मूर्त्तरूप महासम्मेलन है जिसे पुष्ट और अनुप्राणित करना प्रत्येक वैद्यबन्धु का कर्त्तव्य है।

पत्रिका के विषय में——

महासम्मेलन की प्रतीक रूप पत्रिका आपके हाथों में निरन्तर पहुंचती रही है। वैद्य-समाज में जागृति और चेतना का मंत्र इस पत्रिका द्वारा ही महासम्मेलन ने फूंका है। इसके स्तर को उन्नत करना तथा इसे सर्वोपयोगी बनाना आपका अपना कार्य है। यदि आपने अपने तुलनात्मक अध्ययन और गम्भीर अनुशीलन से कोई आयुर्वेद सम्बन्धी खोज की है व अपने चिकित्सा-कार्य में किसी दुःसाध्य रोगी का सफल उपचार किया है तो उसका संक्षिप्त और साभिप्राय वर्णन सुवाच्य एवं सुन्दर लिपि में कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर भेजें। आयुर्वेद पर हो रहे आक्रमणों का निराकरण, विद्वत्तापूर्ण वैज्ञानिक लेखों द्वारा ही किया जा सकता है। पत्रिका के स्तम्भ इसके लिये उन्मुक्त हैं। हम चाहते हैं

पत्रिका आगामी वर्ष से नवीन रूप लेकर उपस्थित हो। इसके लिये हम आयुर्वेदज्ञों के सहयोग की कामना करते हैं।

विज्ञापन भी दें—

अनेक वैद्यबन्धु अपनी औषधियों और फार्मेसियों के विज्ञापन देते हैं। कई सम्पन्न धनी-मानी वैद्य व उनकी फार्मेसियां प्रतिमास विपुल धन इस दिशा में व्यय करती हैं, पर इनमें से बहुत कम महानुभावों ने अभी तक पत्रिका को अपने विज्ञापन का साधन बनाया है। यह नहीं भूलना चाहिए कि आज के घोषणा-युग में किसी भी पत्र की आय का मुख्य स्रोत विज्ञापन ही होते हैं। आपका विज्ञापन पत्रिका को पुष्ट करने में बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता है।

इन शब्दों के साथ हम वैद्य बन्धुओं, लेखकों, फार्मेसियों तथा अन्य विज्ञापन दाताओं से महासम्मेलन तथा पत्रिका के साथ भविष्य में अधिकाधिक सहयोग की अपेक्षा करते हैं। और हमें विश्वास है वह हमें अवश्य ही प्राप्त होगा।

श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल के प्रति श्रद्धांजलि

श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेद पंचानन, आयुर्वेद वृहस्पति, ने गत १६ सितम्बर १९५३ को अपने जीवन के ७५ वर्ष पूर्ण कर ७६ वें वर्ष में पदार्पण किया है। इस शुभावसर पर प्रयाग तथा अन्य स्थानों की वैद्य एवं इतर संस्थाओं द्वारा श्री शुक्ल जी का हीरक जयन्ती उत्सव समारोहपूर्वक मनाये जाने का समाचार जानकर हमें परम हर्ष हुआ है।

श्री शुक्ल जी जीवन भर जिस लगन, उत्साह एवं परिश्रम के साथ आयुर्वेदिक शिक्षा एवं चिकित्सा के उत्थान का प्रयत्न करते रहे हैं उसके लिए आयुर्वेद जगत उनका सदैव ऋणि रहेगा। आयुर्वेद महासम्मेलन के आप आदि प्रवर्त्तकों में से हैं और सदैव की भांति आज भी पूर्वस्नेह के साथ महासम्मेलन का पथप्रदर्शन कर रहे हैं तथा उसके कार्यों में सक्रिय भाग लेकर हमें प्रोत्साहित कर रहे हैं।

श्री शुक्ल जी को देश एक उच्च कोटि के साहित्यकार, पत्रकार एवं समाज-सेवी के रूप में भी सदैव स्मरण रक्खेगा। आपने अनेक उपयोगी ग्रंथों की रचना एवं सम्पादन किया है। हम समस्त वैद्य-समाज की ओर से इस शुभावसर पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भगवान से प्रार्थना करते हैं कि अभी अनेक वर्षों तक यह महारथी स्वास्थ्यमय जीवन व्यतीत करते हुए हमारा पथप्रदर्शन करते रहें। महासम्मेलन आपकी 'हीरक जयन्ती' स्वयं मनाता किन्तु दैवयोग से इसकी सूचना हमें बहुत विलम्ब से मिली, जिसके कारण ऐसा करना सम्भव नहीं हुआ। इसका हमें आन्तरिक खेद है। श्री शुक्ल जी यशस्वी हों, चिरायु हों और हमें पुनः पुनः उनकी जयन्ती मनाने का अवसर मिले ऐसी भी भगवान धन्वन्तरि से हमारी प्रार्थना है। —नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ-कार्यकारिणी समिति के सम्मिलिताधिवेशन का कार्य-विवरण

स्थान—श्री मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाजार, देहली।

समय—दि० १० नवम्बर १९५३, दिन मंगलवार, २ बजे मध्याह्न से।

उपस्थिति :–

(१) **उत्तरप्रदेश**–सर्व श्री वैद्य बदरी विशाल त्रिपाठी, कानपुर। गणेशदत्त वैद्य, मेरठ। लक्ष्मीनारायण मिश्र, मेरठ। केदारनाथ वैद्य, मोदीनगर। जगदीश चन्द्र, बड़ौत। शंकर दत्त, मेरठ। श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश। खुशवक्त राय भारद्वाज, हरिद्वार। सरोजिनी देवी वैद्या, मेरठ। लक्ष्मी नारायण, गाजियाबाद। लीलाधर, गाजियाबाद। हरिदत्त वैद्य, मोदीनगर। रामनाथ शास्त्री, इटावा। नन्द किशोर पाठक, मथुरा। बाबु राम मिश्र, हापुड़। रामचन्द्र शर्मा, अलीगढ़। पन्ना लाल वार्ष्णेय, अलीगढ़। इन्द्रमणि जैन, अलीगढ़। रवीन्द्रचन्द्र कुलश्रेष्ठ, अलीगढ़। रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, अलीगढ़। रवीन्द्र चन्द्र चौधरी, मिर्जापुर। दयानिधि शर्मा, मेरठ।

(२) **केरल**—श्री वाई. पार्थनारायण पंडित, बंगलौर।

(३) **देहली**—सर्व श्री वैद्य कुन्दनलाल खेतल, देहली। गुरुदत्त, देहली। रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली। रामगोपाल शास्त्री, देहली। घनानन्द पन्त, देहली। केशव प्रसाद आत्रेय, देहली। मोहनलाल शास्त्री, देहली। नेत्रपाल शास्त्री, देहली। महता सीताराम दत्त, देहली। हरिकृष्ण सहगल, देहली। आशुतोष मजुमदार, देहली। धर्मदत्त शर्मा, देहली। नानकचन्द्र, देहली। यदु गोपाल गोस्वामी, देहली। महंगा राम, देहली। कैलाश चन्द्र अग्रवाल, देहली। नारायण दत्त, देहली। ओंकार प्रसाद, देहली। राजवैद्य सुधन्वा, देहली। राधाकृष्ण उपाध्याय, देहली। जगदीश प्रसाद शर्मा, देहली। शिवनाथ शर्मा, देहली। बन्सरी लाल साहनी, देहली। बलदेव राज, देहली। हजारी लाल शर्मा, देहली। सत्यपाल, देहली। भुवन चन्द्र जोशी, देहली। नित्यानन्द वर्मा, देहली। दयानन्द शर्मा, देहली। गोविन्द सहाय

दत्त, देहली। पूर्णानन्द शर्मा, देहली। चन्द्रकान्त दीक्षित, देहली। राम लाल मलहोत्रा, देहली। दीवान चन्द, देहली। स्वामी चेतनानन्द, देहली। मनोहर लाल, देहली। मदन मोहन चोपड़ा, देहली। अमृतलाल हंस, देहली। यशपाल, देहली। भानुदत्त मुलतानी, देहली। कृष्ण मुलतानी, देहली। बी० डी० सुगन्ध, देहली। ज्योति प्रसाद शर्मा, देहली। नानक चन्द शर्मा, देहली। लखवीर सिंह, देहली।

(४) **पेप्सु**—सर्व श्री वैद्य जगतसिंह शर्मा, धुरी। सन्तराम वैद्य, बरनाला। हीरालाल शास्त्री, बरनाला। हरवंशलाल, पटियाला। वन्तुराम शर्मा, पटियाला। प्रकाशचन्द्र वैद्य, लहरा। बाबूराम शर्मा, बरनाला। कविराज सरजीत सिंह, पटियाला। बिहारीलाल, संगरूर। विश्वेश्वर चन्द शास्त्री, पटियाला। चेतराम शर्मा, पटियाला। उमादत्त शर्मा, पटियाला। पारब्रह्म शर्मा, पटियाला। आनन्द प्रकाश गौतम, पटियाला। भक्त राम, पटियाला। रामजी दास शर्मा, पटियाला। राम स्वरूप, पटियाला। राधाकृष्ण, पटियाला। हरिराम शर्मा, पटियाला। राम प्रसाद शर्मा, पटियाला। स्वामी इन्द्र दास, जैतो। मुंशी राम शर्मा, भटिण्डा। ओम प्रकाश इन्दु, फगवाड़ा। हरीन्द्र दत्त, पटियाला। मस्तराम कौशल, पटियाला। धर्म प्रकाश, पटियाला। केशोराम, पटियाला। हरिवंश, पटियाला। प्रीतम दास, गील। बद्री दास, गोनियाना। बनवारी दास। कुलपति वैद्य, संगरूर।

(५) **पंजाब**—श्री वैद्य रामेश्वर सिंह कंवर, जालन्धर।

(६) **बम्बई राज्य**—सर्व श्री वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा, अध्यक्ष। पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई। वामनराव दीनानाथ, बम्बई।

(७) **बिहार**—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।

(८) **मध्य भारत**—श्री कृष्णानन्द मिश्र, देवास।

(९) **राजस्थान**—सर्व श्री वैद्य मदन लाल पुष्करणा, सूरजगढ़। ठाकुर प्रसाद शर्मा, बीकानेर। दीनानाथ वैद्य, बीकानेर। विरंचिलाल शर्मा, इस्लामपुर। आचार्य नित्यानन्द, पिलानी। हनुमत्प्रसाद शास्त्री, रामगढ़।

अधिवेशनार्थ निम्नांकित महानुभावों के सम्मतिपत्र प्राप्त हुए :—

सर्व श्री वैद्य मणिराम शर्मा, रतनगढ़। दुर्गादत्त शास्त्री, बनारस। जी० वी० पुराणिक, बीजापुर। गया प्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल। माधव प्रसाद शास्त्री, जोधपुर। चन्द्रमणि प्रसाद, रीवां। भ्रमरदत्त मिश्र, केकड़ी। लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर। भाउराव हरि बराटे, भुसावल। रामदयालु त्रिपाठी, हरदा। प्रभुलाल रावल, अहमदाबाद। बालकृष्ण द्विवेदी, कानपुर। सूर्यकान्त शर्मा, भगवतगढ़। ओंकार नाथ, सरदार शहर। परशुराम शास्त्री, जोधपुर। घासी राम गणपत राम, देवास। पुरुषोत्तम

देव मुलतानी, हैदराबाद। पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर। शम्भूनाथ शास्त्री, कानपुर। पं० सत्य नारायण मिश्र, कानपुर। चन्द्रानन्द वैद्य, काठमाण्डू। नन्द किशोर त्रिपाठी, बनारस। जा० प्र० आचार्य, धमदा। गिरधर शर्मा, अजमेर। टी० एस० नन्दीश्वरप्पा, बंगलौर। जगदीश्वर शर्मा, गौहाटी। वैकुण्ठ नाथ देव, गोहाटी। राम प्रताप शर्मा, सरहिन्द। लाल मणि मिश्र, हमीरपुर। यमुना प्रसाद, जबलपुर। मथुरा प्रसाद उपाध्याय, चिराणा। जोशफ पीटर, एर्नाकुलम। सिद्धि शंकर शर्मा, कनेछन। सोमदेव सारस्वत, लखनऊ। केदारनाथ शर्मा, नागपुर। मनोहर लाल, संगरूर। डी० पी० पाण्डे, तुमसर। शिवशर्मा द्विवेदी, अजमेर।

कार्य-विवरण

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

१. **गताधिवेशन का कार्य-विवरण** पढ़ा गया। वैद्य श्री गुरुदत्त जी ने कहा कि मैं सदस्यों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ कि औषध निर्माता-संघ का निर्माण एक विशेष प्रस्ताव द्वारा हुआ था अतएव केवल नियमावलि परिवर्तन से ही औषध निर्माता-संघ की समाप्ति नहीं हो सकती, जैसा कि पिछली कार्यवाही से समझ लिया गया प्रतीत होता है। श्री प्रधान जी ने कहा कि कार्यालय इस प्रश्न की जांच करके आगामी स्थायी-समिति में तत्सम्बन्धी सूचना उपस्थित करे।

वैद्य श्री आशुतोष मजुमदार के एक प्रश्न के उत्तर में श्री प्रधान जी ने बताया कि नियमावलि संशोधन के समय संशोधन करने वाली समिति किसी भी वर्ष की नियमावलि के ड्राफ्ट को संशोधन के लिये ले सकती है क्योंकि संशोधन नियमों का किया जाता है न कि मुद्रण का। तदनुसार इन्दौर महासम्मेलन के अवसर पर सन् १९४७ की नियमावलि का ड्राफ्ट ही संशोधन के लिये ले लिया गया था क्योंकि वही पर्याप्त संख्या में प्राप्त हो सकता था और उसी में संशोधन किये गये और जो संशोधन स्वीकार हुए उन्हें प्रकाशित किया गया। श्री प्रधानमन्त्री ने कहा कि नियमावलि संशोधन समिति के संयोजक वैद्य श्री पं० बद्रीविशाल त्रिपाठी कानपुर इस विषय पर और भी प्रकाश डाल सकेंगे। तदुपरांत वैद्य श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी ने बताया कि संशोधन समिति ने सन् १९४७ में प्रकाशित नियमावलि के पाठ में ही वांछित संशोधन कर दिये थे जो स्वीकार हुए।

कविराज श्री केशव प्रसाद जी आत्रेय ने आपत्ति उठाई कि जिन दो व्ययों से सम्बन्धित प्रस्ताव आडिटर को नहीं दिखाए गए उन पर क्या कार्यवाही की गई। श्री प्रधान जी ने कार्यालयमंत्री को इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए कहा। कार्यालयमन्त्री ने अपने स्पष्टीकरण में बताया कि श्री शंकरदा जी पदे स्मारक कोष

(शेष पृष्ठ ६२४ पर)

भेषज कल्पना

लेo—श्री वाo बाo नटराज शास्त्री, त्रिचिरापल्ली

इह खलु चिकित्सायाः 'भिषग् द्रव्याणि उपस्थाता रोगी' इति चत्वारः पादाः । चतुर्णामेषां भिषगादीनां प्रशस्तानां धातुसाम्यार्था प्रवृत्तिरेव हि चिकित्सेत्यभिधीयते । श्लोकपादवद् वैधादिषु पादसंज्ञाकरणेन, अन्यतरवैकल्पेनापि चिकित्सा न भवतीति द्योत्यते । चिकित्साया द्वितीयपादस्य द्रव्यस्य भेषजत्वेन कल्पना—संस्करणं भेषजकल्पनेति समासेन व्यपदेशः ।

तथा चैतत् । नानास्वरूपाणि हि भेषजद्रव्याणि प्राकृतानि अप्राकृतानि च जगति बहुधा विप्रकीर्णानि । स्थूलाकारा ओषधि वीरुद्ध वनस्पति विशेषाः पारदगन्धकताम्रायः प्रभृतयो धातवः, अस्थिमज्जमांसरोचनादयः, विषमुष्टि वत्सनाभिसर्पविषादीनि च मनुष्य शरीरे तथैव प्रयोक्तुं नैव शक्यन्ते । कथञ्चित् प्रयुक्तानि हन्युरेव देहिनम् । द्रव्याणीमानि यथावत् संस्कृतान्येव शरीराभ्यन्तर प्रयोगार्हाणि विकृतधातु समीकरण क्षमाणि च भवन्ति । प्राकृतस्थूलद्रव्याणां दोषापनयनं गुणाधानं, अर्थात् भैषज्ययोग्यतासिद्धिः यादृशसंस्करणात् संपद्यते तद् भेषजकल्पनाविज्ञानं नाम । कल्पनं उपयोगार्थं संस्करणमिति यावत् । कल्पः कल्पनं कल्पना चेति त्रयः शब्दा आयुर्वेदे समानार्था एव ।

षट्सु वेदाङ्गेषु कल्पो हि नाम वेदोदितकर्मणां प्रयोगविध्युपदेशपरः । उपवेदस्यायुर्वेदस्य च कल्पस्थानं चिकित्सा कर्मण्य-द्रव्य संस्कार प्रयोगविधीनुपदिशतीति परिभाषायाञ्च आयुर्वेदस्य वेदानुगामिता भावुकैर्विभावनीया ।

रोगशान्तिर्भेषजाधीना, भेषज संपद् विपच्च कल्पनाधीनेति तद्विज्ञानमभिप्रशंसन्त्याचार्याः । तथा हि औषधपादस्य गुण स्वरूपं वर्णयति श्रीचरकाचार्याः ।

बहुता तत्रयोग्यत्व मनेकविधकल्पना ।
संपच्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुण उच्यते ।। च० सू. अ. ९. ७.

एतच्चतुर्विधगुणवर्गे अनन्तर्भाव्यो भेषजगुणो नास्ति । तथाऽप्यत्र परस्टतरः श्रीसुश्रुताचार्योपदेशः । तद्यथा,

प्रशस्तदेश संभूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ।
युक्तमात्रं मनस्कान्तं गन्धवर्णरसान्वितम् ।।
दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्यये ।
समीक्ष्य दत्तं काले च भेषजं पाद उच्यते ।।

सु. सू. अ. ३४. २२.

भेषजकल्पनायामुभयसंहितोक्तिरियं भिषग्भिः प्रतिपदमवधेया । अत्र चरकवचसि 'बहुता' सुश्रुतवचसि 'समीक्ष्य दत्तं काले' इति गुणवाक्यद्वयमतीव स्वरसम् । बहुगुणमपि स्तोकमानमौषधं विफलमेव आतुरसमूह प्रयोगाय अपर्याप्तत्वात् । अतो भूरिमानत्वं भेषजगुणवर्गे प्रथमं गणितं चरके । भिषजा ज्ञानपूर्वं प्रयुक्तस्यैव भेषज व्यपदेशार्हत्वे प्रमाणं भवति 'समीक्ष्य दत्तं काले' इति सुश्रुतवाक्यम् ।

इदमत्रावधेयं विवेकिभिः—यत् सुश्रुतपरिष्कृते भेषजपादलक्षणे भेषजस्य सन्धानप्रयोगयोः समुच्चितत्वात् अनयोरेककर्तृत्वमविभजनीयस्वरूपत्वं च सिद्धं भवतीति ।

प्राग्भिर्मुनिभिश्चिकित्सादृष्टया आवश्यका औषधगुणाः सर्वे प्रोक्ताः । अद्यत्वे तु भेषजवाणिज्यस्य बहुतरमभिवृद्धत्वात्, वाणिज्यदृष्ट्या च अधिकाः कतिपय औषधगुणाः सङ्कलयितव्या भवन्ति । एवं हि सांप्रतिकी परिस्थितिः——क्वचिदेकत्र भेषजानि प्रभूतमानेनाशुतरं निर्मीयन्ते, नित्यं देशविदेशान्तरं संप्रेष्यन्ते, क्लेदादिदुष्टिमन्तरा चिरकालं संरक्षायै विशिष्टरक्षकवस्तूनि यथापेक्षितं संयोज्यन्ते भेषजैः (यथा सुरादि संयोगः), साक्षाद् वैद्योपदेशमन्तरैव औषध सहबद्धानि गुणप्रयोगादिबोधकपत्राणि पठित्वा, सर्वेषां तत्र तत्र स्वयमुपयोगार्हाणि संभ्रियन्ते, उचित नियतमूल्येन सर्वत्रसुलभक्रेयाणि नियम्यन्ते–इत्यादयो भेषजगुणा अद्यतने वाणिज्य युगे अनुष्ठातव्या भवन्ति ।

यद्यपि श्रीचरक कथितः संपच्छब्दः अनुक्ताखिलगुणगणसंग्रहणक्षम स्तथाऽपि वाणिज्य संबन्धिनो भेषजगुणा न स्पष्टमभिहिताः पूर्वैरिति ।

"प्रभूतमाशु सन्धेयं चिरस्थायि स्वबोधकम् ।
प्रेष्यं सुखेन सर्वत्र लभ्यं च न्यायमूल्यतः ॥" (स्वीयं)

इति पद्यमपि पूर्वाचार्यकृतैः श्लोकैः सह संयोज्यते चेत्, तर्हि भेषजगुणवर्णनं सांप्रतिक परिस्थित्यनुसारि च संपूर्णं स्यादिति नव्यवैद्या मन्येरन् ।

अवश्यकर्त्तव्यमेव हि प्रेक्षावतां भेषजकल्पकानां (Pharmacysists) कालदेश परिस्थिति परिवृत्ति-प्रवृत्तस्य गुणदोष जातस्य परिचिन्तनं तदा तदा । अतस्तत् किञ्चित् परिचिन्तयामः । तत्रादौ, आयुर्वेदौषधकल्पना विधयिणीं प्राक्तनीं परिस्थितिं, तज्जातान् गुणदोषांश्च वदामः ।

पुरा तावत् स्वस्वातुरजनोपयोग पर्याप्तानि, समस्तभेषजानि भिषजः स्वयमेव तदा तदा कल्पयेयुः । आपणेभ्यः खनिजादि द्रव्याणि क्रीणीयुः गृह्णीयुरोषधीः प्रशस्ताः प्रशस्तदेशात् प्रशस्तदिने, कल्पयेयुरौषधयोगान् पर्याप्तप्रमाणान् तत्तदातुरावस्थानुसन्धानपूर्वकम् । भिषगन्तर कल्पित भेषजक्रयण संप्रदायो नैव दृश्येत ।

अस्यां स्वयमुत्पादनपद्धत्यां मुख्यगुणा एते--वैद्यस्य स्वगुणसंपदभिवर्धकं द्रव्यगुणकर्मविज्ञानं कल्पनासामर्थ्यञ्च अनुदिनमभिवर्धेत। आतुरहितं व्याध्यवस्थाविशेषानुसारेण भेषजकल्पनमतितरां सुविधम्। अल्पतरोधन व्ययः। वैद्यस्य धनाये लाभांशोऽधिकतरश्चेति

केचिदेत्र दोषांश्चेमान् गणयन्ति--वैद्येन स्वनिकटे साधारणतया नित्योपयोगीनि खुड्डाकभेषजानि परिमितप्रमाणान्येव सज्जानि रक्षितुं शक्यन्ते, न महारोगोपयोज्यानि महान्ति बहुमानानि वा, विनियोगाभावे दुर्भरमहावित्तोपक्षयभयात्। अत आतुराय उपस्थिताय सद्यः समुचितभेषजवितरणं न सुशकम्। वैद्यान्तरगमनाद् वारणार्थं युक्तभेषजसन्धानपर्यन्तं करस्थयत्किञ्चिद्भेषजदानेन प्रतारणापत्तिर्दुर्वारा। किञ्च स्वयं भेषजकल्पनप्रयोगे उपस्थितातुरस्य व्याधिपरीक्षापेक्षया प्रथमं आढयत्वोदारत्वपरीक्षायां भिषजो दृष्टिः, तदनुसारिणी चिकित्सा च स्यात्, नैव रोग गुरुत्वानुसारिणी।

किञ्चातिविरलतरा भिषजस्तादृश धनसंपन्नाः स्युः, ये पुनः स्वमूल धननाशासंभवं संस्थायाः पतनभयंचान्तरा, प्रभूतधनव्यय साध्यानि सर्वविध चिकित्सापेक्षितानि महाभेषजानि सर्वदा स्वयं संभृत्य रक्षितुं प्रगल्भेरन् इति।

अङ्ग, किञ्चिदवधीयताम्। पुरातन्यां भिषजः स्वयं भेषजकल्पन प्रयोग प्रणाल्यां तावत्, आधुनिक परिस्थितिदृष्ट्या भवता दोषाः समुद्भाविताः। मैवं पुरा, प्राक्तन्याः परिवृत्ता ह्यद्यतनी परिस्थितिः।

कीदृशी आसीत् प्राक्तनी परिस्थितिः? ब्रूमः। संसारे शान्तिस्तृप्तिश्च प्रचुरा, सदाचारो भूयान्, दुराचारोऽल्पीयान्, अत आरोग्यमधिकतरं, व्याधिरल्पतरः। पथ्यभोजनं, पथ्यादेव भूयसी व्याधिशान्तिः, नातिबहु प्रमाणतया औषधापेक्षा, अलमल्पमानेन। भिषजां ग्रामे निवासः, विना वित्त व्ययं ओषधयः सुप्रापाः, भृतिरल्पा, भेषजसन्धानं सुकरं, मूलधनं नापेक्षितम्। धनोपायनं पुरस्कृत्यैव वैद्योपसर्पणं रुग्णानां समुदाचारः, वैद्यानां च चिकित्सायां धर्मैकतात्पर्यम्। एतादृशी पूर्वकालिका परिस्थितिः वैद्यानां चिकित्सावश्यकानि भेषजानि स्वयं कल्पयितुमतितमामनुकूला बभूव। क्रमशः

पत्रिका आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का सुगम,
सुलभ और प्रभाव पूर्ण साधन है।

आयुर्वेद एवं रिसर्च

ले०—राज्यवैद्य प्राणाचार्य कविराज डा० श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय,
एम. ए., डी एस-सी; (आयु०)

आयुर्वेद के विरुद्ध एक अभियोग यह है कि उसमें 'रिसर्च' बिल्कुल नहीं है, अर्थात् आयुर्वेद के विषय में आयुर्वेद के सेवी कोई नवीन गवेषणा नहीं करते हैं। वे केवल प्राचीनता की दुहाई देकर समय काट रहे हैं। रिसर्च अथवा गवेषणा की बात बोलने पर वे कहते है कि संस्कृत व्याकरण की भांति आयुर्वेद चिकित्सा के सूत्र वैदिक युग में निर्धारित होकर रह गए हैं। उसमें नवीन कुछ करने को नहीं। त्रिदोष विज्ञान, नाड़ी विज्ञान, षड्दर्शन, आयुर्वेद के सूत्र नियम जानने पर ही चिकित्सा तत्व का सम्पूर्ण ज्ञान होता है और तत्व ज्ञान द्वारा मानव देह में उत्पन्न सब प्रकार के विकारों को अच्छा किया जाता है। इसलिए हर प्रकार से चिकित्सा तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना उचित है। इसके लिए मूल ग्रंथों की नाना प्रकार की टीका, तात्पर्य टीका, भाष्य आदि के पठन की आवश्यकता होती है, तथा उपयुक्त गुरु के द्वारा व्यवहारिक विषयों (Practical Training) का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है।

आयुर्वेद के चिकित्सक बहुश्रुत हुआ करते थे। आयुर्वेद-विदों द्वारा अज्ञात किन्तु गुणवान, किसी नवीन औषधि का प्रयोग, शास्त्र प्रमाणित होने पर, कभी भी कोई आपत्ति नहीं होती थी।

किन्तु वर्तमान समय में बड़े-बड़े भवन निर्माण करके, उनके भीतर विभिन्न प्रकार के मन्त्रादि स्थापित करके तथा लाखों रुपये व्यय करके व अनेक व्यक्तियों को लगा के जिस प्रकार आधुनिक गवेषणागार परिचालित हो रहे हैं, उसी प्रकार से, राज्य सहायता के अभाव में अनेक समय तक गवेषणा कार्य परिचालन करना अल्पधनी आयुर्वेद चिकित्सकों के लिए सम्भव नहीं। अपनी राष्ट्रीय सरकार जिस समय समस्त आर्ष चिकित्सा विज्ञान के अंगों की उन्नति को दृष्टिगत रखते हुए धन व्यय करेगी, उसी समय उक्त रूप से गवेषणा कार्य चलाना सम्भव हो सकेगा। अनेक शताब्दियों से राज-सहायता के अभाव में भी जो आयुर्वेद

जीवित रहा है, यह उसकी अन्तर्निहित प्राण-शक्ति का परिचय है। यदि इसमें यथार्थता न होती तो यह कभी भी शक, हूण, मुगल, पठान व अंग्रेज आदि विदेशी राज-शक्तियों के हजारों प्रकार के विरोधी प्रचार व प्रत्यक्ष विरोध के पश्चात, सगौरव अपना अस्तित्व सुरक्षित न रख पाता।

आज देशवासियों के हाथ में देश की बागडोर आए छः वर्ष हो गए हैं। किन्तु आयुर्वेद की उन्नति को दृष्टि में रख देश की सरकार ने क्या किया है? वृटिश राजशक्ति के प्रायः सौ वर्षों से भी अधिक, वैज्ञानिक उपायों के विरुद्ध प्रचार के उपरान्त भी, आज ८५ प्रतिशत भारतवासी आयुर्वेदीय चिकित्सा द्वारा व्याधि मुक्त होकर रहते हैं। कलकत्ता के केवल मैडिकल कॉलेज के संचालन के लिए जितना रुपया व्यय होता है, उसका शतांश भी समस्त भारत के विभिन्न आयुर्वेदप्रतिष्ठानों के लिए खर्च नहीं होता। भारतवर्ष में पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति जीवित रखने के लिए, एक वर्ष में जितना धन-व्यय होता है, उसका समस्त भाग यदि केवल एक वर्ष के लिए आयुर्वेद के उद्धार के विचार से खर्च कर दिया जाये तो, एक वर्ष में ही आयुर्वेद समस्त भारतीयों की सुन्दर चिकित्सा का प्रबन्ध कर सकता है। आयुर्वेद के प्रति राष्ट्रीय सरकार का विमाता सदृश्य व्यवहार ही उसकी ध्वंसता का मूल कारण है।

"बिनाश्रयं न तिष्ठन्ति कविता वनिता लता।"

इसके अतिरिक्त आयुर्वेद के सेवकों में संगठन का अभाव है। उनमें प्रत्येक स्वयं ही प्रधान है। प्रत्येक ही धन्वंतरि के समान धीमान है। किसी भी प्रकार के विषय की शिक्षा, अनुसंधान, नवीनता के साथ सम्बन्ध, पुरातनता के साथ सम्बन्ध विच्छेद आदि एवं युगधर्म परिवर्तन के साथ अनेक नियमों का पालन—उनकी कल्पना के परे की वस्तु है। तो दुर्दशा किसकी होगी? संसार से जिसकी जैसी चेष्टा होगी उसको उसी प्रकार का फल मिलेगा——

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते स्तां स्तथैव भजाम्यहम्।"

मेरे विचार में, आयुर्वेदीय रिसर्च का किस ओर उन्मुख होना उचित है, इस सम्बन्ध में कुछ आभास देना अनुचित न होगा।

(१) अनेक प्रकार के अन्तर व बाह्य विप्लवों के पश्चात भी, भारत के विभिन्न स्थानों में आयुर्वेद के अनेकों अप्रकाशित ग्रंथ आज भी पड़े हुए हैं। उन ग्रंथों का संग्रह कर उनके छपवाने का प्रबन्ध करना सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान कर्त्तव्य है। क्योंकि उनके अकाल में ही नष्ट हो जाने तथा दूसरों के हाथ में चले जाने का भय है। इस विषय में सरकार से प्रार्थना है कि वह शीघ्र ही हैदराबाद पाथर घाटी स्थित पुस्तकागार को

खरीद ले।[1] (२) भारत के विभिन्न प्रदेशों में जो रोग प्रादेशिक लोगों के दुःख के विशेष कारण बने हुए हैं, उनकी चिकित्सा के विषय में विशेष अनुसंधान करने के हेतु विशेष गवेषणागार स्थापित करके, सरकार देश के वैद्यों द्वारा उनको उपयुक्त रूप से परिचालन करने की व्यवस्था करे। (३) बौद्ध युग में आयुर्वेद रस-तन्त्र (Ayurvedic Chemotherapy) की गवेषणा चरम सीमा तक पहुँचकर राज-सहायता के अभाव में बन्द हो गई थी। रस-औषधि की कार्यकारिता के सम्बन्ध में फिर से विशेष अनुसंधान आवश्यक है। स्वर्ण, चांदी, लौह, बंग, अभ्र, पारद, गन्धक, हरिताल, माक्षिकादि के गुणागुण तथा प्रयोग विधि के

---

[1] ३० वर्ष पूर्व रसाचार्य कविराज स्वर्गीय श्री भूदेव मुखोपाध्याय एम. ए. (ट्रीपल) सांख्य वेदान्ततीर्थ ने, श्री चित्तरंजन दास द्वारा (Forwardad) पत्रिका के द्वारा सूचित किया था कि निजाम राज्य के अन्तर्गत पाथर-घाटी में मुहम्मद कासिम की आधीनता में पृथ्वी का सबसे बड़ा हस्त-लिखित पुस्तकागार अभी सुरक्षित है। इन मुहम्मद कासिम का वंश बहुत पुराना है। इनके पूर्वज साग्निक ब्राह्मण थे। मुसलमनों का हैदराबाद पर अधिकार हो जाने पर, संस्कृत विद्या से परिपूर्ण इस हस्तलिखित ग्रन्थागार को उन्होंने नष्ट करना चाहा। लेकिन मुहम्मद कासिम के पूर्वजों ने मुसलमान धर्म स्वीकार कर, समस्त भारत की जातीय सम्पत्ति स्वरूप इस विराट ग्रन्थाकार की रक्षा की। जिस समय स्वर्गीय कविराज महाशय ने इस ग्रन्थागार का निरीक्षण किया था उस समय निम्न श्रेणी के छैः कर्मचारी प्रतिदिन इस ग्रन्थागार की धूल झाड़ते थे। कुछ दिन हुए, विदेशी वैज्ञानिकों ने बीस लाख रुपये से भी अधिक मूल्य देकर इस ग्रन्थागार को खरीदना चाहा था। किन्तु इसके वर्तमान अधिकारी विदेशियों के हाथ इस ग्रन्थागार को बेचने के लिए सहमत नहीं हुए वे अपेक्षाकृत कम मूल्य में भी इसे किसी देशवासी के हाथ बेचने को तैयार हैं। प्रातः स्मृणीय आशुतोष मुखर्जी ने कविराज महाशय को एक पत्र देकर इसे खरीदने का आग्रह किया था तथा उनमें न मुहम्मद कासिम में बातचीत चलवाने की चेष्टा की थी। किन्तु भारत के दुर्भाग्यवश वह महापुरुष अकाल में ही स्वर्गवासी हो गया।

मेरी अपनी सरकार से उक्त ग्रन्थागार खरीद लेने की कातर प्रार्थना है। अमेरिका की दृष्टि पड़ने पर भारत वर्ष उस ग्रंथागार में निहित अमुल्य रत्न-राशि से सदव के लिए वंचित हो जाएगा। उक्त ग्रंथागार में प्राप्त विषयों आदि की तालिका "आयुवेद शास्त्र का इतिहास" नामक ग्रंथ में समाविष्टित की गई है। स्थानाभाव के कारण उनका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया है। उक्त ग्रंथागार में संस्कृत विद्या तथा अनेक प्रकार के विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर पुस्तकें विद्यामान हैं।

सम्बन्ध में फिर से अनुसंधान होना चाहिए। (४) प्रत्येक भारतीय विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के एम. बी. बी. एस. कोर्स की शिक्षा का विस्तृत प्रबन्ध होना चाहिए। (५) विभिन्न प्रदेशों में पूर्व प्रतिष्ठित आयुर्वेदीय शिक्षा प्रतिष्ठानों की उन्नति के हेतु उपयुक्त अर्थ सहायता देकर, सरकार द्वारा उनका अपनी आधीनता में परिचालन होना चाहिए। (६) भारतवर्ष में सर्वत्र ही राज्य के सक्रिय प्रयत्न द्वारा आयुर्वेदीय शिक्षालयों, गवेषणालयों की स्थापना व उनकी संचालना आवश्यक है।

पाश्चात्य द्वारा Chenotherapy प्रस्तुत Antibiotics का प्रयोग जो अवाध रूप से हो रहा है वह चिकित्सा विज्ञान के वैज्ञानिक तत्वों पर कुठाराघात है। बौद्ध युग के अन्दर रस तान्त्रिकों द्वारा आविष्कृत दोष, अग्नि, बल, वयस, प्रकृति, विकृति आदि के नियम सूत्र अथवा सिद्धांतों के प्रयोग की ही भांति Antibiotics का प्रयोग व्याधितत्व की ज्ञान पूर्ण चिकित्सा सम्बन्ध में अत्यन्त हानि कर रहा है। इसके फलस्वरूप चिकित्सकगण व्याधितत्व तथा चिकित्सातत्व सम्बन्धी विषयों की ओर रुचि न लेंगे, एवं औषधि अथवा सिद्धान्त विशेष की मानी हुई शक्ति में ही विश्वास रख, उसके प्रभाव के ऊपर प्राय: भरोसा रखेंगे। इन मनोभावों का मूल्य कितना वैज्ञानिक है, इसके लिए मैं चिकित्सा विज्ञान की उन्नति में रत व्यक्तियों से इसकी जांच करने को कहूँगा, तथा आधुनिक रस तान्त्रिकों की इस प्रकार की मननशीलता कितनी वैज्ञानिक है—इसको जांचने के लिए वर्तमान जगत के चिन्तानायकों को मैं आह्वान करता हूँ। (क्रमश:)

◆

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लियें पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७६६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

महर्षि चरक

लेखक--कविराज श्री धीरेन्द्र मोहन भट्ट, शास्त्री G.A.M.S., आयुर्वेदाचार्य

महर्षि चरक के काल का विवेचन करने से पूर्व चरकोक्त आयुर्वेद के आगम पर ध्यान देना आवश्यक है। चरक ने लिखा है।--

ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः ।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः ।।
अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम् ।
ऋषि प्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् ।। (च.सू.अ. १)

यह सर्वसम्मत है कि ब्रह्मा ने दक्षप्रजापति को, दक्ष ने अश्विनी कुमार को और उन्होंने इन्द्र को आयुर्वेद का उपदेश किया। इन्द्र से भरद्वाज ऋषि ने प्राप्त किया और फिर उन्होंने महर्षियों को पढ़ाया। इस तरह इसके आदिम काल को दो भागों में बांटा जा सकता है। (१) दैवकाल और (२) आर्षकाल।

दैवकाल के विषय में थोड़ा मतभेद है। ब्रह्मवैवर्त्त के अनुसार भास्कर को प्रजापति ने पढ़ाया था। हो सकता है प्रजापति के शिष्यों में एक यह भी रहे हों क्योंकि दैवकाल के अस्तित्व का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। केवल अनुमान किया जाता है कि वेदों के जन्मकाल से उपनिषद युग तक का यह समय रहा हो। आयुर्वेद की परम्परा का ऐतिहासिक क्रम निम्नांकित है :--

|
वैदिक युग
|
ब्राह्मण युग
|
उपनिषद युग

पता नहीं युग का यह क्रम कब समाप्त हो गया क्योंकि आवश्यकता नहीं रहने से इसकी गणना का उल्लेख नहीं मिल पा रहा है।

आर्षकाल का आरम्भ भारद्वाज के आगमन से होता है। भारद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद की शिक्षा लेकर पुनर्वसु आत्रेय को पढ़ाया था। यद्यपि यही बात सत्य और लोक प्रसिद्ध है फिर भी संदेह से रहित नहीं है क्योंकि चरक संहिता के दो स्थलों (च. सू.

अ. १ और च. चि. अ. १) पर ऋषियों द्वारा ऋषि भारद्वाज को आयुर्वेद पढ़ने के लिये इन्द्र के पास भेजने का उल्लेख मिलता है।

किंतु अग्निवेश ऋषि संघ के उलटने पर पुनर्वसुओं के नामों का उल्लेख नहीं मिल पाता। यद्यपि एक आत्रेय शब्द का विशेषण भिक्षु और दूसरे आत्रेय शब्द का संभवतः गौतम का गोत्रपरक नाम हो। यदि यह धारणा सत्य हो तो फिर उस ऋषि संघ में पुनर्वसु आत्रेय नहीं आते। हां, भिक्षु आत्रेय एवं गौतम आत्रेय का उपस्थित होना संभव था और भारद्वाज गोत्र के आदि निर्माता ऋषि इन्द्र के पास गये थे। ऐसा चरकोक्त दीर्घंज्जीवितीय नामक अध्याय के देखने से पता चलता है। यथा—

"स शक्रभवनं गत्वा सुरर्षिगणमध्यगम्।
ददर्श बलहन्तारं दीप्यमानमिवानलम्" ॥ (च.सू.अ.१)

चरक संहिता के सूत स्थान के २६ वें अध्याय में वर्णित अधिकांश ऋषियों के नाम उक्त ऋषि संघ में नहीं आये हैं, और फिर जो नाम हैं भी उनका कहीं पर गोत्रोल्लेख नहीं होने से उनके व्यक्तित्व का पूर्ण निश्चय नहीं हो पाता। साथ ही प्रथम अध्याय में शिष्य परम्परा का स्पष्ट अंकन नहीं किया गया है जिससे यह पूर्ण सिद्ध नहीं होता कि पुनर्वसु आत्रेय ने भारद्वाज से शिक्षा प्राप्त की हो। यथा--

ऋषयश्च भरद्वाजाज्जगृहुस्तं प्रजाहितम्।
दीर्घमायुश्चिकीर्षन्तो वेदं वर्धनमायुषः" ॥ (च.सू.अ.१)

निम्नांकित सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि कुछ परिवर्तित रूप में यही परिभाषा व्याकरण के आगमन की भी हो :—

"इदम् अक्षरम् छन्दोवर्णं सस्यमनुक्लान्तम्, ब्रह्मा वृहस्पतये प्रोवाच।
वृहस्पतिरिन्द्राय इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाजः ऋषिभ्यः ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः" ॥
इत्यादि--(ऋषफ तंत्र व्याकरण)

अस्तु। जो कुछ भी हो, वर्त्तमान उपस्थित सामग्री की कमी के कारण ऐतिहासिक विवेचन का मार्ग कंटकाकीर्ण है। तथापि इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि चरक संहिता इसी आर्षकाल की प्रमुख देन है। इसका नाम था अग्निवेष तंत्र जो इसके आदि रचयिता पुनर्वसु आत्रेय के शिष्य अग्निवेश के नाम पर आधारित था। इस ग्रंथ के जीर्ण शीर्ण हो जाने पर भी बौद्ध युग में आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कार किये जाने के कारण इस ग्रंथ का नाम 'चरक संहिता' हुआ। काल चक्र के प्रभाव से उक्त संहिता के भी खण्डित हो जाने पर कई शताब्दियों के बाद पंचनदपुर निवासी आचार्य दृढ़बल ने इसका प्रतिसंस्कार किया। इस ग्रंथ की मौलिकता और विशालता के सम्बन्ध में अधिक कहना निरर्थक

है। फिर भी अनुमान से कहा जा सकता है कि उपनिषदों की शैली में प्रांजल संस्कृत भाषा में गूढ़ विषयों के विशद विवेचन से समृद्ध यह ग्रंथ अति लोकप्रिय नहीं रहा होगा बल्कि समकालीन ग्रंथों में सर्वोच्च स्थान होगा इसमें सन्देह नहीं। जैसा कि चरक सूत्र स्थान प्रथम अध्याय में उल्लिखित श्लोकों से ज्ञात होता है :—

"बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीदुपदेशान्तरम् मुनेः। तंत्रस्य कर्त्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥
अहो साध्विति निर्घोषो लोकांस्त्रीनन्ववादयत् ॥"

संभवतः पाणिनीय व्याकरण के समान यह भी अपने पूर्ववर्ती समकालीन ग्रंथ के विलोप का कारण हुआ हो। इसी को भेल आदि अनेक प्रतिसंस्कर्त्ता विश्वसमाज को आकर्षित करने में असफल हुये थे जिस आधार पर आचार्य वागभट्ट की यह व्यंग्योक्ति प्रचलित है। यथा——

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्नमुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम् ॥"

प्रतिसंस्कर्त्ता के द्वारा ग्रंथ का कलेवर नितान्त नवीन रूप में परिवर्तित हो जाता है। यथा——

"विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम्।
संस्कर्ता कुरुते तत्रं पुराणं च पुनर्नवम् ॥ (च.सि.अ.१२)

अतः यह बतलाना कठिन है कि वर्तमान चरक संहिता में अग्निवेश तंत्र का उपजीव्य अंश कहाँ तक उपस्थित है।

यदि प्रत्येक युग की प्रगतिशीलता पर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करते हुये संस्कर्त्ता ग्रंथ के मूल अंश को स्वरचित अंश से पृथक रख सकते तो हमें आज इस तरह संभावनाओं के वन में भटकने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु अब यह विचार करना कठिन है कि "तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रिया विद्यौः" (च.चि.अ.५) वचन किसका है और इस आधार पर यह सिद्ध करना भी कठिन है कि सुश्रुत और चरक में प्रथम कौन हुये।

जैसा कि चरक सू.अ.१ के देखने से पता चलता है कि अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु महर्षि भारद्वाज के शिष्य थे परन्तु आचार्य सुश्रुत के गुरु काशीपति "दिवोदास" स्वयं अपने आप को इन्द्र का शिष्य बतलाते हैं। यथा——

"ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे तस्मादश्विनौ;
अश्विभ्यां इन्द्रः इन्द्रादहं मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः"।

'पुनर्वसु'

अब तक की खोज से पुनर्वसु आत्रेय के सम्बन्ध में जो ज्ञात हुआ है उससे पता चलता है कि पुनर्वसु आत्रेय कृष्णात्रि के लड़के थे और जो गांधार देश के राजा थे। उनकी माता का नाम चन्द्रभागा था। महाभारत में दिये हुए निम्नांकित श्लोक से पता चलता है कि यह महाभारत के समकालीन महर्षियों में थे :—

"गान्धर्वं नारदोवेदं भरद्वाजो पुनर्वसुम् ।
देर्वाषि चरितं गार्ग्यं कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम् ।।" (महाभारत)

ऊपर के श्लोक में नारद, गार्ग्य और भारद्वाज का भी उल्लेख किया गया है और चरक के वर्णित ऋषि संघ में भी इन तीनों का नाम पाया जाता है। नारद का श्रीकृष्ण का समकालीन होना कोई असंभव नहीं। लेकिन यह भारद्वाज कौन थे ? यह एक गूढ़ विषय है किंतु चरक सूत्र स्थान अध्याय २६ (आत्रेय भद्रकाप्यीय) में उल्लिखित भरद्वाज वंशीय आचार्य द्रोण का उस समय होना सिद्ध करता है। अतः संभव है पुनर्वसु के समकालीन कुमार शिरा नामक भरद्वाज हों। यथा—

"यः कुमारशिरा नाम भरद्वाज सः चानघः ।
श्रीमान् वार्योविदश्चैव राजा मतिमतां वरः ।।" (च.सू.अ.२६)

विश्वभारती
टैब्लेट्स रस भस्म
आसव अवलेह चूर्ण
घृत तैल आदि
वैज्ञानिक विधि से निर्मित
विवरण के लिये लिखें
अपोलो फार्मा. वर्क्स लिमिटेड
बरोदा २

लेखकों से अनुरोध

(१) पत्रिका के लिए आयुर्वेद विज्ञान के विविध अंगों के सम्बन्ध में तुलनात्मक गवेषणापूर्ण और आयुर्वेद गौरव प्रदर्शक लेख भेजें। (२) वर्तमान शासन द्वारा आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरोध में युक्तियुक्त सप्रमाण लेख भेजें। (३) महासम्मेलन और वैद्य-समाज के संगठन को पुष्ट करनें वाले लेख, प्रांतीय सम्मेलन तथा जिला नगर व ग्राम वैद्यसभाओं के समाचार भेजें, (४) लेख पृष्ठ के एक ओर हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट शुद्ध और भाषा में हों। (५) अप्रकाशित लेख को वापिस मंगवाने के लिए आवश्यक डाक-व्यय साथ भेजें।

महाभारत के उपर्युक्त श्लोक से कुछ शंका अवश्य उत्पन्न होती है। हो सकता है, भारद्वाज देश के रहने वाले साधारणतः भरद्वाज नाम से कहे जाते हों, और इस तरह अनेक भरद्वाजों का एक साथ होना असंभव नहीं। जैसा कि अष्टाध्यायी का निम्न सूत्र "कृकणपर्णभरद्वाजे" (४।२।१४५)। जिसकी वृत्ति है—"भारद्वाज देशिभ्याम् आभ्याम् छः स्मातं" इससे विषय पर एक नवीन प्रकाश पड़ता है। कहीं कहीं पर बाहूलीक देशीय कांकायण चिकित्सक को पुनर्वसु का समकालीन बताया गया है।

अस्तु, जो हो, चरक विमान स्थान अध्याय तीन का निम्न वाक्य यह सिद्ध करता है कि भगवान पुनर्वसु आत्रेय वर्तमान अफगानिस्तान एवं पंजाब के स्थित सीमाप्रदेश के रहने वाले मालूम होते हैं और संभव है गांधार देश के राजा नग्नजीत की छत्रछाया में रहने के बाद वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर आधुनिक उत्तर प्रदेश के उत्तरी और पश्चिमी भाग में रहते हुये वहीं इन्होंने अग्निवेश आदि को पढ़ाया हो। यथा—

"जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषितायां काम्पिल्यराजधान्यां भगवान् पुनर्वसु आत्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गंगातीरे . . ." 'इत्यादि'

अग्निवेश

आधुनिक विद्वानों ने भी अग्निवेश के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है और न प्राचीन विद्वानों ने ही इन पर कोई प्रकाश डाला है। जिससे अग्निवेश की कहानी अतीत के अन्धकार में इस तरह विलीन हो चुकी है कि उसकी झांकी पाना भी कठिन है। अतः यह सन्देह का विषय है कि अग्निवेश के सम्बन्ध में हमारी जानकारी पुनर्वसु सम्बन्धी ज्ञान से भी भिन्न हो। लेकिन इतना कहना युक्तियुक्त होगा कि पुनर्वसु के यह सर्वप्रथम शिष्य थे। और चरक संहिता का यह उपजीव्य ग्रंथ अग्निवेश तंत्र इसी समय जीवित था। यद्यपि कल्प ग्रंथों में अग्निवेश सूत्र का एक नाम आया है परन्तु कहा नहीं जा सकता वह किस अग्निवेश के द्वारा बनाया हुआ है। केवल इस अल्प सामग्री के आधार पर काल के विषय में निश्चित करना बालू की भीत उठाने से कम नहीं है। उपर्युक्त अग्निवेश तंत्र के प्रतिसंस्कर्त्ता चरक की कहानी को सत्य बनाने में विद्वानों ने काफी परिश्रम किया है, और यही कारण है कि कुछ दूर तक ठीक ठीक निश्चय करने में समर्थ हो सके हैं।

Dr. Silumlaby का कहना है कि चरक शताब्दी के राजा कनिष्क के राजवैद्य थे। "कंठ चरकाल्लुक्" (५।१।११) इत्यादि उद्धरणों से पता चलता है कि पाणिनीय व्याकरण के एक दो स्थलों पर 'चरक' शब्द आया है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है यह चरक कौन थे? क्योंकि विद्वानों का ख्याल है कि पाणिनीय के उक्त चरक शब्दों से 'चरक संहिता' के निर्माता का कोई सम्बन्ध नहीं है। भारतीय पुरातत्व विद्वान काफी

खोज के बाद जो इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि पतञ्जलि और चरक एक ही व्यक्ति थे तो सचमुच यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। क्योंकि प्राच्य संस्कृत विद्वानों का विचार इस सम्बन्ध भें अविसंवादी है। अनेक पण्डितों का विचार जो इस सम्बन्ध में है उसे उद्धृत किया जा रहा है—

पातञ्जल महाभाष्य चरकः प्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक् कायदोषानां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥" (चक्रपाणि ११वीं श०)

शब्दानाममनुशासनं निगदतां पातञ्जले कुर्वतां वृत्ति राजमृगाक्तं संग्यकं मयि
व्यातन्वता वैद्यके वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेयेवग्येन उद्धृतः" इत्यादि॥
(भोज ११ से १४ शताब्दी)

"योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पंतञ्जलिं प्रांञ्जलि रानतोस्मि"॥
(कंकुष्ठ महाभाष्य सप्तविज्ञान से भिक्षु द्वारा उद्धृत)

"पातञ्जले तु स्पर्शं दिनापि ज्ञानं भुक्तम्" (शिवदास १२ वीं शताब्दी)
"इति चरके पतंजलि" (नागेश भट्ट १७ वीं शताब्दी)

"सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यक शास्त्रे च वार्तिकानि ततः।
कृत्वा पतंञ्जलि मुनिः प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम्॥"
(रामभद्र दीक्षित)

उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट होता है कि प्रायः सभी विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि पतञ्जलि का ही दूसरा नाम चरक था और यह शेषनाग के अवतार थे। इस सम्बन्ध में निम्नांकित दंत कथायें प्रचलित हैं।

(१) भावमिश्र ने लिखा है कि जिस भगवान विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया था उस समय शेष ने विष्णु से वेद वेदांगों की शिक्षा ली थी। उसके बाद वह पृथ्वी पर भ्रमण करने आये और जनसमुदाय को रोग से आक्रान्त देख कर स्वतः द्विजपुत्र के रूप में प्रगट होकर चरक नाम से प्रसिद्ध हुए। यथा—

"यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः।
तस्मात् चरक नाम्नासौ ख्यातश्च क्षिति मंडले॥" (भा.प्र.पू.ख.)

~~महाकवि तुलसी और कबीर की भांति इनका जन्म वृतान्त भी अत्यन्त कौतूहल~~-पूर्ण है।

(२) दूसरी दंतकथा यों है—एक समय जब विष्णु शेष के ऊपर क्षीर समुद्र में शयन कर रहे थे तो उनका शरीर भारी मालूम होने लगा और तज्जनितभार से 'शेष'

दुःखी होने लगे और अल्पकाल में उनकी निद्रा भंग हो गई। शेष के द्वारा देह गौरव का कारण पूछने पर कहा कि स्वप्न में शिवताण्डव नृत्य देख रहे थे। अतः अत्यन्त घबराहट के कारण उनका श्वास प्रश्वास रुक गया जिससे शरीर भारी हो गया। शंकर भगवान का आदेश है कि पाणिनीय के ग्रंथ पर महाभाष्य की रचना करो एवं उनका आदेश पालन कर एक द्विजपत्नी जब अर्घप्रदान कर रही थी तो उसकी अंजलि में गिर पड़े। इसी से उनका नाम पतंजलि पड़ा।

अस्तु, जो कुछ भी हो, इसमें अब संदेह नहीं रह जाता कि इनका जन्म भी कौतूहलमय था। दंतकथाओं से यह भी पता चलता है कि यह 'गोनर्द' की 'गोणिका' के पुत्र हैं। क्योंकि महाभाष्यकार ने स्वतः अपने आपको "गोनर्दीय" (१।१।२१) कहा है जिस आधार पर बहुतों ने उसे महाभाष्यकार का प्रपाज्य स्वीकार किया है। टीकाकार नागेश भट्ट ने भी "गोनर्दीय पदम् व्याचष्टे भाष्यकारः" ऐसा लिखा है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्त्तमान उत्तर प्रदेशान्तर्गत गोण्डा जिले का पूर्वीय भाग अतीत में "गोनर्द" नाम से प्रसिद्ध था। जैसा कि "एङ प्राचांदेशे" (११।७५) सूत्र से सिद्ध होता है। नागावतार से दो विद्वान अतीत में प्रसिद्धि पा चुके हैं। उन में से एक महाभाष्यकार और सूत्र प्रणेता हुये। इसी कारण से कई स्थानों पर दोनों के नाम आदि मिल गये हैं। पिंगल पाणिनी के छोटे भाई थे यह बिलकुल तथ्य से परे है क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं पाया जा रहा है। "च सूत्रयेत् भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन" यह वाक्य पाणिनी का समकालीन पतञ्जलि को स्वीकार करने में किसी भी विद्वान को सन्देहाकुल नहीं रख सकता और इससे सिद्ध होता है कि पतञ्जलि पाणिनी परवर्ती हैं। इसी सम्बन्ध में पण्डित हरिप्रपन्न जी शास्त्री ने "रसयोग सागर" के २४ वें अध्याय में तीक्ष्ण व्यंगमय शब्दों में अपना उद्‌गार प्रगट किया है:—

"पतञ्जलि के काल के सम्बन्ध में सर्वसम्मत सिद्धान्त यह था कि वह कालिदास रचित सुप्रसिद्ध नाट्य पुस्तक "मालविकाग्नि" के मित्र नामक अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र के राजपुरोहित के रूप में थे और उक्त राजा से आपने राजसूय यज्ञ करवाया था और इस रूप में आप पहली शताब्दी के आस पास वर्त्तमान थे।"

पण्डित हरिप्रपन्न जी शास्त्री ने अपने रस योगसागर के उपोद्‌घात में उपरोक्त मत का ख़ण्डन करते हुए एक विचारणीय वक्तव्य सामने रखा है जो संक्षेप में यों है— पण्डित जी का कथन है कि—"यह पतञ्जलि सिकन्दर महान के दिग्विजय ३२७ वि० के पूर्व और गौतम बुद्ध के निर्वाण के (५२७ B.C.) समय इन दोनों के बीच वर्त्तमान थे, और आजकल के महाभारत के पूर्व महाभाष्य को रचा था।" इन मतों की पुष्टि के लिये शास्त्री जी ने निम्न प्रमाण उपस्थित किये हैं:—

"राज तरङ्गणी में ऐसा लिखा गया है कि—राजा अभिमन्यु के समय में चन्द्राचार्य आदि वैयाकरणों ने पतञ्जलि महाभाष्य के एक प्रति को (जो तत्कालीन काल में अप्राप्य था) प्रकाशित किया।"

अनेक विद्वानों ने अभिमन्यु के राज्यकाल का काल निर्धारण निम्न रूप में किया है :—

मिस्टर विलफोर्ड (WILFORD) के मतानुसार अभिमन्यु का राज्यकाल ४२३ B.C. में समाप्त हो जाता है किंतु Prihcep (प्रीसेप) के अनुसार यह काल ७३ B.C. के पहले तक था। मिस्टर Lassen (लासेन) ने अभिमन्यु के राज्यकाल का समय चौथी शताब्दी कहा है एवं श्री Bothling (बोथलिंग) महाशय ने पहली शताब्दी ईसा से पूर्व बताया है।

अस्तु, जो कुछ भी हो, उपर्युक्त मंतव्यों को मान भी लेते हैं तो अभिमन्यु का समय प्रथम शताब्दी ही होता है जिससे पता चलता है कि महाभाष्य ग्रंथ उससे बहुत पूर्व अवश्य वर्त्तमान था और निर्माण के बाद उसका प्रचार हो कर फिर से लोप होने में पर्याप्त समय व्यतीत हो चुका होगा। सिकन्दर के द्वारा शाकल नामक नगर पर चढ़ाई करके ध्वस्त करने का वर्णन आया है। लेकिन पतंजलि ने "शकलादिभ्यश्च" (४।२।७५) सूत्र का भाष्य करते हुए सिकन्दर द्वारा ध्वस्त होने का उल्लेख नहीं किया है जैसा कि स्वयं भाष्यकार पतञ्जलि ने "उरुनद यवनः साकेतम्" (लिंगलकार) लिख कर साकेत के विषय में लिखा है। बौद्धकाल में महत्ता प्रदर्शन के लिए ब्राह्मणों का "देवानाम् प्रियः" निंदापरक शब्द आता था। फिर भी कात्यायन के "देवानां प्रियः इति च मूर्खे" वाक्य में से मूर्खे शब्द को बौद्धों के समकालीन होने के नाते हटा दिया गया।

"अनुसोनं पाटलिपुत्रम्" से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) सोन नदी के किनारे बसा था। "अनुसोनम् पाटलिपुत्रम्" इस वाक्य से पता चलता है कि बाद में चन्द्रगुप्त आदि के समय में जाकर यह पाटलिपुत्र गंगा के किनारे बस गया हो। (नोट—अभी भी पटना के नासरी गंज मुहल्ले के समीप गंगा और सोन नदी का संगम है।)

महाभाष्य के वर्णन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध के समय में (महावंश के कथनानुसार) अजात शत्रु ने पाटलिपुत्र ग्राम में सोन के किनारे अपना किला बनाना शुरु किया था। इतिहास-वेत्ताओं का कहना है कि सिकन्दर के द्वारा ही 'शुद्रक' और 'मालव' नामक गणों को छिन्न भिन्न कर दिया गया था जिसका उल्लेख महाभाष्य में भी पाया जाता है। उक्त पण्डित जी ने अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए लिखा है कि—महाभारत का संस्करण दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था इसे इतिहास-वेत्ताओं के द्वारा एक मत से स्वीकार कर लिया गया है। उक्त अकाटच प्रमाणों से अब तक के प्रचलित मत पर पुरजोर शब्दों में प्रभाव पड़ेगा, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। पण्डितों का भी कहना है कि योगशास्त्र

के प्रणेता पतञ्जलि बहुत प्राचीन ऋषि हैं एवं महाभाष्य और चरक संहिता के निर्माता पतञ्जलि द्वितीय हैं जिनके सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया गया है।

"दृढ़वल"

चरक के पश्चात् उनके शिष्य एवं उपशिष्यों का उल्लेख नहीं मिलता। ठीक-ठीक मालूम नहीं होने से लाचार होकर पुनः हमें इस विच्छिन्न परम्परा की गुत्थियों पर सोचना पड़ता है कि 'अग्निवेशतन्त्र' अपना नवीन नाम 'चरक संहिता' रखकर कई शताब्दियों तक अपनी चमत्कारिता को दृढ़ रख सका। हो सकता है यदि दृढ़वल जैसा कोई प्रतिसंस्कर्त्ता इसे नहीं मिलता तो कोई असंभव नहीं कि यह किसी राजपुस्तकालयों की काष्ठ-पट्टिकाओं के बीच वर्तमान भेडसंहिता के समान दबा हुआ पाया जाता। अनुमान किया जाता है कि इसके छिट-पुट अंश की विख्याति पर्याप्त हुई जिसके कारण इसके पुनः संस्कार करने की आवश्यकता महसूस की ग़यी।

कविराज गणनाथ सेन के कथनानुसार दृढ़वल का उत्पन्न होना तीसरी या चौथी शताब्दी माना गया है। और यह तो सर्वसम्मत तय है कि दृढ़वल 'वाग्भट्ट' (छठी या ७वीं शताब्दी) के पूर्ववर्ती थे। यह पंचनन्दपुर (शायद पंजाब काश्मीर का कोई शहर) निवासी कपिलवस्त्र के पुत्र थे। इन्होंने बड़ी कुशलता से चरक संहिता का प्रतिसंस्कार किया। इस महान संहिता का यह प्रतिसंस्कार अन्तिम हुआ।

'चरक संहिता'

उपर्युक्त पंक्तियों में इस पर पर्याप्त विचार हो चुका है और प्रमाण भी एकत्रित किये गये हैं। अब विशेष रूप से इस मूल संहिता के सम्बन्ध में प्रकाश डालना आवश्यक है। उद्धृत प्रमाणों से साफ झलकता है कि वर्त्तमान 'चरक संहिता' 'अग्निवेश' 'पंतजलि' और 'दृढ़वल' इन महर्षियों के द्वारा लिखा गया हैं। प्रथम दो अग्निवेश और पतंजलि के सम्बन्ध में पुरजोरशब्दों में नहीं कहा जा सकता परन्तु दृढ़वल ने तो निम्नवाक्यों को "कृत्वां वहुभ्यस्तंत्रेभ्यो विशेषोच्छशिलोच्ययम्"। सप्तदशौषधाध्याय सिद्धि कल्पैर पूरयत"॥ (चरक) लिखकर स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया हैं कि इसमें अन्य कई तन्त्रों की बातों का समावेश किया गया है। अतीतकाल में हस्तलिपि वद्ध पुस्तकों का ही प्रचलन होने के कारण मालूम होता है कि वर्त्तमान चरक संहिता अनेकोवार खण्डित होने पर भी इसके कुछ भाग देश देशान्तर में खण्डित एवं सुरक्षित रूप में रहे। प्राचीन टीकाकारों में 'चक्रपाणि' 'शिवदास' आदि ने अग्विेश के सम्बन्ध में जो लिखा है उसे भी उदाहरणार्थ उपस्थित किया जाता है। चरक की टीका में चक्रपाणि ने लिखा है:—

(१) 'यदुक्तं अग्निवेशेन कर्षाद्ध्वाकण शुण्ठयोः॥"

(२) निदान टीका में विजय रक्षित ने–"वातपित्त कफै सप्तदश द्वादश वासरान् संभवति च मर्यादा मोक्षाया च वधाय च" लिखा है !

(३) श्री कंठ ने वृन्दक्लत सिद्ध योग की टीका में लिखा है–

"तथा च अग्निवेशः प्रलेपमाने ज्वरिते हृष्टे तनुरूहे।
कटी उरू जंघा पार्श्वस्थिशूलिने स्वेदनं हितम्" ॥"

दृढ़वल कें चरक की जो प्रतियां प्राप्त थी उनमें चिकित्सा स्थान के १७ वें अध्याय कें अतिरिक्त कल्प स्थान तो एकदम ही लुप्त हो चुका था। लेकिन अग्निवेश तंत्र अथवा चरक संहिता का प्रकीर्ण अंश बंगाल देश के पास-परोस में दृढ़वल कें अधिक बाद तक पाया गया था, जिन्हें देखकर ही उपर्युक्त टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में उसका उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त दृढ़वल का वह श्लोक तो काफी प्रसिद्ध हो चुका है जिसे आयुर्वेद संसार पूर्णरूप से जानता है:–

"अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च।
नासाद्यन्ते अग्निवेशस्य तंत्रे चरक संस्कृते ॥
तातेतान् कापिलबलः शेषान् दृढ़बलोऽकरोत्।
तंत्रस्यास्य महार्थस्य पूरणार्थं यथातथम् ॥" (च. चि. अ. ३०)

यद्यपि दृढ़वल के इन वाक्यों को देखकर कई विद्वानों का कथन है कि उक्त दोनों स्थान मूलचरक में नहीं थे; परन्तु यह उचित नहीं क्योंकि 'भेडसंहिता' का वह अंश जो खण्डित रूप में उपस्थित है उसमें उसी तरह स्थान अध्याय आदि का विभाग किया गया है जिस तरह वर्त्तमान चरक संहिता में। हां, कुछ व्याधियों का समुचित रूप से उल्लेख नहीं करनें के कारण 'वाग्भट्ट' नें निम्न व्यंग्योक्ति की है:–

"अथ चरकमधीतेतद्ध्रुवम् सुश्रुतादि प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपिवाह्याः।
अथ चरक विहीनः प्रक्रियायामखिन्नः किमिह खलुकरोतु व्याधितानां बराकः ॥" (वा. भ.)

इतिहास चाहें जैसा भी, यह जिस अवस्था में सम्प्रति समुपलब्ध है उस रूप में यही एक संहिता है जो आयुर्वेद की स्तम्भ शिला है। यह अपनी उच्चकोटि के भाषा-सौष्ठव

रसेन्द्रसार संग्रह : लेखक—वैद्य घनानन्द पन्त, डी एस-सी (आयुर्वेद)

पाठ संशोधन, पाठपूर्तियुत विस्तृत संस्कृत टीका तथा शुद्ध हिन्दी भाषा। विद्यापीठ के विशारद तथा इण्डियन मॅडिसन बोर्ड यू० पी० के द्वितीय और चतुर्थ वर्ष के पाठ्यक्रमों में टीका नियत है। मूल्य ११) प्रति संस्कृत निदान चिकित्सा मूल्य–१)

मिलने का पता :—२६, बाजार लेन, नई दिल्ली।

तथा विशद विषय वर्णन के कारण पाठकों के हृदय में अपना महत्वपूर्ण स्थान ले चुकी है। तभी तो चरक की चिकित्सा प्रणाली की प्रशंसा पाश्चात्य विद्वान मुक्तकंठ से करते हैं। यही नहीं, किसी भी इतिहास-वेत्ता से यह अप्रगट नहीं है कि यही चरक संहिता अरबी में अनूदित होकर 'सरफ' नाम से यूनानी चिकित्सा विज्ञान में विख्यात है। चरक संहिता के सभी अंश महत्त्व पूर्ण हैं फिर भी चिकित्सा में तो यह अद्वितीय है। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है :—

"निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्र स्थानें तु वाग्भट्टः। शरीरे सुश्रुतः श्रेष्ठ चरकस्तु चिकित्सते।"

दर्शनों के निगूढ़ मत को जिस कौशल से आयुर्वेद के लिए उपयेगी बनाया गया है यह देखकर आश्चर्यचकित होजाना पड़ता है। यह जीर्ण शीर्ण पुस्तक आज भी अपने मौलिक महत्व की ओर सबका ध्यान आकृष्ट करती है। अंत में महामहोपाध्याय आचार्य गणनाथ सेन जी का यह श्लोक महर्षि चरक के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में उपस्थित कराता हूँ :—

"यदान्तर गतं महः परमर्हर्षिबोधोज्ज्वलं।
विराटपुरुषधामजिन्निखिलरोदसी व्यानश॥
विलोप परकल्पना जलदजाल मन्दप्रभो।
न कस्य विषयः शुचां स इह वैद्यविद्यारविः॥" (प्रत्यक्ष शारीर)

* * *

मलेरिया के लिये कुनीन की जगह

एलस्टो पिल्स

(सप्तपर्णवटी)

यह गोलियाँ सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, कुचलात्वक आदि के घनसत्वों से तैयार की हैं। सप्तपर्ण (Alstonia Scholaris) के लिये डीमक वोल्युम २ पृ. ३८७-८८ पर लिखा है कि इसमें कुनीन जैसा डीटेन नामक सत्व है जो मेलेरिया, शीतज्वर, विषमज्वर आदि में अत्यन्त उपयोगी है। पब्लिक होस्पीटल और खानगी दवाखानों में डाक्टरों ने इस्तेमाल करके देखा है कि परदेश से आने वाले कुनीन सल्फसे यह दवा हजार गुनी अच्छी है। कालमेघ, कुटकी, आदि भी बुखार में अत्यंत लाभदायक हैं। ६ से १२ गोली देने से बुखार उतर जाता है। कुनीन की तरह बहीरापन आदि नहीं होता।

मूल्य ४२ गोली ।।=, तो० १० (गोली ४५० लगभग) रु. ३-८-०

ऊंझा फार्मेसी लि०, ऊंझा (गुजरात)

महर्षि अग्निवेश का समय

ले०—वैद्य श्री घनानन्द पन्त विद्यार्णव, देहली।

महाभारत में मिलता है "कृष्णात्रेयाश्चिकित्सते" चिकित्सा में कृष्णात्रेय का अधिकार था। यह कृष्णात्रेय आत्रेय पुनर्वसु हैं, यह प्रमाणों से सिद्ध है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि कृष्णात्रेय महाभारत से पूर्व के हैं। कृष्णात्रेय के शिष्य अग्निवेश, भेंड़, जतुकर्ण्य, पराशर, हारीत और क्षारपाणि यह छः थे। द्रोणाचार्य जो पांडव-कौरवों के अस्त्रविद्या के गुरु थे, उन्होंने अग्निवेश के परम्परागत आग्निवेश्य से अस्त्रविद्या सीखी थी।

अग्निवेश्यं महाभागंभरद्वाजः प्रतापवान्।
प्रत्यपादय दाग्नेयमस्त्रमस्त्र विदाम्वरः॥

अग्निवेश ने ऋषि भरद्वाज से आग्नेयास्त्र प्राप्त किया। महाभारत १४०।४१

अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा।
अग्निवेश्य इति ख्यातः तस्य शिष्योऽस्मि भारत॥

महाभारत १५२।१०

द्रोणाचार्य कहते हैं मेरे गुरु अग्निवेश ने अगस्त्य से धनुर्वेद सीखा।

अन्यत्र भी द्रोणाचार्य कहते हैं :—

महर्षेरग्निवेश्यस्य स काशमहमच्युत।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेद जिघ्रिक्षया॥

महाभारत

द्रोणाचार्य कहते हैं मैं धनुर्वेद सीखने की इच्छा से महर्षि अग्निवेश के पास गया।

शतपद ब्राह्मण वंशक्रम में "आग्निवेश्याद् आग्निवेश्यः" यह वाक्य मिलता है। अग्निवेश के गोत्र में उत्पन्न हुए सब पुत्र पौत्रों का नाम 'एकोगोत्रे' इस पाणिनी सूत्र से आग्निवेश्य होता है। अग्निवेश की परम्परा प्राप्त आग्निवेश्य से द्रोणाचार्य जी ने अस्त्र विद्या की शिक्षा ली तो इस से यह सिद्ध हुआ कि युधिष्ठिर के राजगद्दी में बैठने से कम से कम ५० वर्ष पूर्व द्रोणाचार्य का जन्म हुआ होगा क्योंकि यह युधिष्ठिरादिकों के गुरु थे।

आसन्नमघासु मुनयः शासति, नृपतौ युधिष्ठिरे पृथिविम्।

शेष पृष्ठ ६१८ पर

नोट :—गुरुकुल कांगड़ी में ता० १२-१०-५३ को दिये गए व्याख्यान का एक अंश।

धातु-शास्त्र

ले०—श्री सरयूकान्त झा, इन्चार्ज वैद्य अशोक-आरोग्य मंदिर,
धरहरा, मुजफ्फरपुर, (बिहार)

आयुर्वेद के एक विषय का ही अच्छी तरह अध्ययन किया जाय तो अनेक शास्त्रों की जरूरत पड़ती हैं और सबका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध मालूम पड़ने लगता है। रसायन शास्त्र के आचार्य पतंजलि और नागार्जुन माने गये हैं। पतंजलि का लिखा लोह शास्त्र एक महत्व का ग्रन्थ था, जो दुर्भाग्य से अब उपलब्ध नहीं है। पर उसके उद्धरण दूसरे ग्रंथों में जहां-तहां विद्यमान हैं। नागार्जुन के ग्रंथ चीन में पहुंचे थे और उनके कुछ अंशों का अनुवाद प्राचीन चीनी ग्रंथों में है। पर धातुओं का अध्ययन केवल औषधों के लिये ही नहीं हुआ था। उनसे और काम भी लिये जाते थे। सोनें-चांदी की वात ही छोड़ दीजिये, ये तो बहुत पुराने समय से ही काम में लाये जा रहे हैं, तांबे और लोहे का प्रयोग भी वहुत प्राचीन है। लोहे को शुद्ध बनाने की रीति लोग जानते थे। सीसे, रांगे और जस्ते (यशद) की ईजाद भी पहले पहल भारत में ही हुई। रांगे के लिये यूनान के महाकवि होमर (लग ६०० ई० पूर्व) ने संस्कृत कास्तीर (कतीरा) शब्द का प्रयोग किया है। जस्ते का वर्णन पहले पहल मदनपाल निघंटु (१३७० ई०) में मिलता है। यूरोप में इस धातु का पता १५४० ई० में लगा था। ये सब धातुएँ खानों से शुद्ध रूप में तो निकलती नहीं हैं। शुद्ध करने पर ही इनका उपयोग हो सकता है। पत्थर की चट्टानों में–लोहे और ताँबे आदि की कच्ची धातें होती हैं। उन्हें उनसे निकालकर और शोधकर उपयोगी बनाना हमारे पूर्वज जानते थे। लोहे में कच्चे और पक्के लोहे का भेद मालूम था और ईस्पात बनाना भी वे लोग जानते थे। कुतुब मीनार के समीप महरौली के लोहे के स्तम्भ का लोहा ऐसा माना जाता है कि उस तरह का शुद्ध लोहा आज तक कारखानों में नहीं बन पाया है। यह कैसे बना और कौनसा प्रयोग इसके बनाने में किया गया था कि आज १५०० वर्षों से धूप, गर्मी और बरसात के आघातों को सहता हुआ वह ज्यों का त्यों खड़ा है। लोहे के ऐसे हथियार भी वनते थे, जिनका मुकावला करना कठिन था, ईरानियों ने इसे हिंदुओं से सीखा था और ईरानियों से अरबों ने सीखा, जो तलवार 'दमिश्क की तलवार' के नाम से मशहूर थी, उसका जन्म हिन्दुस्तान में ही हुआ था। पिछली शताब्दि में फरगुसन ने लिखा था कि हिन्दुस्तान में लोहे के इतने बड़े खंड गढ़े जा सकते थे, जितने बड़े उनके समय के क़रीब तक यूरोप में नहीं बन सकते थे। धातुओं के अतिरिक्त रत्नों की पहिचान के

लिये हमारे यहां के जौहरी १२ वीं सदी तक दुनिया भर में विख्यात थे। हमारे यहां नवरत्नों की गिनती पुरानी है। भारत के कारीगर उसे काट तरासकर सुन्दर से सुन्दर आकृति देने और उनमें बारीक से बारीक छिद्र करने में अत्यन्त निपुण थे। धातुओं की तरह पीस फूंककर रत्नों का भी औषध रूप में प्रयोग यहां बहुत प्राचीन है। इस विषय पर १४ वीं सदी का 'रसरत्न समुच्चय नामक ग्रंथ बड़े महत्व का है। गंधक का बहुत विवेचन आयुर्वेद में किया गया है और इसका अध्ययन भी हमारे रासायनिकों ने पूरा-पूरा किया था, पारे और गन्धक के अनेक समासों का प्रयोग आयुर्वेदीय दवाइयों में है। मकरध्वज पूर्णतः पारे का गंधित है। पर आजकल की साधारण रीति से बने हुए पारे के गंधित में वे गुण नहीं आते जो मकरध्वज में पाये जाते हैं। आयुर्वेद की प्रक्रिया से मकरध्वज बनाने में वे सब गुण कैसे आ जाते हैं, इसकी व्याख्या आधुनिक विज्ञान भी अभी तक नहीं कर पाया है।

अब ऐसा अनुमान किया जाने लगा है कि गंधक, शोरे और कोयले के संयोग से बने विस्फोटक पदार्थ 'बारूद' का आविष्कार भी भारतीय था। चीन और अरब ने इसका ज्ञान संभवतः भारत से ही सीखा था। भस्मीकरण अधःपातन, उर्ध्वपातन, स्वेदन, स्तम्भन आदि धातु-शोधन की प्रायः सभी आधुनिक प्रक्रियायें हमारे यहां ज्ञात थीं और गुप्तकाल के अन्त तक केवल पारे के ही १९ रासायनिक प्रयोग निकाले जा चुके थे। रोम के प्रसिद्ध लेखक प्लिनी ने ईसा पूर्व की पहली शताब्दी में रासायनिक द्रव्य निर्माण और व्यवसाय में भारत की स्थिति संसार में सर्वोच्च मानी थी। १२ वीं सदी ई० के अन्त तक भारत की प्रायः वही स्थिति बराबर बनी रही।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका
आयुर्वेदीय औषध द्रव्यों के विज्ञापन का
सुगम, सुलभ और प्रभावपूर्ण साधन है।
त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक विज्ञापनों पर विशेष सुविधा
विशेष जानकारी के लिये आज ही लिखिये!

मियादी बुखार से बचने के सरल उपाय

वैद्य श्री गोपाल, आयुर्वेदाचार्य

वर्षा काल सृष्टि को हरी भरी बना, जगत में बहुत सी संपदायें पैदा करता है, किन्तु उसके साथ साथ मानव सृष्टि में अनेक विपदायें भी उत्पन्न करता है। मियादी बुखार जिसे मधुर ज्वर, मौलिक ज्वर, आंत्रिक ज्वर एवं "टायफाईड" आदि विविध नामों से संबोधित करते हैं, अक्सर जैसे जैसे वर्षा काल बीतता जाता है, एवं सूर्य की तीक्ष्ण किरणें पृथ्वी पर के कीचड़ को सुखाने लगती हैं, वैसे वैसे ही इसका प्रकोप बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। इसका प्रभाव नगरों में तो सामान्य रूप से होता ही है, किन्तु ग्रामों में सबसे अधिक प्रमाण में पाया जाता है।

वास्तव में प्रकृति के प्रकोप का प्रमुख कारण

योऽवगाहेत वर्षासु पिवेद्वाऽपि नवं जलं।
स वाह्याभ्यन्तरान् रोगान् प्राप्नुयात क्षिप्रमेवहि ॥

जो वर्षा काल में स्नान करेगा या उसे बिना गरम किए खाने पीने में उपयोग करेगा उसे निश्चित रूप से (बाह्य) बाहर की व्याधियाँ खुजली आदि चर्मरोग, तथा अन्दर के मियादी बुखार, मलेरिया बुखार आदि प्राप्त होंगे। भारत एक ऐसा देश है कि यहां की सर्वसाधारण आर्थिक दृष्टि से दुर्बल जनता वर्षा के जल में, शीत में रहती है और वह भी अधिकांश ग्रामवासी जनता, जिनके पास इनसे बचने के साधन ऋतु काल के कथनानुसार उपलब्ध नहीं रहते हैं। अतः वे इसके प्रकोप से अधिक पीड़ित होती हैं।

सामान्य लक्षण:—इसके प्रकोप के प्रथमारंभ में साधारण ज्वर, मस्तिष्क शूल, शरीर में आलस्य, किसी कार्य के करने में अनुत्साह हो कुछ समय बाद रोगी विस्तर पकड़ लेता है, तथा ज्वर बहुत तेजी से आने लगता है, दाह होने लगता है, भ्रम, मूर्च्छा, दस्त लगना, उल्टियाँ होना प्यास एवं घबराहट व खांसी अधिक होना, नींद न आना तथा मुख में गला, तालू, ओंठ लाल हो जाना, तालू व जीभ का बार बार सूखना, बेचैनी बनी रहना इसके अलावा १ सप्ताह बाद गर्दन पर सफेद सरसों के दानों के समान दाने पैदा होना ये लक्षण होते हैं।

उपचार

इस रोग के उपचार में देहाती लोग तो "नदद्यात्तत्र भेषजं" औषध न देने के

सिद्धान्त को लेकर कोई औषधि देते नहीं, केवल जल उबाल कर देते रहते हैं और वो अवधि वीतने पर अपने आप स्वस्थ हो जाते हैं। हमारे यहां से १० मील की दूरी पर रायपुर नामक ग्राम है उस ग्राम में इस नाम के आराध्य देव का स्थान है, वहां पर एक कूप है। अधिकांश ग्रामवासी जनता का केवल उस जल पर विश्वास होते हुए वे लोग इसका उपयोग करते हैं। यह एक अनुसन्धानीय है कि उसके अन्दर ऐन्टी टायफाईड क्या वस्तु है? व्यवसायी विज्ञान ने तरक्की कर अब सब जगह औषधोपचार के रूप में विजातीय द्रव्यों को शरीर के अन्दर प्रवेश कराना प्रारंभ कर उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान किया हुवा है। इस रोग की अमोघ एवं अव्यर्थ महोषधि "क्लोरोमाइसीन" आविष्कृत कर उसका प्रयोग मियाद की सभी मर्यादा को नष्ट कर तत्क्षण रोगी को पूर्ण लाभ प्रदान करती है यह ख्याति प्रदान की हुई है, किन्तु आज उसका परिणाम एक वक्त के बजाय कई वक्त सम्पूर्ण कोर्स लेने पर भी लाभकर नहीं होता, और चिकित्सक महानुभाव उस रोगी के अर्थ का शोषण करवाते ही जाते हैं। यह स्थिति समाचार पत्रों से विदित हो रही है मानो अब उसका तेज क्षीण होगया है। अस्तु, यह श्रीमन्तों का उपचारक्रम है। सर्वसाधारण गृहस्थी या कृषक इसका अवलम्बन करें और उनके घरों में इस प्रकार के दो चार बीमार होवें और वे सभी के लिए इसे उपलब्ध करने का प्रयत्न करें तो शायद है उन्हें अपने जीवन के अन्य साधनों को जुटाने में अपनी आर्थिक स्थित्यानुसार महान् कष्ट होगा और प्रायः उन्हें इनसे विमुख ही रहना पड़ेगा। सर्व साधारण जनता इस रोग के ग्रसित होने पर किसी झंझावात में न पड़े एवं अपने आर्थिक स्तर के अन्दर इस आपत्ति से मुक्त हो सके, इसलिये यह निवेदन करता हूं कि रोग से पीड़ित होने पर ज्वर का वेग कम करने वाली शान्तीदायक तृप्तिकर तथा आह्लादजनक सौम्य वस्तुओं को रोगी को देते रहना चाहिये जिससे हृदय पर आघात न हो कर वह बलवान बना रहे, जल उबाल कर पीने को देवें। सुबह शाम दोनों समय नागर मोथा, पित्त पापड़ा, धमासा, मुलेटी, चंदन, मनक्का आवश्यकतानुसार तथा वात आदि के प्रकोप में शुंठी तथा खांसी का उपद्रव होने पर वहेड़ा इन औषधियों का सम समान भाग में काढ़ा बना देते रहें, ये औषधियां रोगी के भ्रम, मूर्च्छा बेचैनी आदि सब उपद्रवों के लिए अमोघ हैं। रोगी के पास स्वच्छता अधिक प्रमाण में होनी चाहिए। रोगी को नित्य स्वच्छ वस्त्र पहिनाना चाहिये। कमरा स्वच्छ साफ सुथरा तथा सुगन्धित द्रव्यों से सदा महकता रखना चाहिये। वाहर से मिलने के लिए आने जाने वाले लोगों को कमरे के वाहर या रोगी से दूर रखाना चाहिये। रोगी के समक्ष उसके विकार की तीक्ष्णता का जिक्र न करना चाहिये।

रोगी को अधिक बेचैनी या घबराहट होने पर प्रवालपिष्टि, गिलोयसत्व, मुक्ता

शुक्ती, मुक्तापंचामृत मौक्तिक भस्म तथा आवश्यकतानुसार कस्तूरी इन वस्तुओं के योग की २ रत्ती की पुड़िया मध्याह्न समय में दो-दो घंटे से देते रहना चाहिये। या—

शुद्धस्वर्ण गौरिक१छ०, काली मिर्च ½ छ० सम विषम भाग म, लेकर गो दुग्ध व मृगिराज रस की ७-७ भावना दे गोलियां ७ रत्ती की बना, दूध शर्करा अनुपान से २-२ गोली प्रति खुराक में देते रहना चाहिये। यह क्लोरोमाईसीटीन से सर्वश्रेष्ठ कार्य करने वाली व कम खर्च तथा अनापत्ति कर एवं अनुभूत औषधि है, भारतीय वैद्य समाज आज जो पाश्चात्य चकाचौंध में अंधा हो अपने आप को भूला हुआ है एवं परकीय अनुसंधान पर अपनें आप को चिकित्सक होने का दावा करते हें, जरा विचार करें यह मेरा कटु सत्य नम्र निवेदन है हमें दूसरों के गुण लेकर अपना कुछ अनुसन्धान करना चाहिए। आज इस स्वातंत्र्य पूर्ण वैज्ञानिक युग में हमारा कर्तव्य होना चाहिये कि हम अपने विज्ञान की मौलिकता से जगत को चमत्कृत करें, न कि पाश्चात्य अन्धानुकरण कर जन-साधारण के अर्थ शोषण में सहयोगी बनें।

(पृष्ठ ६१३ का शेष)

जब राजा युधिष्ठिर राज्य करते थे उस समय सप्तऋषि मघा नक्षत्र में थे। युधिष्ठिर के राज्य के बाद से अब तक जहां सप्तऋषि पहुंचे हैं, गणित करने से लगभग ५२०० वर्ष होते हैं। कृष्णात्रेय और अग्निवेश का युधिष्ठिर के राज्य के समय से पूर्व होना उपरोक्त वाक्यों से सिद्ध हुआ। इससें यह भी सिद्ध हुआ कि अग्निवेश संहिता ५२०० वर्ष से पूर्व की बनी हुई है।

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले और स्थाई गुणकर

मार्तन्ड आयुर्वेदिक-इंजेक्शन्स्

उच्च शिक्षित विदेशी वैज्ञानिकों की देख-रेख में, आधुनिक वैज्ञानिक मशीनों से पूर्ण सर्वसाधन सम्पन्न लैबोरेट्री में वैज्ञानिक तरीके पर बने, इन क्षार रहित आयुर्वेदिक इंजेक्शनों के चमत्कार ने वैद्यों में पुनः एक आशा की लहर ला दी है। हमारे इंजेक्शनों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगायें।

आविष्कर्ता एवं निर्माताः—मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत (S.S. Rly) यू.पी.

(रिसर्च इंस्टीच्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स)

नि. भा. आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद्, हरिद्वार

(गताङ्क पृष्ठ ५६१ से आगे)

परिषद् का छठा दिवस

विपाक पर विचार

ता० २५-५-५३

वैद्य श्री मदन गोपाल जी ने कहा—अन्न या औषधि-द्रव्य शरीर में जाकर आरंभ से शोषण होने तक की क्रिया को **विपाक** कहते हैं। अष्टाङ्ग संग्रह में ६ रसों को कोष्ठाग्नि या जठराग्नि द्वारा तीन रसों में परिणत करनेवाली प्रक्रिया को **विपाक** कहा है। कायाग्नि द्वारा निष्पन्न होनेवाली आहार और ओषधि-द्रव्यों की परिणाम क्रिया की निष्ठा परिसमाप्ति तक **विपाक** कहा जाता है—कहा भी है 'विपाकः कर्म निष्ठया'। विपाक के क्षेत्र केवल आहार को या औषध-द्रव्य के रूप रसादि को दूसरे रूप रसादि में बदल देने से ही समाप्त नहीं होता, परन्तु वातादि दोषों की वृद्धि और हानि मल और मूत्र पर प्रभाव, शुक्र पर प्रभाव और इसके मध्य की रस, रक्त, मांस, मेदा आदि पूर्व-पूर्व धातुओं के उत्तरोत्तर परिणाम के हेतु भूत कायाग्नि के व्यापार को **विपाक** कहते हैं। छहों रसों के पाक की अवस्था में एक रस को दूसरे रस के रूप में परिणत होने के हेतु जठराग्नि की क्रिया को **विपाक** कहते हैं। मधुर रस का मधुर रस के रूप में जो परिणाम होता है, उसे विपाक नहीं कहना चाहिये। क्योंकि "जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति–'रसान्तरम्'।" में 'रसान्तरम्' पद पूर्वोक्त अर्थ का समर्थक है। गुरुपाक और लघुपाक में परिणाम को विपाक कहते हैं। शास्त्रीय चारों लक्षण मधुर आदि त्रिविध विपाक में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

भार देखने के लिए रक्त को माध्यम मान कर चलना चाहिये यह बात मैं पहले कह चुका हूं। आधुनिक डाक्टर हाइड्रोजन या जल को माध्यम मानते हैं। रस को माध्यम इसलिये नहीं मान सकते कि उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। रक्त में यह नहीं होते, इस लिये रक्त को माध्यम मानना चाहिये। यह मेरा मत है। जल को माध्यम मानने में निघण्टु में वहुत परिवर्तन करना पड़ेगा। रक्त को माध्यम मानने से निघण्टु में कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ेगा। लवण रस का शोषण या ग्रहण शरीर में तत्काल हो जाता है, यह प्रत्यक्ष है। कालरा में जब कभी लवण का इञ्जेक्शन दिया जाता है तत्काल ही उसका शरीर में विलयन हो जाता है। शोषण होना और विलयन होना एक ही बात है। मधुर रस का शोषण शरीर में नहीं होता या बहुत कम होता है। मोनो शर्करा या सूक्ष्म

शर्करा का ही शोषण होता है, स्थूल शर्करा का शोषण नहीं होता। अम्ल का सेल के वाह्यावरण के भीतर प्रविष्ट का ही शोषण होता है। प्रोटीन का शोषण अमाइनो ऐसिड के रूप में होता है। कटु-तिक्त-कषाय का परिपाक कैसा होता है इसका आधुनिक शास्त्र में वर्णन नहीं है किन्तु सिद्धांत के रूप में उसका भी शोषण होता है। एमिनो एसिड का परिवर्तन या प्रोटीन का परिवर्तन अम्ल नहीं होता। दाल के घटक का परिणाम अम्ल नहीं होता। पाक को 'विपाक' का प्रयोग क्यों माना गया ? इसके लिये हमारा यह समाधान है कि एक रस जहां दूसरे रस के रूप में परिणत होता है वहीं विपाक माना जाता है। शुण्ठी स्वयं कटु है किन्तु शास्त्रकार ने उसका विपाक मधुर माना है। दोष पर विपाक आदि चार प्रकार के विपाक शास्त्रों में बताये हैं, जो 'निबन्ध-संग्रह' के ५८ वें पृष्ठ पर लिखें हैं वहीं देख लें।

शुण्ठी का मधुर विपाक शास्त्रकारों ने लिखा है; किन्तु उसके विरुद्ध उसे 'कफ विबन्ध नुत्' कहा है। यह मधुर पाक के विरुद्ध हैं, क्योंकि मधुर रस कफ बढ़ाता है। पिप्पली के विषय में भी ऐसी ही बात है अर्थात् उसके भी शास्त्रोक्त गुण विपाक से नहीं मिलते।

श्री पं० विश्वनाथ जी द्विवेदी ने कहा—हमारे शास्त्रों में कई प्रकार के विपाक हैं। १४ अग्नियों का हमारे शास्त्रों में वर्णन है। पाक में सारे धातुओं का परिणाम आता है, विपाक में केवल आहार परिणाम ही आता है। शरीर में जठराग्नि और शरीराग्नि दो ही अग्नि मानी हैं। विपाक शब्द केवल जाठराग्नि से होनेवाले परिणाम को कहा जाता है।

'जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् ।'

इत्यादि श्लोक इसमें प्रमाण हैं। आहार का सबसे पहला परिणाम रस होता है। वह संगृहीत होकर शिराओं द्वारा हृदय में पहुंचता है। रस जो मधुर और फेन वाला होता है उसे आँतें शोषण करती हैं और स्नेह युक्त होकर भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर उनका भी शोषण हो जाता है। रस से रक्त बनता है। रक्त में भी दो प्रतिशत शर्करा रहती है। आपके आचार्यों ने इसे अच्छी तरह समझा है। 'अनुष्णशीतं मधुरम्' रस को ऐसा कहा है। रस दो प्रकार का होता है:—**अच्छ रस (पतला रस)** और **गाढ़ा रस**। गाढ़ा रस श्लेष्मल कला के पास पहुंच जाता है। दूसरा रूप श्लेष्म की रक्षा करने के लिए बनता है। विपाक हो जानें पर रस का रक्त में परिणत होने का शास्त्रीय प्रमाण मिलता है। मांस में रस मिलने का प्रमाण मिलता है, 'शीतमधुराः'। वारिचर के लिये लिखा है कि 'गुरूष्ण मधुराः'। जो क्रिया सन्देह के रूप में सामने आती है उसमें वर्णन भेद—कहीं किसी प्रकार का और कहीं किसी भिन्न प्रकार का वर्णन मिलता है। पीपल (पिप्पली) ने जहां रस के रूप में कार्य किया वहां उसका विपाक मधुर होता है। क्रिया के द्योतक, रस के द्योतक और विपाक के द्योतक इस प्रकार शुण्ठी

भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मों के द्योतक होते हैं। विपाक केवल जठराग्नि से सम्बन्ध रखता है। पाक धात्वादि पाक को कहते हैं। मधुर-कषाय आदि शब्द जहां मांस-रक्त आदि के वर्णन में आते हैं वहां पाक की क्रिया है। जहां आहार-रस में परिणत रस धातु के लिये आते हैं वहां विपाक के लिये आते हैं।

रसों का परिणाम शरीर पर सद्यः होता है किन्तु विपाक का सद्यः नहीं होता। रक्त में स्निग्धता, द्रुतिराग, स्कन्दनता, लघुता इत्यादि गुण रहते हैं। इतनी चीजें रहते हुए भी रक्त में भार का परिवर्तन नहीं होता यह बात मानने की नहीं है। रक्त में वात, पित्त और कफ की स्थिति मानी है, जो रक्त की स्थिति को भिन्न-भिन्न बताती है आज कल के वैज्ञानिक इसे सुनकर हँसेगे। नाड़ी को देखते हैं, किन्तु वात-पित्त कफ की कल्पना उसमें वैद्य करते हैं। इससे अधिक रक्त की त्रिविध कल्पना में क्यां प्रमाण हो सकता है ? सुश्रुत ने रक्त, पित्त, कफ इन दोषों के लिये पृथक्-पृथक् प्रणालियों का वर्णन किया है। वात दुष्ट, पित्त दुष्ट और कफ दुष्ट रक्त के अलग-अलग वर्णन किये हैं। रक्त हृदय से धमनियों के द्वारा यकृत् और शिराओं में जाकर भिन्न-भिन्न स्थलों में सामयिक रूप से बदलता है। वात-संस्थान में वात को पोषण करने के लिये वातानुयायी और पित्तस्थान में पित्तकोष्ठ को आप्यायन करने की शक्ति होती है। आरम्भ से अन्त तक पाक और विपाक की क्रियाओं में भेद है। भार के लिये रक्त को माध्यम मांनना ठीक नहीं। रक्त से कम भारवाले पदार्थ लसीका, वसा आदि की दृष्टि से रक्त को भार का माध्यम कैसे मान सकते हैं ? इसलिये जल को ही माध्यम मानना चाहियें, रक्त को नहीं।

श्री पं० शिवदत्त जी शुक्ल ने कहा—चरक संहिता में विपाक का वर्णन है। ग्रहणी चिकित्सा में 'प्रपाक' शब्द आया है, प्रपाक शब्द का अर्थ—औदर्य-अग्नि से होने वाला पाक—ऐसा किया है। विपाक शब्द का अर्थ विशिष्ट पाक होता है। धात्वग्नि पञ्चभूताग्नि से होने वाला विपाक कहाता है।

श्री यादव जी महाराज ने कहा—पाक शब्द से पाचन क्रिया-सामान्य का बोध होता है ऐसा मैं समझता हूँ। 'अवस्था पाक' शब्द से भिन्न-भिन्न स्थानों में होने वाला आहार का पाक अर्थ समझना चाहिये। 'विपाक' शब्द रस आदि धातुओं के पाक का बोधक है। 'धातु-पाक को विपाक समझना भी ठीक नहीं। 'प्रपाक' शब्द का अर्थ प्रथम पाक है।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ जी ने कहा—शरीर का सारा आधार अन्न है। अन्न से ही शरीर में वृद्धि आदि होती हैं। शास्त्र में 'पचत्यग्निर्यथास्थाल्याम्' से सबसे पहले

अन्न का पाक बताया है। ६ रसों के पाक से होने वाले तीन रस के रूप को इस श्लोक की व्याख्या में टीका कारों ने आमाशय को स्थाली और उसके नीचे अग्न्याशय को भौमाग्नि जैसा माना है। यह बात समझ में आने की नहीं है। पीतल आदि धातुओं के पात्र भी दो-चार साल में जल जाते हैं। फिर मांस की झिल्ली जैसे पदार्थ से बना हुआ आमाशय स्थाली का कार्य नहीं कर सकता। जाठराग्नि से होने वाले पाक को ही यदि पाक कहते हैं, तो पाक जिसका न हो ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता।

'पचत्यग्निर्यथा स्थाल्याम्' इत्यादि श्लोकोक्त अर्थ से पाक का वर्णन होता है। इसके बाद छहों रसों का शरीर में शोषण होता है। छहों रसों के पाक से तीन रस बनते हैं। कटु, तिक्त, कषाय का पाक कटु होता है। पिप्पली द्रव्य कुछ अपने रूप से, कुछ रस से, कुछ विपाक से, कुछ प्रभाव से कर्म करता है। 'दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्।' भुक्त द्रव्य से दोष की उत्पत्ति कैसे होती है 'फेनभूतमुदीर्यते' यहां मधुर, अम्ल आदि रसों के पाक से अभिप्राय नहीं है। प्रपाक से मधुर रस फेनभूत पैदा होता है—कफोत्पत्ति ही 'फेन भूतम्' पद से बतायी है। कफ के लक्षणों से जो कफ कहा है वह फेनभूत कफ नहीं है। प्रथम प्रपाक से कफ, पित्त और श्लेष्मा को उत्पन्न करने वाले पाक को 'अवस्था पाक' कहा है प्रथम पाक से फेनभूत श्लेष्मा पैदा होता है 'परन्तु पच्यमानस्य' इत्यादि पद्य से अवस्थापाक का वर्णन किया है। रस प्रपाक को रसना से नहीं देख सकते। शरीर के अन्दर शोषण उसी का हो सकता है, जिसका शरीर में विलयन होता है। मधुर तो मधुर ही रहता है। लवण का विलयन होता है। 'परन्तु पच्यमानस्य' इससे वर्णित अवस्था पाक शुरू होता है। लालास्राव से और कई स्रावों से 'रसपाक' आरम्भ होता है। अवस्था-पाक की क्रिया से 'अच्छ-पित्तमुदीर्यते' अच्छ पित्त पैदा होता है।

इस पर **श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी ने प्रश्न किया**—'अच्छपित्तमुदीर्यते' से शरीर को पोषण करने वाले पित्त से मतलब नहीं है। अच्छ पित्त कहां से आता है? पाकस्थली अथवा यकृत् या उसकी झिल्लियों से?

श्री कविराज जी ने उत्तर दिया कि 'दोष धातुमलमूलं ही शरीरम्' इसमें दोष, धातु और मल की उत्पत्ति कहाँ-कहाँ होती है; इसका क्रम निर्धारण करते हैं। पाक—अन्न का पाक—इससे अन्न रस का और मल का विभाग हो कर दोषों की उत्पत्ति होती है। पाक के बाद अवस्था पाक आरम्भ होता है। अवस्था पाक में तीन प्रकार का पाक-मधुर, अम्ल, कटु रूप से बताया है। पाक, प्रपाक और विपाक तीन हैं। अन्न पाक का वर्णन संक्षिप्त रूप से 'पचत्यग्निर्यथा स्थाल्याम्' तक होता है। अन्न का रस शरीर में

शोषित होता है--मल शरीर में शोषित नहीं होता। जठराग्नि द्वारा महास्रोतस में जो पाक होता है, उसमें रस का मल विभाग होकर पाक-क्रिया समाप्त हो जाती है। दोष-धातु और मल की उत्पत्ति कहाँ से होती है? इसके लिये प्रपाक का आरम्भ होता है। वाह्यपित्त की और श्लेष्मा की उत्पत्ति कैसे होती है? इसका वर्णन क्लेदक श्लेष्मा और बोधक श्लेष्मा के प्रसङ्ग में है। इसके बाद द्वितीय अवस्था पाक शुरू करते हैं:—

'परन्तु पच्यमानस्य' इत्यादि पद्य से द्वितीय अवस्था पाक शुरू होते ही अम्ल रस आरम्भ हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? भुक्त अन्न का पित्त-द्रव्य अलग हो जाता है— 'पित्तमच्छमुदीर्यते।' अच्छ पित्त अलग होने के बाद रसाग्नि एवं रक्ताग्नि द्वारा धातु-पाक आरम्भ होता है। यह तृतीय अवस्था पाक है। क्षुद्रान्त्र में पाक होते-होते वायु के अंश को वृहदन्त्र में कटु रस पैदा करता है, उसको तृतीय अवस्था-पाक कहते हैं। वायु पैदा होने से अपान वायु नहीं समझना चाहिये, वह सड़न से पैदा होता है। इसको पाकान्तर की आवश्यकता नहीं है। यदि वस्तिस्थान में अशुद्ध वायु पैदा हो गया, तो सारे शरीर में वायु अशुद्ध हो जायगा इसीलिये वस्ति प्रकरण में.....आदि रोगों में वस्ति की प्रशंसा की है। धातु की उत्पत्ति के लिये "अन्नमिष्टं हि" (च० चि० अ० १५) इद्रिय-घ्राणादि प्राण की उत्पत्ति और पोषण के लियें अन्न ही एक मात्र साधन है। 'देहे प्रीणातीन्द्रियार्थान्' भुक्त द्रव्य जो घ्राणादि का उपादान है, उनका पोषक है।

पञ्च महाभूत का पोषण भी भुक्त अन्न से ही होता है। आहार पाञ्चभौतिक द्रव्य है, उसके अपने-अपने अंश से शरीर के भीतर पञ्चमहाभूतों के अवयवों का पोषण होता है।

क्रमशः

* * *

कुमाऊं शहद

शुद्ध मधु की आवश्यकता होने पर कुमाऊँ शहद ही खरीद करें यह मधु कुमाऊँ की तराईयों से इकट्ठा कराया गया शुद्ध मधु है।

एक पौंड के एयर टाइट पैकिंग में तथा चार गैलन के सफ़ेद ड्रम में मजबूत पैकिंग के साथ रेलवे जिम्मेदारी पर भेजा जाता है। वैद्यों तथा फार्मेसियों के लिये भाव में खास रियायत दी गई है।

गुलाबराय जानकी प्रसाद
ठेकेदार सरकारी जंगलात, हल्द्वानी,
जि० नैनीताल (उत्तर प्रदेश)।

स्थायी-समिति का कार्य-विवरण

(पृष्ठ ५६४ का शेष)

तथा आयुर्वेद विश्वविद्यालय कोष पर जो व्यय हो रहा है उसे प्रतिवर्ष व्यय में नहीं दिखाया जाता और आगे से आगे एकीकृत किया जा रहा है। स्थायी-समिति ने अपने गताधिवेशन में इसी व्यवस्था को स्वीकार किया है और प्रस्ताव नियमित रूप से विद्यमान है। अब आडीटर को तत्सम्बन्धी कोई आपत्ति नहीं है।

तदुपरान्त गताधिवेशन का कार्य-विवरण सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२. **शोक प्रस्ताव**–अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी का यह सम्मिलित अधिवेशन रा० सा० वैद्यराज श्री तनसुख जी व्यास (ब्यावर), नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के भूतपूर्व अध्यक्ष वैद्य श्री पुरुषोत्तम शास्त्री हिर्लेकर, (अमरावती), वैद्य श्री रविशंकर जटाशंकर त्रिवेदी, (अहमदाबाद), वैद्य श्री उत्तमचन्द, (पटियाला), वैद्य श्री शिवशंकर बाबा भाई अचलजी, (बम्बई), वैद्य श्री अनन्तराम लक्ष्मीशंकर (भावनगर), वैद्य श्री राधेवल्लभ (सतना), तथा वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद (बिवार-हमीरपुर), के असामयिक देहावसान पर शोक प्रकट करता है तथा उनकी दिवंगत आत्माओं की सद्गति एवं उनके शोकाकुल परिवारों के लिये शान्ति की भगवान श्री धन्वन्तरि से कामना करता है।

सभी सदस्यों ने एक मिनट तक मौन धारण करके तथा खड़े होकर श्री सभापति जी द्वारा प्रस्तावित यह प्रस्ताव स्वीकार किया।

३. सदस्यता एवं सम्बद्धता स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ और निम्नलिखित सम्बद्धतायें एवं सदस्यतायें स्वीकार हुईं।

(क) प्रान्तीय शाखायें—

१. आसाम राज्य आयुर्वेद सम्मेलन, गौहाटी। २. निखिल कर्नाटक आयुर्वेद सम्मेलन, बीजापुर। ३. निखिल उत्कल वैद्य सम्मेलन, पुरी। ४. उत्तर-प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन, मेरठ। ५. पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन, जालन्धर। ६. तामिलनाड आयुर्वेद महामण्डल, टेपाकुलम। ७. सौराष्ट्र वैद्य सभा, राजकोट। ८. हैद्राबाद राज्य आयुर्वेद महामण्डल, हैद्राबाद। ९. पटियाला राज्य संघ वैद्य मण्डल, सरहिन्द। १०. मध्यभारत आयुर्वेद महामण्डल, इंदौर। ११. बंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद महामण्डल, कलकत्ता। १२. विन्ध्य-प्रदेश आयुर्वेद प्रचारिणी सभा, रीवां। १३. आल केरल आयुर्वैदिक कांग्रेस, कोट्टाकल (दक्षिण मालाबार)। १४. श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा, देहली। तथा १५. बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर।

(ख) सम्बद्ध संस्थायें—

१. वैद्य सभा, जम्मू। २. अहमदाबाद वैद्य सभा, अहमदाबाद।

(ग) विद्यापीठ संबद्ध संस्थायें—

१. आयुर्वेदिक विद्यास्थान, जामीकुन्ता, करीमनगर। २. श्री शारदा आयुर्वेद कालेज़, जीन्द। ३. श्री राधाकृष्ण विद्यामन्दिर, सिविनी। ४. श्री नागिया आयुर्वेद कन्या महाविद्यालय, देहली। ५. श्री सत्येश्वर आयुर्वेद पाठशाला, वीजापुर।

(घ) आजीवन सदस्यता—

१. श्री सुन्दरलाल स्वामी, जगराओं, लुधियाना। २. श्री एन. एस. वरियार, बंगलौर। ३. श्री वी. एम. राजाबाथर, बंगलौर। ४. श्री आर. एम. हेगडे, बंगलौर। ५. श्री आर. शेषम्, बंगलौर। ६. श्री टी. एस. पंडित, बंगलौर। ७. श्री पं० एच. रामशास्त्री, बंगलौर। ८. श्री हरप्रसाद भाई शंकर जोशी, जामनगर। ९. श्री अन्तुभाई वैद्य, बम्बई। तथा १०. श्री पन्नालाल वार्ष्णेय, अलीगढ़।

(ङ) स्थायी समिति के गताधिवेशन के पश्चात् ता० १०-११-५३ तक प्रदत्त शुल्क सभी मान्य सदस्य।

४. **सायन आयुर्वेद रुग्णालय, बम्बई,** के ट्रस्टियों ने आयुर्वेद के लिए २० लाख रुपये की सम्पत्ति प्रदान की है, किन्तु उक्त रुग्णालय में आयुर्वेद के स्थान पर ऐलोपैथी चलाई जा रही है जिससे आयुर्वेद के नाम पर ऐलोपैथी फलफूल रही है और आयुर्वेद के हितों को हानि पहुंच रही है। स्थायी समिति का यह अधिवेशन इस स्थिति पर खेद प्रकट करता है तथा निश्चय करता है कि इस विषय को अपने विचाराधीन रखे।

स्थिति की गम्भीरता को विचार में रखते हुए स्थायी समिति का यह अधिवेशन श्री महासम्मेलन प्रधानमन्त्री से अनुरोध करता है कि वे इस पर निरन्तर दृष्टि रक्खें और जिस समय भी उपयुक्त समझे अपेक्षित कार्यवाही के लिये इस विषय को स्थायी समिति के समक्ष उपस्थित करें।

साथ ही स्थायी समिति का यह अधिवेशन यह जानकर सन्तोष प्रकट करता है कि बम्बई वैद्य सभा ने इस विषय को अपने हाथ में ले लिया है और उक्त वैद्य सभा को एतदर्थ पूर्ण सहयोग का आश्वासन देता है।

५. बम्बई तथा मद्रास की सरकारों ने आसव अरिष्टों को मद्य मानकर उनपर जो कर लगाया है उस पर स्थायी समिति का यह अधिवेशन खेद प्रकट करता है क्योंकि आसव अरिष्टें मद्य नहीं है। अतएव निश्चय किया जाता है कि उक्त सरकारों को सम्पूर्ण

स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए प्रार्थना की जाय कि आसव और अरिष्टों पर कर न लगाया जाय।

६. स्थायी समिति का यह अधिवेशन भारत के केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में आयुर्वेद अनुसंधान के लिये जो प्रयत्न हो रहे हैं उनके अखिल भारतीय सामञ्जस्य के लिये एक अनुसन्धान निर्देशक समिति का निर्माण करता है जिसके निम्न लिखित सदस्य होंगेः–

१. श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई। २. श्री पं० हरिनारायण जी चतुर्वेदी, पटना। ३. श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग। ४. श्री पं० हरिदत जी शास्त्री, बम्बई। ५. श्री कविराज केशवप्रसाद आत्रेय, देहली।

यह निश्चय हुआ कि इस समिति को केन्द्रीय स्तर पर अपने में दो अन्य सदस्यों को तथा प्रत्येक राज्य में जहां-जहां कि अनुसंधान कार्य हो रहा हो वहां वहां के दो सदस्यों को उस राज्य मं कार्य के सम्बन्ध में सम्मिलित करने का अधिकार होगा।

७. (क) विहार का विषय उपस्थित हुआ। कुछ विचार विमर्श के अनन्तर सभा ने वैद्य श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर, के प्रातिनिध्य को स्वीकार किया तथा निश्चय हुआ कि बिहार का विषय अब निपटा हुआ समझा जाय और इसे महासम्मेलन के विचारान्तर्गत न रखा जाय।

(ख) उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का विषय उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि जब तक इन्दौर सम्मेलन पर बनाई गई समिति उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन के विषय में अपना निर्णय नहीं दे देती और उत्तर-प्रदेश की अदालतों में चले हुए अभियोग समाप्त नहीं हो जाते तब तक कार्य सम्वाहन के लिए एक उत्तर प्रदेशीय कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन का निर्माण किया जाय जिसका चुनाव वैद्य श्री गुरुदत्त जी, देहली को निर्वाचनाध्यक्ष Returning officer बनाकर और उन्हें श्री प्रधानमन्त्री तथा वैद्य श्री केशवप्रसाद जी आत्रेय को सलाहकार के रूप में देकर तीन महीने की अवधि के अन्दर अन्दर करा दिया जाय। चुनाव के नियमों के सम्बन्ध में इन्हीं तीन सदस्यों को सर्वाधिकार होगा। चुनाव में वही वैद्य भाग ले सकेंगे जो राज्य के वैद्य सम्मेलन के सदस्य होते हुए रजिस्टर्ड वैद्य भी होंगे।

उपर्युक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ परन्तु वैद्य श्री जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग, तथा वैद्य श्री दयानिधि जी शर्मा, मेरठ, तटस्थ रहे।

निश्चय हुआ कि उपर्युक्त समिति के कार्य संचालन के लिये ५०० रु० अग्रिम दिये जांय जो पश्चात् आये हुए सदस्यता शुल्क की धनराशि में से काट लिये जांय। सदस्यता शुल्क आदि का पूर्ण अधिकार इसी समिति को दिया जाय।

स्थायी समिति का यह अधिवेशन आशा रखता है कि उत्तर प्रदेश का वैद्य समाज इस कार्य में पूर्ण सहयोग देगा।

८. "श्री प्रधान जी ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि गत भाद्रपद शुक्ल ८, तदनुसार ता० १६ सितम्बर १९५३ को पुण्यधाम प्रयाग निवासी आयुर्वेद-पंचानन श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, की ७५ वीं वर्षगांठ के अवसर पर कई आयुर्वेदिक तथा साहित्यिक संस्थाओं ने श्री शुक्ल जी महाराज का हीरक जयन्ती समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया। श्री शुक्ल जी महाराज महासम्मेलन के प्रमुख प्रवर्तकों में से हैं। आयुर्वेद तथा आयुर्वेद महासम्मेलन की उनकी सेवाओं से कौन अपरिचित है? अतएव स्थायी समिति का यह अधिवेशन श्री शुक्ल जी महाराज के प्रति अपनी श्रद्धांजलि सादर समर्पित करता हुआ भगवान श्री धन्वन्तरि से प्रार्थना करता है कि श्री शुक्ल जी महाराज भारतीय वैद्य समाज के मध्य में न्यूनातिन्यून ऐसी २५ वर्षगांठें मनाते हुए हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें।"

सदस्यों ने हर्ष-ध्वनि से श्री शुक्ल जी महाराज का अभिनन्दन करते हुए यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

९- **३६ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन** के लिये निमन्त्रणों का विषय उपस्थित हुआ। कार्यालय की ओर से बताया गया कि आगामी दिसम्बर मास की अन्तिम तिथियों में उक्त सम्मेलन करने के लिये क्रमशः १—आल केरल आयुर्वैदिक कांग्रेस, कोटाकल, २—श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा, देहली, तथा ३—श्री बीकानेर वैद्यसभा, बीकानेर, के निमन्त्रण प्राप्त हुए हैं। तदुपरान्त निमन्त्रणदाताओं की ओर से निम्न प्रकार निमन्त्रण उपस्थित किये गए।

श्री डा० वाई. पार्थनारायण जी पण्डित, बंगलौर, प्रधान मैसूर स्टेट अयुर्वैदिक कांग्रेस, ने आल केरल आयुर्वैदिक कांग्रेस की ओर से निमन्त्रण उपस्थित करते हुए कहा कि कई वर्षों से दक्षिण में कोई सम्मेलन नहीं हुआ है, जिससे अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन दक्षिण से दूर होता जा रहा है, इससे संस्था के अखिल भारतीय स्वरूप को ठेस पहुंचती है। संस्था को इस ठेस से बचाने के लिये ही वे इन्दौर सम्मेलन पर गये थे और इसीलिये हवाई जहाज की उड़ान करके वे अब यहां पहुंचे हैं। दक्षिण के अन्य चार सम्मेलन अर्थात् कर्नाटक, मैसूर, तामिलनाड एवं आन्ध्र आयुर्वेद सम्मेलन, इस निमन्त्रण के पृष्ठ-पोषक हैं। हम दक्षिणवासी वर्ष में एक बार यात्रा के लिये उत्तर भारत में आते हैं और ऐसे ही हम चाहते हैं कि हमारे उत्तरवासी वैद्यबन्धु भी दक्षिण में अवश्य पधारें ताकि हमें भी उनके स्वागत का अवसर मिल सके इत्यादि, इत्यादि।

कविराज श्री कैलाशचन्द्र जी अग्रवाल, प्रधान, श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा, देहली, ने अपनी सभा की ओर से निमन्त्रण उपस्थित करते हुए कहा कि आयुर्वेद की लड़ाई वास्तव में केन्द्रीय सरकार से है जो कि तभी जीती जा सकती है यदि देहली में बार-बार सम्मेलन किया जाय। उन्होंने यह भी कहा कि आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बी कालेज, देहली, जिसको कि यहां की सरकार एशिया का एक आदर्श कालिज बनाना चाहती है के उत्थान के लिये भी यह आवश्यक है कि देहली में आगामी सम्मेलन किया जाय। सम्मेलन के आयोजन के विषय में तिब्बिया कालिज के अधिकारियों नें हमें पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया है, इत्यादि, इत्यादि।

बीकानेर वैद्यसभा की ओर से निमन्त्रण उपस्थित करते हुए वैद्य श्री ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री, बीकानेर, ने कहा कि रा० सा० वैद्यराज श्री तनसुख जी व्यास के असामयिक निधन से जो ब्यावर में सम्मेलन नहीं हो सका वह राजस्थान के माथे पर कलंक का टीका है जिसे वे लगवाना नहीं चाहते, अतएव बीकानेर वैद्यसभा ने यह निमन्त्रण उपस्थित किया है और हम आशा रखते हैं कि इसे स्वीकार किया जायगा। उन्होंने यह भी बताया कि श्री स्वामी केवलराम जी, बीकानेर, ने इस विषय में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया है, इत्यादि, इत्यादि।

तदुपरान्त श्री स्वामी चेतनानन्द जी ने आल केरल आयुर्वेदिक कांग्रेस के निमन्त्रण तथा श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा ने श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा के निमन्त्रण का क्रमशः समर्थन किया। तत्पश्चात् दक्षिण तथा देहली के निमन्त्रणों की स्थिति पर विचार करके बीकानेर वैद्यसभा के प्रतिनिधि ने अपना निमन्त्रण वापिस लिया।

तदनन्तर श्री प्रधान जी ने कहा कि अब दो निमन्त्रण सभा के समक्ष विद्यमान हैं। इन दोनों के पक्ष में एक-एक भाषण होना उचित होगा। अपने निमन्त्रण के पक्ष में श्री डा० वाई. पार्थनारायण पंडित ने कहा कि उपस्थित सदस्यों का ध्यान मैं उस प्रतिज्ञा की ओर आकर्षित कराना चाहता हूं जो उन्होंने मेरे साथ इंदौर सम्मेलन पर की थी। उन्होंने यह भी कहा कि यह समझते हुए कि हमारा निमन्त्रण एक प्रकार से पहिले से ही स्वीकार है हमने बहुत सी तैयारियां भी कर ली हैं, मद्रास राज्य के गवर्नर ने अधिवेशन का उद्घाटन अपने कर-कमलों द्वारा करना स्वीकार भी कर लिया है। जहां तक आयुर्वेद की लड़ाई का सम्बन्ध है इसे राज्यवार जीता जाय तो केन्द्र विवशतया हमारे पक्ष में आ जायगा, इत्यादि इत्यादि।

श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा के पक्ष में भाषण देते हुए कविराज श्री केशवप्रसाद जी आत्रेय ने कहा कि दूर के सम्मेलनों की आवाज़ देहली तक कम पहुंचती है अतएव देहली में ही सम्मेलन करना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मद्रास के गवर्नर

कोटाकल के अधिवेशन का उद्घाटन करने आयेंगे तो हम देहली के अधिवेशन का उद्घाटन श्री राष्ट्रपति जी द्वारा करायेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि श्रीमान् अध्यक्ष जी की आज्ञा का पालन करने के ध्येय से ही हमने देहली का निमन्त्रण दिया है और आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप इसे स्वीकार करें। वैसे यदि आप अन्य स्थान पर ही अधिवेशन करना उचित समझें तो उसमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु हमारे विचार में देहली ही अधिवेशन होना आवश्यक है, इत्यादि इत्यादि।

तदुपरान्त दोनों निमन्त्रणों के पक्ष विपक्ष में वोटिंग किया गया। आल केरल आयुर्वैदिक कांग्रेस के पक्ष में ५८ और श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा, देहली के पक्ष में २६ मत प्राप्त हुए। इस मतगणना के फलस्वरूप निश्चय हुआ कि ३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन को कोटाकल, दक्षिण भारत, में सम्पन्न करने के लिए आल केरल आयुर्वैदिक कांग्रेस का निमन्त्रण स्वीकार किया जाय। वोटिंग के पश्चात् कविराज श्री कैलाशचन्द्र जी, प्रधान श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा, ने अपने स्थान से उठकर श्री डा० वाई. पार्थनारायण पण्डित से हाथ मिलाया। कविराज श्री केशव प्रसाद जी आत्रेय ने उनके निमन्त्रण की स्वीकृति पर हर्ष प्रकट किया और दिल्ली प्रांत की ओर से पूर्ण सहयोग का आश्वासन देते हुए प्रसन्नता प्रकट की और महासम्मेलन की सफलता की कामना की।

१०– ३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा तदन्तर्गत आयुर्वेद शिक्षा (विद्यापीठ) सम्मेलन के प्रधान महोदयों के निर्वाचन के सम्बन्ध में मतदाताओं की ओर से प्राप्त मतों की गणना का विषय उपस्थित हुआ। इस सम्बन्ध में वैद्य श्री गुरुदत्त जी तथा कविराज श्री आशुतोष जी मजुमदार ने कहा कि इस बार मतपत्रक सम्बन्धो लिफाफे खुल गये हैं और बहुत से सदस्यों को मतपत्रक नहीं मिले।

चुनाव सम्बन्धी एक आपत्ति नागपुर से वैद्यराज श्री गोवर्द्धन शर्मा छांगाणी, वैद्य श्री गुलराज मिश्र, वैद्य श्री केदारनाथ शर्मा पुरोहित तथा वैद्य श्री शिवकरण शर्मा छांगाणी की ओर से भी प्राप्त थी जिसका सारांश यह था कि जब तक वार्षिक अधिवेशन के स्थान तथा तिथियों का निश्चय न हो जाय तब तक सभापति का चुनाव वैधानिक नहीं हैं।

इस विषय पर तीसरी आपत्ति देहली के ३६ सदस्यों के हस्ताक्षरों से, जिनमें से कइयों के नाम सर्वथा अस्पष्ट हैं, श्री प्रधानमंत्री जी के नाम एक पत्र ता० ४-११-५३ द्वारा की गई थी जो कि श्री प्रधानमन्त्री जी को प्रातः १० बजकर ३० मिनट पर दिया गया था। इस पत्र में लिखा गया था कि "कुछ सदस्यों को यह मतपत्र नहीं मिले केवल १० तारीख के स्थायी समिति के निमन्त्रण का पत्र मिला।"

श्री प्रधान जी ने कहा कि इन आपत्तियों की जांच के लिये कुछ समय चाहिये, अतएव एतदर्थ वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ, श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, तथा श्री पं० नानकचन्द्र जी द्वारा संगठित एक समिति नियुक्त कर दी जाय। रिकार्ड के निरीक्षण के अनन्तर यदि यह समिति इस परिणाम पर पहुंचे कि चुनाव की व्यवस्था में गत वर्षों से कोई विभिन्नता नहीं हुई तो मतगणना करके कार्य-विवरण के साथ ही गणना का फल घोषित कर दे। यदि समिति के तीनों सदस्य एक साथ उपस्थित न हो सकें तो शेष दो सदस्य यह गणना करवा दें और सहायतार्थ आवश्यकतानुसार अन्य सहकारी साथ ले लें।

श्री प्रधान जी के इस सुझाव को सभा ने स्वीकार किया।

विशेष :—उक्त समिति के कार्य-विवरण तथा मतगणना परिणाम इसी कार्य-विवरण के अन्त में दिये गये हैं।

तदुपरान्त श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने कहा कि विद्यापीठ का कार्य श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी की अध्यक्षता में सम्पन्न किया जाय। तत्पश्चात् वैद्य श्री हरिदत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में विद्यापीठीय विषयों पर विचार प्रारम्भ हुआ।

११. विद्यापीठ कार्य-कारिणी समिति के गताधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया। श्री जगदीशप्रसाद जी ने कहा कि पुनः संशोधन के बारे में कार्यवाही में पूरा विवरण नहीं लिखा गया। श्री प्रधान जी ने नोट कराया कि उस सभा में उपस्थित अन्य सदस्यों से लिखित रूप में पूछ कर निर्णय किया जाय। तदुपरान्त कार्यवाही सर्वसम्मति से स्वीकार हुई।

१२. परिशिष्ट परीक्षाफल का विषय उपस्थित हुआ तथा कुछ विचार-विमर्श के अनन्तर परीक्षाफल स्वीकार हुआ। श्री जगदीशप्रसाद जी ने इस स्वीकृति का विरोध करते हुए कहा कि मौखिक में दो प्रश्नपत्र गलत गये हैं, यद्यपि देहली केन्द्र में उन्होंने उन्हें ठीक कर दिया था तो भी इस विषय में जब तक उनका पूर्ण सन्तोष न हो जाय तब तक इनका परीक्षाफल रोका जाय।

कार्यालय ने सूचना दी कि श्री जगदीशप्रसाद जी के अतिरिक्त और कहीं से ऐसी कोई आपत्ति नहीं मिली। तदुपरान्त श्री जगदीशप्रसाद जी को छोड़ कर अन्य सभी सदस्यों ने सम्पूर्ण परीक्षाफल घोषित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

१३. केन्द्रोपसमिति की रिपोर्ट पढ़ी गई और स्वीकार हुई, तदनुसार समिति के निम्नलिखित निश्चय परिपुष्ट किये गये कि :—

(क) नवलगढ़ केन्द्र को बन्द करके उसके स्थान में पिलानी में केन्द्र स्थापित किया जाय।

(ख) बरनाला (पेप्सु) का केन्द्र स्थायी किया जाय।

(ग) देहली में कन्या आयुर्वेद विद्यालय के लिये सब्जीमण्डी बिरला लाइन्स में विद्यापीठ परीक्षाओं का केन्द्र बना दिया जाय जिसके लिये वैद्यराज श्री मनोहर लाल जी ने भी सिफारिश की है। दिल्ली में जो अब तक विद्यापीठ का केन्द्र रहता आया है उसको भी सब्जीमण्डी में नये केन्द्र से मिला दिया जाय, किन्तु कन्याओं के बैठने का प्रबन्ध पृथक् कमरे में किया जावे।

विशेष :—श्री जगदीशप्रसाद जी ने इस परिवर्तन का विरोध किया परन्तु शेष सभी सदस्यों ने इसे स्वीकार किया।

(घ) जयपुर में भी एक परीक्षा केन्द्र खोल दिया जाय परन्तु यह देखा जाय कि वहां पर किसी प्रकार का स्थानीय विरोध न हो।

(ड़) राजूला (सौराष्ट्र) में परीक्षा केन्द्र स्थापित किया जाय।

(च) गुजरात विद्यालय, महेमदाबाद, जिला खेड़ा, में एक वर्ष के लिये केन्द्र स्थापित किया जाय।

समिति की उपर्युक्त सिफारिशों के अतिरिक्त निश्चय किया गया कि उज्जैन (मध्य भारत) तथा मंगलौर (दक्षिण भारत) में विद्यापीठ के केन्द्र स्थापना के लिये जो प्रार्थनापत्र आये हैं उन्हें भी स्वीकार किया जाय और उक्त दोनों स्थानों पर परीक्षा केन्द्र स्थापित कर दिये जायें।

१४. आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्वीकृत योजना को श्री बाबा कालीकमली वाला पंचायत क्षेत्र समिति तथा आयुर्वेद सेवा समिति, ऋषिकेश, ने स्वीकार किया है, तदर्थ उक्त दोनों सभायें भारत के वैद्यसमाज की ओर से धन्यवादार्ह हैं। निश्चय हुआ कि उक्त दोनों सभाओं को कार्यालय की ओर से धन्यवाद सूचक पत्र भेज दिये जायें।

१५. आयुर्वेद विश्वविद्यालय का शिलान्यास किसी विशिष्ट राष्ट्रीय नेता द्वारा कराया जाय और इस विषय में सम्पूर्ण व्यवस्था करने का अधिकार वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी तथा रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी को दिया जाना स्वीकार हुआ।

१६. श्री बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली, को विद्यापीठ के आधीन लेने के सम्बन्ध में स्थानिक संघ की सम्मति सहित तदर्थ समिति की रिपोर्ट उपस्थित हुई तथा निश्चय हुआ कि इसे महासम्मेलन स्थायी समिति के विचारार्थ पुनः उपस्थित किया जाय।

१७. वैद्य श्री जगदीशप्रसाद जी के आरोपों पर श्री विद्यापीठ मंत्री जी की रिपोर्ट सहित सब

कागजात पेश हुए तथा निश्चय हुआ कि इन्हें निम्नलिखित उपसमिति को सौंप दिया जाय:—

१. श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश ।

२. श्री पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग ।

३. श्री कविराज प्रतापसिंह, इन्दौर ।

१८. मिश्रितविषय:—

(क) आयुर्वेदाचार्य परीक्षार्थी क्रमांक २७ का विषय उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि छात्र पास होने योग्य है अतएव इसे चरक विषय के प्रश्नपत्र में ५० अंक दिये जांय। इस प्रकार एक अन्य विषय में जिसमें परीक्षार्थी के ३० अंक हैं, उसमें नियमानुसार १० कृपांक देकर छात्र को उत्तीर्ण घोषित कर दिया जाय।

(ख) निश्चय हुआ कि शिमोगा केन्द्र के परीक्षार्थी आयुर्वेद भिषक् क्रमांक ७८१ को केन्द्राध्यक्ष के लेखानुसार मौखिक में उत्तीर्णांक ५० देकर उसका परीक्षाफल घोषित कर दिया जाय।

(ग) निश्चय हुआ निम्न लिखित परीक्षार्थियों को निम्नांकित विषयों में उत्तीर्ण घोषित किया जाय:—

वैद्य विशारद क्रमांक १७७, अगदतंत्र ।

आयुर्वेद विशारद क्रमांक २०६, कौमार भृत्य ।

आयुर्वेद विशारद क्रमांक २५५, काय चिकित्सा ।

श्री जगदीशप्रसाद जी ने कहा कि समिति ने उपर्युक्त क्रमांक २०६ तथा २५५ के विषय में अन्तिम अधिकार मुझे दिया था। जब समिति की कार्यवाही पढ़ी गई तो जान पड़ा कि केवल श्री जगदीशप्रसाद जी को यह अधिकार प्राप्त नहीं था।

(घ) निश्चय हुआ कि वैद्याचार्य एवं आयुर्वेदाचार्य के जिन-जिन परीक्षार्थियों का कार्यालय की भूल से उदयपुर केन्द्र में परिशिष्ट परीक्षण नहीं हो सका उनके पुनः परीक्षण की व्यवस्था अब इन्दौर तथा उदयपुर केन्द्र में कर दी जाय। उक्त दोनों परीक्षार्थियों के लिये उनके परिशिष्ट विषय-रोग विज्ञान एवं शल्य के प्रश्न पत्र विद्यापीठोपाध्यक्ष वैद्य श्री घनानन्द जी पन्त द्वारा बनवाये जायं और वे ही उनकी जांच करलें। परीक्षण के पश्चात् श्री विद्यापीठ मंत्री उनके परिणाम की घोषणा करदें।

(ङ) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के आयुर्वेदरत्न उत्तीर्ण परीक्षार्थियों के सीधे वैद्याचार्य परीक्षा में प्रवेश देने का विषय उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल से इस विषय में पूछा जाय और अन्तिम निर्णय के लिये इसे विद्यापीठ कार्यसमिति के समक्ष उपस्थित किया जाय।

समागत सदस्यों एवं श्री सभापति जी को धन्यवाद देकर रात्रि को १० बजे सभा विसर्जित हुई।

मंत्री,
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

स्थायी समिति के अधिवेशन द्वारा निर्मित चुनाव सम्बन्धी मतगणना समिति का कार्य-विवरण

उक्त समिति का अधिवेशन ता० १२-११-५३ दिन वृहस्पतिवार को अपराह्न में दो बजे से श्री मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाज़ार, देहली में प्रारम्भ हुआ। समिति के सदस्यों १. वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ तथा २. वैद्य श्री नानकचन्द शर्मा के अतिरिक्त १. वैद्य श्री ओंकार प्रसाद शर्मा, २. वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा तथा ३. कविराज श्री केशवप्रसाद आत्रेय विशेष निमन्त्रण पर उपस्थित थे। वैद्य श्री हरिदत्त जी शास्त्री, विद्यापीठाध्यक्ष, तीव्र ज्वर से ग्रस्त होने के कारण उपस्थित न हो सके।

सर्वप्रथम प्रधानमंत्री ने बताया कि कार्यालय के रिकार्ड की जांच से यह सर्वथा स्पष्ट हो गया है कि इसकी व्यवस्था पूर्णतया नियमित ढंग से गत वर्षों की भांति की गई है और तत्सम्बन्धी सभी आपत्तियां निस्सार हैं।

विशेषः—श्री प्रधानमंत्री जी का विभिन्न आपत्तियों के विषय में वक्तव्य इसी कार्य विवरण के अन्त में देखें।

श्री प्रधानमंत्री जी की इस सूचना पर सदस्यों ने कुछ पूछताछ की तथा कविराज श्री केशवप्रसाद जी आत्रेय ने गत वर्षों के डिस्पैच रजिस्टर भी देखे। इस सूचना एवं निरीक्षण से सभी सदस्यों ने सन्तोष प्रकट किया और तदुपरान्त ३६ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोटाकल (दक्षिण मालाबार) के सभापति तथा तदन्तर्गत शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष महोदयों के निर्वाचन के सम्बन्ध में मत गणना का कार्य प्रारम्भ किया। रात्रि के ८-३० बजे तक यह कार्य होता रहा। गणना के पश्चात् निम्न लिखित परिणाम निश्चित तथा घोषित किया गया।

(क) महासम्मेलन सभापति पद के लिये सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले ५ महानुभावों की सूची:—

१. वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई ।	४११ मत ।
२. वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई ।	१९१ मत ।
३. वैद्य श्री पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग ।	९२ मत ।
४. कविराज श्री प्रतापसिंह जी, इन्दौर ।	७९ मत ।
५. वैद्य श्री पंडित नन्दकिशोर जी शर्मा, जयपुर ।	७८ मत ।

(ख) विद्यापीठ सभापति पद के लिये सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले ५ महानुभावों की सूची:—

१. वैद्य श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, जालन्धर ।	१७४ मत
२. वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई ।	१०१ मत ।
३. वैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी शर्मा, जयपुर ।	१०६ मत ।
४. वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई ।	८७ मत ।
५. वैद्य श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, ऋषिकेश ।	८४ मत ।

उपर्युक्त परिणाम घोषणा के पश्चात् रात्रि को ९ बजे के लगभग समागत सदस्यों का धन्यवाद करके समिति का अधिवेशन विसर्जित हुआ ।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमन्त्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन ।

३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के सभापति-पद चुनाव की व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री का वक्तव्य

स्थायी समिति के आदेशानुसार मैंने सभापति चुनाव सम्बन्धी गत वर्षों एवं इस वर्ष की व्यवस्था का मतपत्रकों, एजण्डा, स्थायी समिति के कार्य-विवरणों एवं पत्र-प्रेषण रजिस्टरों द्वारा सम्यक् निरीक्षण किया है तथा सभापति चुनाव सम्बन्धी नियम का भी अध्ययन किया है । इस सम्बन्ध में मुझे निम्नलिखित रिकार्ड मिला है ।

१. जब से अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय देहली में आया है, भूतपूर्व प्रधान

मंत्रियों ने तीन चुनाव किये हैं और यह चौथा चुनाव मेरे आधीन हुआ है।

(क) पहिला चुनाव ३६ वें आयुर्वेद महासम्मेलन के सभापति-पद के लिये नवम्बर १९४८ में तत्कालीन प्रधानमंत्री कविराज श्री गणेशदत्त जी सारस्वत के आधीन हुआ था। इस चुनाव में मतपत्रक आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में रख कर पत्रिका द्वारा ही भेजे गये थे। डाक की यह श्रेणी बुक पोस्ट के खुले लिफाफे से भी कम दर्जे की है यह सर्व विदित है। उस समय सम्मेलन की तिथियों का कोई निश्चय नहीं था और सम्मेलन बड़ौदा में हो सकेगा अथवा नहीं यह भी संदिग्ध ही था।

(ख) दूसरा चुनाव ३७ वें आयुर्वेद महासम्मेलन के सभापति-पद के लिये अक्टूबर १९४९ में तत्कालीन प्रधानमंत्री कविराज श्री गणेशदत्त जी सारस्वत के आधीन हुआ था। उसमें साधारण वुक पोस्ट डाक द्वारा खुले लिफाफों में मतपत्रक भेजे गये थे। उस समय सम्मेलन की तिथियों का कोई निश्चय नहीं था।

(ग) तीसरा चुनाव ३८ वें आयुर्वेद महासम्मेलन के सभापति-पद के लिये मार्च १९५२ में तत्कालीन प्रधानमंत्री, वैद्य श्री गुरुदत्त जी के आधीन हुआ था। उसमें साधारण बुक पोस्ट डाक द्वारा खुले लिफाफों में ही मतपत्रक भेजे गये थे। उस समय सम्मेलन की तिथियों का निश्चय तो एक ओर रहा कहीं का निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं हुआ था, क्योंकि इन्दौर का निमन्त्रण उस समय से तीन मास पश्चात् जून १९५२ में स्वीकार किया गया था।

(घ) चौथा चुनाव अब मेरे आधीन हुआ है। इसके मतपत्रक सर्वथा गत दो चुनावों की भांति बुक पोस्ट के खुले लिफाफों में भेजे गये हैं। सभी लिफाफों के डाक में डालने का देहली के प्रधान डाकखाने का सर्टिफिकेट कार्यालय में सुरक्षित है।

उपर्युक्त सुप्रमाणित रिकार्ड के आधार पर मैं निम्नलिखित निश्चयों पर पहुंचा हूं :—

१. वैद्य श्री गुरुदत्त जी तथा श्री आशुतोष मजुमदार की यह आपत्ति कि इस बार मतपत्रक सम्बन्धी लिफाफे खुले भेजे हैं सर्वथा निस्सार है, क्योंकि गत वर्षों में भी मतपत्रक ठीक ऐसे ही भेजे गये थे। स्वयं श्री गुरुदत्त जी के प्रधानमंत्रित्व में मतपत्रक सम्बन्धी लिफाफे बुक पोस्ट डाक द्वारा खुले ही भेजे गये हैं। इस अवस्था में वर्षों की प्रथानुसार चल रहे कार्य पर श्री गुरुदत्त तथा श्री आशुतोष द्वारा इस वर्ष में आपत्ति उठाना अच्छा प्रतीत नहीं पड़ता, विशेषकर जबकि अपने कार्यकाल में गत वर्ष ही उन्होंने सर्वथा ऐसे ही किया है।

२. नागपुर से वैद्यराज श्री गोवर्द्धन शर्मा छांगाणी, वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र, वैद्य श्री

केदारनाथ शर्मा पुरोहित तथा वैद्य श्री शिवकरण शर्मा छांगाणी की यह आपत्ति कि जब तक वार्षिक अधिवेशन के स्थान तथा तिथियों का निश्चय न हो जाय सभापति-चुनाव वैधानिक नहीं, निस्सार है, क्योंकि महासम्मेलन के अनेक सभापति-चुनाव वार्षिक अधिवेशन के स्थान तथा तिथियों के अनिश्चित रहते हुए हो चुके हैं और ३६ वें, ३७ वें तथा ३८ वें महासम्मेलन के सभापतियों के चुनाव भी ऐसी ही अनिश्चित परिस्थितियों में किये गये हैं। यदि वे तब वैधानिक थे तो वैसी ही परिस्थिति में इस वर्ष का चुनाव कैसे अवैधानिक कहा जा सकता है, यह प्रश्न उठता है, जिसका उत्तर आपत्ति करने वाले महानुभाव ही दे सकते हैं।

जहां तक चुनाव के समय के बन्धन का प्रश्न है नियम में जहां-जहां "समय" का उल्लेख हैं वहां-वहां "साधारणतया" शब्द साथ-साथ लिखा हुआ है जिससे स्पष्ट हैं कि समय की परिस्थिति के अनुसार आगे पीछे चुनाव किया जा सकता हैं। यहां यह लिख देना भी उचित प्रतीत पड़ता है कि इस अधिवेशन के सभापति-पद के लिये मत गणना का कार्य तो उस समय किया गया है जब कि सम्मेलन के स्थान का भी निश्चय हो चुका है और सम्भावित तिथियों का भी।

३. इस सम्बन्ध में तीसरी आपत्ति देहली के ३६ वैद्यों की ओर से श्री आशुतोष जी की लेखनी से लिखित एक पत्र ता० ४-११-५३ द्वारा की गई है। इन ३६ महानुभावों में तीन नाम श्री गुरुदत्त जी, श्री आशुतोष जी तथा श्री रामगोपाल जी के भी हैं और कई नाम सर्वथा अस्पष्ट हैं। पत्र में लिखा गया है :—

"प्रधानमंत्री महोदय,

नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल, देहली,

"कुछ दिन हुए हम में से कुछ सदस्यों को ऐसे लिफाफे मिले हैं जो नि० भा० आ० महासम्मेलन कार्यालय दिल्ली से बुक पोस्ट की (शब्द अस्पष्ट हैं) लगे हुए भेजे गये हैं। लिफाफों में हम में से कइयों के पास आगामी वर्ष के लिये महामण्डल प्रधान तथा विद्यापीठ के प्रधान के निर्वाचन के लिये मतपत्र पहुंचे हैं और कुछ सदस्यों को यह मतपत्र नहीं मिले, केवल १० तारीख के स्थायी समिति के निमन्त्रण का पत्र मिला।

'इसके अतिरिक्त हमें यह समझ में नहीं आ रहा है कि यह निर्वाचन किस नियमावलि के आधार पर किया जा रहा है, वह नियमावलि कहां से प्राप्त हो सकती है ? जहां तक हमें ज्ञान है वह अभी तक प्रकाशित नहीं है।

"ऐसी परिस्थिति में हमारा यह निवेदन है कि यह निर्वाचन अवैधानिक है

और जब तक निर्वाचन करने के आवश्यक नियमों का पालन न कर लिया जाय तब तक निर्वाचन नहीं होना चाहिये।"

भवदीय

ता० ४-११-५३ ३६ हस्ताक्षर

सतर्क सदस्य गण यह ध्यान में रखें कि इस पत्र पर ता० ४-११-५३ लिखित है परन्तु यह प्रधानमंत्री के हाथों में स्थायी समिति के अधिवेशन वाले दिन ता० १०-११-५३ को १०-३० बजे पूर्वाह्ण में दिया गया।

इस आपत्ति को मैं संस्था के विरुद्ध एक दुर्घटना कहूंगा क्योंकि इसका पहिला पैरा सर्वथा सत्य से दूर है, दूसरा पैरा हस्ताक्षर कर्ताओं के अज्ञान का सूचक है तथा तीसरा पैरा इन दोनों के मिश्रण से जनित मिथ्या धारणाओं के आधार पर लिखा गया है जो स्वतः ही निस्सार हो जाता है।

सभी सदस्य महानुभावों के डाक पते पर ता० २५ अक्टूबर १९५३ को देहली जी.पी.ओ. से लिफाफे भेजे गये जिसके डाक में डालने के देहली जी.पी.ओ. के सर्टिफिकेट कार्यालय में विद्यमान हैं। फिर क्या कारण है कि इतने विस्तृत भारतवर्ष में एक मात्र देहली के "कुछ" सदस्यों को ये लिफाफे न मिलें और भारत के अन्य किसी स्थान से भी कोई शिकायत न आये?

(ख) देहली विशेष के "कुछ" लिफाफे गुम हो गये होंगे यह कोई भी सतर्क एवं निस्पक्ष व्यक्ति मानने से इन्कार करेगा क्योंकि देहली की स्थानीय चिट्ठियां जिस स्थान में दी गईं वहीं से बटनी प्रारम्भ हो गईं, वे न तो रेलगाड़ी में चढ़ीं और न हवाई जहाज में। इस अवस्था में देहली के स्थानीय पत्रों के गुम होने की कोई सम्भावना नहीं होती, विशेषकर जबकि पत्र पाने वाले का पता सुस्पष्ट अक्षरों में लिखित ही नहीं बल्कि मुद्रित हो।

(ग) जब स्थायी समिति का निमन्त्रण मिल गया परन्तु उसी के ऊपर स्पष्टतया उल्लिखित मतपत्रक किसी सदस्य को नहीं मिला तो उस सदस्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह कार्यालय में पत्र भेज कर मतपत्रक मंगवाये। देहली निवासी सदस्यों को तो इस विषय में विशेष सुविधा प्राप्त है, वे तो कार्यालय में जाकर तुरन्त मतपत्र प्राप्त कर सकते थे, परन्तु इस विषय में न तो किसी ने पत्र लिखा और न ही कोई कार्यालय में आया, जिससे स्पष्ट सिद्ध है कि सभी को मतपत्रक समेत सभी सामग्री मिली।

(घ) आपत्तियुक्त पत्र के पहिले पैरे में क्रमशः "कुछ दिन हुए" "कुछ सदस्यों को"

"हममें से कइयों के पास" कुछ सदस्यों को" ये शब्द विद्यमान हैं जिससे हस्ताक्षर कर्त्ताओं की छिपी हुई सत्य विहीनता स्वतः व्यक्त हो रही है। क्योंकि ये "कुछ" और "कई" कौन महानुभाव हैं यह सर्वथा अस्पष्ट रखा गया है।

(ङ) क्योंकि किसी ऐसे सदस्य ने जिसको मतपत्रक नहीं मिले कहे जाते हैं कार्यालय में ता० २६-१०-५३ से लेकर ६-११-५३ तक १५ दिन के लम्बे समय में कोई शिकायत नहीं की इससे सिद्ध होता है कि सभी को सभी सामग्री मिली है और इसके विरुद्ध कोई कथन सत्य पर आधारित नहीं है। ऐसे "कुछ" सदस्यों का श्री आशुतोष जी, जो कि अब महासम्मेलन के सहायक मन्त्री नहीं हैं, के पास पहुंचना परन्तु समीपस्थ कार्यालय में न जाना ही सिद्ध करता है कि संस्था के विरुद्ध ऐसी आपत्ति का उठाना वैद्य समाज का एक दुर्भाग्य है।

चुनाव किस नियमावलि के आधार पर हुआ है यह सर्वविदित है, इस पर भी ऐसा प्रश्न खड़ा करना हास्यास्पद है। चुनाव की यही परिपाटी वर्षों से चली आई है, तत्सम्बन्धी आपत्ति सर्वथा निस्सार है।

उपर्युक्त प्रकार सत्य-विमुखता और अज्ञान के समिश्रण से जनित धारणाओं के आधार पर जो आपत्ति खड़ी की गई है उसका क्या मूल्य डालना चाहिये इसका विज्ञ वैद्य स्वयं विचार करें।

उपर्युक्त वक्तव्य मुझे विवशतया कटु कर्त्तव्यबद्ध होकर देना पड़ा है और मैं इसमें दुःख का अनुभव कर रहा हूं। मैं वैद्य समाज से साधारणतया एवं इन ३६ हस्ताक्षर कर्त्ताओं से विशेषतया विनयपूर्वक निवेदन करूंगा कि ऐसा करना आयुर्वेद सेवा नहीं और न ही इससे आयुर्वेद जगत का नेतृत्व किसी को प्राप्त हो सकता है। आयुर्वेद के उत्थान के लिये सत्यता, कर्मठता, सहिष्णुता और लम्बे रचनात्मक कार्य की आवश्यकता है जिसके लिये हमें कन्धे से कन्धा मिलाकर स्नेहपूर्ण वातावरण में जुट जाना चाहिये। व्यर्थ के वाद-विवाद से किसी को कुछ लाभ नहीं और संस्था को हानि पहुंचती है जिससे बचना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

वामनराव दीनानाथ वैद्य,
प्रधानमंत्री,
अ० भा० अयुर्वेद महासम्मेलन।

निखिल भारतीयायुर्वेद विद्यापीठम्

१९५३ वर्षीय परिशिष्ट परीक्षाफलम्

(१) आयुर्वेदाचार्य-परीक्षाफलम्

(क) आयुर्वेदाचार्य-परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, १०९ राजाराम सांखोलिया, तृ० । १४३ नन्दकिशोर शर्मा, द्वि० ।

(ख) आयुर्वेदाचार्य प्रथमखण्डपरीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, ५ मांगीलाल त्रिपाठी । ७५ रामशरण तिवारी । ८० पुष्करदत्त जोशी । ९८ शिवनाथ शर्मा । १३५ शिवचरण शर्मा । १६३ नन्दकिशोर आचार्य । १६६ प्रभाकर पाण्डेय । १७१ जगदीशनारायण त्रिपाठी । २२३ चिरञ्जीलाल शर्मा । २४८ गणेशकुमार मिश्र ।

(ग) आयुदाचार्य परिशिष्टपरीक्षाधिकारी

क्रमाङ्क, ८४ दूधाराम स्वामी, शारीर ।

(२) वैद्याचार्य प्रथमखण्डपरीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, १३ राजकिशोर त्रिपाठी । २६ श्रीकृष्ण शर्मा ।

(३) आयुर्वेदविशारद परीक्षाफलम्

(क) आयुर्वेदविशारद परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, ९६ गोदावरी चिकटे, द्वि० । १०२ गौरीशंकर त्रिपाठी, तृ० । १३४ सुरेन्द्रकुमार पांडेय, द्वि० । १३६ झगरसिंह ताम्रकर, द्वि० । १७४ हरिनारायण शर्मा, तृ० । २६५ लज्जाराम शर्मा, तृ० । २६७ मदनलाल शर्मा, तृ० । २८१ दाऊदयाल रंगा, द्वि० । २९१ दिनेशचन्द्र वर्मा, द्वि० । ३०६ ओम्प्रकाश उपाध्याय, तृ० । ३८२ सुदामाप्रसाद अवस्थी द्वि० । ३८९ अम्बिकाप्रसाद त्रिवेदी, तृ० । ३९० शिवकुमार त्रिपाठी, तृ० । ३९१ चन्द्रप्रकाश शुक्ल, द्वि० ।

(ख) आयुर्वेदविशारद प्रथमखण्डपरीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांङ्क, १६२ शंकरदत्त शर्मा । २३८ रमाशंकर द्विवेदी । २५६ देवशंकर ओझा । ४२१ काशीदत्त शर्मा । ४२२ मोहनलाल शर्मा । ४४८ रमाशंकर द्विवेदी ।

(ग) आयुर्वेद विशारद परिशिष्टपरीक्षाधिकारिणः

क्रमाङ्क, ३ चिरञ्जीलाल शर्मा, शारीर । ८ ऋषिराम शर्मा, शारीर, २० हेमचन्द्र

त्रिवेदी, शारीर। २४ अयोध्याप्रसाद मिश्र, शारीर। १३३ भुवनप्रसाद शर्मा, शारीर। १५७ देवीप्रसाद शर्मा, शारीर। ४०४ भवानीशंकर शर्मा, शारीर। ४२४ चिरञ्जीलाल शर्मा, शारीर। ४३५ छगनलाल शर्मा, शारीर।

(४) वैद्यविशारद परीक्षाफलम्

(क) वैद्यविशारद परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, १०६ चन्द्रदेव शर्मा, तृ०। १६२ मोतीलाल मीतल, तृ०। १७४ चौथमल शर्मा, द्वि०। १९४ लक्ष्मीदेवी मिश्रा, द्वि०। २१२ वेदप्रकाश गुप्त, तृ०।

(ख) वैद्यविशारद प्रथमखण्डपरीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, ४८ जमनालाल शर्मा। ६५ मिश्रीदास वैष्णव। ६७ मुश्ताख अहमदखां। ११६ महेशचन्द्र वर्मा। १६८ रघुनाथ सहाय पाठक।

(५) आयुर्वेदभिषक् परीक्षाफलम्

(क) आयुर्वेदभिषक् परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, १६३ विजयकुंवर गौड़, द्वि०। २३९ विश्वात्मासिंह, द्वि। २७१ जटाशंकर द्विवेदी, द्वि०। ३०६ बिहारीलाल, प्र०। ३५७ हनुमत्प्रसाद शर्मा, तृ०। ४१२ बद्रीनारायण शर्मा, द्वि०। ७९७ मल्हूसिंह, प्र०।

(ख) आयुर्वेद-भिषक् प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमाङ्क, १९ कृष्णराव। २१ नारायण। ८१ ओम्प्रकाश शर्मा। १०३ मोहनलाल शर्मा। १३५ लक्ष्मीकान्त शर्मा। १३७ पुनमचन्द। १४० मांगीलाल खमोरा। २११ रामकृष्ण वाजपेयी। २५६ नर्मदाप्रसाद चौबे। ३१३ नत्थीराम। ३२५ रामनिवास भारद्वाज। ४३६ दत्तात्रय राणे। ४३७ रामसुन्दर शुक्ल। ४८७ परशुराम शर्मा। ७६१ रामशंकर मिश्र। ७८३ हीरानन्द दास स्वामी। ८११ घनानन्द शर्मा।

(ग) आयुर्वेदभिषक् परिशिष्टपरीक्षाधिकारिणः

क्रमाङ्क ११६ गजराजसिंह, शल्य। ६३८ पुरुषोत्तम लाल, शल्य। ६५१ प्रभाती लाल शर्मा, शल्य।

श्रीदत्त शर्मा
(रायबहादुर, आयुर्वेदमार्तण्ड)
विद्यापीठ मंत्री।

शुद्धायुर्वेद पाठ्यक्रम समिति, बम्बई राज्य

वैद्यबन्धुओं से अपील

आपको यह विदित ही है कि बम्बई सरकार ने एक शुद्ध आयुर्वेदीय पाठचक्रम स्वीकार किया है और उसका अध्यापन गुरु-परम्परा पद्धति द्वारा अथवा आयुर्वेदीय विद्यालयों से किये जाने की सम्मति प्रदान की है। शुद्धायुर्वेद और गुरु-शिष्य-परम्परा को मान्यता प्रदान कर बम्बई राज्य ने आयुर्वेद के भावी विकास और राष्ट्र के लिये उसकी उपयोगिता में अपना जो विश्वास प्रकट किया है उसकी रक्षा करना हम शुद्धायुर्वेद के पक्षपाती वैद्यों का कर्तव्य हो जाता है। हमारा यह उत्तरदायित्व है कि पाठचक्रम को क्रियान्वित कर सफल बनायें और इस प्रकार यह सिद्ध कर दें कि निश्चय ही बम्बई सरकार ने शुद्ध आयुर्वेद व गुरु-शिष्य परम्परा को स्वीकार करके कोई भूल नहीं की है और उनकी ऐसी मान्यता प्राप्त करना आयुर्वेद का जन्म-सिद्ध अधिकार था, जो उसे दिया गया।

आयुर्वेद को ऐसी मान्यता अन्य प्रान्तों में भी मिले, यह समस्त वैद्य-समुदाय की कामना है, क्योंकि विकास की इस प्रथम सोपान को पार कर ही हम अपने अन्तिम ध्येय तक पहुंच सकेंगे। किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि हम इस योजना को प्रथम बम्बई में सफलता पूर्वक चला कर इसकी उपयोगिता को प्रमाणित कर दें।

इस पाठचक्रम की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शुद्ध आयुर्वेद के पांठ्यक्रम पढ़ाने वाले विद्यालय बम्बई राज्य में और अन्यत्र विद्यमान हों। इसी प्रकार विद्यालयों में कार्य न कर सकने वाले किन्तु आयुर्वेद का ज्ञान शिष्यों को देकर अपने जैसे शिष्य तैयार करने की योग्यता रखने वाले गुरुओं की भी आवश्यकता है। साथ ही हमें इस पाठचक्रम को यशपूर्वक किस प्रकार सिद्धि तक पहुंचाया जा सकता है इसका निर्णय भी करना है।

अतः शुद्ध आयुर्वेद पाठचक्रम अभिमानी वृद्ध वैद्य एवं अध्यापकवृन्द से हमारी यह प्रार्थना है कि हमारे कार्य की गुरुता एवं आयुर्वेद के भावी विकास को दृष्टिगत रखते हुये हमारा पथप्रदर्शन करें और इस पाठचक्रम को सुचारू रूपेण चलाने के विषय में अपने विचार हमारे पास नीचे लिखे पते पर भेजने का कष्ट करें।

इसके अतिरिक्त निम्न अत्यावश्यक सूचनायें भी भिजवा कर समिति को उपकृत करें और कार्य सिद्धि में हाथ बटावें।

सूचनाओं के अपेक्षित विषय

१. शुद्ध आयुर्वेदीय पाठचक्रम की पढ़ाई के लिये अध्यापक (गुरु) की पात्रता।

२. शुद्ध आयुर्वेदीय पाठचक्रम की पढ़ाई के लिये शिक्षण संस्थाओं की पात्रता।

३. पाठचक्रम में नियुक्त विषयों के ज्ञेयांश और ग्रंथांश. (नियुक्त विषयों का परिचय पत्रक सम्मेलन पत्रिका के अक्टूबर अंक पृष्ठ ५३६ से ५३८ पर मुद्रित है)।

४. छात्रों की प्रवेश पात्रता के लिये बनारस संस्कृत कालेज की प्रथमा परीक्षा के समकक्ष अन्य संस्कृत परीक्षायें (सम्पूर्ण अभ्यासक्रम के परिचय तथा मुद्रित परिचय पत्रक के सहित), १५ दिसम्बर, १९५३ तक समिति के कार्यालय में अपनी उपयुक्त सूचनायें भेजने की कृपा करें।

अस्थायी कार्यालय,
४५, कैथेड्रिल स्ट्रीट,
भूलेश्वर, बम्बई २।

भवदीय
वामनराव दीनानाथ वैद्य–अध्यक्ष
वैद्य ना० ह० जोशी–मंत्री

विशेष—अन्य आयुर्वेदीय पत्र-पत्रक भी इस सूचना को अपने अपने पत्रों में प्रसिद्ध करने की कृपा करें।

शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति का प्रथम अधिवेशन

शुद्ध आयुर्वेद पाठचक्रम समिति की प्रथम बैठक वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ की अध्यक्षता में श्री यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टिटयूट, आउट्राम रोड, बम्बई में हुई। इस अवसर पर बम्बई राज्य के आरोग्य प्रधान, श्री शान्तिलाल जी शाह ने समिति का मार्ग प्रदर्शन करते हुए कहा कि बम्बई सरकार ने शुद्ध आयुर्वेदीय पाठचक्रम को मान्यता दी है किन्तु इसे सफल बनाने का उत्तरदायित्व वैद्यों पर है। सरकार ने तो मात्र आपके मार्ग में जो रोड़ा अटका था उसे हटाया है। अब आप अपने कार्य को सफल बनाने में पूर्ण सावधानी से कार्य लेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूं।

तत्पश्चात् समिति के अध्यक्ष वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ ने आरोग्य सचिव महोदय का धन्यवाद करते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति में राज्यकर्त्ताओं में दैवी अंश रहता है, ऐसा कहा गया है। अतः मैं अपने आरोग्य प्रधान श्री शान्तिलाल शाह को दैवी अंश मान कर समिति के सब सभासदों से शपथ ग्रहण करवाना चाहता हूं।

इसके अनन्तर सब सदस्यों ने शपथ ग्रहण की। शपथ लेने के पश्चात् अध्यक्ष

महोदय ने श्री शान्तिलाल शाह का धन्यवाद किया और वह सभा से विदा हुये। तत्पश्चात् निम्न प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गये :—

१. सरकार सूचित नियमों के अनुसार शुद्ध आयुर्वेद-पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिये गुरु और आयुर्वेदीय शिक्षण संस्थाओं की पात्रता निश्चित करने के लिये आयुर्वेदज्ञों तथा उक्त संस्थाओं की ओर से उपयुक्त सूचनाओं की अपेक्षा यह समिति रखती है। अतः आयुर्वेदज्ञों और आयुर्वेद संस्थाओं से प्रार्थना है कि वे उक्त कार्य की दृष्टि से अपनी अपनी उपयुक्त सूचनायें समिति की ओर शीघ्रातिशीघ्र भेजें। १५ दिसम्बर १९५३ तक प्राप्त सूचनाओं का ही विचार किया जाय।

२. बम्बई सरकार सम्मत शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम सम्पूर्ण सफल होने की दृष्टि से किन-किन आयुर्वेदीय ग्रंथों की सहायता लेनी चाहिये, इस विषय में आयुर्वेदज्ञों तथा आयुर्वेद संस्थाओं की ओर से सूचनाएं अपेक्षित हैं। १५ दिसम्बर १९५३ तक प्राप्त सूचनाएं विचारणीय समझी जाएंगी।

३. शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति के विचारणीय विषय क्रमांक ४, ५, ६ के विषय में प्राप्त सूचनाओं पर विचार करने के लिये (१) अध्यक्ष श्री वैद्य वामनराव जी दीनानाथ (२) वैद्यभूषण गणेश शास्त्री जोशी और (३) मंत्री श्री वैद्य ना० ह० जोशी इन तीन सदस्यों की उपसमिति नियुक्त की जाती है। विचार-विमर्श होने पर उपसमिति अपना निर्णय समिति की आगामी सभा में रखे।

४. बम्बई सरकार नें शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम पढ़ने के लिये छात्रों की प्रवेश पात्रता बनारस संस्कृत महाविद्यालय की 'प्रथमा' और तत्सम परीक्षाओं की उत्तीर्णता स्वीकार की है। अतः इस दृष्टि से सुयोग्य संस्थाओं का परिचय अखिल भारतीय पंडितों से अपेक्षित है। १५ दिसम्बर तक प्राप्त सूचनायें विचारणीय होंगी।

उत्तर-प्रदेश में कार्य-संवाहक वैद्य सम्मेलन की स्थापना

उत्तर-प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन में चल रहे दीर्घकालीन विवाद को दृष्टि में रखते हुए तथा राज्य में वैद्य सम्मेलन के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति ने अपने ता० १०-११-५३ के अधिवेशन में यह निश्चय किया है कि जब तक वर्तमान वैद्य सम्मेलन का विवाद समाप्त नहीं हो जाता तब तक के लिये एक कार्य संवाहक उत्तरप्रदेशीय वैद्य सम्मेलन की अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा स्थापना कर दी जाय, जिसके सभापति तथा प्रधानमन्त्री का निर्वाचन ३ मास के अन्दर अन्दर करा दिया जाय।

स्थायी समिति के उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार कार्य-सिद्धि के लिये उत्तर-प्रदेशीय

वैद्यों का सहयोग परमावश्यक है। जैसा कि स्थायी समिति ने निश्चय किया है राज्य के वही वैद्य निर्वाचन में भाग ले सकेंगे जो उत्तर-प्रदेश देशी चिकित्सा बोर्ड द्वारा रजिस्टर्ड होंगे और जो निर्धारित शुल्क देकर वैद्य सम्मेलन के सदस्य बन चुके होंगे।

अतएव जो वैद्य महानुभाव सदस्य बनना चाहें वे २ रु० सदस्यता शुल्क तथा १ रु० प्रवेश शुल्क (कुल ३ रु०) शुल्क रूप में शीघ्रातिशीघ्र महासम्मेलन कार्यालय में भेज दें ताकि निश्चित अवधि के भीतर ही वैद्य सम्मेलन का निर्वाचन कर कार्यारम्भ किया जा सके।

कार्य की सुसम्पन्नता के लिए यह भी आवश्यक है कि उत्तरप्रदेशीय वैद्य महानुभाव तथा वैद्य-सभायें अपने-अपने बहुमूल्य सुझाव एवं परामर्श भेजने की कृपा करें। ऐसे सुझाव महासम्मेलन कार्यालय में १५ दिसम्बर तक अवश्य पहुंच जाने चाहिये।

गुरुदत्त
निर्वाचनाध्यक्ष
वामनराव दीनानाथ, केशव प्रसाद आत्रेय
परामर्शदाता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्केट,
चांदनी चौक, देहली।

भारतीय चिकित्सा पद्धति केन्द्रीय अनुसंधानशाला, जामनगर

प्रसन्नता का विषय है कि भारतीय चिकित्सा पद्धति की केन्द्रीय अनुसंधानशाला, जामनगर ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। चिकित्सा-सम्बन्धी शोध के लिये कुछ चुने हुए रोगियों के प्रवेश के लिये प्रवन्ध कर लिया गया है। उनकी चिकित्सा के प्रकारों तथा साधनों का निरीक्षण किया जायगा और उससे प्राप्त परिणामों की ऐसी भाषा में व्याख्या की जायेगी जिसे आयुर्वेद तथा आधुनिक विज्ञान, दोनों वर्गों के विद्वानों द्वारा समझा जा सकें।

पांडुरोग तथा उससे सम्बन्धित व्याधियों को शोध कार्यक्रम का एक विषय चुना गया है।

अनुसंधानशाला के डायरेक्टर श्री डाक्टर प्राणजीवन मेहता नें एक विज्ञप्ति द्वारा आयुर्वेदिक शिक्षकों तथा चिकित्सकों से शाला के अनुसंधान कार्य में सहयोग की कामना की है। देश के विभिन्न भागों में व्यक्तिगत रूप से तथा संस्थाओं द्वारा औषध द्रव्यों, व्याधियों अथवा चिकित्सा पर किये गये क्रमबद्ध कार्य के सम्बन्ध में कोई सूचना अथवा सुझाव संस्था द्वारा सधन्यवाद स्वीकार किये जावेंगे।

अतः सम्बन्धित महानुभाव इस विषय में विस्तृत और क्रमबद्ध सूचना संस्था को भिजवाने का कष्ट करेंगे जिससे संस्था द्वारा ऐसे अनुसंधान कार्यों का समुचित लाभ उठाया जा सके।

३६ वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टाकल

३६ वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टाकल, आल केरल आयुर्वेदिक कांग्रेस से अभी तक प्राप्त सूचनाओं के अनुसार, ता० ५, ६ तथा ७ जनवरी १९५४ को होना निश्चित हुआ है।

वामनराव दीनानाथ
प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

संक्रामक रुग्णालय में आयुर्वेद चिकित्सा की व्यवस्था

हैदराबाद ५ अक्टूबर (डाक से):—

हैदराबाद सरकार ने स्थानीय संक्रामक रुग्णालय के एक वार्ड में अनुभवीक चिकित्सा की व्यवस्था की है। हाल ही में राज्य में विशूचिका का प्रकोप होने पर स्थानीय महामण्डल के अधिकारी वर्ग ने सरकार से इस सम्बन्ध में बातचीत की थी उसी के परिणाम स्वरूप भारत में यह प्रथम रुग्णालय है जहां संक्रामक रोगों की चिकित्सा संभव हो सकी है। वार्ड हस्तगत करते समय उपस्थित व्यक्तियों में प्रमुख निम्न थे। सर्व श्री रामानुज स्वामी, श्री पं० राधाकृष्ण जी द्विवेदी, वैद्यराज पं० गोवर्द्धन शर्मा क्रमशः प्रधान, उपप्रधान तथा उपमंत्री, हैदराबाद राज्य आयुर्वेद महामण्डल, कविराज पुरुषोत्तम देव जी मुलतानी प्रधान वैद्य, राज्यकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, हैदराबाद तथा वैद्यराज पं० बी० दुर्गादत्त शर्मा आयुर्वेद विशारद। उपर्युक्त अधिकारी वर्ग ने अपनी सेवायें निःशुल्क देना स्वीकार किया है। आशा है दूसरी प्रान्तीय सरकारें भी हैदराबाद सरकार के इस स्तुत्य प्रयत्न का शीघ्र अनुसरण करेंगी।

सूचना

भारतवर्ष और सनातनधर्म शीर्षक पुस्तक की गत अगस्त मासीय पत्रिका में समालोचना प्रकाशित हुई थी। उसकी प्राप्ति के लिये कुछ पाठकों ने हमारे पास पत्र लिखे हैं। अतः उनकी सूचनार्थ यह निवेदन है कि उक्त पुस्तक प्रकाशक की ओर से विमूल्य वितरित की जा रही है और निम्न पते पर दो आने के टिकिट भेजकर प्राप्त की जा सकती है।

प्राप्ति स्थान—श्री संकटा प्रकाशन मंडल,
गोला गली, बनारस।

* * *

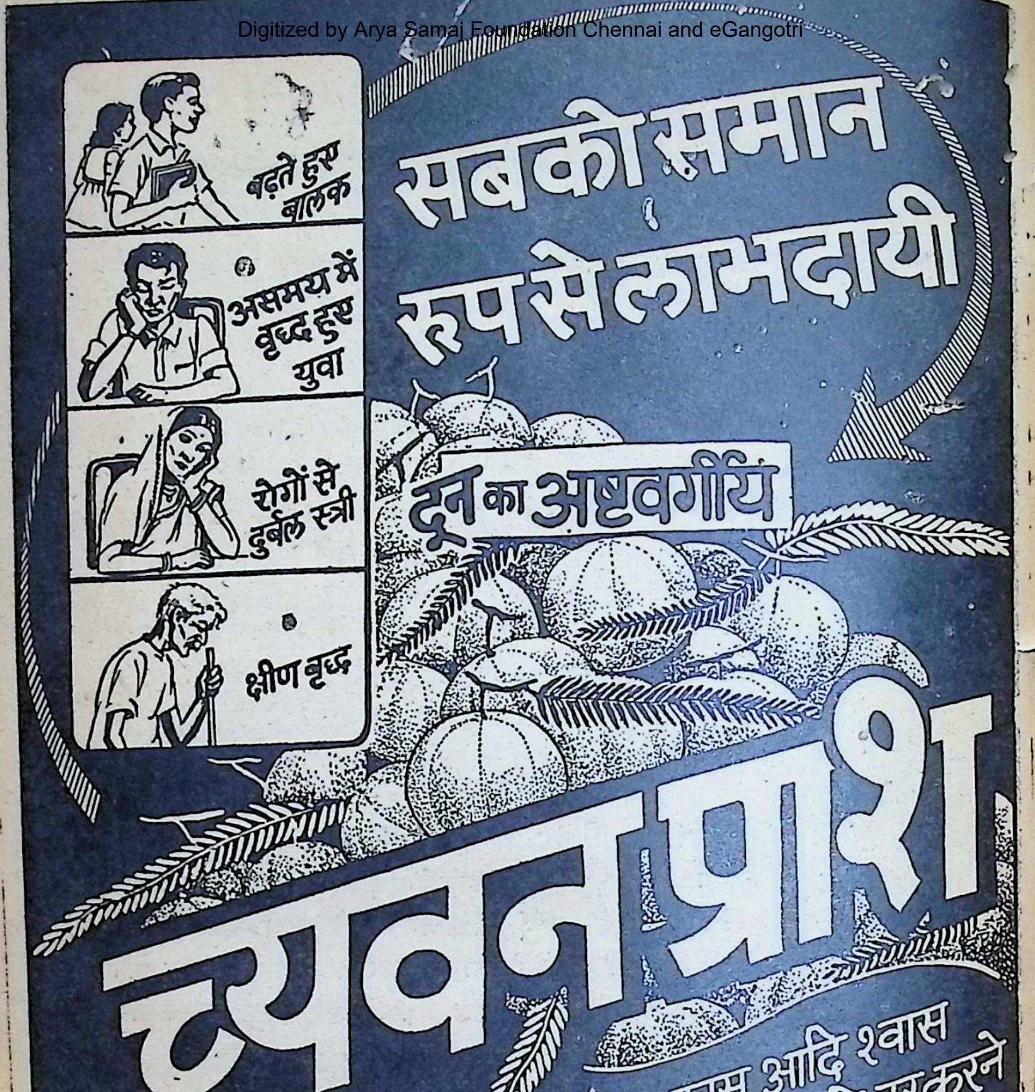
सबको समान
रुप से लाभदायी
बढ़ते हुए बालक
असमय में वृद्ध हुए युवा
रोगों से दुर्बल स्त्री
क्षीण वृद्ध
दून का अष्टवर्गीय
च्यवनप्राश
क्षय-कास आदि श्वास मार्ग के रोगों को दूर करने वाली शक्ति वर्धक रसायन
हिमालय पर्वत की सौम्य जड़ी बूटियों से निर्मित है - इसलिये अधिक लाभ करता है ।
DOON PHARMACEUTICAL COMPANY LIMITED
अमृत
DEHRA DUN
दून फार्मेस्युटिकल कं० लि० देहरादून

सर्व प्रकार कीविशुद्ध आयुर्वेदिक ओषधियों के लिए व एजेन्सों के लिए पत्र-व्यवहार करें

आयुर्वेद जगत में महान क्रान्ति
प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड अमृतसर
के

इन्जैक्शनों की धूम

(गवर्नमैंट से मन्जूर)

भारत में केवल प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड अमृतसर को ही यह गर्व है कि इसके इन्जेक्शन गवर्नमैंट द्वारा ड्रग कन्ट्रोल ऐक्ट १९४० के अनुसार लाईसेंस प्राप्त लैवोरेटरी में तैयार होते और भारत सरकार की सैन्ट्रल रिसर्च इन्सटीटयूट लखनऊ में टैस्ट हो कर प्रमाणित सिद्ध हो चुके हैं अतः प्रत्येक वैद्य वा हकीम इन्हें बेखटके व्यवहार में ला सकते हैं। क्योंकि सरकार की ओर से इनके व्यवहार में कोई प्रतिबन्ध नहीं।

प्रताप इन्जेक्शनों विशुद्ध और ताजा वनस्पतियों तथा स्वर्ण, मूंगा मुक्ता, लोह, कस्तूरी आदि खनिज वा प्राणिज द्रव्यों के आधुनिक ढंग से तैयार सत्व, तरल और चूरों से निर्माण किये जाते हैं।

प्रताप इन्जेक्शनों के शतप्रतिशत लाभप्रद आशुफलकारी अचूक और अन्वर्थादि गुणों से प्रभावित होकर देश के प्रसिद्ध वैद्य हकीम वा डाक्टर अब इन्हीं को व्यवहार में ला रहे हैं, और ऐलोपैथिक इन्जेक्शनों को त्याग रहे हैं। यकृत प्लीहा आदि उदर विकारों के लिये घृतकुमारी हृदय रोगों के लिये अर्जुना, राजयक्ष्मा के लिये स्वर्ण मूंगा, शीतांग के लिये मृगनाभि' विषम ज्वर मलेरिया के लिये 'विषमान्त' आदि हमारे इन्जेक्शनों के जोड़ का ऐलोपैथी में नितान्त अभाव है।

प्रताप इन्जेक्शन सुयोग्य विज्ञानवेत्ता, तथा रसायन विद्या विशारद विशेषज्ञों की देख रेख में बनाये जाते हैं,

प्रताप इन्जेक्शनों के हर एक डिब्बे पर गवर्नमैंट से प्राप्त लाइसेंस नम्बर रहता है।

आयुर्वेद का गौरव तथा मान बढ़ाने, मरणासन्न जटिल रोगियों को जीवन दान देने तथा सफल चिकित्सक बनने अथवा नाम यश और ख्याति प्राप्त करने के लिये प्रत्येक चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह प्रताप इन्जेक्शन प्रयोग में लाकर लाभ उठावें॥

आयुर्वैदिक इंजेक्शनों के मिलने का पता—
प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड
अकाली मार्कीट अमृतसर

सहस्त्रों में से कुछ एक विद्वानों की

सम्मतियां

(१) **डा. वाई. पी. वेदी, डी. पी. एच. (लंडन) एम. बी. बी. एस पन्जाब, डी. ओ. एम. एस. (इंगलैंड) मैडीकल आफीसर ऑफ हैल्थ म्यूनिसिपल कमेटी, अमृतसर** मैंने आपके विषमांत इन्जेक्शन के आठ बक्सों का म्यूनिसिपल हस्पतालों में प्रयोग किया है और उनके परिणाम की जो सूचना मुझे प्राप्त हुई है यह शत प्रतिशत संतोषजनक है।

(२) **डा० विद्यासागर मैडीकल आफीसर, सैन्ट्रल इन्फर्मरी हस्पताल खन्ना** यह लिखते हुए मुझे अति प्रसन्नता होती है कि प्र० फा० लि० के विषमांत इन्जेक्शन का मलेरिया के रोगियों पर प्रयोग किया है। विषमांत के लगा देने के पश्चात मेरे किसी भी रोगी पर ज्वर का पुनः आक्रमण नहीं हुआ।

(३) **डा. कैपटेन अमृतलाल एल. एस. एम. एफ (पन्जाब) आई. ए. एम. सी. (रिटायर्ड)** "मैंने प्र० फा० लि० अमृतसर द्वारा निर्मित 'गुड़मार' इन्जेक्शन का मधुमेह (Diabetes) के रोगियों पर प्रयोग किया है जिसका परिणाम अतीव संतोषजनक है।

(४) **डा० बी. एन. खोसला, बी. एल. एम. एस. मैडीकल आफीसर इंचार्ज श्री तीर्थराम हस्पताल (अमृतसर)** "मैंने विषमांत इन्जेक्शन का मलेरिया के रोगियों पर प्रयोग किया और इसे कुनीन से बढ़कर लाभकर पाया।"

(५) **डा० एन. रामदासी एस. डी. जहीराबाद एन. एस आर.** "आप ने मलेरिया ज्वर के लिये शत प्रतिशत सफल विषमाँत नाम का इन्जेक्शन निर्माण कर अद्वितीय कार्य किया है।"

(६) **डा० राजेन्द्रसिंह एम. डी. (लन्डन) शामली (यू. पी.)** "प्रताप फार्मेसी लि० अमृतसर के जितने भी इन्जेक्शन मेरे प्रयोग में आये हैं प्रायः शत प्रतिशत लाभप्रद तथा सफल हैं।"

(७) **डा० कैपटेन अमृतलाल एल. एस. एम. एफ. (पंजाब) आई. ए. ऐम. सी. (रिटायर्ड)** मैंने विषमाँत का प्रयोग किया है जो मलेरिया के लिये शत प्रतिशत सफल सिद्ध हुआ है और कुनीन से भी अधिक लाभकारी है।"

(५) डा० के. एम. उ[illegible]ाल एल. एम. एस. कलालघाटी, कोट द्वारा 'यू. पी.' "थोड़े ही दिन हुए मुझे एक ऐसे रोगी की चिकित्सा करने का अवसर मिला जो चिरकाल से मलेरिया ज्वर से पीड़ित था। इस पर कुनीन, मैपाक्रेन आदि का प्रयोग कर चुका था। किन्तु उसे कुछ भी लाभ न हुआ था। अकस्मात् एक पड़ोसी डाक्टर से मुझे विषमांत का एक टीका मिल गया जो मैंने उस दीर्घ रोगी पर प्रयोग किया और विषमांत इन्जेक्शन के परिणाम को देख कर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही जबकि एक इन्जेक्शन के व्यवहार से ही रोगी का ज्वर जाता रहा और पुनः नहीं हुआ।"

(९) श्री आर. डी. शर्मा शास्त्री बी. ए. वद्य वाचस्पति 'आनर्ज' गोल्ड मैडलिस्ट, प्रोफैसर तथा इंचार्ज डी. ए. वी. कालिज हस्पताल, जालन्धर "विषमांन" इन्जेक्शन जिसका मैंने मलेरिया के रोगियों पर प्रयोग किया है। मेरा अनुभव है कि विषमांत का इन्जेक्शन लगा देने के पश्चात ज्वर का पुनः आक्रमण नहीं होता।

(१०) श्री हकीम निरंजनसिंह नरूला मैंबर बोर्ड आफ आयुर्वैदिक एँड यूनानी सिस्टिम्ज़ आफ मैडीसन पंजाब, इंचार्ज, म्यूनिसिपल यूनानी हस्पताल; अमृतसर "मैंने विपुमांत इन्जेक्शन का बहुत से मलेरिया के रोगियों पर प्रयोग किया है और इसे शत प्रतिशत सफल सिद्ध पाया।"

(११) श्री समरसिंह जी एम. एल. ए. प्रधान डिस्ट्रक्ट कांग्रेस कमेटी करनाल "मैं चिरकाल से प्र० आ० फा० लिमिटिड अमृतसर द्वारा निर्मित औषिधियों को व्यवहार में ला रहा हूं। मैंने बहुत से रोगियों पर 'कुटजा' और 'अशोका' इन्जेक्शनों का प्रयोग किया है जो शत प्रतिशत सफल सिद्ध हुए हैं। प्र० आ० फा० लि० अमृतसर ने अपनी आयुर्वैदिक औषिधियों और इन्जेक्शनों के निर्माण से वास्तव में प्राचीन आयुर्वेद विज्ञान का गौरव बढ़ाया है।'

(१२) श्री कविराज इन्द्रजीत शर्मा, भैषजाचार्य, धनवन्तरी, श्रीराम आयु० हस्पताल अमृतसर "विषमाँत इन्जेक्शन मैंने अपने रोगियों पर प्रयोग किये हैं। मलेरिया ज्वर को पहला या दूसरा इन्जेक्शन ही रोक देता है। इस के व्यवहार से रोगी को किसी प्रकार की हानिं नहीं होती।"

(१३) श्री अमृतलाल पालन बी.ए.एम. एस. पदमपुर बीकानेर यों तो आपके समस्त इन्जेक्शन लाभप्रद हैं किन्तु निम्नलिखित तो मेरी प्रैक्टिस और उन्नति का रहस्य हैं।"

(iv) **गंध कपूर–** विसूचिका के लिए अव्यर्थ है।

(ii) **प्रसवा**– सुभिया से बच्चा पैदा कराने के लिए “[illegible]चुटी[illegible]” फेल हो जावे यह वहां चमत्कारी प्रभाव दिखाता है।

(iii) **दशमूल**– प्रसूति रोगों के लिए बेमिसाल है।

(iv) **स्वर्ण मूंगा**– हृदय की दुर्बलता के लिए अत्यन्त लाभकारी है।

(v) **गुडूची**-- पुराने और बिगड़े हुए मलेरिया ज्वर को जो कुनीन के टीके करवा कर थक चुके हों इसके तीन चार इन्जेक्शनों से रोगी बिल्कुल नीरोग हो जाता है।

(vi) **विषमान्त**-- यह सब प्रकार के नए व पुराने मलेरिया के लिए अचूक इन्जेक्शन है।

(१४) कविराज किशन चन्द भूतपूर्व हाऊस फिजीशन मूलचन्द खैरातीराम हस्पताल अनारकली, लाहौर यह सत्य है कि मैंने प्र० फा० लि० अमृतसर द्वारा निर्मित घृतकुमारी, कुटजा, और शान्ता आदि का प्रयोग किया है इन्हें इतना ही लाभप्रद पाया है जैसा कि उनके विवरण पत्र में वर्णित है।

(१५) श्री हरप्रसाद नय्यर वैद्य वाचस्पति (अमृतसर) ‘मैं प्र० आ० फा० लि० को बड़े हर्ष से बधाई देता हूं कि उसने आयुर्वैदिक औषधियों को इन्जेक्शन के रूपमें निर्माण कर वैद्यसमाज का बड़ा उपकार किया है। मैंने इस फार्मेसी के बहुत से इन्जेक्शनों का प्रयोग किया है। विशेषकर मलेरिया के लिये ‘विषमांत’ पेचिस के लिये ‘कुटजा’, हृदय रोगों के लिए ‘अर्जुना’, बिसूचिका के लिए ‘गन्धकर्पूर’, प्रदर के लिए ‘प्रदरारि’ आदि २, को शतप्रतिशत सफल सिद्ध पाया है।

(१६) श्री हकीम हरबचन लाल भनोट मैंबर, बोर्ड आफ आयुर्वैदिक यूनानी सिस्टम्ज़ आफ मैडीसन पंजाब, प्रधान कांग्रेस मोरिण्डा (अम्बाला) प्र० आ० फा० लि० अमृतसर के जितने भी इन्जेक्शन मेरे प्रयोग में आए हैं उनमें से ‘प्रताप अर्जुना’ कोरामीन से बढ़ चढ़ कर गुणकारी सिद्ध हुआ है और शेष इन्जेक्शन भी इसी के समान लाभदायक हैं।

इन्जेक्शनों व औषधियों के सूचिपत्र मंगवाने का पता—

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड अकाली मार्कीट

अमृतसर

029503

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, १/२ तो०, १/४ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक--पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक--श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र--कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र--देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, जब्बलपुर, इन्दौर आदि ५० से अधिक।

बिक्रेता-- १५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेको
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रक:—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली।

Compiled
1939-2000